समकालीन कथा साहित्य में निःशक्त केन्द्रित रचनाएँ—एक अनुशीलन

(सन् 2000 से 2015 तक)

Samkalin Katha Sahitya me Nishakt Kendrit Rachanaen ek Anushilan

(Year 2000 to 2015)

कोटा विश्वविद्यालय, कोटा

की

पीएच—डी. (हिन्दी) उपाधि हेतु प्रस्तुत

शोध—प्रबन्ध

कला संकाय

शोधार्थी

कविता यादव

शोध पर्यवेक्षक

डॉ. मनीषा शर्मा

सह—आचार्य

हिन्दी विभाग

राजकीय कला कन्या महाविद्यालय, कोटा (राज.)

कोटा विश्वविद्यालय, कोटा (राज.)

2018

प्रमाण–पत्र

मुझे यह प्रमाणित करते हुए प्रसन्नता है कि शोध–प्रबंध **"समकालीन कथा साहित्य में निःशक्त केन्द्रित रचनाएँ–एक अनुशीलन" (सन् 2000 से 2015 तक)** शोधार्थी कविता यादव ने कोटा विश्वविद्यालय कोटा के पी.एच.डी. के नियमों के अनुसार निम्नलिखित आवश्यकताओं के साथ पूर्ण किया है–

1. शोधार्थी ने विश्वविद्यालय के नियमानुसार कोर्स वर्क किया है।
2. शोधार्थी ने विश्वविद्यालय के 200 दिन के आवासीय आवश्यकता नियम को पूर्ण किया है।
3. शोधार्थी ने नियमित रूप से अपना कार्य प्रगति प्रतिवेदन दिया है।
4. शोधार्थी ने विभाग एवं संस्था प्रधान के समक्ष अपना शोध कार्य प्रस्तुत किया है।
5. शोधार्थी को बताई गई शोध पत्रिका में शोध–पत्र का प्रकाशन हुआ है।

मैं इस शोध प्रबंध को कोटा विश्वविद्यालय कोटा की पी.एच.डी. (हिन्दी) की उपाधि हेतु मूल्यांकनार्थ प्रस्तुत करने की अनुमति देती हूँ।

दिनांक : **हस्ताक्षर शोध पर्यवेक्षक**

ANTI-PLAGIARISM CERTIFICATE

It is certified that PhD Thesis Titled "... (title of the thesis).."by........................(Name of Scholar).............................has been examined by us with the following anti-plagiarism tools. We undertake the follows:

a. Thesis has significant new work/knowledge as compared already published or are under consideration to be published elsewhere. No sentence, equation, diagram, table, paragraph or section has been copied verbatim from previous work unless it is placed under quotation marks and duly referenced.
b. The work presented is original and own work of the author (i.e. there is no plagiarism). No ideas, processes, results or words of others have been presented as author's own work.
c. There is no fabrication of data or results which have been compiled and analyzed.
d. There is no falsification by manipulating research materials, equipment of processes, or changing or omitting data or results such that the research is not accurately represented inthe research record.
e. The thesis has been checked using (i) SMALL SAE TOOLS-Plagiarism checker website (ii) Viper-The Anti-Plagiarism Scanner and (iii) plagiarismchecker.com, and found within limits as per HEC plagiarism Policy and instructions issued from time to time.

(Name & Signature of Research Scholar)

Place :

Date :

(Name & Signature and Seal of

Research Supervisor

Place :

Date :

(शोध सार)

प्राचीनकाल से ही साहित्य का उद्देश्य समाज का हित करना रहा है। यह सत्य भी साबित हो गया हैं क्योंकि आदिकाल से ही साहित्य समाज की अच्छाई व बुराई का विश्लेषण करता रहा हैं। समय के अनुसार जैसे–जैसे सामाजिक संरचना में परिवर्तन आया तद्नुसार साहित्य के स्वरूप व विषयों में भी परिवर्तन होता गया। यह निर्विवाद है कि साहित्य ही समाज में किसी विषय को दिशा एवं महत्त्व प्रदान करता है लेकिन कभी–कभी ऐसा होता है कि अनावश्यक विषय चर्चा में आ जाते हैं और आवश्यक विषय छूट जाते हैं। इसलिए ही साहित्य को समाज का तीसरा नेत्र कहा गया है। इसी नेत्र के माध्यम से साहित्यकार समाज को देखता हैं। वर्तमान समय के साहित्यकार ने समाज की पीड़ा के साथ व्यक्ति की निजी समस्या को भी पहचान लिया हैं। जिनमें निःशक्तजन की समस्या महत्त्वपूर्ण हैं। ये दिव्यांग जन प्राचीनकाल में भी रहे हैं परन्तु वहाँ पर इनके प्रति उपेक्षा का भाव नहीं था। वर्तमान समाज इनके प्रति उपेक्षित भाव रखता हैं। जिसके कारण आज ये कठिन संकट के दौर से गुजर रहे हैं। इनके प्रति बढ़ती हीनभावना के कारण इनकी बेरोजगारी की समस्या, शिक्षा, स्वास्थ्य, समाज, भिक्षावृत्ति से जुड़ी समस्याएँ दिन–प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। शोध के माध्यम से सभी समस्याओं के प्रश्न पर अध्ययन के पश्चात् अपने विचार प्रस्तुत करने का प्रयास किया हैं।

प्रस्तुत शोध में निम्न अध्याय हैं–

प्रथम अध्याय : निःशक्तजन अनुशीलन का अर्थ, निःशक्तजन अनुशीलन की अवधारणा उद्भव एवं विकास, निःशक्तजन अनुशीलन की विशेषताएँ, समकालीन साहित्य में निःशक्तजन अनुशीलन।

द्वितीय अध्याय : आधुनिक हिन्दी कहानी में निःशक्तजन अनुशीलन, स्वातंत्र्योत्तर कहानी और निःशक्तजन अनुशीलन, समकालीन कहानी और निःशक्तजन अनुशीलन, समकालीन कहानी में नारी निःशक्तता, समकालीन कहानी में निःशक्तता के विविध रूप–शारीरिक निःशक्तता, मानसिक निःशक्तता, दृष्टि निःशक्तता, किन्नर वर्ग।

तृतीय अध्याय : आधुनिक उपन्यास और निःशक्तजन अनुशीलन, स्वातंत्र्योत्तर उपन्यास और निःशक्तजन अनुशीलन, समकालीन उपन्यास और निःशक्तजन अनुशीलन, निःशक्तजन अनुशीलन की विशिष्ट लेखिका।

चतुर्थ अध्याय : लघुकथा अर्थ और अवधारणा, समकालीन हिन्दी लघुकथा और निःशक्तजन अनुशीलन, समकालीन हिन्दी लघुकथा में वर्णित समस्याएँ– सामाजिक समस्याएँ, राजनैतिक समस्याएँ, आर्थिक समस्याएँ, पारिवारिक समस्याएँ।

पांचवाँ अध्याय : समकालीन उपलब्ध उपन्यासों में संवेदनशील पात्र– रंगभूमि (सूरदास), रागदरबारी (लंगड़), खंजन–नयन (सूरदास), अनामदास का पोथा (रैक्व ऋषि), ज्यों मेंहदी को रंग (शालिनी), पूतोंवाली (पार्वती), कृष्णवेणी (भास्कर) आदि उपन्यासों में संवेदनशील पात्रों का चित्रण हैं। समकालीन उपलब्ध कहानियों में संवेदनशील पात्रों की चारित्रिक विशेषताएँ– कहानी संग्रह – नेत्रहीन (खेतिया), खितीन बाबू (खितीनदा) ठेस (सिरचरन), अभिशप्त (धनकू), राजू (राजू), अंधा सूरज (सूरज), अंधेरे के खिलाफ (अजय), परिंदे (तीसरा गवाह), अपराजिता (चन्द्रा), निर्मोही (मुन्नी), उतरा नशा (निर्मला), टूटे हुए (तंत्री का पुत्र), स्वयंवर (गोपालदा), मेरी प्रिय कहानियाँ (सूबेदार, सुबय्या, बदलू, शहनाज), विमल (विमल), बिखरे ख्वाब (अक्षय का बेटा), मिलन (कृष्णा चाची), आँखें (नीरज रंजन), एक थी शकुन (शकुन), अपाहिज बिमला बुलंदियों के शिखर पर (बिमला), विकलांग बेटा–बेटी का खोना (अंजुला व रघुवीर), करूं बहियां बल आपनो (विमलानन्द), कंठहार (सुषमा), अनिमंत्रित (मनु), खुली आँखों का दुःख (अंधा पात्र) इस प्रकार कहानियों में निःशक्त पात्रों की विशेषता दर्शायी गई है। इसी प्रकार किन्नर वर्ग पर तीसरी ताली, गुलाम मण्डी, किन्नर गाथा आदि का भी चित्रण हैं। कहानी पात्रों पर निर्भर करती हैं इसलिए उस पात्र में जो विशेषता हैं उसका चित्रण होना चाहिए।

उपलब्ध अन्य विधाओं में निःशक्त पात्र–लघुकथाओं में झिलमिल लघुकथा की पात्र (झिलमिल), ऐसा भी होता हैं (आरती), अंधा और लंगड़ा (बंशी और गंगा राम), परकटा परिंदा (विभु), बैसाखियों (निकेतन) आदि पात्र लघुकथाओं में हैं। इसी प्रकार हेलन केलर की आत्मकथा (हेलन केलर), सुधा चन्द्रन (सुधा चन्द्रन), रेखा कारड़ा की कहानी उन्हीं की जुबानी (रेखा नंदलाल कारड़ा)। महादेवी वर्मा का संस्मरण–अंधा अलोपी (अलोपी), गुंगिया (गूंगी)। मुहावरों में भी इन पात्रों का चित्रण हैं– अंधा पीसे कुत्ता खाय (अंधी औरत), अंधों का हाथी (चार अंधे), लोकोक्तियों में अंधे के हाथ बटेर लगना, अंधा आगे रोये अपना दीदा खोये आदि। इनके द्वारा निःशक्त व्यक्तियों की समाज में क्या दशा होती हैं यह कहावतों व लोकोक्तियों के माध्यम से स्पष्ट हुआ हैं।

उपसंहार : में निष्कर्ष एवं उपलब्धियों का वर्णन किया गया हैं। शोध करते समय क्या लाभ हुआ का अध्ययन किया गया हैं। शोधावधि में निःशक्तजन लेखकों के कथा साहित्य में निःशक्तजन के चित्रण का तो विस्तृत अध्ययन, अन्वेषण किया है, साथ ही समकालीन साहित्य के ज्ञान में वृद्धि अवश्य हुई।

≈≈≈≈

Candidate Declaration

I hereby certify that the work, which is being presented in this thesis, entitled "समकालीन कथा साहित्य में निःशक्त केन्द्रित रचनाएँ–एक अनुशीलन (सन् 2000 से 2015 तक)" in partial fulfillment of the requirement for the award of the Degree of Doctor of philosophy, carried under the supervision of Dr. Manisha Sharma and submitted to the research center University of Kota, University of kota, kota represents my ideas in my own words and whenever other ideas or words have been included I have adequately cited and referenced the original sources. The work presented in this thesis has not been submitted else where for the award any other degree or diploma from any institution. I also declare that I have adhered to all principles of academics honesty and integrity and have not misrepresented or fabricated or falsified any idea/date/fact/source in my submission. I understand that violation of the above will be a cause for disciplinary action by the university and can also evoke penal action from the sources which have thus not been properly cited from whom proper permission has not been taken when needed.

Date **Kavita Yadav**

This is to certify that the above statement made by Kavita Yadav (Registration No. RS/1451/16) is correct to the best of my knowledge

Date **Dr. Manisha Sharma**

Associate Professor

Supervisor

प्राक्कथन

स्त्री, दलित और जनजातीय अनुशीलन के बाद इक्कीसवीं सदी के शुरुआती दौर में निःशक्तजन अनुशीलन स्थापित हो रहा हैं जो शुभ लक्षण का संकेत हैं। भेदभाव से रहित शुद्ध मानवतावादी दृष्टि पर आधारित यह ऐसा नवीन अनुशीलन हैं जो किसी मानव को जन्म से या जीवन पर्यन्त किसी दुर्घटना या विकार से कभी भी हो सकता हैं। इसके लिए समाज में चेतना लाना और इनके समग्र विकास के लिए जनता, सरकार और समाजसेवी संस्थाओं में समन्वय कराना समय की माँग हैं। पूरे विश्व में इनकी संख्या लगभग पन्द्रह प्रतिशत हैं। ये सदियों से अपनी समस्या से संघर्ष कर रहे हैं।

समाज में निःशक्तजन की भूमिका ने साहित्यकार को किस रूप में प्रभावित किया? निःशक्तजन के विषय में रचनाकारों का सामान्य दृष्टिकोण क्या रहा? अपनी रचनाओं में उन्होंने इनका चित्रण किस रूप में किया? निःशक्तजनों की दशा में परिवर्तन कैसे हो? इनकी शिक्षा कैसी हो? राजनीतिक हिस्सेदारी में वे क्या चाहते हैं? इनकी आर्थिक नीति क्या हो? इन्हीं प्रश्नों के उत्तर ढूँढ़ने की लालसा ने मुझे इस विषय पर शोध करने के लिए आकृष्ट किया।

समकालीन कथा साहित्य में दिव्यांगजन का यथार्थ चित्रण किया गया हैं। इनकी पारिवारिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक स्थिति का चित्रण किया गया हैं। वर्तमान समय में इनका समाज, परिवार, राजनैतिक मुद्दों का मूल्यांकन किया जा रहा हैं। प्रस्तुत शोध में मैंने निःशक्तजन के जीवन संघर्ष को केन्द्रित करते हुए उनकी समस्या के प्रश्न पर अध्ययन के पश्चात् अपने विचार प्रस्तुत करने का प्रयास किया हैं।

प्रस्तुत शोध में निम्न अध्याय हैं—**प्रथम अध्याय** में निःशक्तजन अनुशीलन का अर्थ, उद्भव एवं विकास, निःशक्तजन अनुशीलन की विशेषताएँ, समकालीन साहित्य में निःशक्तजन अनुशीलन। **द्वितीय अध्याय** में आधुनिक हिन्दी कहानी में निःशक्तजन अनुशीलन, स्वातंत्र्योत्तर कहानी और निःशक्तजन अनुशीलन, समकालीन कहानी और निःशक्तजन अनुशीलन, समकालीन कहानी में नारी निःशक्तता, समकालीन कहानी में निःशक्तता के विविध रूप—शारीरिक निःशक्तता, मानसिक, दृष्टि, किन्नर वर्ग। **तृतीय अध्याय** में आधुनिक उपन्यास और निःशक्तजन अनुशीलन, स्वातंत्र्योत्तर उपन्यास और निःशक्तजन अनुशीलन, समकालीन उपन्यास और निःशक्तजन अनुशीलन, निःशक्तजन अनुशीलन की विशिष्ट लेखिका। **चतुर्थ अध्याय** में लघुकथा—अर्थ और अवधारणा, समकालीन हिन्दी लघुकथा और

निःशक्तजन अनुशीलन, समकालीन हिन्दी लघुकथा में वर्णित समस्याएँ–सामाजिक समस्याएँ, राजनैतिक समस्याएँ, आर्थिक समस्याएँ, पारिवारिक समस्याएँ।

पंचम अध्याय – समकालीन उपलब्ध उपन्यासों में संवेदनशील पात्र–रंगभूमि (सूरदास), रागदरबारी (लंगड़), खंजन–नयन (सूरदास), अनामदास का पोथा (रैक्वऋषि), ज्यों मेंहदी को रंग (शालिनी) आवां (देवीशंकर पाण्डेय), कोई बात नहीं (शशांक), करिछिमा (पादड़ी साहब), कैंजा (पगली), पूतों वाली (पार्वती), कृष्णवेणी (भास्कर), आदि उपन्यासों में संवेदनशील पात्रों का चित्रण हैं। समकालीन उपलब्ध कहानियों में संवेदनशील पात्रों की चारित्रिक विशेषताएँ–कहानी संग्रह–नेत्रहीन (खेतिया), खितीन बाबू (खितीननदा), ठेस (सिरचरण), अभिशप्त (धनकू), सीट नंबर छह (बुजुर्ग दादी, गूंगी शहनाज, प्रमिला अरोड़ा), गुलकीबन्नों (गुलकी), राजू (राजू), अंधा सूरज (सूरज), अंधेरे के खिलाफ (अजय), परिंदे (तीसरा गवाह), अपराजिता (चन्द्रा), निर्मोही (मुन्नी), उतरा नशा (निर्मला), टूटे हुये (तंत्री का पुत्र), स्वयंवर (प्रभा), मेरी प्रिय कहानियाँ (दुर्गी, मेरा भाई, बदलू, शहनाज), विमल (विमल), बिखरे ख्वाब (अक्षय का बेटा), मिलन (कृष्णाचाची), आँखे (नीरजरंजन), एक थी शकुन (शकुन), अपाहिज बिमला बुलंदियों के शिखर पर (बिमला), विकलांग बेटा–बेटी का खोना (रघुवीर–अंजुला), करू बहियां बल आपनों (विमलानन्द), कंठहार (सुषमा), अनिमंत्रित (मनु), खुली आँखों का दुःख (अंधा पात्र) इस प्रकार कहानियों में निःशक्त पात्रों की विशेषता दर्शायी गई हैं। इसी प्रकार किन्नर वर्ग पर तीसरीताली, मुन्नी मोबाइल, गुलाममण्डी, किन्नरगाथा आदि का भी चित्रण हैं। कहानी पात्र पर निर्भर करती हैं इसलिए उस पात्र में जो विशेषता हैं उसका चित्रण होना चाहिए।

उपलब्ध अन्य विधाओं में निःशक्त पात्र–लघुकथा में–झिलमिल लघुकथा की पात्र (झिलमिल), ऐसा भी होता हैं (आरती), अंधा और लंगड़ा (बंशी और गंगाराम), परकटा परिंदा (विभु), बैसाखियों (निकेतन) आदि पात्र लघुकथाओं में हैं। इसी प्रकार हेलन केलर की आत्मकथा (हेलन केलर), सुधा चन्द्रन (सुधा चन्द्रन), रेखा कारड़ा की कहानी उन्हीं की जुबानी (रेखा नंदलाल कारड़ा)। महादेवी वर्मा का संस्मरण अंधा अलोपी (अलोपी), गुंगिया (गूंगी)। मुहावरों में इन पात्रों का चित्रण हैं– अंधा पीसे कुत्ता खाए (अंधी औरत), अंधों का हाथी (चार अंधे), लोकोक्तियों में अंधे के हाथ बटेर लगना, अंधा आगे रोये अपना दीदा खोये आदि। इनके द्वारा निःशक्त व्यक्तियों की समाज में क्या दशा होती हैं यह कहावतों व लोकोक्तियों के माध्यम से स्पष्ट हुआ हैं।

उपसंहार में निष्कर्ष एवं उपलब्धियों का वर्णन किया गया हैं। शोध करते समय क्या लाभ हुआ का अध्ययन किया गया हैं। शोधावधि में निःशक्तजन लेखकों के कथा साहित्य में निःशक्तजन के चित्रण का तो विस्तृत अध्ययन, अन्वेषण किया हैं, साथ ही समकालीन कथा साहित्य के अध्ययन से ज्ञान वृद्धि अवश्य हुई। शोध की सामग्री को एकत्रित करने में यथासम्भव प्रयास किये गये,

कभी–कभी तो शोध सामग्री में अनेक परेशानियों का सामना करना पड़ा। अन्ततः प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से अनेक ग्रंथों के प्रणयन से मैंने अपने शोध कार्य को अन्तिम रूप देने का प्रयास किया।

शोध को पूर्ण करने में मुझे अनेक महानुभावों का सहयोग प्राप्त हुआ, मैं इनके प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करना अपना कर्त्तव्य समझती हूँ, किन्तु धन्यवाद मात्र से ही उऋण नहीं हो सकती। श्रद्धेय शोध निर्देशिका डॉ. मनीषा शर्मा ने विषय चयन से लेकर शोध पूर्ण होने तक मेरी सभी कठिनाइयों को बड़े प्रेम से दूर किया। इनके सानिध्य में यह कठिन कार्य भी सरल बन गया। इनकी वजह से आज मेरा शोध पूरा हो पाया हैं। इनमें सहृदयता, प्रेम, सहयोग, दुलार, अप्रतिम हैं, मैं हृदय के अन्तर्मन से इनकी आभारी हूँ।

"शिक्षक है शिक्षा का सागर
शिक्षक बाँटे ज्ञान बराबर
शिक्षक मन्दिर जैसी पूजा
माता–पिता का नाम है दूजा
प्यासे को जैसे मिलता पानी
शिक्षक है वो जिन्दगानी।"

मैं लेखक डॉ. विनय कुमार पाठक का आभार प्रकट करती हूँ जिन्होंने अपना साक्षात्कार देकर मेरा मार्गदर्शन किया हैं। डॉ. बेला जोशी, कमलेश दीक्षित, डॉ. रामअवतार मेघवाल आदि ने मेरा नैतिक रूप से सहयोग प्रदान किया, मैं उनका भी आभार प्रकट करती हूँ। मेरा प्रारम्भ से ही सपना था कि मैं अपने नाम के आगे डॉ. लगाऊँ और आज मेरा सपना साकार हो गया हैं। इस सबका श्रेय मेरे पति परमेश्वर को जाता हैं। जिन्होंने मेरे सपनों को साकार करने में पूरा सहयोग दिया। मैं इनका हृदय से आभार प्रकट करती हूँ। मेरे मित्रों ने भी समय–समय पर मेरा आत्मबल बढ़ाकर मुझे सहयोग प्रदान किया हैं। मेरे मित्रों में गायत्री साल्वी, बेबी जांगिड़ा, अन्जुलता सारस्वत, कुसुम ने मुझे सहयोग प्रदान किया। इन सभी का मैं आभार व्यक्त करती हूँ। मैं हिन्दी के उन सभी लेखकों के प्रति हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापित करती हूँ, जिनकी कृतियाँ मेरे शोध प्रबन्ध का आधार बनी हैं और उन सभी आलोचकों–समीक्षकों को, जिनके ग्रन्थों से सहायता ली गई हैं, के प्रति आभार व्यक्त करते हुए आशीर्वाद की कामना करती हूँ। अन्त में मैं कुशल, अत्रुटिपूर्ण एवं तत्परता से टंकण कार्य करने के लिए शबनम खान को धन्यवाद देना चाहूँगी जिन्होंने इस शोध ग्रंथ को साकार रूप दिया वह प्रशंसनीय हैं। वर्तनी संबंधी अशुद्धियों को शुद्ध करने का मैंने यथा सम्भव प्रयास किया हैं, फिर भी टंकण संबंधी कोई त्रुटियाँ रह गयी हो, तो मैं क्षमा प्रार्थी हूँ।

मैं हिन्दी–विभाग के समस्त गुरुजनों की भी ऋणी हूँ, जिन्होंने समय–समय पर अपना अमूल्य सहयोग प्रदान किया।

शोधार्थी

कविता यादव

अनुक्रमणिका

अध्याय विवरण	पृष्ठ सं.
प्राक्कथन	i - iii
प्रथम अध्याय : निःशक्त केन्द्रित अनुशीलन : एक परिचय	**1—51**
(1) निःशक्तजन अनुशीलन का अर्थ	
(2) निःशक्तजन अनुशीलन की अवधारणा उद्भव एवं विकास	
(3) निःशक्तजन अनुशीलन की विशेषताएँ	
(4) समकालीन साहित्य में निःशक्तजन अनुशीलन	
निष्कर्ष	
द्वितीय अध्याय : हिन्दी कहानी में निःशक्त केन्द्रित अनुशीलन	**52—117**
(1) आधुनिक हिन्दी कहानी और निःशक्तजन अनुशीलन	
(2) स्वातंत्र्योत्तर कहानी और निःशक्तजन अनुशीलन	
(3) समकालीन कहानी और निःशक्तजन अनुशीलन	
(4) समकालीन कहानी में नारी निःशक्तता	
(5) समकालीन कहानी में निःशक्तता के विविध रूप	
(अ) शारीरिक निःशक्तता	
(ब) मानसिक निःशक्तता	
(स) दृष्टि निःशक्तता	
(द) किन्नर वर्ग	
निष्कर्ष	
तृतीय अध्याय : हिन्दी उपन्यास में निःशक्त केन्द्रित अनुशीलन	**118—161**
(1) आधुनिक हिन्दी उपन्यास और निःशक्तजन अनुशीलन	
(2) स्वातंत्र्योत्तर उपन्यास और निःशक्तजन अनुशीलन	
(3) समकालीन उपन्यास और निःशक्तजन अनुशीलन	
(4) निःशक्त अनुशीलन की विशिष्ट लेखिका	
निष्कर्ष	

चतुर्थ अध्याय : हिन्दी लघुकथाओं में निःशक्त केन्द्रित अनुशीलन **162–206**

(1) लघुकथा अर्थ और अवधारणा

(2) समकालीन हिन्दी लघुकथा और निःशक्तजन अनुशीलन

(3) समकालीन हिन्दी लघुकथा में वर्णित समस्याएँ

(अ) सामाजिक समस्याएँ

(ब) राजनैतिक समस्याएँ

(स) आर्थिक समस्याएँ

(द) पारिवारिक समस्याएँ

निष्कर्ष

पांचवाँ अध्याय : निःशक्त केन्द्रित अनुशीलन और साहित्यिक संवेदना **207–259**

(1) समकालीन उपलब्ध उपन्यासों में संवेदनशील पात्र

(2) समकालीन उपलब्ध कहानियों में संवेदनशील पात्रों की चारित्रिक विशेषताएँ

(3) उपलब्ध अन्य विद्याओं में निःशक्त पात्र

(अ) लघुकथा

(ब) आत्मकथा

(स) संस्मरणात्मक रेखाचित्र

(द) मुहावरों में अभिव्यक्त संवेदनाएँ

(य) लोकोक्तियों में अभिव्यक्त संवेदनाएँ

(र) दैनिक समाचार पत्र व पत्रिकाओं में चित्रित निःशक्तजन

उपसंहार **260–264**

शोध सारांश **265–279**

संदर्भ ग्रन्थ सूची **280–285**

रिसर्च पेपर

प्रथम अध्याय

निःशक्त केन्द्रित अनुशीलन : एक परिचय

(1) निःशक्तजन अनुशीलन का अर्थ

(2) निःशक्तजन अनुशीलन की अवधारणा

उद्भव एवं विकास

(3) निःशक्तजन अनुशीलन की विशेषताएँ

(4) समकालीन साहित्य में निःशक्तजन अनुशीलन

निष्कर्ष

प्रथम – अध्याय

निःशक्त केन्द्रित अनुशीलन : एक परिचय

'हितेन सहितम् साहित्यम्' उक्ति के अनुसार साहित्य का उद्देश्य समाज का कल्याण करना हैं, इसलिए साहित्य समाज का तीसरा नेत्र कहा गया है, यह सत्य भी हैं, क्योंकि आदिकाल से ही साहित्य समाज की अच्छाई व बुराई का विश्लेषण करता रहा है। "साहित्य बड़ा ही व्यापक अर्थ रखने वाला महान गौरवपूर्ण शब्द है। यह विश्वसनीय भाव का द्योतक हैं, समाज की आंतरिक दशा का दिव्य दर्पण हैं। सभ्यता और संस्कृति का संरक्षक साहित्य ही हैं।"[1] इसलिए जब–जब मानवीय संबंधों में दरार आने लगती हैं तो साहित्य का सहारा लिया जाता हैं।

समय के अनुसार जैसे–जैसे सामाजिक संरचना में परिवर्तन आया तद्नुसार साहित्य के स्वरूप व विषयों में भी परिवर्तन होता गया। आज के उत्तर आधुनिकता के युग में जबकि विज्ञान, तकनीक और संचार के क्षेत्र में मनुष्य ने अभूतपूर्व सफलता प्राप्त की हैं। सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक मूल्यों में भी परिवर्तन आया हैं। ऐसे समय में ऐसे विषय, जो अब तक अछूते थे, साहित्य के केन्द्र में आ गए हैं। साहित्यकार अपनी चेतना से, अपनी प्रतिभा से एक सार्थक रचना तैयार करता हैं और यह रचना जीवन की दिशा बदल देती हैं। साहित्यकारों के अचूक प्रभाव के कारण बीसवीं शताब्दी के अन्तिम दशक में वैश्वीकरण, स्त्री तथा दलित विमर्श प्रारम्भ हुआ। इक्कीसवीं सदी के प्रथम दशक में आदिवासी विमर्श और इसके पश्चात् निःशक्तजन अनुशीलन साहित्य में स्थान पा रहा हैं। वास्तव में तो यह विषय साहित्य में हमेशा रहा हैं, लेकिन सकारात्मक व सूक्ष्म दृष्टि के साथ इस विषय पर वर्तमान समय में ही चिंतन व लेखन हो रहा हैं। जहाँ तक दिव्यांग वर्ग की शारीरिक व मानसिक पीड़ा का प्रश्न है, आदिकाल से ही इनके प्रति उपेक्षा व तिरस्कार दिखाई देता हैं। उदाहरण के लिए महाभारत में धृतराष्ट्र व शकुनि और रामचरित मानस में मंथरा, कृष्ण काव्य में कुब्जा। सभी पात्र शारीरिक रूप से निःशक्त की श्रेणी में आते थे, सामान्य जनता में इनके प्रति उपेक्षा का भाव पाया जाता हैं। प्राचीनकाल से शारीरिक व मानसिक रूप से दिव्यांग लोगों के प्रति जनसामान्य के मन में यह अवधारणा रही हैं कि ऐसे लोगों में बुरी आत्माओं का आधिपत्य हैं। वे अहितकारी होते हैं।

बदलते समय व समाज की माँग के कारण आज साहित्य में निःशक्तजन अनुशीलन चर्चा में हैं। ये दिव्यांग लोग चारों युगों में रहे हैं, अपनी इच्छाशक्ति व दृढ़विश्वास के द्वारा अपने–अपने क्षेत्र

में उत्कृष्ट कार्य करके सशक्त को पीछे छोड़ दिया। भारत में अशिक्षा और कुपोषण के कारण यह समस्या अधिक हैं। समाज की पंगु सोच इनको भिक्षावृत्ति में धकेल देती हैं। जो देश के लिए समस्या बन रही हैं। क्योंकि ये भी देश के नागरिक हैं तो फिर इन्हें टूटे–फूटे बर्तनों की तरह एक कोठरी में क्यों फेंक रहे हैं। वर्तमान में राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर समाज की हर समस्या को उठाया जा रहा हैं। क्योंकि हर देश की शक्ति उस देश के नागरिक होते हैं और निःशक्तजन भी इनमें शामिल हैं। जब इनके साथ अन्याय हो रहे हैं तो हम एक सफल राष्ट्र की कल्पना कैसे कर सकते हैं? इस वर्ग को न्याय दिलाने में हमारे बुद्धिजीवी प्रयासरत हैं। समकालीन साहित्य में निःशक्तजन अनुशीलन स्थापित हो रहा हैं जो सभी के लिए शुभ संकेत हैं।

(1) निःशक्तजन अनुशीलन का अर्थ

वैदिक युग से लेकर आज तक साहित्य में जितनी भी रचना हुई हैं। उसमें कहीं न कहीं दिव्यांगजन के प्रति संवेदना भी देखने को मिलती हैं। वह फिर चाहे महाभारत हो, रामायण, सुखसागर, भागवद्पुराण हो या वेद पुराण और समकालीन गद्य साहित्य भी इनमें शामिल हैं। प्राचीन ग्रंथों में निःशक्तजन को सामान्यजन ही माना गया हैं उदाहरण के रूप में भगवान शिव जो तीन नेत्र वाले, हाथी के मस्तक वाले गणेश, बकरा के मस्तक वाले राजा दक्ष प्रजापति, कुबेर, छह मुखों वाला कार्तिकेय, शुक्र (काने), शनि (लंगड़े) आदि देवता एवं ग्रह आदि हैं किन्तु यहाँ इन्हें दिव्यांग नहीं माना गया हैं। "भारतीय संस्कृति व पुराणों में बताया गया हैं कि मानव–जीवन की सफलता राज्य–सुख, मोक्ष या स्वर्ग प्राप्ति में नहीं अपितु गरीब एवं अपाहिज लोगों की सेवा करने में हैं। धर्म–ग्रंथों एवं शास्त्रों में प्राणियों, अपाहिजों, दरिद्रों, भूखे, लंगड़े–लूले, अंधे, बेसहारा लोगों की सेवा को सर्वोपरि माना गया हैं। वे इन सबमें परमात्मा का रूप देखते हैं और प्राणियों के प्रति दया का भाव रखते हैं। इसलिए **वसुधैव कुटुम्बकम् तथा सर्वे भवन्तु सुखिनः, सर्वे संतु निरामयः?** की बात कहीं गई हैं।"[2]

दिव्यांग शब्द का अर्थ – जब कोई व्यक्ति शारीरिक एवं मानसिक तौर पर सामान्य न होकर न्यूनाधिक अक्षम हैं। इस बात को दर्शाने के लिए अग्रेंजी में (Handicapped) हैंडिकेप्ड (अपाहिज) शब्द को प्रयोग में लिया जाता हैं। समय के साथ इसके नये अर्थ ग्रहण किये और आज यह शारीरिक, मानसिक लाभहीनता के तौर पर प्रयुक्त होता हैं। आज के समय में यह शब्द अपमानजनक लगने लगा हैं। विभिन्न कोशों तथा विद्ववानों ने दिव्यांग शब्द के अर्थ को स्पष्ट किया हैं। नालंदा विशाल सागर में– "जिसका कोई अंग टूटा या खराब हो अंगहीन।"[3] उसी तरह बृहत् प्रामाणिक हिन्दी कोश में लिखा हैं "जिसका कोई अंग टूटा या बेकार हो, खंडित अंग वाला।"[4]

भारत के चौदहवें प्रधानमंत्री के 'विकलांग' शब्द को नया शब्द 'दिव्यांग' का प्रयोग अपने वाराणसी के सम्बोधन में किया था। उनको लगता हैं कि 'विकलांग' को 'दिव्यांग' कहना सम्मानजनक हैं। हिन्दी शब्दकोश में निःशक्त शब्द को 'किसी अंग से हीन' या फिर ये कहेंगे कि वह मनुष्य जो किसी अंग विकार के कारण सशक्त के बराबर सक्षम नहीं हैं। निःशक्त का अर्थ अंगविहीन होना ही नहीं बल्कि विकृत अंग या अंग की बनावट बेढंगी हो। इसी कारण शब्दकोश में ऐसे व्यक्ति जिनका 'कोई अंग बेकाम' हो। बेकाम अंग का अर्थ हैं जैसे किसी व्यक्ति के हाथ या पैर में अंगुलियों की संख्या छह होना, यहाँ छठी अँगुली बेकाम हैं क्योंकि सामान्य मनुष्य में पाँच ही होती हैं। सामान्य रूप से दिव्यांग शब्द का अर्थ लिया जाए तो शक्तिहीन/असमर्थ ठहरता हैं। सकलांग या सशक्त व्यक्ति जिसके हाथ, पैर, आँख, कान, नाक सभी अंग सामान्य हैं। इसके विपरीत जिस व्यक्ति के अंग विकार ग्रस्त या बेढंगा हैं उसे निःशक्त कहते हैं। निःशक्त की श्रेणी में असमर्थ, विकारग्रस्त, विकृत अंग, मानसिक, शारीरिक व किन्नर वर्ग आदि को लिया जाता हैं। यह निःशक्तता जन्म से, दुर्घटनावश, किसी लम्बी बीमारी या प्राकृतिक आपदा किसी भी कारण हो सकती हैं।, यह समस्या किसी भी समय किसी भी मनुष्य में हो सकती हैं। इसलिए यह ईश्वर की देन मानकर इनके प्रति सहानुभूति या दया का भाव रखना चाहिए। हम देखते हैं कि एक अच्छा स्वस्थ्य व्यक्ति काम करते–करते बेचेत होकर गिर पड़ता हैं और कहते हैं इसको लकवा मार गया। अब वह जीवनभर दूसरों पर आश्रित होकर बाकी की जिन्दगी को काटेगा। यह उसके परिवार पर निर्भर करता हैं कि इसे किस दृष्टि से देखते हैं। यदि परिवार सभ्य हैं तो उसकी दिव्यांगता आड़े नहीं आयेगी वरना जीवनभर कष्टों का सामना करना पड़ेगा। क्योंकि हर इंसान की शुरुआत परिवार से होती हैं यदि परिवार अपने सदस्य को उपेक्षित करता हैं तो उसे हर जगह उपेक्षित ही होना पड़ता हैं। इसी सोच को बदलना साहित्यकारों का उद्देश्य हैं।

निःशक्त की परिभाषा करते हुए मराठी शब्दकोश में लिखा हैं– "जिनके शरीर में शारीरिक या मानसिक बिगाड़ हुआ, जो सर्वसाधारण व्यक्ति के अनुसार अपने दैनदिन काम–काज नहीं कर पाते उन्हें मुश्किल और असम्भव होता हैं। ऐसे व्यक्ति को निःशक्त कहते हैं।"[5]

दिव्यांगता के संदर्भ में प्रो. दामोदर मोरे ने कहा हैं– "कुदरत की दी हुई शारीरिक, मानसिक दुर्बलता, न्यूनता या विरूपता दिव्यांगता हैं। यह दिव्यांगता दुःख की जननी हैं, लेकिन इस सत्य को न स्वीकारते हुए उससे दूर भागना या डरना कायरता हैं, उसका डटकर सामना करना ही पुरुषार्थ हैं। शरीर भले ही निःशक्त हो, मन निःशक्त नहीं होना चाहिए, क्योंकि मन तो ऊर्जा का केन्द्र हैं।"[6] इसलिए ही हर मनुष्य की यही कोशिश होनी चाहिए कि वह एक दिव्यांग व्यक्ति को मानसिक आघात न लगने दें। उसके भावों को ठेस न पहुँचने दें। हम जानते हैं कि दूसरों की नजरों में गिरा हुआ आदमी तो ऊपर उठ सकता हैं परन्तु स्वयं की नजर में गिरा हुआ आदमी कभी

नहीं उठ सकता इसलिए निःशक्त व्यक्ति को उपेक्षा की दृष्टि से न देखें। शारीरिक या मानसिक दिव्यांगता की कोटि का निर्धारण चिकित्सक करते हैं। पंगु, अपंग, निःशक्त, दिव्यांग, अंगबाधित, किन्नर आदि शब्दों में विभेद भाषाविद करते हैं। एक अंग बाधित व्यक्ति कानून की दृष्टि में निःशक्त हैं चिकित्सा शास्त्र की दृष्टि में शक्तिहीन नहीं हैं। कानून के अनुसार निःशक्त हैं परन्तु भाषाविज्ञानों के अनुसार पंगु नहीं हैं, कठोर शब्दों में वह अंधा हैं जबकि आत्मा के भाव सम्बोधन के लिए सूरदास हैं। पैर या हाथ से अपंग व्यक्ति अंगबाधित अवश्य हैं परन्तु शक्तिहीन नहीं हैं, लाचार नहीं हैं अर्थात् पंगु या लोथ भी नहीं हैं। वस्तुतः दिव्यांगता केवल मनुष्य में ही नहीं पशु—पक्षियों में भी दृष्टिगत होती हैं। हजारी प्रसाद द्विवेदी के संस्मरण में एक कुत्ता और एक मैना लंगड़ी थी, तीन पैर वाला बैल, सहज ही दिखलाई पड़ जाता हैं किन्तु हमारा विषय पशु—पक्षी और देवता नहीं मनुष्य हैं।

'अनुशीलन'—जब भी हम विचार करते है किसी के दर्द को महसूस करते हैं और विमर्श की विचारधारा निकलती हैं। साधना की पूर्णता इसी बात पर निर्भर करती हैं कि हम किसी के दर्द की आवाज पर कितना विचार करते हैं। उसकी गहराई में जाकर समाज को क्या दिशा प्रदान कर सकते हैं और यही साहित्य की साधना हैं। केवल कोरे पन्नों को काली स्याही से रंग देने से समाज के उस उपेक्षित वर्ग को क्या हासिल होता हैं। साहित्यकार के द्वारा चिंतन—मनन, बार—बार किया जाने वाला अध्ययन, किसी विषय के सभी अंगों पर सूक्ष्म दृष्टि से विचार करना और फिर अपनी लेखन कला से किसी के बहते आँसू पोंछ दें, किसी के दर्द पर मरहम पट्टी लगा दें, किसी के बूझे दिल में रोशनी जला दें, हार माने—मन को चलने का साहस प्रदान कर दें तब ही हमारा अनुशीलन सार्थक हो सकता हैं। दिव्यांग वर्ग की बात सोचकर मन—मस्तिष्क में एक भयानक चित्र उत्पन्न हो जाता हैं। दुनिया में समाजसेवियों और समाजशास्त्रियों ने इस उपेक्षित वर्ग की पीड़ा को महसूस किया। समाज के विकास में यह हिस्सा अलग पड़ा हुआ हैं लेकिन यह भी सामान्य मनुष्य की तरह ही समाज का अंग हैं। इसको साथ लेकर चलना हमारा कर्त्तव्य हैं।

बीसवीं सदी के अन्तिम दशकों में मानवजाति में गहन जागृति और बदलाव देखा गया हैं। अब राजा—महाराजाओं व अध्यात्मिक ज्ञान को छोड़कर व्यक्ति की निजी समस्या पर लेखक का ध्यान केन्द्रित हो गया हैं। इसी कारण छोटी—छोटी समस्याओं का मुख्य बिन्दु बन जाना ही सबसे बड़ी उपलब्धि मानी जाती हैं। 'कथा साहित्य में विकलांग विमर्श' में अपनी भूमिका में डॉ. विनय कुमार पाठक लिखते हैं— "स्त्री, दलित और जनजातीय विमर्श के बाद इक्कीसवीं सदी के प्रथम दशक की दस्तक के रूप में 'विकलांग विमर्श' स्थापित हो रहा हैं जो शुभ—लक्षण का संकेत हैं। जाति और लिंग से रहित शुद्ध मानवतावादी दृष्टि पर आधारित यह ऐसा अभिनव विमर्श हैं जो कि

मानव को जन्म से या जीवन प्रयत्न किसी दुर्घटना या विकार से कभी भी हो सकता हैं। इसके लिए समाज में जनजागृति लाना और इनके समग्र विकास हेतु जनता, शासन और समाज सेवी संस्थाओं में सामंजस्य का सूत्रपात करना आज समय की माँग हैं। हमारे देश में ही नहीं पूरे विश्व में दिव्यांगों की संख्या पन्द्रह प्रतिशत हैं लेकिन विडम्बना ही कही जाएगी कि पुर्नवास की समस्या आज भी मुँह बाए खड़ी हैं।"[7]

दिव्यांग वर्ग की पीड़ा सदियों से काव्य–कला के केन्द्र में रही हैं। अष्टावक्र, मंथरा, अहल्या, ऋषिच्वयन, धृतराष्ट्र, शकुनि जैसे विभिन्न पात्रों की दुःख व्यथा एवम् जीवन–चित्रण प्राचीन साहित्य में किया गया हैं। निःशक्तजन के प्रति सहानुभूति और समानुभूति का भारतीय साहित्य और लोकभाषाओं में वर्णन हैं। निःशक्त जिस पीड़ा को भोगता हैं। उसकी अनुभूति मीरा के शब्दों में–"घायल की गति घायल जाने।"[8] इस प्रकार यह तथ्य जितना पुराना हैं उतनी ही दिव्यांग की समस्या। इन व्यक्तियों ने अपनी अंगहीनता को परास्त करके समाज को अपने असाधारण व्यक्तित्व व कृतित्व से प्रभावित किया। प्राचीन ग्रंथों, वेदों, बाइबिल, कुरान आदि में इस वर्ग की समस्या उनकी सामाजिक दशा और साथ में दीर्घत्तमा, अष्टावक्र जैसे ऋषियों का भी वर्णन हैं। मनुष्य हाथ, पैर, आँख, कान, नाक तथा दिमाग से निःशक्त हो सकता हैं परन्तु यदि वह मन से निःशक्त नहीं है तो अन्य अंगों की कमी को अपने जीवन रूपी मार्ग में रोड़ा नहीं बनने देता।

ये लोग अपने श्रेष्ठ कार्यों के द्वारा सशक्त को भी मात दें देते हैं। जो अपंग होने के बावजूद भी अदम्य और अटूट इरादों व जिजीविषा जैसे गुणों के कारण समाज में अपनी उपस्थित दर्ज कराता हैं। मानवता की अद्‌भुत मिसाल बन जाते हैं इस संदर्भ में–

"वह जब मशाल बन गया,
सभी जगह उजाला छा गया।
उसने जब शाला ओढ़ी,
सभी जगह अंधेरा छा गया।।"[9]

आवश्यकता हैं तो केवल उसे सहयोग व प्रोत्साहन की जो इन्हें आगे बढ़कर प्रतिभा निखारने में मदद करें। ऐसे असंख्य 'गुदड़ी के लाल' हैं जिन्हें सच्चे गुरु व प्रेरणा की तलाश हैं।

गौतम बुद्ध ने कहा हैं, "जो लंगड़ा, अंधा, भूखा–प्यास तुम्हारे दर पर आया हैं, वह परमेश्वर स्वरूप हैं। तुम भाग्यशाली हो कि तुम्हें प्रभु की सेवा का अवसर मिल रहा हैं।"[10] निःशक्त होना स्वयं पर निर्भर नहीं करता। इसके लिए संस्कृत में भी एक श्लोक प्रचलित हैं। "एको ही दोषों गुणसन्निपातों, निमिन्दा जिन्दों किरणें शिवांका– के अनुसार चाँद की खूबसूरती–शीतलता और

प्रकाश में उसके ऊपर दिखने वाला काला धब्बा एक न मिटने वाला दोष माना जाता हैं और दृष्टिकिमपि लोकेऽस्मिन न निर्दोष न निर्गुणम् अर्थात् इस विश्व में कोई भी वस्तु ऐसी नहीं हैं जो निर्दोष हो, न निर्गुण सभी प्राणियों में कुछ दोष भी रहता है कुछ गुण भी। केवल परमपिता परमेश्वर ही इस बात के अपवाद हैं जिन्होंने सृष्टि में संतुलन बनाए रखने के लिए ऐसा नियम बनाया हैं।"[11]

अपंग वर्ग ने अपने जीवन की जो कहानी रची हैं उन्हीं की समाज माँग कर रहा हैं। उन्होंने अपना आकार ज्यादा बड़ा कर लिया हैं, उनकी ऊँचाई आकाश को भी पार कर रही है। यही कहना इनके लिए उचित होगा–

"लगन के पाव थककर चूर नहीं होतें।
द्वार उपलब्धियों के दूर नहीं होतें।
हौंसलों का कद बढ़ा लिया हो जिसने।
वह असफल कभी शूर नहीं होते।।"[12]

जीवन रूपी सागर में मुसीबतों की लहरों का ताण्डव जारी रहता हैं। उसमें जीवन नौका का विचलित होना स्वाभाविक हैं। ऐसे में नाविक ने ही हिम्मत छोड़ दी तो जीवन नौका का विनाश अटल हैं। यदि उसने समस्या का मुकाबला करने की ठान ली, प्रयास नहीं छोड़ा तो आशा के आनन्दमय सपने किनारे लग सकते हैं। आज चाहे शिक्षा का क्षेत्र हो, चाहे नौकरी का क्षेत्र हो, खेल का मैदान हो, युद्ध का क्षेत्र हो, वैज्ञानिक कौशल का क्षेत्र हो, दिव्यांग वर्ग कहीं भी सामान्य वर्ग से पीछे नहीं हैं। इस अनुशीलन के अर्थ को समझकर इसे भी साहित्य के अन्य विषयों के समानान्तर लाकर निःशक्तजन को समाज के सापेक्ष प्रस्तुत करके ये स्पष्ट दृष्टिगत कराना कि ये मानव भी इसी समाज व उसी विधाता की रचना हैं। जिसके अन्य लोग या प्राणी है। उनको भी समाज में उतना ही सम्मान मिलना चाहिए जितना कि शारीरिक सक्षम मनुष्य को मिलता हैं।

ईश्वर की यह विशेष कृपा हैं कि जब जीवन में उम्मीद के सभी दरवाजे बंद हो तो कोई न कोई खिड़की वह आशा रूपी प्रकाश हेतु अवश्य खुली रखता हैं। इसी कारण ऐसे लोगों में कोई न कोई विलक्षण शक्ति अवश्य होती हैं जो इनकी उस कमी का परिपूरक ही नहीं वरन् इन्हें किसी विशिष्ट असाधारण क्षमता का धनी बना देती हैं। ये हमारे प्रोत्साहन और सहानुभूति के प्यासे होते हैं। जब इन्हें ये मिल जाता हैं तो अपना जलवा दुनिया को दिखा देते हैं जैसे–जन्म से ही नेत्रहीनता की समस्या से जूझ रहे गगन वीर का आई.आई.एम. तक पहुँचने का सफर आसान नहीं काँटों व शूलों से भरा रहा हैं। इस सन्दर्भ में पूछने पर इन्होंने कहा–

"तकलीफ अब होती नहीं, काँटों पर हम सोने लगें।
घाव अपने अब तो हम, तेजाब से धोने लगें।।
अब नहीं हमको रही–रहमों–सहारों की जरुरत।
अब बिना बैसाखियों के हम खड़े होने लगें।।"[13]

जिन्दगी की समस्याओं से जूझते दिव्यांग के लिए साहित्य में संवेदना व सहानुभूति की ललक जन्म ले चुकी हैं। जो इस अनुशीलन को दिशा प्रदान कर रही हैं। इस अनुशीलन का सहारा लेकर अंगहीन वर्ग को समाज के अनुरूप लाना हैं। साहित्य इसके लिए अपना पूर्ण योगदान दें रहा हैं। साहित्य में गद्य और पद्य की अलग–अलग विद्याएँ हैं। जिसमें गद्य का विकास आधुनिककाल से होकर साहित्य व समाज को अपने में समाहित करके समाज की पीड़ा को उकेरता हैं। पद्य में खण्डकाव्य, प्रबन्धकाव्य, मुक्तकाव्य सभी में इन लोगों का वर्णन मिलता हैं। परन्तु प्राचीन समय में इन पात्रों का चित्रण मनोरंजन या उपहास के लिए होता था। समकालीन साहित्य में दिव्यांग वर्ग की पीड़ा, विवशता, उपेक्षा व समाज की हीन दृष्टि को दूर करने का प्रयास किया जा रहा हैं।

(2) निःशक्तजन अनुशीलन की अवधारणा उद्‌भव एवं विकास

हमारे भारतवर्ष में कुछ इस प्रकार की मान्यताएँ रही हैं कि निशक्तता को पूर्व जन्म के पापों का फल माना जाता था। शास्त्रों में इस बात का अनेक जगह वर्णन हुआ है कि दोष युक्त व्यक्ति को लोग कोढ़ी हो जाने का शाप देते हैं। जो व्यक्ति कोढ़ी हो जाता हैं, वह स्वयं भी अपने–आपको पूर्व जन्म का दोषी मानने लगता हैं। स्वयं को प्रायश्चित्त समझकर कष्ट भोगता रहता है उसे कम करने या करवाने का प्रयास नहीं करता था। वह सोचता था कि इस जन्म में कष्टों को भोग लेगा तो अगले जन्म में एक सामान्य व्यक्ति की तरह सुख भोग सकेगा। प्राचीनकाल में निःशक्तजन को उसके अधिकारों से वंचित कर दिया जाता था। महाभारत काल में धृतराष्ट्र ज्येष्ठ थे परन्तु नेत्रहीन होने के कारण उसका अधिकार छीनकर उसके छोटे भाई पाण्डु को दें दिया गया। प्राचीनकाल में मानसिक रूप से दिव्यांग संतान को परिवार की संपत्ति में कोई हिस्सा नहीं मिलता था। हमारे समाज में यह भी अवधारणा थी कि यदि इन लोगों की शादी–विवाह कर दिया गया तो इनकी होने वाली संतान भी निःशक्त ही होगी। जन्मांध और मन्दबुद्धि लोगों के बारे में धारणा काफी प्रबल रही और लम्बे समय तक चलती भी रही। लोग अपनी जाति–वंश की शुद्धता बनाये रखने के लिए इनकी हत्या भी कर देते थे। हमारे देश में ऐसी हिंसात्मक प्रथा नहीं रही। प्रख्यात दार्शनिक सुकरात यहाँ तक कहते थे कि दिव्यांग बच्चे को जन्म लेते ही मार दिया जाए।

ताकि समाज में ये समस्या और न फैलें और इनकी सेवा, सहायता करने के लिए परिवार को इनका बोझा न ढ़ोना पड़े। भारतीय संस्कृति में निःशक्तजन के प्रति उपेक्षा का भाव ज्यादा निर्मम कभी नहीं रहा। इनके प्रति हमारी संस्कृति की धारणा अत्यन्त विशुद्ध, स्पष्ट एवं पारदर्शी रही हैं। अपाहिज लोगों के प्रति घृणा का भाव न रखकर सहानुभूति एवम् सम्मान का भाव रहा हैं। श्रीमद्भागवत् गीता में अर्जुन को कर्मयोग की व्याख्या के प्रसंग में भगवान श्रीकृष्ण ने कहा हैं–

"ज्ञानी व्यक्ति सभी प्राणियों में समभाव अर्थात् समान दृष्टि रखता हैं

यथा–

विद्या विनय सम्पन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि।
शुनि चैव श्वपाके च पंडितः समदर्शिनः।।"[14]

भगवान शिवजी ने तो अपनी बारात में भगवान विष्णु–ब्रह्मा एवम् अन्य देवताओं को तो ले ही गए थे, साथ ही साथ अपने गणों एवम् पोषित दिव्यांगों को भी। आदिकाल से निःशक्त के प्रति देवी–देवताओं तथा भगवान की भी अवधारणा सकारात्मक रही हैं। जब भगवान शिव, राम तथा श्रीकृष्ण ने प्रेमपूर्वक उन्हें अपना बनाया तथा समाज में सम्मान और प्रतिष्ठा दिलाई तो अन्य लोगों को तो कोई परेशानी ही नहीं होनी चाहिए।

निःशक्तजन अनुशीलन की अवधारणा नई नहीं हैं। यह अतिप्राचीन हैं जब से मानवीय सभ्यता विकसित हुई, उसी के साथ इस अवधारणा का जन्म भी हो गया। जिसमें आत्मीयता, मानवता, प्रेम सम्मान आदि भावों की प्रधानता रही हैं। आदिवासी विमर्श, स्त्री–विमर्श, दलित–विमर्श के अन्तिम दशकों में अर्थात् इक्कीसवीं सदी का आरम्भ निःशक्तजन अनुशीलन के साथ हुआ। हमारी संस्कृति मानवीय सभ्यता के प्रारम्भिक काल से ही निःशक्तजन के प्रति दयालु और संवेदनीय रही हैं। ईश्वर भी उन पर कृपा दृष्टि रखते हैं–

डॉ. इन्द्र बहादुर सिंह द्वारा रचित आलेख 'सेवक की अवधारणा और दिव्यांग चेतना' में कहा गया हैं, "निःशक्त–चेतना एक ऐसी अवधारणा हैं, जिसे लेकर विवाद किया जा सकता हैं। विशेषतःपूर्ण स्थापित लोगों के खेमे में जो निःशक्त हैं, सामाजिक दृष्टि से उपेक्षित हैं, जो मान–सम्मान और विकास की आखिरी सीढ़ी से भी नीचे हैं, जो शोषित हैं, पीड़ित हैं, व्यथित हैं, जिनकी अपनी पहचान नहीं बन पाई हैं और जिनके अस्तित्व को स्थापित वर्ग नकारते हैं, जिनकी अस्मिता को सतत् रौंदा जाता हैं, वह निःशक्त तथा इस प्रतिकूल स्थिति के प्रति अपनी जो चेतना होती हैं, वह निःशक्त –चेतना हैं। निःशक्त–चेतना का लक्ष्य हैं– विशुद्ध मानवता की स्थापना। इस लक्ष्य की ओर बढ़ने का रास्ता काफी जटिल, संघर्षमय तथा आत्म परीक्षण से युक्त हैं। जाति, धर्म,

लिंग, वेश भूषा आदि से परे जाकर मनुष्य पूर्ण प्रतिष्ठा, मनुष्य की अस्मिता के प्रति उसके स्वाभिमान के प्रति आदर की, सम्मान की भावना यही तो हैं निःशक्त चेतना। निःशक्त चेतना को एक जाति अथवा वर्ग तक सीमित करना उस पर अन्याय करना है।"[15] दिव्यांग वर्ग की अवधारणा को नये रूप से देखने के लिए समाजसेवियों और साहित्यकारों ने भरसक प्रयास किये हैं। जो परिणाम के रूप में समाज के दिमाक में नयी सोच को देख सकते हैं। इनके सामाजिक परिवेश को 'निःशक्त के प्रेरणागीत' में 'गिरिश पंकज' ने निःशक्तजन को पूरी निष्ठा के साथ बैसाखियों की चिंता से अलग रखने के लिए मानव में उत्पन्न होने वाली संवेदना को अपने शब्द कैनवास में उकेरा–

"निःशक्त हमारे ही परिजन हैं इनका हम सम्मान करे
अपने जीवन के जैसा ही इन सबका उत्थान करें।।"[16]

इन लोगों को समाज से यही अपेक्षा रहती हैं कि समाज में उन्हें बराबरी का दर्जा, सम्मान और प्यार दिया जाए। उनके साथ अच्छा व्यवहार किया जाए। जब इन्हें सामान्यजन प्यार की नजरों से देखता हैं तो इन्हें बहुत ही खुशी मिलती हैं। यही खुशी देना हमारा कर्त्तव्य हैं जो हमें निभाना चाहिए।

निःशक्तजन अनुशीलन के 'उद्भव एवम् विकास' में देश के महान साहित्यकार व समाजसेवियों ने अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका को अदा किया हैं। इस अनुशीलन को शुद्ध वाणी व मूर्त रूप देने में साहित्यकारों ने साहित्य सृजन का सहारा लिया। 'अखिल भारतीय विकलांग चेतना परिषद्' के महान कार्यों और इस वर्ग के सम्पूर्ण विकास के लिए राजनीति समाज और साहित्य के सहित संयोजन पर निःशक्त अनुशीलन की नींव रखी गई।

हिन्दी साहित्य में निःशक्तजन अनुशीलन का जन्म बिलासपुर 'छत्तीसगढ़' में हुआ इस अनुशीलन के त्रिदेव–ब्रह्मा, विष्णु, महेश क्रमशः–डॉ. विनय कुमार पाठक, डॉ. द्वारिका प्रसाद अग्रवाल, डॉ. इन्द्रबहादुर सिंह, डॉ. द्वारिका प्रसाद अग्रवाल राष्ट्रीय महामंत्री, अखिल भारतीय विकलांग चेतना परिषद् एवम् डॉ. विनय कुमार पाठक के अथक प्रयासों से 6 एवम् 7 सितम्बर 2008 को बिलासपुर 'छत्तीसगढ़' में निःशक्तजन अनुशीलन पर दो दिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी आयोजित हुई और निःशक्तजन अनुशीलन को स्पष्ट रूपाकार प्राप्त हुआ तथा पूरे देश का ध्यान दिव्यांग वर्ग की समस्याओं पर गया। इसी समय डॉ. विनय कुमार पाठक द्वारा संपादित पुस्तक 'विकलांग–विमर्श' एक ऐतिहासिक दस्तावेज के रूप में विमोचित हुई। अखिल भारतीय चेतना परिषद् ने इनको आत्मनिर्भर बनाने के लिए समर्पित भाव से विभिन्न कार्य योजनाओं के द्वारा पूरे

देश में इस आग को फैला दिया हैं। इनके व्यक्तित्व विकास व प्रतिभा को उजागर करने का वातावरण तैयार किया हैं। दिव्यांग वर्ग के लिए चलाये गये कार्यक्रमों में स्वयंसेवी संस्थाओं की प्रमुख भूमिका रही। अनेक प्रसिद्ध संस्थाओं ने इस पवित्र हवन में अपने सहयोग की आहुति दी हैं। उन्नीसवीं शताब्दी में ईसाई–मिशनरियों ने धार्मिक भावना से प्रेरित होकर अंगहीन वर्ग के लिए शिक्षा, स्वास्थ्य व अन्य सेवाऐं देना शुरू किया। बीसवीं शताब्दी में गांधी और सर्वोदय की विचारधारा से शिक्षा लेकर इस दिशा में प्रयास किये हैं। अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं में संयुक्त राष्ट्रसंघ द्वारा चलाई जा रही संस्थाऐं हैं, जो व्यवस्थित ढंग से कार्य कर रही हैं। "यदि संयुक्त राष्ट्र–यूनेस्को, यूनिसेफ, ड्ब्लू.एच.ओ. की तरह एक अलग प्रकल्प निःशक्तों के लिए खोल दिया जाए तो इस कार्य में गति आ जाएगी।"[17]

दिव्यांगता देश की आबादी का 10 प्रतिशत हैं। अनेक ऐसे हैं जिनकी अंगहीनता अंशतः या पूर्णतः ठीक हो सकती हैं आवश्यकता हैं उपचार की और उपकरण की। वे दया के पात्र नहीं होते वरन् सहयोग का आकांक्षी हैं। वे स्वयं स्वावलम्बी होना चाहते हैं वे सक्षम और स्वावलम्बी होंगे तो समाज भी सशक्त और सुयोग्य बनेगा। यह एक लगातार चलने वाली समस्या हैं। बीमारी, युद्ध, अपराध, दुर्घटना, प्राकृतिक प्रकोप, जन्मजात, पर्यावरण प्रदूषण, कुपोषण, रूढ़ियाँ, बढ़ता हुआ सामाजिक और आर्थिक तनाव व समस्याएँ ये सभी दिव्यांगता के जनक हैं। समाज में इनके प्रति भी उपेक्षा का भाव हैं। इसलिए वे स्वयं भी हीन भावना के शिकार हैं। इतना बड़ा वर्ग समाज की मुख्यधारा से जुड़ें। उनमें तथा उनके प्रति समानता का बोध व भाव बढ़े यह आवश्यक हैं। हजारों संस्थाएँ केवल सेवा भाव से कार्यरत हैं पर समाज में निःशक्तजन के प्रति तथा निःशक्तों में समाज के प्रति चेतना जागृत करने का कार्य भी अत्यन्त आवश्यक हैं। इसलिए दिव्यांगता हम तक पहुँचे इसे बेहतर होगा कि हम उन तक पहुँचे। 'अखिल भारतीय विकलांग चेतना परिषद्' इसी दिशा में प्रयत्नशील हैं।

दिशा

1. समाज व निःशक्तजन में परस्पर चेतना जागृत करना।
2. निःशक्तता की रोकथाम एवं दूर करने के लिए निःशुक्ल शल्योपचार, अन्य उपचार व उपकरण प्रदान करना।
3. दिव्यांग को समाज की मुख्यधारा में जोड़ने के लिए शारीरिक, शैक्षिक, आर्थिक एवम् सामाजिक पुनर्वास के लिए प्रयत्न करना।

4. परिषद् द्वारा चिन्हित 121 कार्यक्रमों में जितना संभव हो सके करना तथा अन्य व्यक्तियों एवम् संस्थाओं को प्रेरित करना।
5. स्वावलम्बन हेतु अभिभावकों व निःशक्तजनों को प्रशिक्षण व रोजगार उपलबध कराने का प्रयत्न करना।
6. प्रतिभा उन्नयन हेतु स्पर्धाएँ, कार्यशाला व अन्य उपक्रम करना।
7. समानता के बोध हेतु एवम् समानता विकसित करने हेतु प्रयत्न करना।
8. निःशक्तजन अधिनियम 1955 को प्रभावी बनाने हेतु प्रयत्न करना।
9. समानता के अधिकार एवं समाज में निःशक्तजन के लिए बाधारहित वातावरण बनाने के लिए राजनैतिक व सामाजिक स्तर पर सहयोग व सम्पर्क करना।
10. इन कार्यों में सभी संस्थाओं व व्यक्तियों का सहायोग लेना व देना।

सामाजिक सरोकार शिक्षा, चिकित्सा, राजनैतिक क्षेत्र में भी दिव्यांगता अवरोधक नहीं हैं। आज के भौतिक युग में वैज्ञानिक व्यवस्थायें, इलेक्ट्रॉनिक उपकरण भी इनके विकास में सहायक साबित हुए हैं। इनके प्रयोग के माध्यम से अपने क्षेत्र में कार्य करने में सार्वजनिक जीवन में सफल हो रहे हैं, अपने सामाजिक औद्योगिक व्यवसाय में सफलता प्राप्त कर रहे हैं। ये उनके दैनिक कार्यकलापों में सहायक संजीवनी साबित हुए हैं। निःशक्त की सहायता के लिए कल्याणकारी योजनाएँ उन तक पहुँचाने में सामाजिक मीडिया भी अहम् भूमिका निभा रहा हैं। इलेक्ट्रॉनिक मीड़िया, प्रिन्ट मीडिया भी अपने स्तर पर उन्हें महत्त्वपूर्ण स्थान प्रदान कर सहयोग करता रहा हैं। यह हम सभी का दायित्व भी हैं। इसी दायित्व बोध से हम इनके साथ सहजीवन जुड़े रहकर इनकी सेवा कर पायें तो यह हमारा अहोभाग्य होगा। विकास का पथ इकाई से दहाई अर्थात् व्यक्ति से समाज की ओर प्रसारित होता हैं। लेकिन दिव्यांग वर्ग के लिए यह नियम लागू नहीं होता। उस अपंग को आत्मनिर्भर बनाना, आत्मविश्वास जगाना और आत्मबल का वातावरण तैयार करना उस परिवार तथा समाज का परम् दायित्व हैं। पिछले चार–पाँच वर्षों से साहित्यकार इस विषय पर चर्चा कर रहे थे।

इस विकास में 5 अगस्त 2000 को 'अखिल भारतीय दिव्यांग चेतना परिषद्' संस्था का बिलासपुर (छत्तीसगढ़) में पंजीयन हुआ। तब से लेकर आज तक यह संस्था निःशक्तजन का हर संभव उत्थान करने में लगी हुई हैं। दिव्यांग जन को प्रोत्साहन देने के लिए '3 दिसम्बर' को अन्तर्राष्ट्रीय दिव्यांग दिवस के रूप में मनाया जाता हैं। "निःशक्त का सामाजिक पुर्नवास कर उन्हें समाज के साथ जोड़ने के लिए 2004 से 2013 तक दिव्यांग युवक–युवती परिचय सम्मेलन एवं सामूहिक विवाह के 12 कार्यक्रम हुए।"[18] आज लगभग 12 करोड़ लोग निःशक्त हैं उन्हीं को आधार

मानकर इस अनुशीलन का उद्‌भव हुआ जो महान साहित्यकारों की श्रेष्ठ रचना के कारण आज चर्चा में हैं। बदलते समय के अनुसार इस विषय की जड़ें मजबूती लेती जा रही हैं। जो इसके निरन्तर विकास की ओर इशारा करती है। इन लोगों के आत्मविश्वास को बनायें रखने के लिए उन्हें समान नागरिक का हक दिलायें ताकि इनमें हीन भावना उत्पन्न न हों। निरन्तर सम्पर्क से ही उनकी प्रतिभा को पहचानना संभव होता है, रूप देखकर नहीं। कुछ लोग जन्म से अंगहीन होते है तो कुछ लोग जीवन के विभिन्न संदर्भों में बन जाते हैं।

दिव्यांग व्यक्ति को बहुत सारी कठिनाईयों का सामना करना पड़ता हैं। किसी भी कार्य को करने में इनके रास्ते में किसी न किसी प्रकार की बाधा आ जाती है। लेकिन ये सभी कठिनाइयों को पार कर जीवन की ऊँचाइयों में पहुँच जाते हैं। दिव्यांग जीवन के बारे में 'सूर्य कुमार' पाण्डेय की कविता 'दिव्यांग बच्चों के गीत'। बच्चा हर देश का वरदान हैं, बच्चे ही देश निर्माता हैं। आने वाली पीढ़ी की प्रेरणा हैं बच्चे। वे चलने के लिए नये–नये रास्ते ढूँढ रहे हैं। वे ऐसा महसूस करते हैं कि वे किसी से कम नहीं हैं। इसी तरह के आत्मविश्वास को प्रदान करने वाली कविता 'दिव्यांग बच्चे के गीत' में कवि कहते हैं–

"नई राह पर चलने वाले
खुली हवा में पलने वाले,
अच्छे बच्चे हम!
हम हैं किससे कम!
बोलो हम हैं किससे कम!"[19]

दिव्यांग बच्चे साधारण बच्चों की तरह हैं कभी–कभी उनसे भी ज्यादा क्रियाशील हैं। दिव्यांग लोग हर क्षेत्र में अपना चमत्कार दिखाते हैं। लेकिन समाज उन्हें पहचानता नहीं हैं। ओलम्पिक्स का ले तो बहुत सारे मेडल विजेता हमारे सामने हैं। संसार में बहुत सारे लोग महान हैं जो अपनी कमियों को भूलकर प्रसिद्धि की ऊँचाइयों को प्राप्त करते हैं। जीवन में बहुत सारी परेशानियाँ होती हैं। अपनी कमियों से हमें–कभी डरना नहीं, धैर्यपूर्वक उसका सामना करना चाहिए। एक दिन हमारा नाम भी उन्हीं महान लोगों के साथ लिया जायेगा। उदाहरण के रूप में 'अरुणिमा सिन्हा' को लें। लोगों की दृष्टि में उन्हें असहाय बना दिया था। लेकिन वह अपने आपको असहाय नहीं देखती थी। अब तक कोई दिव्यांग ऐसा नहीं कर पाया था। एक निःशक्त के लिए माउण्ट एवरेस्ट पार करना बहुत मुश्किल काम हैं लेकिन अरुणिमा सिन्हा इसमें सफल हुई हैं। हमारे लिए बहुत खुशी की बात हैं। उस पर हमें गर्व करना चाहिए। इसलिए हम कहते हैं हमारी दृष्टि में

असहाय लगने वाले लोग निःशक्त रूपी कमियों को एक कमी न मानकर असफलता को सफलता बनाना चाहते हैं। वे भी अपने पैरों पर खड़े होकर हमसे भी ऊँचा स्थान प्राप्त कर सकते हैं–

"पाँव नहीं है, लेकिन
अपने पैरों हम खड़े हुए
हर मुश्किल आसान बनाकर
इतने बड़े हुए। आगे बढ़े कदम
हम है किससे कम
बोलों हम है किससे कम!"[20]

किसी भी व्यक्ति के जीवन को बदलने में किसी भयानक दुर्घटना का हाथ होता हैं। निःशक्तों की जिन्दगी भी ऐसी हैं। यदि वे लोग हार मानकर निस्सहाय होकर जीवन बिताते हैं तो पूरे संसार में उन्हें अकेलापन, दुःख, दर्द आदि भोगना पड़ता हैं। रास्ते में कई मुसीबतें आती हैं; लेकिन हार नहीं मानते। आगे बढ़ने की लालसा होनी चाहिए। यदि आत्मविश्वास से आगे बढ़ेगें तो संसार में अपना नाम ऊँचाई तक फैलायेंगे। सभी प्रकार की सुविधाओं में रहते हुए भी हमें शायद ही लोग पहचानते हैं, लेकिन इसी संदर्भ में एक निःशक्त अपनी कमियों के रहते हुए भी चले आते हैं। असुविधाओं से लड़कर हमसे आगे बढ़ते हैं। हमें गर्व करना चाहिए–

"हाथ नहीं, पर
हम लिख सकते एक नयी गाथा
जिसके आगे बड़ों–बड़ों का
झुक जाए माथा। बाहों में वह दम।
हम है किससे कम।
बोलो, हम है किससे कम।"[21]

इस प्रकार के लोग हमारे देश की शान हैं, कीर्ति को आगे बढ़ाते हैं। शान, कीर्ति आदि को आगे बढ़ाने में इनका महत्त्वपूर्ण योगदान हैं। नए भारत के निर्माण करने में इनकी मदद अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। इस प्रकार दिव्यांगों के प्रकाशमयी जीवन से प्रेरित होकर देश की जनता की जिन्दगी बदल रही हैं। यह एक प्रेरणा हैं, बच्चें का योगदान महत्त्वपूर्ण हैं।

निःशक्त पर हँसी उड़ाने वाले लोग भी हमारे बीच में हैं। वे नहीं जानते कि वे भी ईश्वर सृष्टि हैं। वे मानते हैं कि पैसा सम्पत्ति आदि दुनिया का सारभूत तत्त्व हैं। पैसे के बिना वे लोग कोई भी चीज को मूल्यवान नहीं मानते हैं। मानवाधिकार भी पैसे पर आधारित हैं। इसलिए अपने

नीचे वाले लोगों पर हँसी उड़ाना इन लोगों की आदत हैं। कुछ लोग ऐसे हैं जो अपने जीवन में सौन्दर्य को महत्त्वपूर्ण स्थान देता हैं। रूप–रंग पर आधारित हैं उनका रोजाना का जीवन। लेकिन वे यह नहीं जानते कि सौन्दर्य जीवन का महत्त्वपूर्ण अंग नहीं हैं। मन की सुन्दता ही अच्छी हैं। जिन्दगी में बाह्य सौन्दर्य का कोई स्थान नहीं हैं। स्थान हैं तो वह आंतरिक सौंदर्य का। निःशक्त पर हँसी उड़ाने वाले लोगों से सूर्यकुमार पाण्डेय जी का कहना हैं–

"हमें कुरूप
समझने वालों, क्या नहीं पता,
मन की सुन्दरता होता है
सच्ची सुन्दरता। तोड़े सभी भरम।
हम है किससे कम।
बोलो, हम है किससे कम।।"[22]

निःशक्तजन को केवल हमारे सहयोग व प्रोत्साहन की जरुरत हैं। ऐसे असंख्य 'सितारे' हैं जो निःशक्त होने पर भी मौका पाते ही चमक उठे हैं। धिक्कार हैं ऐसे समाज को जो इन्हें कर्णकटु अप्रिय शब्द से पुकारता हैं। वास्तव में दिव्यांग वे नहीं समाज की सोच हैं।

एक सुप्रसिद्ध जापानी लेखिका 'तेतसुको कुरियानगी' हैं, जिन्हें सन् 2000 में यूनिसेफ ग्लोबल लीडरशिप फॉर चिन्ड्रन पुरस्कार से सम्मानित किया गया हैं। पूर्वायाज्ञिक कुशवाहा द्वारा अनुवादित इनकी एक कहानी हैं। 'अपूर्व अनुभव' इस कहानी में एक स्कूली बच्ची तोतो चान अपने पोलियोग्रस्त मित्र वासुकीचान को अपने पेड़ पर चढ़ने का न्योता देती हैं। जापान के तोमोए नामक शहर में हर बच्चे के सुपुर्द एक पेड़ किया जाता हैं। वासुकीचान इस न्योते से जितना उत्साहित था उससे कहीं अधिक प्रसन्नता तोतोचान की थी। परन्तु दुर्भाग्यवश तोतोचान अपने मित्र को पेड़ पर चढ़ा पाने में असमर्थ हो रही थी। वासुकीचान का चेहरा भी उदासी से लटका हुआ था। तभी तोतोचान ने अथक प्रयास कर अपने मित्र को किसी प्रकार वृक्ष की द्विशाखा तक चढ़ा दिया। यह उसके लिए संसार की सबसे बड़ी खुशी व विजय का दिन था। वासुकी के लिए यह पेड़ पर चढ़ने का पहला व अंतिम मौका था। पेड़ पर बैठें–बैठें ही उसे तोतोचान को टेलिविजन नामक डब्बे के बारे में बताया तोतोचान के लिए यह बात समझ से परे थी कि वासुकी के लिए घर में बैठे चीजों को देखना क्या अर्थ होगा? अतः दोनों के लिए यह एक दिव्य अनुभव था।

यह कहानी सामाजिक व मानवीय मूल्यों का संरक्षण हैं। इसी प्रकार शिवानी की कहानी 'अपराजिता' भी हमारे अन्दर जज्बा पैदा करती हैं। अपनी माँ के त्याग व सहयोग से प्रत्येक परीक्षा

में सर्वोच्च स्थान प्राप्त कर अनेकों स्वर्णपदक जीतें। 'गर्ल गाइड' में राष्ट्रीय का स्वर्णकार्ड पाने वाली यह प्रथम अपंग बालिका थी। शरीर का निचला भाग़ निष्प्राण मांसपिण्ड मात्र होने के बावजूद भी सदा खुश, चेहरे पर विषाद की एक रेखा भी नहीं, बुद्धिदीप्त आँखों में अदम्य उत्साह, उत्कट जिजीविषा, निष्ठा, धैर्य एवं साहस ही वे उच्च मानवीय गुण हैं। जो इनमें उनकी माँ ने भर दिये थे जिनके बल पर इन्होंने जीवन में ये दुर्लभ उपलब्धियाँ हासिल की, जो सकलांग लोग भी नहीं कर पाते। यही कारण हैं कि इनकी माँ को भी जे.सी. बैंगलोर द्वारा 'वीर जननी' पुरस्कार से नवाजा गया। ये सम्पूर्ण मानव समाज के दिये अभूतपूर्व दृष्टांत व प्रेरणास्त्रोत हैं। ऐसी महान विभूतियों को शत्–शत् नमन्। यही संदेश समाज को देना हैं कि निःशक्तजन हार नहीं मानते। निःशक्ता अभिशाप नहीं हैं। अगर उचित प्रेरणा और निर्देशन मिलता हैं तो यही कमी एक विशिष्ट गुण बन जाती हैं। अगर संरक्षकों द्वारा उनको सही निर्देशन तथा उचित सहारा दिया जाता हैं तो यह कमी व्यक्ति को दूसरों का मोहताज नहीं होने देती। निःशक्त होना कोई पाप नहीं यह तो महज एक संयोग हैं। पहले गाँवों में ही नहीं शहरों में भी अभिशाप समझी जाती थी। शुभ कार्यों से इनको वंचित रखा जाता था, इसलिए घर में निःशक्त व्यक्ति अपने आपको उपेक्षित समझता था। परन्तु वर्तमान में कुछ बदलाव हुआ हैं। उस समय अपंग को लेकर बहुत सारी लोकोक्ति और मुहावरें भी संज्ञान में आये। इन लोकोक्तियों द्वारा निःशक्त व्यक्ति को प्रताड़ित किया जाता था। जिससे वह अपना आत्मविश्वास खो देता और एक अवसाद भरी जिन्दगी जीने को विवश होता था।

आज शहरों में दिव्यांग बच्चों की शिक्षा के लिए विशेष स्कूल बन गए हैं। बहुत–सी सामाजिक संस्थाएँ भी इस तरह के स्कूल तथा समूह चला रही हैं, जिनमें इन बच्चों को सही निर्देशन, प्रेरणा और सहायता दी जाती हैं। इसलिए आज हर क्षेत्र में दिव्यांग बच्चे अपनी उपस्थिति दर्ज करा रहे हैं, जो विकास का संकेत हैं। कभी–कभी कुपोषण के शिकार व्यक्ति भी अपंगता के शिकार हो जाते हैं। गरीबी तथा अशिक्षा भी निःशक्तता की जनक होती हैं। उनकी योग्यता और प्रतिभा को उबारने हेतु हमें अवसर देना होगा। अवसर मिलते ही ये राष्ट्र निर्माण में अपना सहज व अमूल्य योगदान दे सकते हैं। गरीब और अशिक्षित लोग दिव्यांग को अभिशाप समझ कर अंधे, गूंगे, बहरे और लंगड़े लोगों को शिक्षा न दिलाकर भिक्षावृत्ति की ओर प्रेरित करते हैं। उन्हें ये नहीं पता कि ये लोग भी प्रेरणा स्तम्भ बन सकते हैं। निःशक्त व्यक्ति को दया नहीं वरन् सम्मान की आवश्यकता होती हैं। उनकी अक्षमता का मजाक नहीं बनाना चाहिए। इनके साथ साधारण लोगों के जैसा ही व्यवहार करना चाहिए। इनसे पूछकर इनकी मदद करनी चाहिए। हमें राजनीतिक स्तर पर भी निःशक्तता के क्षेत्र में बहुत काम करना होगा। तभी इस क्षेत्र में आशातीत सफलता मिल पायेगी। जब अलग से एक आयोग या समिति का गठन होगा जो इसी क्षेत्र में सुधार कार्य करें।

निजी संस्थाओं के द्वारा किये जा रहे कार्यों की समय–समय पर सराहना करनी चाहिए। अगर किसी प्रकार की मदद की जरुरत हो तो मदद करनी चाहिए। सिविल सोसायटी ग्रासरूट ऑर्गेनाइजेशन तथा सभी सरकारी संस्थाओं को समय–समय पर एक साथ बैठाकर वैज्ञानिक तरीके से दिव्यांग और उसका निराकरण इस विषय पर चर्चा करनी चाहिए। वर्तमान में विज्ञान ने इतनी प्रगति कर ली हैं कि हमने दिव्यांगता के दोषों से राहत पा ली हैं। कृत्रिम अंगों का निर्माण, श्रवण यंत्र आदि उपलब्धियों के द्वारा हमने निःशक्तता की विभिषिका को कम कर दिया हैं। हमें इनकी कुण्ठा की गाँठों को खोलना होगा आशा और उम्मीद की नई परिभाषा गढ़नी होगी। ये भी अधिक क्षमता एवम् प्रतिभा से परिपूर्ण हैं। एक समतामूलक समुन्नत समाज की कल्पना तभी साकार हो सकेगी। विकास व उन्नति के दौर में निःशक्तजन को आत्मनिर्भर बनाने हेतु काफी लम्बे समय से प्रयास होते आ रहे हैं। जब शारीरिक रूप से अशक्त व्यक्ति ने ढ़ेर सारी बाधाओं के बावजूद ऐसे कारनामें किये हैं जो आम आदमी की सोच से भी दूर हैं।

इस अनुशीलन की विवेचना कथा और कथा तत्त्वों के आधार पर की गई हैं। जो नवीन दृष्टि व मौलिक सृष्टि की संयोजना सिद्ध हुई हैं। अनुशीलन को किनारे से केन्द्र में लाना साहित्य सृजनकारों का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा हैं। इस अनुशीलन के द्वारा विद्वानों व साहित्यकारों का ही नहीं समाजसेवियों का भी मार्गदर्शन होगा। वर्तमान में भारतीय पुर्नवास परिषद् निःशक्त बच्चों के कल्याण एवम् शिक्षा दिशा में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा रही हैं। जिनके प्रयासों से आज निःशक्त बालक दिव्यांग न कहलाकर 'स्वास्थ्य ही धन हैं' आजादी के बाद से इस क्षेत्र में पूरी तरह जागृति आई हैं। इस जागृति के परिणाम स्वरूप अनेक साहित्यकारों व महापुरुषों ने इन लोगों के बारे में चली आ रही अवधारणा को नया मोड़ देकर इनके पुनर्वास और जीवन को निखारने संवारने का स्तुत कार्य किया हैं। भारत सरकार भी अब इनके प्रति सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार करने लगी हैं। 'अखिल भारतीय चेतना परिषद्' के प्रवर्तक डॉ. विनय कुमार पाठक और इनके मित्रों की लगन से निःशक्तता एक संचेतना और अनुशीलन का विषय बन चुकी है। हमारा साहित्य भी इस वर्ग के क्षेत्र में जो धारणाएँ और जरुरते हैं उनकी ओर लोगों का ध्यान खींचकर अंधेरे कोने तक भी रोशनी पहुँचाने का प्रयास कर रहा हैं।

नवीन समस्या की ओर ले जाना ही विज्ञान की खोज के लिए नई दिशा हैं जैसे भगवान शंकर ने जिस प्रकार प्रकृति के जहर को पीकर मानव को सुखपूर्वक जीने के लिए आजाद किया उसी प्रकार समाज जिसे अपने जीवन का जहर मानता हैं, उसे अपनाकर हमें नयी दिशा प्रदान की हैं। हमारे पौराणिक ग्रंथ किसी कहानी किस्से के भाग नहीं हैं जीवन की उच्च्य विचारधारा को सिंचिंत करते हैं, मानव जीवन में सही मूल्यों की वर्तमान में कमी आ गई है। धार्मिक ग्रंथ हमें

नैतिक मूल्य प्रदान करते हैं। निःशक्तजन को प्रेरित करने के संदर्भ में द्विमासिक पत्रिका साहित्यांचल के एक आलेख में 'प्रेरणागीत' हैं–

"निःशक्त हमारे ही परिजन है,
उनका हम सम्मान करें।
अपने जीवन जैसा ही, उन सबका उत्थान करे।
जाने कब किसके जीवन में, ये विपत्ति आ जाए।
हँसते–गाते काल–खण्ड में दुःख की बदरी छा जाए।
बड़ी कृपा उपर वाले की, उसने हमें बनाया।
लेकिन क्या हमने बदले में, निज कर्त्तव्य निभाया?
है कर्त्तव्य निःशक्तों का हम, बिन बोलें कल्याण करे।
दृष्टि, श्रवण बाधित हो या फिर उपजा अस्थि विकार।
कुष्ठ रोग से पीड़ित हो, या मंद–बुद्धि लाचार।
सबको मिले बराबर अवसर और सभी अधिकार।
इसकी चिंता में समाज के, संग चले सरकार।
आओ साथी, करुणा का हम
दुनिया में विस्तार करें।।
निःशक्त हमारे जी परिजन है,
इनका हम सम्मान करें।
अपने जीवन के जैसा ही, उन सबका उत्थान करें।
अपनी अर्जित पूंजी में से कुछ अंश बचाएँ।
मानवता के महायज्ञ में अर्पित करते जाएँ।
बड़े भाग मानुष तन पाया, व्यर्थ न इसे गवाएँ।
सहभागी होकर सेवा में इनको सफल बनाएँ।
विकलजनों की सेवा करके, जीवन एक महान करें।
निःशक्त हमारे ही परिजन है,
इनका हम सम्मान करें।
अपने जीवन के जैसा ही, उन सबका सम्मान करें।"[23]

इस समस्या से ग्रस्त व्यक्तियों के जीवन में सुधार लाने के लिए उनकी सामाजिक, आर्थिक दशा तथा सांस्कृतिक संदर्भ निःशक्तता के कारण, आरम्भिक बाल शिक्षा विधि, प्रयोक्ता हितैषी यंत्रों

उपकरणों और अपंगता से जुड़े सभी मामलों पर अनुसंधान कार्य किये जा रहे हैं, जो उनके जीवन की गुणवता में अहम् बदलाव लाएगा व उनकी चिंताओं के प्रति नागरिक समाज की प्रतिक्रिया में सुधार होगा। जहाँ कहीं भी निःशक्तता के शिकार व्यक्तियों के ऊपर अनुसंधान कार्य या चिकित्सा कार्य सम्पन्न किये जाने होंगे, उनके माता–पिता या अभिभावक से इसकी अनुमति अवश्य लेनी होगी। खेलकूद, मनोरंजन तथा सांस्कृति जीवन उपचारात्मक तथा सामुदायिक भावना के विकास के लिए खेल–कूद की भूमिका अहम् होती हैं। दिव्यांग व्यक्तियों को खेल–कूद मनोरंजन तथा सांस्कृतिक सुविधाओं का लाभ उठाने का पूरा अधिकार हैं। सरकार उन्हें विभिन्न खेल–कूद, मनोरंजन तथा सांस्कृतिक गतिविधियों में भाग लेने हेतु अवसर प्रदान करने के लिए आवश्यक कदम उठा रही हैं।

(3) निःशक्तजन अनुशीलन की विशेषताएँ

इस अनुशीलन को प्रारम्भ करके विद्वानों ने इस वर्ग के लिए बहुत ही महत्त्वपूर्ण कार्य किया हैं। निःशक्तजन की समाज से यही अपेक्षा रहती है कि उन्हें समाज में बराबर हिस्सा, प्यार व सम्मान दिया जाए। गेंदालाल शुक्ल ने 'निःशक्तजन अनुशीलन' में 'समानता का संघर्ष और दिव्यांग' आलेख में बताया हैं– "जिस प्रकार दिव्यांग समाज से अपेक्षाएँ रखते हैं, उसी प्रकार समाज भी दिव्यांग वर्ग से कुछ अपेक्षा रखता हैं। समाज की अपेक्षाएँ ऐसी नहीं, जिन्हें ये लोग पूरा न कर सकें। वे अपनी योग्यताओं के बल पर स्वयं को निःसहाय स्थिति से उबारकर सम्मान पा सकते हैं। निःशक्त को चाहिए कि वे समाज के साथ उन्मत व्यवहार न करें। यदि समाज में पूर्वाग्रह व्याप्त हैं तो बदले में वे आक्राम रवैया अख्तियार कर समाज में प्रतिष्ठा प्राप्त नहीं कर सकते। इसलिए आवश्यक हैं कि यदि समाज उनसे मिलने का प्रयास करता हैं तो वे स्वयं जुड़ने का प्रयास करें।"[24] इस अनुशीलन की कुछ महत्त्वपूर्ण विशेषताएँ भी रही हैं। जिसके कारण निःशक्तजन को नया जीवन सम्मान के साथ जीने की प्रेरणा मिली हैं। आज तक समाज इन्हें उपेक्षित समझता था परन्तु साहित्य की आवाज ने उन्हें भी अपनी जिन्दगी सशक्त की तरह जीने का अधिकार दिया हैं। इनके प्रति पूर्व में जो धारणा थी वह बदलते समय के साथ बदल रही हैं। अब जरुरत इस बात की है कि हम उनको समाज में उचित प्रतिष्ठा दिलाएँ। समाज की सोच को बदलना और उनकी पूर्वधारणा को सकारात्मक बनाना ही इस अनुशीलन की विशेषता होगी।

इसी संदर्भ में डॉ. विनय कुमार पाठक अपनी पुस्तक–'विकलांग–विमर्श' में लिखते हैं–आज ऋषि अर्थवर्ण को दिव्यांगों तक पहुँचने की जरुरत हैं क्योंकि इसी प्रेरणा के अभाव में समाज का निःशक्तजन जीवन की परिणति वर्तमान स्थित को मान लेता हैं। यही कड़वा सच हैं कि दिव्यांग

वर्ग के द्वारा ही समाज में किसी संदेश को भेज सकते हैं। यही विषय को महत्त्व एवं दिशा प्रदान करता हैं। यह अपंगता समाज के लिए समस्या हैं, इसके निदान का निर्णय लिया जा रहा हैं। वर्तमान में विज्ञान एवम् तकनीकी के क्षेत्र में विशाल प्रगति हुई हैं। जिससे अपंग मनुष्य के क्षतिग्रस्त अंग को ऑपरेशन के द्वारा अलग कर दिया जाता हैं जिससे बीमारी आगे ना बढ़े और ज्यादा समस्या न बढ़ें। जिससे इनको भी सामान्य जीवन मिल सकें। अब हर वर्ग इनको प्रोत्साहित कर रहा हैं। हम दूरदर्शन के कई धारावाहिकों में दिव्यांग पात्रों को देखते हैं। फिल्म एवं दूरदर्शन में प्रसिद्ध कलाकार सुधा चंद्रन जो दुर्घटना में एक पैर गँवाकर कृत्रिम पैर से नृत्य प्रधान बनी हैं। इसी को मिसाल बनाकर देखा जाए तो सही ही लिखा हैं–

"कौन कहता है आसमां में सुराख नहीं हो सकता।
जरा तबीयत से एक पत्थर तो उछालों यारों।"[25]

ये दिव्यांग वर्ग के लिए प्रेरणा स्त्रोत बने हैं। जब तक निःशक्त व्यक्ति स्वयं को चंचल नहीं बनायेगा तो वह ज्यादा उपेक्षा ग्रस्त हो जाएगा। लक्ष्य की प्राप्ति के लिए मन को वश में करना होता हैं। जो समाज, व्यक्ति या निःशक्तजन की उन्नति के लिए कार्य करता हैं वही सच्ची मानवता हैं। व्यक्ति का सौन्दर्य उसके आंतरिक गुणों के कारण चमकता हैं। बाह्य रूप रंग व सौन्दर्य तो मुखौटा हैं। अगर मनुष्य का मन सुन्दर नहीं हैं, वह मानवीय गुण, करुणा, प्रेम–सहिष्णुता जैसे गुणों से युक्त नहीं हैं तो वह समाज में सम्मान व प्रसिद्धि नहीं पा सकता।

इस अनुशीलन के द्वारा समाज की भावात्मक व सामाजिक दृष्टि को संवेदनीय बनाना हैं। उसी क्रम में निःशक्तजन अनुशीलन अपना सहयोग करेगा। दिव्यांग वर्ग को समाज में उचित स्थान दिलाने के लिए समाज को अवगत कराना होगा कि यदि हमारा कोई अंग नहीं हो तो हम पर क्या गुजरेगी सोचकर देखों। यही समस्या उस दिव्यांग की हैं जो समाज के द्वारा उपेक्षित भी किया जाता हैं। सोच में बदलाव आ रहा है, कई संस्थाऐं भी इस काम में जुटी हुई हैं। बुद्धिजीवी नये–नये समाधान खोज रहे हैं। 'अखिल भारतीय चेतना परिषद्' पूरी लगन के साथ इन लोगों की सेवा में जुटी हुई हैं। विगत दस वर्षों में (2000–2010 तक) बहुत सारे महान कार्य इस दिशा में किये हैं–

कार्य निम्न हैं–

क्र.सं.	**कार्यक्रम**	**संख्या**	**लाभान्वित**
1	निःशुल्क दिव्यांग शल्य शिविर	40	1441
2.	निःशुल्क दिव्यांग युवक–युवती परिचय सम्मेलन	06	428

3.	निःशुल्क दिव्यांग युवक–युवती सामूहिक विवाह	09	313
4.	मानसिक दिव्यांग बच्चों की निःशुल्क जांच एवं अभिभावक परीक्षण व प्रमाण पत्र वितरण	35	3073
5.	दिव्यांगों की निःशुल्क जांच एवम् प्रमाण पत्र वितरण	03	392
6.	निःशुल्क राज्य स्तरीय क्रीड़ा व सांस्कृतिक प्रतियोगिता	03	1150
7.	निःशुल्क निःशक्तजन आर्थिक व स्वालम्बन कार्यशाला	02	243
8.	निःशुल्क दिव्यांगता पहचान एवम् परामर्श	02	120
9.	निःशुल्क निःशक्त नारी चेतना कार्यशाला	01	132
10.	निःशुल्क निःशक्त नारी सम्मान समारोह	01	05
11.	राष्ट्रीय दिव्यांग महासंघ सम्मेलन	01	178
12.	निःशुल्क उपकरण वितरण शिविर	40	2000+
13.	शाखाओं द्वारा किये गये विविध कार्य		
14.	प्रकाशन–दिव्यांग–विमर्श, निशक्त चेतना	5000	

परिषद् द्वारा सम्पन्न किये गये अन्य कार्य

दिव्यांग–विमर्श पर राष्ट्रीय संगोष्ठी, दिव्यांग एवं प्रजातंत्र पर चर्चा एवं अभियान, राजनैतिक दलों से दिव्यांग प्रकोष्ठ बनाने का आग्रह, निःशक्तजन हितार्थ किये जा सकने वाले 121 कार्यक्रमों का प्रकाशन, निःशक्त चेतना ग्रंथ 2 का प्रकाशन, दिव्यांग–विमर्श ग्रंथ का प्रकाशन, अपना दिनमान (काव्य संग्रह), दिव्यांग विमर्श सौन्दर्य शास्त्र एवं रचना का प्रकाशन। वेबसाईट का निर्माण एवं ई–मेल की शुरुआत।

योजना–समाज, शासन एवं सदस्यों से दान प्राप्त कर राष्ट्रीय स्तर के निम्न प्रकल्प तैयार करना।

1. निःशक्त चेतना केन्द्र एवं निःशुल्क शल्य क्रिया हेतु अस्पताल
2. उपकरण निर्माण शाला एवं निःशुल्क वितरण
3. निःशक्तजनों का पंजीयन, सर्वे एवं शोध
4. फिजियोथेरेपी केन्द्र
5. निःशुल्क शिक्षा केन्द्र
6. निःशुल्क प्रशिक्षण केन्द्र
7. आर्थिक स्वालम्बन योजना

8. योग एवं प्राकृतिक चिकित्सा
9. छात्रावास एवं पुस्तकालय
10. दिव्यांग–विमर्श साहित्य प्रकाशन, संगोष्ठी, विश्वविद्यालयों से स्नातकोत्तर शिक्षा में दिव्यांगता विषय को समाजशास्त्र में शामिल करना
11. शासकीय योजनाओं का प्रचार एवं उपयोग
12. कार्यशालाएँ, गोष्ठियाँ, जनजागरण एवं अन्य विषय
13. वरिष्ठजन सेवा व उनकी प्रतिभा का उपयोग
14. सामान्य चिकित्सा व रोग निदान शिविर
15. वृक्षारोपण व पर्यावरण सुधार
16. निःशक्तजन सम्मान समारोह
17. प्रतिभा उन्नयन के कार्यक्रम
18. सामाजिक पुनर्वास के विभिन्न कार्य

आर्थिक सुचिता

1. प्रत्येक माह आंतरिक ऑडिट
2. प्रत्येक वर्ष सी.ए. द्वारा वार्षिक ऑडिट
3. प्राप्त सहयोग का उद्देश्य के अनुरूप व्यय
4. नियमित बैंक खाता
5. राष्ट्रीय कार्यसमिति एवं सामान्य सभा प्रतिवेदन

निःशक्त चेतना केन्द्र एवं अस्पताल हेतु दानदाताओं को आमन्त्रण दान के आयाम व स्वरूप

एक दिव्यांग की सम्पूर्ण निःशुल्क शल्य चिकित्सा	रु. 5100/–
एक दिव्यांग युवक–युवती का सम्पूर्ण विवाह व उपहार	रु. 11000/–
अखिल भारतीय विकलांग चेतना परिषद् की संरक्षक सदस्यता	रु. 5100/–
अखिल भारतीय विकलांग आजीवन सदस्यता	रु. 2100/–
एक दिव्यांग आजीवन सदस्यता	रु. 2500/–
दिव्यांगों की निःशुल्क सेवा कार्यो के लिए निर्मित होने वाले निःशक्त चेतना केन्द्र व अस्पताल के लिए न्यूनतम सहयोग	रु. 5100/–
शल्य एवं चिकित्सा कोष हेतु न्यूनतम सहयोग	रु. 5100/–

(उनके नाम पर निःशुल्क आयोजन होगा, जैसे–शल्य शिविर, जांच एवं रोग निदान, शिविर, परिचय सम्मेलन, सामूहिक विवाह, स्वावलम्बन की कार्यशाला, जागरण कार्यशाला, राज्य स्तर पर क्रीड़ा व सांस्कृतिक कार्यक्रम, प्रज्ञाचक्षु कवि सम्मेलन, निःशक्तजन रामलीला मंचन आदि।)

पुस्तक प्रकाशन का समर्पण (आपके चित्र सहित) रु. 5100/–

निःशक्त चेतना ग्रंथ में विज्ञापन रु. 5000/– से 25000/– तक

अन्य सहयोग, दान एवम् आयोजन चर्चानुसार

आपके धन दान से एवं सेवा दान से एक दिव्यांग समाज की मुख्यधारा से जुड़कर राष्ट्र में अपनी ऊर्जा का योगदान दे सकता है।

निःशक्तजनों हेतु विशेष जानकारी

(सामाजिक न्याय एवम् अधिकारिता मंत्रालय, नई दिल्ली)

भारत का संविधान अपने सभी नागरिकों के लिए समानता, स्वतंत्रता, न्याय व गरिमा सुनिश्चित करता है और स्पष्ट रूप से यह दिव्यांग व्यक्तियों समेत एक संयुक्त समाज बनाने पर जोर डालता है। हाल के वर्षों में दिव्यांगों के प्रति समाज का नजरिया तेजी से बदला है। यह माना जाता है कि यदि निःशक्त व्यक्तियों को समान अवसर तथा प्रभावी पुनर्वास की सुविधा मिले तो वे बेहतर गुणवत्तापूर्ण जीवन व्यतीत कर सकते हैं।

जनगणना 2001 के मुताबिक देश में 2.19 करोड़ दिव्यांगता के शिकार हैं, जो कुल जनसंख्या का 2.13 प्रतिशत हिस्सा हैं। 7.5 प्रतिशत दिव्यांग व्यक्ति ग्रामीण इलाकों में रहते हैं तथा 49 प्रतिशत व्यक्ति साक्षर हैं व 34 प्रतिशत रोजगार प्राप्त हैं। पूर्व के मेडिकल पुनर्वास पर जोर डालने के बजाय अब सामाजिक पुर्नवास पर अधिक ध्यान दिया जा रहा हैं। दिव्यांगों की बढ़ती योग्यता की पहचान की जा रही हैं और उन्हें समाज की मुख्यधारा में शामिल किये जाने पर बल दिया जा रहा हैं। भारत सरकार ने दिव्यांगों के लिए तीन कानूनों को लागू किया हैं, जो इस प्रकार हैं–

1. दिव्यांग व्यक्ति (समान अवसर अधिकार सुरक्षा तथा पूर्ण भागीदारी) अधिनियम, 1995 जो ऐसे लोगों की शिक्षा, रोजगार, अवरोद्यमुक्त वातावरण का निर्माण, सामाजिक सुरक्षा इत्यादि प्रदान करता हैं।
2. ऑटिज्म, सेरीब्रल पाल्सी, मानसिक मंद बुद्धि व बहुदिव्यांगता के लिए राष्ट्रीय कल्याण ट्रस्ट अधिनियम 1999 में चारों वर्गों के कानूनी सुरक्षा तथा उनके स्वतंत्र जीवन हेतु सहसंभव वातावरण के निर्माण का प्रावधान हैं। पुनर्वास सेवाओं के लिए मानव बल विकास का प्रयास करता हैं।

3. कानूनी फेमवर्क के अलावा, गहन संरचना का विकास किया गया हैं। निम्न सात राष्ट्रीय संस्थान हैं जो मानव बल के विकास के लिए विभिन्न क्षेत्रों में कार्य कर रहे है, ये इस प्रकार हैं।

– शारीरिक दिव्यांग संस्थान, नई दिल्ली
– राष्ट्रीय दृष्टि दिव्यांग संस्थान, देहरादून
– राष्ट्रीय ऑर्थोपेडिक दिव्यांग संस्थान, कोलकाता
– राष्ट्रीय मानसिक दिव्यांग संस्थान, सिकन्दराबाद
– राष्ट्रीय श्रवण दिव्यांग संस्थान, मुम्बई
– राष्ट्रीय पुर्नवास तथा अनुसंधान संस्थान कटक
– राष्ट्रीय बहु–दिव्यांग सशक्तिकरण संस्थान, चेन्नई
– मूकबधिर विद्यालय, भीलवाड़ा
– हेलन–केलर दिव्यांग संस्था, भीलवाड़ा
– सोना मंदबुद्धि विद्यालय, भीलवाड़ा

4. पांच संयुक्त पुर्नवास केन्द्र, चार पुनर्वास केन्द्र तथा 120 दिव्यांग पुर्नवास केन्द्र हैं, जो लोगों को विभिन्न प्रकार की पुर्नवास सेवाएँ प्रदान करते हैं। पुनर्वास के क्षेत्र में स्वास्थ्य तथा परिवार कल्याण मंत्रालय के अधीन कई राष्ट्रीय संस्थान हैं, जैसे मानसिक स्वास्थ्य तथा न्यूरो विज्ञान राष्ट्रीय संस्थान, बैंगलोर, अखिल भारतीय शारीरिक चिकित्सा तथा पुनर्वास, मुम्बई, अखिल भारतीयवाणी तथा श्रवण संस्थान, मैसूर, केन्द्रीय मनशचिकित्सा संस्थान, रांची इत्यादि। इसके अलावा कुछ राज्य सरकार के संस्थान भी पुनर्वास सेवाएँ प्रदान करते हैं। साथ ही 250 निजी संस्थान भी हैं जो पुनर्वास कर्मचारियों के लिए पाठ्यक्रम संचालित करते हैं।

दिव्यांग व्यक्तियों के स्व–रोजगार के लिए राष्ट्रीय अपंग तथा वित्तीय विकास निगम राज्य की एजेन्सियों द्वारा छूट के साथ ऋण मुहैया कराता रहा हैं। निःशक्तों के कल्याण के लिए ग्रामीण स्तर, अंतर्वर्ती स्तर व जिला स्तर पर पंचायती राज संस्थान प्रयासरत हैं। भारत, एशिया प्रशान्त क्षेत्र के दिव्यांग व्यक्तियों की समानता व पूर्ण भागीदारी की घोषणा–पत्र का सदस्य हैं। भारत के समावेशिक, अवरोध मुक्त तथा अधिकार समाज के निर्माण की दिशा में प्रयास करने के लिए विवाको मिलेनियम फ्रेमवर्क का भी सदस्य हैं। मौजूदा समय में भारत राष्ट्रीय दिव्यांग व्यक्तियों के अधिकारों तथा गरिमा की रक्षा व समर्थन घोषणा–पत्र में भाग ले रहा हैं।

राष्ट्रीय नीति का विवरण

राष्ट्रीय नीति मानता हैं कि दिव्यांग व्यक्ति देश के लिए मूल्यवान मानव संसाधन होते हैं तथा यह ऐसे व्यक्तियों को समान अवसरों, उनके अधिकारों की सुरक्षा तथा समाज में पूर्ण भागीदारी का प्रयास करती है। इस नीति के निम्न उद्देश्य हैं–

दिव्यांगता की रोकथाम

चूँकि कई सारे मामलों में निःशक्तता को रोका जा सकता हैं। इसलिए इसकी रोकथाम के लिए कड़े प्रयास करने की आवश्यकता होगी। ऐसे रोगों की रोकथाम के लिए कार्यक्रम को काफी बढ़ावा देना होगा। जिससे दिव्यांगता उत्पन्न होती हैं और गर्भावस्था के दौरान और उसके बाद होने वाली दिव्यांगता के लिए जागरुकता फैलानें की जरुरत हैं।

पुनर्वास के उपाय

पुनर्वास के उपायों को मूलतः 3 अलग–अलग समूहों में वर्गीकृत किया जा सकता हैं–

1. शारीरिक पुनर्वास, जिसमें आरम्भिक पहचान तथा उपचार, परामर्श व चिकित्सा तथा मदद व उपकरण का प्रावधान हैं। इसमें पुनर्वास कर्मचारियों का विकास भी शामिल हैं।
2. व्यवसायिक शिक्षा समेत शैक्षणिक पुनर्वास तथा समाज में गरिमामय जीवन जीने के लिए आर्थिक पुनर्वास।

शारीरिक पुनर्वास रणनीति

(क) आरम्भिक पहचान तथा उपचार

दिव्यांगता की आरम्भिक पहचान व दवा या गैर–दवा उपचारों के जरिए इसकी चिकित्सा से इन रोगों की गंभीरता को कम करने में मदद मिलती हैं। अतः आरम्भिक पहचान तथा आरम्भिक उपचार के साथ आवश्यक सुविधाओं की उपलब्धता पर अधिक ध्यान दिया जा रहा हैं। सरकार खासकर ग्रामीण इलाकों में ऐसी सुविधाओं की उपलब्धता के लिए सूचना का प्रसार कर रही हैं।

(ख) परामर्श तथा मेडिकल पुनर्वास

शारीरिक पुनर्वास के उपाय में शामिल हैं– परामर्श दिव्यांग व्यक्तियों व उनके परिवारों की क्षमता को सुदृढ़ करना, मनशचिकित्सा, फिजियोथेरेपी, व्यवसायिक थेरेपी, सर्जिकल सुधार, उपचार दृष्टि मूल्यांकन, दृष्टि उत्तेजन, स्पीच थैरेपी प्रदान किए जाएगें तथा ऑडियोलॉजिकल पुनर्वास व विशेष शिक्षा मुहैया कराया जायेगा जिन्हें राज्य सरकारों, स्थानीय संस्थाओं, गैर सरकारी संगठनों व

निःशक्तों के माता–पिता के जरिए सभी जिलों तक प्रसारित किया जा रहा हैं। वर्तमान में पुनर्वास सेवाएँ मुख्यतः शहरी और उसके आस–पास के इलाकों में उपलब्ध हैं चूंकि 75 प्रतिशत दिव्यांग व्यक्ति देश के ग्रामीण इलाकों में रहते हैं। पेशेवरों द्वारा चलाई जा रही सेवाओं को ऐसे अछूते इलाकों में कवरेज का प्रसार करने के लिए नए जिला दिव्यांगता पुनर्वास केन्द्रों की स्थापना की जा रही हैं। जिसके लिए राज्य के जरिए राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन ग्रामीण लोगों की स्वास्थ्य आवश्यकताओं की पूर्ति करता हैं। खासकर समाज के कमजोर वर्गों के लोगों को इसमें शामिल किया गया हैं। मूल स्तर पर 'आशा' दिव्यांग व्यक्तियों के लिए विशद् सेवाओं की देखभाल कर रही हैं।

सहायक उपकरण

भारत सरकार निःशक्तों को आई.एस.आई. प्रमाणित टिकाऊ तथा वैज्ञानिक रूप से निर्मित आधुनिक यंत्र व उपकरण की खरीद के लिए सहायता देती रही हैं। जिससे उनके शारीरिक, सामाजिक व मनोवैज्ञानिक निर्भरता को कम करते हुए दिव्यांगता के प्रभाव को कम किया जा सकें।

राष्ट्रीय संस्थानों, राज्य सरकारों, डीम्ड़आरसी व गैर सरकारी संगठनों के जरिए हर साल निःशक्तों की प्रोस्थेसिस तथा ऑर्थोसेस, ट्राइसिकल, व्हील चेयर, सर्जिकल फुटवेयर व दैनिक रिकॉर्डर, चलने–फिरने के लिए विशेष यंत्र जैसे अंधे व्यक्तियों के लिए छड़ी, श्रवण यंत्र, शैक्षणिक किट्स, बातचीत करने वाले यंत्र जो मानसिक रूप से दिव्यांग व्यक्ति के लिए बनाए जाते हैं। इन उपकरणों की उपलब्धता को अछूते व सेवा वाले क्षेत्रों तक विस्तार करना। दिव्यांग वर्ग के लिए हाईटेक सहायक यंत्रों के निर्माण में शामिल निजी, सार्वजनिक तथा संयुक्त क्षेत्र के उपक्रमों को सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों द्वारा वित्तीय सहायता प्रदान की जा रही हैं।

(ग) पुनर्वास कर्मचारियों का विकास

निःशक्तजनों के लिए मानव संसाधन की जरुरतों का मूल्यांकन किया जा रहा हैं तथा विकास योजना तैयार की जाएगी ताकि पुनर्वास रणनीति हेतु मानव बल की कमी न हो।

(घ) निःशक्त व्यक्तियों के लिए शिक्षा

सामाजिक तथा आर्थिक सशक्तिकरण के लिए शिक्षा सबसे प्रभावी माध्यम होता हैं। संविधान के अनुच्छेद 21ए के तहत जहाँ शिक्षा को मौलिक अधिकार माना गया हैं और दिव्यांग अधिनिम 1995 के अनुच्छेद 26 में दिव्यांग बच्चों की 18 वर्षों की उम्र तक मुक्त और अनिवार्य शिक्षा प्रदान करने का प्रावधान किया गया हैं, जनगणना 2001 के मुताबिक 51 प्रतिशत निःशक्त व्यक्ति

निरक्षर हैं। यह एक बहुत बड़ी प्रतिशतता हैं। दिव्यांग लोगों की सामान्य शिक्षा प्रणाली की मुख्यधारा में लाने की जरुरत हैं। सरकार द्वारा चलाया गया सर्वशिक्षा अभियान का 8 वर्षों तक के बच्चों के प्राथमिक स्कूल प्रदान करने के लक्ष्य हैं, जिसमें 6 से 14 वर्ष के बच्चे भी शामिल हैं। अंगहीन बच्चों के लिए समेकित शिक्षा के तहत 15 से 18 वर्ष की उम्र तक के दिव्यांग बच्चों की मुक्त शिक्षा प्रदान की जा रही हैं।

सर्वशिक्षा अभियाान के तहत शिक्षा विकल्पों का, सीखने वाले यंत्र औजार, गत्यात्मकता, सहायता, सहायक सेवाएँ इत्यादि दिव्यांग छात्रों को उपलब्ध कराई जा रही हैं। इसमें शामिल है मुक्त शिक्षण प्रणाली, ओपन स्कूल, वैकल्पिक स्कूलिंग, दूर शिक्षा, विशेष स्कूल, जहाँ भी आवश्यक हो घर आधारित शिक्षा भ्रमणकारी शिक्षक मॉडल, उपचार वाली शिक्षा, पार्ट टाइम कक्षाएँ समुदाय आधारित पुनर्वास व व्यवसायिक शिक्षा के जरिए शिक्षा प्रदान करने का कार्य। राज्य सरकारों, स्वायत्त निकायों तथा स्वयंसेवी संगठनों के जरिए क्रियान्वित आईईडीसी योजना विशेष शिक्षकों, पुस्तक व लेखन सामग्रियों, यूनिफार्म, परिवहन, दृष्टि से कमजोर व्यक्तियों के लिए पाठक भत्ता, हॉस्टल भत्ता, उपकरण लागत, वास्तु अवरोध को सुधार करना, निर्देशात्मक सामग्रियों की खरीद/उत्पादन के लिए वित्तीय सहायता, सामान्य शिक्षकों के लिए प्रशिक्षण व संसाधन कमरों के लिए यंत्र, उपकरण जैसी सुविधाओं के लिए सौ फीसदी वित्तीय उदाहरण प्रदान करती हैं।

नियमित सर्वेक्षणों, उचित स्कूलों में उनकी उपस्थिति और शिक्षा पूरी करने तक उनकी निरंतरता के जरिए बच्चों में दिव्यांगता की पहचान हेतु सरकार की ओर से केन्द्रिय प्रयास किया जा रहा हैं। सरकार दिव्यांग बच्चों को सही प्रकार की शिक्षण सामग्रियों तथा पुस्तक प्रदान करने, शिक्षकों व स्कूलों को सही रूप से प्रशिक्षण व संग्राही बनाने के लिए प्रयास करेगी जो पहुँच में आने योग्य तथा दिव्यांग हितैषी हो। भारत सरकार ऐसे दिव्यांग छात्रों को छात्रवृत्ति प्रदान करती है ताकि स्कूल के बाद उच्च स्तर पर पढ़ाई में उन्हें मदद मिल सकें। सरकार यह छात्रवृत्ति जारी रखेगी व इसके कवरेज का विस्तार कर रही हैं। विभिन्न प्रकार की उत्पादक गतिविधियों के लिए उपयुक्त योग्यता निर्माण के लिए तकनीकी तथा व्यवसायिक शिक्षा सुविधा प्रदान की जाएगी। जिसके लिए मौजूदा संस्थान कार्यरत या अछूते क्षेत्रों के अधिकृत संस्थानों का अनुकूलन किया जाएगा। गैर सरकारी संगठनों को भी व्यवसायिक प्रशिक्षण प्रदान करने के लिए प्रोत्साहित किया जा रहा हैं। निःशक्त व्यक्तियों को उच्चशिक्षा व व्यवसायिक पाठ्यक्रमों में दाखिला लेने के लिए विश्वविद्यालयों, तकनीकी संगठनों तथा उच्च शिक्षा के अन्य संस्थानों में पहुँच प्रदान की जा रही हैं।

(ङ) दिव्यांग व्यक्तियों के लिए आर्थिक पुनर्वास

दिव्यांग व्यक्तियों के आर्थिक पुनर्वास में संगठित क्षेत्र में दिहाड़ी रोजगार तथा स्वरोजगार भी शामिल हैं। सेवाओं को इस प्रकार बढ़ावा दिया जाए कि व्यवसायिक पुनर्वास केन्द्र तथा व्यवसायिक प्रशिक्षण केन्द्रों को विकसित किया जा सके। ताकि ग्रामीण व शहरी दोनों क्षेत्रों के निःशक्तजनों को उत्पादक तथा लाभकारी रोजगार मुहैया कराया जा सकें। दिव्यांगों के आर्थिक सशक्तिकरण हेतु रणनीतियाँ निम्न हैं–

1. सरकारी महकमों में रोजगार

निःशक्त व्यक्ति अधिनियम 1995 सरकारी महकमों तथा सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों में 3 प्रतिशत का आरक्षण व प्रावधान करता हैं। विभिन्न मंत्रालयों/विभागों में समूह ए.बी.सी. तथा डी के लिए सरकार के आरक्षण की स्थिति क्रमशः 3.07 प्रतिशत, 4.41 प्रतिशत 3.76 प्रतिशत तथा 3.18 प्रतिशत है। सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों में यह स्थिति क्रमशः 2.78 प्रतिशत, 8.54 प्रतिशत 5.04 प्रतिशत, तथा 6.75 प्रतिशत हैं। सरकार दिव्यांग व्यक्ति अधिनियम 1995 के प्रावधानों के अनुरूप चिन्हित पदों के लिए सरकारी क्षेत्र में (सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों समेत) आरक्षण सुनिश्चित करेगी। चिन्हित पदों की सूची को वर्ष 2001 में अधिसूचित किया गया हैं। जिसकी समीक्षा की जाएगी और अद्यतन किया जा रहा हैं।

2. निजी क्षेत्रों में दिहाड़ी रोजगार

निजी क्षेत्रों में निःशक्तजनों को रोजगार के लिए सक्षम बनाने के लिए उनकी योग्यता का विकास किया जा रहा हैं। निःशक्त व्यक्तियों के बीच उचित योग्यता के विकास हेतु संचालित व्यवसायिक पुनर्वास तथा प्रशिक्षण केन्द्र को उनकी सेवाओं के विस्तार के लिए बढ़ावा दिया जा रहा हैं। सेवा क्षेत्र में रोजगार अवसरों के तीव्र विकास को देखते हुए निःशक्तता से ग्रस्त व्यक्तियों को बाजार की जरुरत के मुताबिक योग्यता निर्माण के लिए बढ़ावा दिया जाएगा। इन्सेन्टिव, पुरस्कार, कर में छूट इत्यादि जैसे सक्रिय उपायों द्वारा निजी क्षेत्रों में दिव्यांग व्यक्तियों को रोजगार सृजन के लिए बढ़ावा दिया जा रहा हैं।

3. स्वरोजगार

संगठित क्षेत्र में दिव्यांग लोगों के रोजगार के अवसरों के विकास की धीमी दर को देखते हुए स्व–रोजगार के अवसरों को बढ़ावा दिया जा रहा हैं। ऐसे व्यवसायिक शिक्षा तथा प्रबन्धन प्रशिक्षण के जरिए किया जा रहा हैं। इसके अलावा एनएचएफडीसी से आसानी से ऋण मुहैया कराने की मौजूदा प्रणालियों से यह काफी पारदर्शक ओर दक्ष प्रक्रिया बन गई हैं। सरकार इंसेटिव,

कर से छूट, ड्यूटी से छूट, दिव्यांगों के लिए सेवा देने वाले तथा सामान बनाने वाले उपक्रमों को सरकार द्वारा बढ़ावा देकर, सरकार स्वरोजगार को प्रोत्साहित कर रही हैं। निःशक्त लोगों द्वारा बनाए स्वयं की सहायता समूह के लिए वित्तीय सहायता को प्राथमिकता दी जा रही हैं।

दिव्यांग महिलाएँ

जनगणना 2001 के मुताबिक देश में 93.01 लाख दिव्यांग महिलाएँ हैं जो कुल दिव्यांग आबादी का 42.46 प्रतिशत हिस्सा निर्मित करती हैं। दिव्यांग महिलाओं को शोषण व दुर्व्यवहार से बचाने की जरुरत हैं। निःशक्त महिलाओं की आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए शिक्षा रोजगार तथा अन्य पुनर्वास सेवाओं के विकास के लिए विशेष कार्यक्रम चलाए जा रहे हैं। विशेष शिक्षा तथा व्यावसायिक प्रशिक्षण सुविधाओं की स्थापना की जाएगी। परित्यकता दिव्यांग महिलाओं लड़कियों के पुनर्वास के लिए कार्यक्रम चलाए जा रहे हैं। जहाँ परिवारों द्वारा उन्हें स्वीकार करने, उनके निवास में मदद करने और लाभप्रद रोजगार योग्यताओं को हासिल कराने के प्रयास किये जा रहे है। सरकार उन परियोजनाओं को प्रोत्साहित करेगी जहाँ दिव्यांग महिलाओं के प्रतिनिधि को कम से कम कुल लाभ का 25 प्रतिशत तक प्रदान किया जा सके। निःशक्त महिलाओं के लिए कम समय के लिए रहने के लिए घर, नौकरी पेशा महिला के लिए हॉस्टल तथा बुर्जुग दिव्यांग महिलाओं के लिए घर प्रदान करने के लिए कदम उठाए जा रहे हैं। यह देखा गया हैं कि दिव्यांग महिलाओं में उनके बच्चों की देखभाल की गंभीर समस्या होती हैं। सरकार ऐसी निःशक्त महिलाओं को वित्तीय सहायता प्रदान कर रही हैं, ताकि वे अपने बच्चों के परवरिश के लिए आवश्यक सेवाओं को उपलब्ध करा सकें। ऐसी सहायता अधिकतम दो सालों तक 2 बच्चों के लिए मुहैया कराई जा रही हैं।

दिव्यांग बच्चें

निःशक्तता के शिकार बच्चें सबसे अधिक संवेदनशील समूह के होते हैं और उन्हें विशेष देखभाल की जरुरत होती हैं। इसके लिए सरकार निम्न कदम उठा रही हैं–

1. दिव्यांग बच्चों के देखभाल, सुरक्षा अधिकार को सुनिश्चित कर रही हैं
2. गरिमा तथा समानता के लिए विकास के अधिकार को सुनिश्चित किया जा रहा हैं। ताकि एक सक्षम वातावरण का निर्माण किया जाए। जहाँ दिव्यांग बच्चें अपने अधिकार की पूर्ति कर सके और विभिन्न कानूनों के अनुरूप समान अवसरों का लाभ उठाकर पूर्ण भागीदारी प्रदर्शित कर सकें। दिव्यांग बच्चों के लिए शिक्षा, स्वास्थ्य, व्यावसायिक प्रशिक्षण के साथ विशेष पुनर्वास सेवाओं को शामिल किया जा रहा हैं।
3. गम्भीर दिव्यांगता के शिकार बच्चों के लिए विकास के अधिकार तथा विशेष आवश्यकताओं व देखभाल, सुरक्षा को सुनिश्चित किया जा रहा हैं।

अवरोध मुक्त वातावरण

अवरोधमुक्त वातावरण से दिव्यांग व्यक्ति सुरक्षित तथा आसानीपूर्वक चल–फिर सकते हैं। अवरोधमुक्त डिजाईन का उद्देश्य हैं कि दिव्यांग लोगों को ऐसा वातावरण प्रदान किया जाए जहाँ वे अपनी दैनिक गतिविधियों में बिना किसी सहायता के गमन कर सकें। इसलिए जितना अधिक संभव हो, सार्वजनिक भवनों, स्थानों, परिवहन प्रणालियों को अवरोध मुक्त रखा जा रहा हैं।

दिव्यांगता प्रमाण पत्र जारी करना

भारत सरकार ने दिव्यांगता के मूल्यांकन व प्रमाण पत्र के लिए दिशा–निर्देश जारी किये हैं। इसके तहत सरकार सुनिश्चित करेगी कि दिव्यांग व्यक्ति कम समय में बिना किसी परेशानी के दिव्यांगता प्रमाण पत्र प्राप्त कर सके, जिसके लिए सरल, पारदर्शक व ग्राहकोन्मुख प्रक्रियाओं को लागू किया जा रहा हैं।

सामाजिक सुरक्षा

दिव्यांग व्यक्तियों उनके परिवार तथा उनकी देखभाल करने वालों को पर्याप्त अतिरिक्त व्यय राशि दी जाएगी ताकि वे दैनिक कार्यों, मेडिकल देखभाल, परिवहन, सहायक उपकरणों को खरीद सकें। इसलिए उन्हें सामाजिक सुरक्षा देने की आवश्यकता हैं। राज्य सरकार/केन्द्रशासित प्रदेशों को बेरोजगार भत्ता या दिव्यांगता पेंशन मुहैया कराया जा रहा हैं। राज्य सरकारों को दिव्यांगों के लिए एक व्यापक सामाजिक सुरक्षा नीति के विकास के लिए बढ़ावा दिया जा रहा हैं। ऑटिज्म, सेरीब्रल पाल्सी, मानसिक मंद तथा बहु–दिव्यांगता के लिए राष्ट्रीय ट्रस्ट स्थानीय स्तर की समिति द्वारा कानूनी अभिभावकत्व प्रदान करता आ रहा हैं। वे सहायता प्राप्त अभिभावकत्व योजना का भी क्रियान्वयन कर रहे हैं। ताकि दरिद्र तथा परित्यक्त व्यक्ति जिनमें उपरोक्त गम्भीर दिव्यांगता हो, उन्हें वित्तीय मदद की जा सके। यह योजना मौजूदा समय में कुछ जिलों में लागू की जा रही हैं। अब इसे योजनाबद्ध तरीके से अन्य क्षेत्रों में भी प्रसारित किया जाएगा। गैर सरकारी संगठनों को प्रोत्साहन राष्ट्रीय नीति गैर सरकारी संगठन (एनजीओ) को एक काफी अहम् प्रणाली के रूप में मानती हैं। जो सरकार के प्रयासों को लागू करने का एक सस्ता माध्यम हैं। एनजीओ सेक्टर गतिशील व उदीयमान क्षेत्र हैं। दिव्यांग व्यक्ति को सेवा देने के प्रावधान में इसने एक अहम् भूमिका निभाई हैं। कुछ एनजीओं मानव संसाधन विकास तथा अनुसंधान कार्य संचालित कर रहे हैं। सरकार भी उन्हें सक्रिय रूप से नीति के सूत्रीकरण, योजना, क्रियान्वयन, निगरानी में शामिल किया गया हैं और दिव्यांगता से जुड़े कई मुद्दों पर उनसे परामर्श प्राप्त कर रही हैं। एनजीओ के साथ

नेटवर्किंग, सूचनाओं के आदान–प्रदान तथा एनजीओ के बीच अच्छे कार्य पद्धतियों को साझा करने का प्रयास को प्रोत्साहित किया जा रहा हैं। इसके लिए निम्न कार्यक्रम संचालित किये जाएगें–

1. निःशक्तता के क्षेत्र में काम करने वाले एनजीओ का एक निर्देशिका तैयार किया जा रहा हैं। यहाँ उनके प्रमुख कार्यों के साथ उनके कार्य क्षेत्र का भी उल्लेख किया गया हैं। केन्द्र/राज्य सरकारों द्वारा समर्थित एनजीओं के लिए उनके संसाधन स्थित, वित्तीय तथा मानव बल की भी सूचना दी जा रही हैं। दिव्यांग व्यक्तियों के संगठन पारिवारिक संघों तथा उनके माता–पिता का समर्थन करने वाले समूह को भी इस निर्देशिका में शामिल किया गया हैं। जहाँ उनका अलग से उल्लेख किया जाएगा।
2. एनजीओं के कार्यों में क्षेत्रीय/राज्य असंतुलन मौजूद हैं। अनारक्षित तथा सुदूर इलाकों में इस दिशा में काम करने वाले एनजीओ को प्रोत्साहित किया जाएगा तथा उनका संदर्भ प्रस्तुत किया जाएगा। प्रतिष्ठित एनजीओं को भी ऐसे इलाकों में काम करने के लिए प्रोत्साहित किया जा रहा हैं।
3. एनजीओ को न्यूनतम मानक, आचार संहिता तथा नैतिकता के विकास के लिए बढ़ावा दिया जा रहा हैं।
4. एनजीओ को उनके कार्यकर्ताओं के प्रशिक्षण तथा जानकारी प्रदान करने के अवसर प्रदान किये जा रहे हैं। प्रबन्धन क्षमता प्रशिक्षण पहले से दी जा रही हैं इसे और भी मजबूत बनाया जाएगा। पारदर्शिता, जिम्मेदारी, प्रक्रिया की सरलता इत्यादि, एनजीओ–सरकार के सहयोग के दिशा–निर्देशक कारक होंगे।
5. एनजीओ को उनके संसाधन को विकास करने के लिए प्रोत्साहित किया जा रहा हैं। ताकि सरकार से मिलने वाली वित्तीय सहायता पर उनकी निर्भरता कम की जा सके तथा इस क्षेत्र में फण्ड की उपलब्धता में भी सुधार किया जा सके। एक योजनाबद्ध तरीके से एनजीओं को मिलने वाली सहायता में कमी करना होगा ताकि उपलब्ध संसाधनों के भीतर मदद की जाने वाली एनजीओ की संख्या अधिकतम हो। इस दिशा में एनजीओ को संसाधन के एकत्रण के लिए प्रशिक्षित किया जाएगा। दिव्यांग व्यक्तियों से जुड़ी जानकारी का नियमित संग्रह–

दिव्यांग व्यक्तियों के सामाजिक दशा से जुड़े आंकड़ों का नियमित संग्रह, प्रकाशन तथा विश्लेषण की आवश्यकता हैं। राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण संगठन 1981 से नियमित रूप से हर दस साल पर एक बार दिव्यांग व्यक्तियों की सामाजिक दशा में जुड़े आंकड़ों का नियमित संग्रह प्रकाशन तथा विश्लेषण करता हैं। 2001 की जनगणना से दिव्यांग व्यक्ति की सूचनाओं को भी

एकत्रित किया जाने लगा हैं। राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण संगठन को पाँच साल में एक बार निःशक्तता के शिकार व्यक्तियों की सूचनाएँ एकत्र करनी होगी। दोनों एजेन्सियों के आंकड़ों के बीच के अन्तर को मिलाया जा रहा हैं। सामाजिक न्याय तथा अधिकारिता मंत्रालय के तहत दिव्यांग व्यक्तियों के लिए एक व्यापक वेबसाइट का निर्माण किया गया हैं। सार्वजनिक तथा निजी क्षेत्र के संगठनों की ऐसी वेबसाइट बनाने के लिए प्रोत्साहित किया जा रहा हैं। जिसे दृष्टि दिव्यांग व्यक्ति स्क्रीन रीडिंग तकनीक के जरिए पढ़ सकें।

दिव्यांगता से निपटने वाले मौजूदा अधिनियमों में सुधार

निःशक्त (समान अवसर, अधिकारों की सुरक्षा तथा पूर्ण भागीदारी) अधिनियम 1995 को पास हुए बीस साल बीत गए हैं। इस कानून को लागू करने तथा निःशक्तता के क्षेत्र में हुए प्रगति से मिले अनुभव से इस अधिनियम में कुछ संशोधन आवश्यक हो गए हैं। इससे जुड़े उपक्रमों को परामर्श के बाद ये सुधार सम्पन्न किये जायेगे। आरसीआई तथा राष्ट्रीय ट्रस्ट अधिनियम की भी समीक्षा की जाएगी और आवश्यकता पड़ने पर उनमें संशोधन भी किया जाएगा।

बदलाव के मुख्य क्षेत्र

रोकथाम, आरम्भिक पहचान तथा उपचार–दिव्यांगता की रोकथाम तथा आरम्भिक पहचान के लिए निम्न कार्य सम्पन्न किये जा रहे हैं– टीकाकरण (बच्चों तथा होने वाली माँ के लिए), सार्वजनिक स्वास्थ्य व स्वच्छता के प्रसार के लिए राष्ट्रीय क्षेत्रीय तथा स्थानीय कार्यक्रम चलाए जा रहे हैं। बच्चों में दिव्यांगता की जल्दी पहचान करने के लिए मेडिकल तथा पेरामेडिकल स्टाफ को समुचित प्रशिक्षण दिया जा रहा हैं। इसकी रोकथाम, आरम्भिक पहचान तथा उपचार के लिए प्रशिक्षण मॉड्यूल तथा सुविधाओं का विकास किया जायेगा। जो मेडिकल तथा पेरामेडिकल स्वास्थ्य कर्मचारियों व आंगनबाड़ी कार्यकर्ताओं के लिए तैयार किए जा रहे हैं। मेडिकल शिक्षा में उत्तरस्नातक तथा अंतरस्नातक डिग्री पाठ्यक्रम में दिव्यांगता की रोकथाम, आरम्भिक पहचान व उपचार के अध्याय भी शामिल किये जा रहे हैं।

निःशक्त व्यक्ति के परिवार के लिए निःशक्तता से जुड़े विशेष पुस्तिका का विकास किया जाएगा तथा इसे निःशुल्क बांटा जा रहा हैं। मानव संसाधन विकास संस्थान यह सुनिश्चित करता हैं कि सहायक सेवाओं जैसे विशेष शिक्षा, क्लिनिकल मनोविज्ञान, फिजियोथेरॉपी, व्यवसायिक थेरॉपी, ऑडियोलॉजी, स्पीच पैथॉलोजी, व्यवसायिक परामर्श व प्रशिक्षण तथा सामाजिक कार्य प्रदान करने वाले कर्मचारी पर्याप्त संख्या में उपलब्ध हो। आनुवंशिक विज्ञान में किए अद्यतन शोध परिणामों का इस्तेमाल जन्मजात निशक्तता तथा मानसिक अपंगता को कम करने में किया जा रहा हैं। दिव्यांगता

के प्रभाव को कम करने तथा द्वितीय दिव्यांगता को रोकने के लिए मौजूदा स्वास्थ्य सेवा प्रणाली में उचित कदम उठाए जा रहे हैं। किशोर लड़कियों होने वाली माताओं तथा जनन अवस्था वाली महिलाओं में पोषण, स्वास्थ्य देखभाल तथा स्वच्छता के लिए जागरुकता कार्यक्रम चलाने पर ध्यान दिया जाएगा। इसकी रोकथाम के लिए जागरुकता कार्यक्रम को स्कूल स्तर पर तथा शिक्षकों के प्रशिक्षण प्राठ्यक्रम स्तर पर तैयार किया जा रहा हैं। खतरों की पहचान करने के लिए बच्चें के जाँच कार्यक्रम आयोजित किये जा रहे हैं।

पुनर्वास के कार्यक्रम

मेडिकल तथा पुनर्वास कार्यकर्ताओं व दिव्यांगों और उनके परिवारजनों, कानूनी अभिभावकों तथा समुदायों के साथ सहयोग कर मेडिकल, शैक्षिक तथा सामाजिक पुनर्वास कार्यक्रमों का विकास किया जा रहा हैं। सरकारी कार्यक्रमों के कवर्जेस को सुनिश्चित किया जाएगा तथा निम्न विशेष उपाय किए जायेगें–

1. मानव संसाधन विकास, अनुसंधान तथा दीर्घकाल के लिए विशेष पुनर्वास समेत संयुक्त पुनर्वास सेवाएँ मुहैया कराने के लिए राज्य स्तरीय केन्द्रों की स्थापना की गई हैं।
2. समुदाय आधारित पुनर्वास कार्यक्रमों को बढ़ावा दिया जायेगा। दिव्यांगों तथा उनके परिवारों देखभालकर्ताओं के स्वयं सहायता समूहों को पुनर्वास की प्रक्रिया में सक्रिय रूप से शामिल किया जा रहा हैं।
3. एनजीओ की सहायता से जिला स्तर पर पंचायती राज संस्थान द्वारा गंभीर रूप से मानसिक अपंग व्यक्तियों के लिए मानसिक आरोग्य सेवा गृहों की स्थापना को बढ़ावा दिया जा रहा हैं।
4. मानसिक अपंगता से जूझ रहे व्यक्तियों के व्यावसायिक तथा सामाजिक योग्यता के प्रशिक्षण के लिए आवासीय पुनर्वास केन्द्रों की भी स्थापना की जा रही हैं। इसके स्थान पर ऐसे मानसिक अपंग व्यक्तियों को, जिन्हें सामुदायिक पारिवारिक सहायता प्राप्त नहीं हैं। उनके लिए परिवार सहायता समूहों के निर्माण को भी बढ़ावा दिया जा रहा हैं।

विशेष शिक्षा में डिप्लोमा, डिग्री तथा उच्च स्तरीय कार्यक्रम

1. निःशक्तजन वयस्क/वरिष्ठ नागरिकों इत्यादि के घर आधारित शिक्षा तथा देखभाल सेवाओं देने वालों के लिए प्रशिक्षण।
2. पुनर्वास कर्मचारियों की प्रशिक्षण के लिए योजना निर्माण में भारतीय पुनर्वास परिषद् नोडल ऐजेन्सी की भूमिका निभा रहा हैं। अपंगता से जुड़े प्रशिक्षण कार्यक्रम में राष्ट्रीय संस्थानों की भूमिका को स्पष्ट रूप से निर्धारित किया जायेगा और इसके लिए पंचवर्षीय कार्य योजना का विकास किया जा रहा हैं।

निःशक्तों के लिए शिक्षा

यह सुनिश्चित किया जाएगा कि वर्ष 2020 तक हर एक निःशक्त बच्चे को प्री स्कूल, प्राथमिक तथा माध्यमिक (सैकण्डरी) स्तर की शिक्षा प्राप्त हो सकें। इस दिशा में निम्न पर ध्यान दिया जा रहा हैं–

1. स्कूलों को (भवनों, मार्गों, शौचालयों, खेल के मैदानों, प्रयोगशलाओं, पुस्तकालयों इत्यादि को) अवरोध मुक्त करना ताकि सभी प्रकार के निःशक्त वहाँ पहुँच सकें।
2. पढ़ाने के माध्यम तथा विधि को सही तरह से अपनाया जा रहा है। ताकि वे अधिकतर निःशक्तता परिस्थितियों पर खरा उतरें।
3. स्कूल या कई स्कूलों के आसानी से पहुँच में आने वाले केन्द्रों पर पढ़ाने/सिखाने के तकनीकी/पूरक/विशेष प्रणाली उपलब्ध कराई जा रही हैं।
4. तकनीकी/सिखाने वाले यंत्र औजार, जैसे खिलौने, ब्रेल, टॉकिंग, बुक, उचित सॉफ्टवेयर इत्यादि भी उपलब्ध कराये जाएगं। सामान्य पुस्तकालय, ई–लाइब्रेरी, ब्रेल लाइब्रेरी तथा टॉकिंग बुक लाइब्रेरी, संसाधन कक्ष की स्थापना के लिए सहायता प्रदान की जा रही हैं।
5. राष्ट्रीय मुक्त विद्यालय तथा दूर शिक्षा कार्यक्रम को लोकप्रिय बनाया जा रहा हैं और उसे देश के अन्य भागों में भी फैलाया जा रहा हैं।
6. एक दूसरे के साथ बात करने के लिए मूक–बधिरों की संकेत भाषा, वैकल्पिक तथा संवर्धी बातचीत व अन्य माध्यमों के रूप में पहचान दी जा रही हैं। उनका सामानीकरण किया जाएगा तथा उन्हें लोकप्रिय बनाया जा रहा हैं। स्कूल की स्थापना आसानी से पहुँचने वाली दूरी पर की जाएगी। अन्यथा समुदाय, राज्य तथा एनजीओं के सहयोग से परिवहन व्यवस्था की जाएगी। स्कूलों में माता–पिता, शिक्षक के बीच परामर्श तथा परेशानी से निपटने की प्रणाली तथा स्थापना की जा रही हैं। प्राथमिक, मध्यविद्यालय तथा उच्च स्तरीय शिक्षा में अपंग छात्राओं की दाखिला तथा उनके उपस्थित होने के आंकड़ें को वार्षिक रूप से समीक्षा की जा रही हैं। निःशक्तता से प्रभावित कई बच्चे जो समावेशी शिक्षा प्रणाली में भाग नहीं ले सकते, उन्हें विशेष स्कूलों के जरिए शिक्षा प्रदान की जा रही हैं। स्पेशल स्कूलों में सही तरह से सुधार लाये जा रहे हैं, जो तकनीकी, विकास पर आधारित हैं। ये स्कूल दिव्यांग बच्चों को मुख्यधारा की समावेशिक शिक्षा के लिए तैयार करने में मदद कर रहे हैं।
7. कुछ मामलों में निःशक्तता की प्रकृति (इसके प्रकार तथा गंभीरता के कारण), निजी परिस्थिति तथा प्राथमिकताओं के कारण घर आधारित शिक्षा प्रदान की जा रही हैं।

8. विभिन्न प्रकार की अपंगता के शिकार बच्चों के लिए पाठ्यक्रम तथा मूल्यांकन प्रणाली का विकास किया जा रहा हैं, जिसमें उनकी क्षमता पर ध्यान रखा जा रहा हैं। परीक्षा प्रणाली में सुधार लाया जाएगा ताकि यह दिव्यांगों के अनुकूल बन सके–जैसे सीखने वाला गणित, केवल एक भाषा सीखने का प्रावधान करना। इसके अलावा अतिरिक्त समय कैलकूलेटर का इस्तेमाल, क्लर्क टेबल का इस्तेमाल, स्काइब्स इत्यादि की आवश्यकतानुसार आपूर्ति की जाएगी।
9. प्रत्येक राज्य/केन्द्रशासित प्रदेश में समावेशिक शिक्षा का मॉडल स्कूल खोला गया है। ताकि अपंग बच्चों की शिक्षा को बढ़ावा मिल सकें।
10. नॉलेज सोसायटी के इस दौर में कम्प्यूटर भी अहम् भूमिका निभाता हैं। यह प्रयास किया जा रहा हैं कि प्रत्येक निःशक्त बच्चे को उचित रूप से कम्प्यूटर का इस्तेमाल करने का अवसर मिले। 6 वर्ष की आयु तक के दिव्यांग बच्चों की पहचान की जाती हैं तथा उनके लिए आवश्यक चिकित्सा उपाय किए जा रहे हैं। ताकि वे समावेशिक शिक्षा में शामिल होने के लिए सक्षम बन सकें। मानसिक रूप से निःशक्त बच्चों के लिए मनो–सामाजिक पुनर्वास केन्द्रों पर शैक्षिक सुविधाएँ प्रदान की जा रही हैं। दिव्यांग बच्चों की क्षमता के बारे में जानकारी के अभाव में कई स्कूल ऐसे बच्चों को अपने यहाँ दाखिला लेने से हिचकते हैं। शिक्षकों प्राचार्यों तथा स्कूल के अन्य कर्मचारियों को सुग्राही बनाने के लिए कार्यक्रम चलाए जा रहे हैं।
11. सामाजिक न्याय तथा अधिकारिता मंत्रालय द्वारा सहायता प्रदत्त विशेष विद्यालय वर्तमान में समावेशिक शिक्षा के संसाधन केन्द्र बन गए हैं। मानव संसाधन विकास मंत्रालय आवश्यकतानुसार नये विशेष स्कूल की स्थापना करेगा।
12. वयस्क शिक्षा/सीखने में गम्भीर रूप से अक्षम वयस्कों के लिए अवकाश केन्द्र को प्रोत्साहित किया जा रहा हैं। उच्च शिक्षा में दाखिले के लिए दिव्यांगों के लिए 3 प्रतिशत का आरक्षण लागू किया जा रहा हैं। विश्वविद्यालय, कॉलेज तथा व्यावसायिक संस्थानों को दिव्यांगता केन्द्र खोलने में वित्तीय सहायता प्रदान की जा रही हैं, ताकि निःशक्त छात्रों के क्लास रूम, हॉस्टल, केफेटेरिया तथा अन्य सुविधाऐं मुहैया कराने के लिए प्रोत्साहित किया जा रहा हैं।

मानव संसाधन विकास मंत्रालय नोडल मंत्रालय हैं जो निःशक्तजनों से जुड़ी शिक्षा के सभी मामलों को देखता हैं।

रोजगार

निःशक्तजन के लिए रोजगार के निम्न उपाय किये जा रहे हैं—एक बातचीत आरम्भ की हैं, ताकि दिव्यांगों को रोजगार मिलने में मदद की जा सके। निःशक्तजनों के लिए खासकर गम्भीर रूप से दिव्यांग व्यक्तियों के लिए घर आधारित आय सृजन कार्यक्रम का संचालन कर रही हैं। दिव्यांग तथा उनके लिए सेवा प्रदात्ता व्यक्तियों के रोजगार के लिए कोचिंग की व्यवस्था भी की गई हैं। निःशक्त व्यक्तियों के लिए मशीनरी, कार्य स्थान तथा कार्य वातावरण में आवश्यक सुधार करना ताकि ऐसे व्यक्ति प्रशिक्षण केन्द्रों/कारखानों/उद्योगों/कार्यालयों इत्यादि में बिना व्यवधान के आ जा सकें। उचित एजेन्सियों जैसे मार्केटिंग बोर्ड, जिला ग्रामीण विकास एजेन्सी, निजी एजेन्सी व दिव्यांगों द्वारा निर्मित मालों तथा सेवाओं की मार्केटिंग में शामिल गैर सरकारी संगठनों के जरिए सहायता प्रदान की जा रही हैं। गरीबी उन्मूलन कार्यक्रमों में दिव्यांगों को शामिल किया जा रहा है, ताकि वे संविधान द्वारा तय 3 प्रतिशत की उन्हें भी भागीदारी मिल सके।

अवरोध मुक्त वातावरण

अवरोध मुक्त वातावरण के निर्माण के लिए निम्न रणनीतियाँ अपनाई जायेगी।

1. सार्वजनिक भवन (कार्यात्मक या मनोरंजनात्मक), परिवहन सुविधाएँ जैसे सड़क, सब—वे तथा फुटपाथ, रेलवे प्लेटफार्म, बस स्टॉप/टर्मिनस/बंदरगाह/हवाई अड्डे/परिवहन के माध्यम (बस, ट्रेन, वायुयान तथा जहाजों), खेल के मैदान, खुले स्थान इत्यादि को निःशक्त व्यक्तियों के लिए आसानी से पहुँच लायक बनाया गया हैं।
2. सभी सार्वजनिक कार्यों में संकेत भाषा के इस्तेमाल को बढ़ावा दिया गया हैं।
3. निःशक्तजनों के लिए अवरोध मुक्त भवन बनाने वास्तुशास्त्र तथा नागरिक निर्माण इंजीनियरिंग के पाठ्यक्रम में सुधार लाया जा रहा हैं। इन मुद्दों पर सरकारी आर्किटेक्ट तथा इंजीनियरों को सेवा प्रशिक्षण प्रदान किया जा रहा हैं।
4. व्यापक निर्माण उपकानूनों तथा स्थान मानकों का अनुपालन कर अवरोध मुक्त वातावरण का निर्माण किया गया हैं। देश के सभी, राज्यों, नगर निकायों तथा पंचायतीराज संस्थानों द्वारा उपकानूनों तथा स्थान मानकों का अनुपालन करने के लिए आवश्यक प्रयास किए जा रहे हैं। ये प्राधिकरण सुनिश्चित करेंगे कि सभी नवनिर्मित सार्वजनिक भवन अवरोध मुक्त हो।

5. राज्य परिवहन उपक्रम अपने वाहनों में दिव्यांग व्यक्तियों के लिये सुविधाजनक परिवर्तन लायेंगे। रेलवे योजनाबद्ध तरीके से अवरोध मुक्त कोचों की शुरुआत करेंगा। वे प्लेटफॉर्म निर्माण, टॉयलेट तथा अन्य अवरोध मुक्त सुविधाएँ मुहैया करायेंगे।
6. सरकार सुनिश्चित करेगी कि सार्वजनिक तथा निजी क्षेत्र के औद्योगिक प्रतिष्ठान, कार्यालय, सार्वजनिक उपक्रम अपने कर्मचारियों के लिए दिव्यांग हितैषी कार्य स्थल प्रदान करेंगे। सुरक्षा मानकों का निर्धारण किया जाएगा तथा उनका कड़ाई से पालन किया जा रहा हैं।
7. देश में दिव्यांगता हितैषी आईटी वातावरण को सुनिश्चित करने के लिए आवश्यक कदम उठाए जा रहे हैं।
8. सभी भवन जो सार्वजनिक उपयोग हेतु होते हैं, उनकी जांच की जा रही हैं कि क्या वे दिव्यांग व्यक्तियों की सुविधाओं को ध्यान में रखकर बनाये गए हैं या नहीं। ऐसे दक्ष व्यक्तियों के विकास की आवश्यकता है, जो ऐसे भवनों की जांच कर सकें।
9. निःशक्तजनों की आवश्यकता की पूर्ति के लिए बैंकिंग प्रणाली को प्रोत्साहन दिया गया है।
10. दिव्यांग व्यक्तियों की संचार जरुरतों की पूर्ति सूचना सेवा तथा सार्वजनिक दस्तावेज को आसान बनाकर की जा सकती हैं। दृष्टि दिव्यांगों को सूचना प्रदान करने के लिए ब्रेल, टेप सर्विस, बड़े प्रिंट तथा अन्य उचित तकनीकों का इस्तेमाल किया जा रहा हैं।

सामाजिक सुरक्षा

दिव्यांग व्यक्ति को समुचित सामाजिक सुरक्षा प्रदान करने के लिए लिए निम्न उपाय किए जा रहे हैं–निःशक्तजनों के लिए मंजूर की गई नीतियों की नियमित समीक्षा की जाती हैं ताकि ऐसे व्यक्तियों को आवश्यक आयकर तथा अन्य कर रहित सामग्री उपलब्ध होती रहें।

राज्य सरकार तथा केन्द्रशासित प्रदेशों को दिव्यांगों के लिए पेंशन राशि तथा बेरोजगार भत्ता प्रदान करने के लिए प्रोत्साहन किया जा रहा हैं। भारतीय जीवन बीमा निगम विशेष प्रकार के निःशक्त व्यक्तियों की ऐसी बीमा कवरेज प्रदान करने की आवश्यकता पर बल डाला जा रहा हैं।

अनुसंधान

जहाँ भी आवश्यक होगा, अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग से दिव्यांगों के लिए लिए नई तकनीक के विकास के लिए अनुसंधान कार्य सम्पन्न किये जायेंगे। इन अनुसंधानों के परिणामों का व्यापक प्रसार किया जायेगा। यह निम्न आयामों पर केन्द्रित होंगे–

1. दिव्यांगता के सामाजिक–सांस्कृतिक आयाम, जिनमें शामिल होंगे। दिव्यांगों के प्रति सामाजिक नजरिये तथा व्यवहारगत पैटर्न का अध्ययन। दिव्यांगों की शिक्षा से जुड़े

सामाजिक संकेत का विकास ताकि आने वाली समस्याओं का विश्लेषण किया जाए और पहुँच तथा अवसर को बढ़ाने के लिए कार्यक्रमों का विकास किया जा सकें।

2. दिव्यांगों के प्रकारों, खासकर ऐसे व्यक्ति जो दुर्घटनावश तथा अन्य आपत्तियों से निःशक्त होते हैं, उसके आधार पर रोजगार की दशा के बारे में जानकारी इकटठ्ा की जा रही हैं। विभिन्न प्रकारों तथा स्तरों की दिव्यांगता के मामलों का अध्ययन दिव्यांगता के मामलों को कम करने के लिए भारतीय मेडिकल अनुसंधान परिषद् के अधीन अनुवांशिक अनुसंधान हैं।
3. व्यक्तिगत गत्यात्मकता, मौखिक/अमौखिक संवाद, दैनिक उपयोग की वस्तुओं के डिजाइन में परिवर्तन इत्यादि पर केन्द्रित उपयुक्त तकनीकी अनुसंधान, जहाँ प्रमुख तकनीकी संस्थाओं की मदद से सस्ते, प्रयोक्ता हितैषी व टिकाऊ यंत्र तथा उपकरणों का निर्माण किया जा रहा हैं।
4. विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी मंत्रालय, पुनर्वास तकनीकी केन्द्र का गठन किया गया हैं, जो चालू अनुसंधान तथा विकास परीक्षण तथा तकनीकी प्रमाणन, प्रशिक्षण इत्यादि के बीच समन्वय का कार्य करता हैं। दिव्यांग व्यक्तियों द्वारा सूचना प्रौद्योगिकी का इस्तेमाल के लिए उचित हार्डवेयर तथा सॉफ्टवेयर का विकास किया गया हैं।

खेलकूद, मनोरंज तथा सांस्कृतिक क्रियाकलाप

खेल–कूद, मनोरंजन तथा सांस्कृतिक गतिविधियों के लिए समान अवसरों को सुनिश्चित करने के लिए निम्न कदम उठाये जा रहे हैं–

1. मनोरंजन, सांस्कृतिक गतिविधियों तथा खेलकूद, हॉस्टल, समुद्र तट स्पोॅट एरीना ऑडिटोरियम, जिम हॉल इत्यादि को दिव्यांग व्यक्तियों की पहुँच के लायक बनाना।
2. ट्रेवल एजेन्सी, होटल, स्वयंसेवी संगठनों व यात्रा अवसरों के आयोजन में शामिल अन्य संगठनों की अपनी सेवाएँ सभी के लिए खोलनी चाहिए जिनमें निःशक्त व्यक्तियों की आवश्यकताओं का भी ध्यान रखा जाना चाहिए।
3. स्थानीय एनजीओ की सहायता से विभिन्न खेलों में दिव्यांग व्यक्तियों की क्षमता की पहचान की जानी चाहिए।
4. दिव्यांग व्यक्तियों के लिए स्पोर्ट आर्गेनाइजेशन तथा सांस्कृतिक सोसायटी के निर्माण को बढ़ावा दिया जायेगा। राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय समारोहों में दिव्यांगों के भाग लेने के लिए आवश्यक प्रणाली लागू किया जायेगा।

5. खेलकूद में दिव्यांग व्यक्तियों के उत्कृष्ट प्रदर्शन के लिए राष्ट्रीय अवार्ड का गठन किया जाएगा।
6. नीति के क्रियान्वयन से जुड़े सभी मुद्दों के लिए सामाजिक न्याय तथा अधिकारिता मंत्रालय नोडल मंत्रालय के रूप में कार्य करता है।
7. राष्ट्रीय नीति के क्रियान्वयन से जुड़े मामलों के बीच समन्वय के लिए एक अन्तर–मंत्रालय निकाय का गठन किया जा रहा हैं। सभी प्रतिभागी जिनमें प्रतिष्ठित एनजीओ दिव्यांग लोगों का संगठन, सर्मथन समूह तथा माता–पिता/अभिभावक, विशेषज्ञ तथा पेशेवरों के प्रतिनिधियों को इस निकाय में शामिल किया जाए। ऐसी ही व्यवस्था राज्यस्तर तथा जिला स्तरों पर की जाएगी। नीति के क्रियान्वयन से जुड़े मामलों को देखने के लिए जिला दिव्यांगता पुनर्वास केन्द्रों के जिला स्तरीय समितियों में पंचायती राज संस्थानों तथा शहरी निकाय को भी जोड़ा जा रहा हैं।
8. गृह मंत्रालय, स्वास्थ्य तथा परिवार कल्याण मंत्रालय, ग्रामीण विकास मंत्रालय, शहरी विकास मंत्रालय, युवा तथा खेल मामलों का मंत्रालय, रेलवे मंत्रालय, विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी मंत्रालय सांख्यिकी तथा कार्यक्रम क्रियान्वयन मंत्रालय, श्रम मंत्रालय, पंचायती राज मंत्रालय व प्राथमिक शिक्षा तथा साक्षरता विभाग, माध्यमिक तथा उच्च शिक्षा मंत्रालय, सड़क परिवहन तथा राजमार्ग मंत्रालय, सार्वजनिक उपक्रम, राजस्व, महिला तथा बालविकास मंत्रालय, सूचना प्रौद्योगिकी कर्मचारी व नीति के क्रियान्वयन के लिए आवश्यक प्रणाली का निर्माण करेंगे। प्रत्येक मंत्रालय/विभागों द्वारा एक पंचवर्षीय योजना तथा वार्षिक योजना का निर्माण किया जाएगा, जिसके तहत वित्तीय आवंटन किया जा रहा हैं। इन मंत्रालयों/विभागों की वार्षिक रिपोर्ट वर्ष के दौरान प्राप्त सफलता का उल्लेख करेगी।
9. केन्द्रीय स्तर पर मुख्य दिव्यांगता आयुक्त तथा राज्य स्तर पर राज्य दिव्यांगता आयुक्त अपनी संवैधानिक दर्जे के अलावा राष्ट्रीय नीति के क्रियान्वयन में मुख्य भूमिका निभायेंगे।
10. स्थानीय स्तर के मामलों के निपटान के लिए उपयुक्त कार्यक्रम के निर्माण के जरिए पंचायती राज संस्थान, राष्ट्रीय नीति के क्रियान्वयन में अहम् भूमिका निभायेंगे, जिन्हें जिला तथा राज्य योजनाओं के साथ जोड़ा जा रहा हैं। इन संस्थानों की परियोजनाओं में दिव्यांगता से जुड़े घटक शामिल होंगे।
11. क्रियान्वयन के दौरान विकसित संरचना को लम्बे समय के इस्तेमाल के लिए बरकरार और प्रभावी बनाए रखा जाएगा। समुदायों को स्वयं या निजी क्षेत्रों के लामबंदी द्वारा संरचना तथा संचालन लागत की भी पूर्ति हेतु संसाधनों के निर्माण में अहम् भूमिका निभानी चाहिए। इस कदम से न केवल राज्य सरकार के संसाधन पर बोझ घटेगा बल्कि समुदाय तथा निजी क्षेत्र के भागीदारों के बीच जिम्मेदारी की भावना का भी विकास होगा।

12. हर पांच साल में राष्ट्रीय नीति के क्रियान्वयन पर एक विशद् समीक्षा की जायेगी। क्रियान्वयन की दशा को सूचित करने वाला एक दस्तावेज तथा पांच सालों के लिए एक रोड़मेप का निर्माण किया जाएगा, जिन्हें राष्ट्रीय स्तर के सम्मेलन में सम्पन्न किया जायेगा। राज्य नीति तथा कार्य योजना के लिए राज्य सरकारों व केन्द्र शासित प्रदेशों से अनुरोध किया जाएगा।

वर्तमान में राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर दिव्यांग वर्ग को समाज के साथ लेकर चलने के लिए शासन और स्वयंसेवी संगठन आगे आये हैं। उनकी शिक्षा, रोजगार पर विशेष ध्यान दिया जा रहा है। आरक्षण व्यवस्था भी लागू की गई हैं। इन्हें आत्मनिर्भर और सामाजिक स्तर पर सक्षम बनाने के उपाय किये जा रहे हैं। निश्चित रूप से दिव्यांग वर्ग को मुख्य समाज में शामिल करने के लिए विभिन्न स्तरों पर सफल शुरुआत हो चुकी हैं। जो इस अनुशीलन के द्वारा आगे बढ़ती जाएगी और समाज व विश्व के हर कोने तक पहुँचकर समस्या का निर्वाण करेगी।

(4) समकालीन साहित्य में निःशक्तजन अनुशीलन

साहित्य का समाज से गहरा व अटूट संबंध हैं। समाज में घटित होने वाली हर घटना का वास्तविक वर्णन साहित्य के माध्यम से ही होता हैं। समाज की आकृति–विकृति, मानवीय दृष्टि–सृष्टि भी साहित्य में समाहित होती हैं। इसके अन्दर समाज व मानव जाति के हित का भाव होता हैं। साहित्य की भी दो विधाएँ हैं, गद्य में कहानी, निबंध, उपन्यास, नाटक, रेखाचित्र, संस्मरण, यात्रा–वृत्तांत, आत्मकथा आदि आते हैं। वही पद्य के अन्तर्गत महाकाव्य, खण्डकाव्य, प्रबन्धकाव्य, मुक्तककाव्य दोनों ही विधाओं के माध्यम से साहित्यकार समाज के विभिन्न दृष्टिकोणों को चित्रित करता हैं। यह बात सत्य हैं कि यदि मनुष्य के हृदय में कुछ कर गुजरने की इच्छा हैं, लगन हैं तो गहन अध्ययन, संघर्ष व मेहनत के बल पर असंभव को भी संभव कर सकता हैं। दुनिया में जन्म लेने वाला हर इंसान सुन्दर व बराबर नहीं होता कभी–कभी यह इंसान कुरूप, विकृत शरीर या जन्मजात अपंग पैदा होता हैं। निःशक्तजन का दायरा व्यापक हैं, इसके अन्तर्गत–अपंग, नेत्रहीन, अल्पदृष्टि, कुष्ठरोगी, श्रवण बाधित, मानसिक दिव्यांग, किन्नर वर्ग आदि को लेकर 'निःशक्तजन अनुशीलन' साहित्य में उपस्थित हुआ हैं।

निःशक्त मनुष्य स्वयं के अन्दर झांककर नहीं देखता, अपनी शक्ति को नहीं जानता यह विडम्बना हैं। ऋग्वेद में लिखा हैं– "व्यक्ति अपने–आपको भी नहीं जानता हम स्वयं को न पहचाने, यह कितनी भयंकर भूल हैं। मनुष्य को भाषा साहित्य एवम् अन्य विद्या की जो क्षमता प्राप्त हैं, उससे शरीर और जीवात्मा का ज्ञान प्राप्त करना चाहिए अर्थात् यह देह चाहे दिव्यांग हो उसे

जानकर व्यक्ति मानव समाज और अपने कल्याण हेतु इस शरीर को कार्य में प्रवृत्त रखे यही शिव हैं–

नपि जानाभि यदि वेदमस्भि निष्यः सन्नद्धो मनसाचराभि।
यदा भागवन्प्रथमाजा ऋतस्यादिद्वायों अश्नुवें भागमस्याः।।"[26]

अपनी योग्यता व शक्ति का विश्वास साहस और हिम्मत को बढ़ा देता हैं और साहस ही आत्मविश्वास की रीढ़ हैं। हर दिव्यांग को अपने अन्दर लक्ष्य को प्राप्त करने की तड़प को जन्म देना हैं क्योंकि–

"तड़प न हो तो बया एक छोटी सी चिड़िया।
तड़प के हाथों ही वह घोंसला बनाती है।
प्यास इल्म की, तामीर की, तरक्की की।
प्यास वो है जो हर रास्ता दिखाती है।"[27]

यही समय की माँग है कि हर निःशक्त आत्मनिर्भर बने। अष्टावक्र, जायसी, सूर और अन्य दिव्यांग अपने कार्यों से प्रसिद्धि पा चुके हैं अर्थात् सृष्टि में जो भी अपंग, अंधे–लूले–लंगड़े, बहरे आदि हैं। वे समाज में घृणा के पात्र नहीं है हमें उनके साथ सहृदयतापूर्वक मानवता का व्यवहार करना हैं। मनुष्य को 84 लाख योनियों के पश्चात् यह मानवजीवन प्राप्त होता हैं, इसलिए इसे व्यर्थ न गंवाकर जिस रूप में मिला हैं उसे खुशी से व्यतीत करना चाहिए। सृष्टि की सर्वश्रेष्ठ कृति मनुष्य ही हैं जिसके कारण यह उसका कर्त्तव्य अर्थात् उत्तरदायित्व बनता हैं कि समस्याओं और मुश्किलों से जूझकर, उन्हें पीछे–छोडकर अपने अनमोल जीवन की सार्थकता सिद्ध करके दिखाए। सूर और जायसी पुनः पैदा नहीं हो सके परन्तु अपने बच्चों को अपराजिता की कहानी पढ़ा गये।

"सफर में मुशकिले आये तो जुरअत और बढ़ती है।
कोई जब रास्ता रोके तो हिम्मत और बढ़ती है।"[28]

इसलिए मुश्किलों का डटकर सामना करना ही पुरुषार्थ हैं। उससे डरना नहीं हैं। हिन्दी साहित्य में स्त्री–विमर्श, आदिवासी विमर्श को समाज के प्रत्येक कोने से सुदृढ़ करने के बाद इक्कीसवीं सदी के आरम्भ से निःशक्त अनुशीलन केन्द्र में हैं। साहित्य आलोचना और शोध को आधार बनाकर इस अनुशीलन ने बहुत अधिक प्रसिद्धि प्राप्त की हैं। हर साहित्यकार किसी न किसी तरह दिव्यांग वर्ग से आत्मीय रूप से जुड़ा हैं। इनका नाता नाम–स्थान से न जुड़कर कार्य और चरित्र विकास से जुड़ता हैं। इसी कारण अपंग की भावनाओं की गहराई में उतरकर स्वयं निःशक्त समस्या के देश को अनुभव करके मानवीयता को प्रतिष्ठा की प्रसिद्धि करते हैं।

ये किसी जाति वर्ग, लिंग से न जुड़कर मानव–जाति की संवेदना को झिंझोड़ देने की शक्ति रखते हैं। ये दिव्यांग प्रकृति–प्रकोप या दुर्घटनावश भी हो सकते हैं। परन्तु फिर भी सशक्त की चुनौती को स्वीकार करके विशिष्टता प्राप्त करते हैं। हिन्दी साहित्यकारों ने अपनी रचनाओं में किसी न किसी दिव्यांग पात्र को चित्रित किया हैं और उनके प्रति संवेदना व सहानुभूति भी प्रकट की हैं। प्राचीन साहित्य में दीर्घत्तमा, अष्टावक्र, कुब्जा, धृतराष्ट्र आदि से लेकर समकालीन साहित्य तक इन पात्रों की समस्या को उठाया जा रहा हैं। भारतीय संस्कृति अपनी इन्हीं विशिष्टताओं के कारण लगातार प्रवाहमान हैं। इसी वजह से दिव्यांग वर्ग को समान अवसर और सम्मान देने की आवश्यकता हैं। डॉ. जबरनाथ पुरोहित निःशक्तजन को ढ़ाँढस व धैर्य बंधाते हुए कहते हैं–

"मुशकिलों से सिर झुकाना है मना,
हार कर आँसू बहाना है मना।
कौन सी रात जो ढलती नहीं है,
कौन सी रात जो कटती नहीं है।
राह चलते डगमगाना है मना,
हार कर आंसू बहाना है मना।"[29]

प्राचीन काल और समकालीन काल दोनों में कोई न कोई प्रसिद्ध साहित्यकार अवश्य ही मिल जाता हैं जिनके साहित्य में निःशक्त चेतना मिलती हैं। इसलिए यह विषय वर्तमान में निःशक्तजन की वेदना को जानने के लिए जरुरी हैं। समकालीन साहित्य में अनेक स्थानों पर निःशक्तजन के दर्शन होते हैं। इसी कारण साहित्य के क्षेत्र में दिव्यांग वर्ग पर शोध करना जरुरी हो गया। इस काल के साहित्य में साहित्यकार संवेदनशील होकर समाज की दृष्टि निःशक्तजन के प्रति आकृष्ट करता हैं। समाज में दोहरापन देखा जाता हैं एक तरफ उपेक्षा करता हैं दूसरी तरफ संवेदना प्रकट करता हैं। साहित्यकार अपने समय और स्थिति का व्याख्याता होता हैं। साहित्य में समाज के अन्तः एवम् बाह्य दोनों पक्षों को देखा जाता हैं क्योंकि वह साहित्यकार की अनुभूति होती हैं, साहित्य में कहानी, उपन्यास, लघुकथा व अन्य सभी विद्याओं में निःशक्तजन को चित्रित किया गया हैं।

उपन्यास साहित्य में मुंशी प्रेमचन्द का उपन्यास 'रंगभूमि' में सूरदास अंधा पात्र हैं जो समाज की उपेक्षा व अमीर लोगों के द्वारा प्रताड़ित किया जाता हैं। समाज उसके बारे में कुछ भी सोचे परन्तु वह तो समाज के हित में ही कार्य करता हैं। अंधा हैं परन्तु ज्ञानवान, विवेकशील, धैर्यवान भी हैं। प्रेमचन्द्र के शब्दों में–

"तू रंग–भूमि में आया, दिखलाने अपनी माया,
क्यों धरमनीति को तोड़े?
भई, क्यों रन से मुँह मोड़े?"[30]

अपने धर्म व कर्त्तव्य पर अडिग रहने का भी संदेश देता हैं। सामाजिक उपन्यास लेखन में प्रसिद्ध 'अमृत लाल नागर' का उपन्यास 'खंजन–नयन' महाकवि सूरदास के जीवन को आधार बनाकर लिखा गया हैं। नागर जी एक अंधे कवि की आंतरिक और बाह्य छटपटाहट, जिज्ञासा की प्रवृत्ति और जिजीविषा को बड़ी बारीकी से व्यक्त करते हैं। एक अंधे, लाचार, उपेक्षित, अति सामान्य निरीह कवि ने श्रीकृष्ण का वात्सल्य का वर्णन करके भव–बंधन से मुक्ति पाने का प्रयास करते हैं। नागर जी को उपन्यास लेखन की प्रेरणा भी एक अंधे गाइड से मिली थी। जब उन्होंने देखा कि एक अंधा व्यक्ति इतने अच्छे से गाइड कर सकता हैं तो महान कवि सूरदास का जीवन–वर्णन करना उनके लिए जरुरी हो गया। निःशक्तजन पर आधारित प्रथम उपन्यास 'मृदुला–सिन्हा' का 'ज्यों मेंहदी को रंग' हैं। इस उपन्यास में लेखिका स्वयं के द्वारा भोगे गए कष्टमय दिनों को व्यक्त करती हैं। उनका बेटा 'परिमल' जो अपने–आप हाथ भी नहीं हिला सकता था। ये गुजरे हुए दिन ही लेखिका को उपन्यास लिखने के लिए बाध्य करते हैं। उन्होंने नायिका 'शालिनी' के माध्यम से अपने बेटे की पीड़ा को व्यक्त किया हैं। 'श्रीलाल शुक्ल' का उपन्यास 'रागदरबारी' में एक पैर से अपंग लंगड़ नाम का पात्र शिवपालगंज से संबंधित है। इसके माध्यम से जीवन में फैली विकृतियाँ व समाज में होने वाली आम बातें हैं। अदालतों के फिजूल चक्कर, अफसर की रिश्वतखोरी, चुनाव, चोरी–डकैती, जुआ, भाँग, शराब, गबन, राजनीति, बुद्धिजीवी, लाचार, गबन झगड़े सबका वर्णन इस उपन्यास में शुक्ल जी ने किया हैं। लँगड़ का कोई दीवानी मुकद्दमा कचहरी में चल रहा हैं। जिसकी नकल लेने के लिए उससे रिश्वत माँगी जाती हैं और वह रिश्वत नहीं देता तो उसका फैसला भी नहीं सुलझता वह थक–हारकर अपने गाँव वापिस आ जाता हैं।

इस उपन्यास में भ्रष्ट राजनीति को मुख्य केन्द्र माना हैं। जहाँ बिना रिश्वत के कोई काम नहीं होता।

शिवानी के लघु उपन्यासों में पूतोंवाली में पाँच पुत्रों की माता होने पर भी पार्वती की बीमारी में उसकी देखभाल कोई नहीं करता। आँख का मोतियाबिन्द बढ़कर आँख से अंधी हो गई। परन्तु बेटों में से न तो कोई उसे देखने आया न ही उसकी अन्तिम यात्रा में शामिल हुये। इस उपन्यास में भी समकालीन समस्या को उठाया हैं।

इसी क्रम में अगली लेखिका 'अलका सरावगी' का उपन्यास 'कोई बात नहीं' का पात्र शशांक जो बोलने में हकलाता हैं। शुरुआत में तो सिर्फ बोलने की समस्या थी परन्तु धीरें–धीरें पूरा शरीर अक्षम हो गया। यहाँ तक कि स्वयं उठ बैठ भी नहीं सकता था। परन्तु उसकी माँ व परिवार की मेहनत के कारण व ठीक हो जाता हैं।

उपन्यास की तरह कहानी ने भी इस क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई हैं। 'अज्ञेय' की कहानी 'खितीन बाबू' जो एक साधारण क्लर्क हैं। दुर्घटना में दोनों हाथ–दोनों पैर व एक आँख भी खो चुका हैं। इतना बेबस होने पर भी वह हार नहीं मानता। धैर्य के साथ जीवन बिताता हैं। 'पुनिया की होली' यशपाल की कहानी हैं जिसमें पुनिया का पति पैरों से अपंग हैं। इसके कारण परिवार व बच्चों की जिम्मेदारी पुनिया पर ही होती हैं। वह घरों में आया का काम करके दो जून की रोटी जुटा पाती हैं। इस कहानी में यशपाल ने निःशक्त व्यक्ति के बच्चों की स्थिति को दर्शाया हैं। जब परिवार का कमाने वाला ही निःशक्त हो तो उस परिवार पर क्या गुजरती हैं? प्रसिद्ध लेखक 'विष्णु प्रभाकर' की कहानी 'नेत्रहीन' में खेतिया अंधा हैं परन्तु रंगभूमि के सूरदास की तरह दूसरों पर निर्भर नहीं। वह अपने हौंसलें व साहस से दिव्यांगता को भी पंगु बना देता हैं। इसी तरह 'रांगेय राघव' की कहानी गूंगे में एक 'बहरा–गूंगा' लड़का पात्र हैं जो अनाथ होने के कारण बुआ–फूफा के पास रहता हैं। वे उसको मारते–पीटते हैं और सारा दिन काम करवाते हैं। 'धर्मवीर भारती' की 'गुलकी बन्नो' के कुबड़ के कारण वह समाज में उपेक्षा का पात्र बनी हुई। बच्चे उसे परेशान करते हैं। ऐ कुबड़ी, ऐ कुबड़ी अपना कुबड़ दिखाओ। 'ममता कालिया' की कहानी 'राजू' का निःशक्त पात्र राजू एक आँख से काना होने के कारण उसे खुशी के माहौल में शामिल करने पर अपशकुन मानते हैं। 'फणीश्वरनाथ रेणु' की 'ठेस' कहानी का पात्र 'सिरचरन' तुतलाकर बोलता हैं। परन्तु वह अपने कर्त्तव्य का पक्का हैं। इसलिए कहते है वह मुँहजोर हैं, कामचोर नहीं। 'मैत्रेयीपुष्पा' की 'सहचर' कहानी में बंशी का अपनी पत्नी के प्रति प्रेमभाव स्पष्ट झलकता हैं। ग्रैंग्रीन के कारण पत्नी के पैर कट जाने से, दूसरी शादी न करके अपनी पत्नी की सेवा करता हैं। 'ज्ञान प्रकाश विवेक' की कहानी 'अंधा सूरज' में सूरज जन्म से अंधा हैं। वह अपने परिवार के द्वारा उपेक्षित हैं। जब भी कोई उनके घर आता हैं तो उसे अंधेरी कोठरी में बंद कर दिया जाता हैं।

'ज्ञानप्रकाश विवेक' की दूसरी कहानी 'अंधेरे के खिलाफ' कहानी का मुख्य पात्र अजय हैं जिसके जन्म के पश्चात् उसके माँ–बाप को पता चलता है कि उनका बेटा निःशक्त हैं। डॉक्टर उन्हें सलाह देता हैं कि इसे खत्म कर दो यह हमेशा ऐसा ही रहेगा। परन्तु उसके माँ–बाप उसका हौंसला बढ़ाते हैं और वह दौड़ प्रतियोगिता में प्रथम आता हैं। 'निर्मल वर्मा' का कहानी संग्रह 'परिन्दे' की कहानी में 'तीसरा गवाह' में यह बात स्पष्ट हो चुकी हैं कि निःशक्तता की श्रेणी में

सिर्फ अंगहीन लोग ही नहीं बल्कि विकृत अंग वाले भी आते हैं। इस कहानी के पात्र की विकृत आकृति होने के कारण नीरजा उसके कहने का ढंग व्यंग्य मान लेती हैं। 'ममता कालिया' का कहानी संग्रह 'छुटकारा' की कहानी 'बीमारी' के अन्तर्गत। मुख्य नायिका कुछ बिमारियों से ग्रस्त हैं। इसी से परेशान हो वह अपने भाई–भाभी को बुलाती हैं। उसके भाई–भाभी का बेढंगा व्यवहार उसे और अधिक दुःख पहुँचाता हैं। भाभी उसकी बीमारी को भी शक की दृष्टि से देखती हैं। 'ममता कालिया' की दूसरी कहानी 'दो जरुरी चेहरे' इस कहानी की मुख्य नायिका को अपेंडिक्स हैं। वह अपने भाई की इच्छा के खिलाफ प्रेम–विवाह कर लेती हैं। जब वह अस्पमाल में भर्ती रहती हैं तो वह अपने पति व भाई को साथ–साथ देखकर खुश हो जाती हैं। ऑपरेशन के बाद जब उसे होश आता हैं तो उसके दिमाक में वही 'दो जरुरी चेहरे आते हैं। 'उषा प्रियवंदा' की कहानी 'टूटे हुए' की मुख्य पात्र तंत्री एक निःशक्त बेटे की माँ हैं। वह बेटे की लालसा में पर पुरुष से दैहिक संबंध बनाती हैं। परन्तु वहाँ पर उसे शरीर का सुख तो मिलता हैं परन्तु बेटे की लालसा अधर में ही रह जाती हैं। वह टूटी हुई लगती हैं। इसी प्रकार 'मालती जोशी' की 'स्वयंर' कहानी की मुख्य नायिका' प्रभा' हैं। उसके पिता का निधन हो जाने पर परिवार की जिम्मेदारी उसी पर, परिवार का भार ढ़ोते–ढ़ोते वह बत्तीस साल की हो गई अब उससे कौन शादी करेगा। अब वह दिव्यांग 'गोपालदा' के सामने अपनी शादी का प्रस्ताव रखती हैं। उसने स्वयं के लिए वर ढूँढ लिया इसलिए इसे 'स्वयंवर' कहा हैं।

मनोवैज्ञानिक कहानीकार 'यशपाल' की कहानी 'उतरा नशा' की मुख्य पात्र मैनेजर साहब की पत्नी हैं। मैनेजर साहब अपने पुरुष होने के हक को भूलता नहीं, पत्नी को दबाव में रखकर उसे मानसिक रूप से दिव्यांग बना देता हैं। 'गौरापंत–शिवानी' ने स्वातंत्र्योत्तर कहानियाँ लिखी जिसमें 'मेरी प्रिय कहानियाँ' में 'पुष्पहार' कहानी की मुख्य पात्र दुर्गी हैं। उसका पति सूबेदार फौज से तो सही सलामत लौट आता हैं परन्तु घर में बड़ी कील के कारण वह अपना एक पैर गवाँ देता हैं। अब उसकी पत्नी को पति का कोई दबाव नहीं हैं। वह चरित्रहीन हो जाती हैं। सूबेदार उसे रंगे हाथों पकड़ लेता हैं परन्तु कर कुछ नहीं पाता सिर्फ बेबसी के आँसू बहाता रहता हैं। 'समकालीन' कहानीकारों में 'ममता कालिया' का कहानी संग्रह 'सीट नम्बर छह' की कहानी 'आजादी' में बुजुर्ग व पैर से निःशक्त महिला का चित्रण हैं। वह एक पैर से निःशक्त हैं दूसरे में हमेशा दर्द रहता हैं। परिवार में कोई भी उसकी तरफ ध्यान नहीं देता। स्वतंत्रता के दिन अपनी पोती से कहती हैं 'री मुन्नी थोड़ी सी आजादी लाना पुड़िया में बांध कर'। परन्तु मुन्नी जब घर पहुँचती हैं तब तक दादी को आजादी मिल चुकी होती हैं। 'ममता कालिया' की दूसरी कहानी 'उपलब्धि' में निःशक्त पात्र 'गूंगी शहनाज' हैं जो एक दम्पत्ती के इकलौते बेटे को उनसे बिछड़ जाने पर मिलाती हैं। 'ममता

कालिया' के इसी संग्रह की कहानी 'फर्क नहीं' में मुख्य नायिका कहती हैं। उसके घर में एक किरायेदारनी रहती हैं। जिसके पैरों व पिण्डलियों पर सफेद दाग हैं इसलिए नायिका की माँ उसको उसके पास उठने–बैठने के लिए मना करती हैं। उसकी माँ की नजर में वह छुतहा रोग हैं।

'ममता कालिया' के कहानी संग्रह निर्मोही के अन्तर्गत 'मुन्नी' कहानी की निःशक्त पात्र 'मुन्नी' न जाने कितनी बिमारियों से ग्रस्त हैं। उसकी बिमारियों व अपाहिजपन की जिम्मेदार उसकी दादी हैं वह अंधविश्वास के कारण उसको पोलियों के टीके नहीं लगवाती। अब वह पैर भी घसीट–घसीटकर चलती हैं। 'सुरभि बेहरा' की कहानी 'बिखरे ख्वाब' की मुख्य नायिका 'प्रभा व अक्षय' अपनी पसन्द से शादी करते हैं परन्तु कोई बच्चा पैदा न होने पर अक्षय दूसरी शादी कर लेता हैं। फिर उसको निःशक्त लड़का पैदा होता हैं। जिसकी वजह वह स्वयं मानता हैं कि मुझे मेरे किये का फल मिल गया। 'शिवानी' का कहानी संग्रह अपराजिता में (मेरा भाई) कहानी में अनाथ लड़का सुब्या हैं। जिसका रंग काला, एक आँख भैंगी, ललाट के बीचों–बीच आँख के आकार का बड़ा घाव था। इसी कारण उसे काना–कनुवा कहकर उसकी उपेक्षा की जाती हैं। 'श्रीमती रेखा पालेश्वर' की कहानी 'विकलांग बेटा–बेटी का खोना' इस कहानी में श्रीमती जी के दो बच्चे निःशक्त हैं। डॉक्टरों व दवाइयों से कोई फर्क नहीं होता अंत में दोनों भाई–बहन 22–22 वर्ष की उम्र पाकर संसार से विदा हो जाते हैं। परन्तु माँ–बाप उनको कभी नहीं भूल पाते। 'डॉ. इन्द्र बहादुर' की कहानी 'विमल' का मुख्य पात्र विमल हैं जो एक रेलवे दुर्घटना में अपने परिवार सहित अपनी दोनों टांगें भी गँवा देता हैं। परन्तु वही निःशक्त 'विमल' एक दिन चलती ट्रेन में एक 'इनामी डकैत' को पुलिस के हवाले करवा देता हैं। इस बहादुरी के लिए पुलिस उसकी पीठ थपथपाती हैं।

'प्रदोष मित्र' की कहानी 'आँखें' यह एक अंधे वैज्ञानिक की हैं 'लैब में विस्फोटक' होने से उसकी आँखें चली गई। जब वह प्रत्यारोपण के द्वारा दान की हुई आँखों का ऑपरेशन करवा लेता हैं। तब पति–पत्नी खुश होते हैं परन्तु जब उसकी पत्नी को पता चलता हैं ये आँखें उसके पूर्व–प्रेमी (बलात्कारी) की हैं तो उसे ईर्ष्या होती हैं और यही आँखें अब उन दोनों को अलग कर देती हैं। 'माधुरी मिश्र' की कहानी 'मिलन' में 'कृष्णा चाचा व मीना' की शादी बचपन में हो जाती हैं। मीना की सास उन पति–पत्नी को मिलने नहीं देती तो उसका पति आत्महत्या कर लेता हैं। पति का मतलब जब मीना को समझ आने लगा तब वह भी अपना मानसिक संतुलन खो बैठी। अब उसे सभी पगली कहते हैं। अब उसे कृष्णा चाची कहा जाता हैं। वह शमशान से अपने पति की हड्डियाँ बीनकर लाती हैं और उन्हीं से बतियाती हैं। मेरी मृत्यु पर मुझे वहीं जलाना जहाँ मेरे पति को जलाया गया था। फिर हमारा मिलन होगा, हमारे बच्चें होंगे।

'त्रिभुवन पाठक' की कहानी 'करु बहियां बल आपनो' में निःशक्त पात्र विमलानन्द हैं जो आँखों से अंधा हैं। एक भजन कार्यक्रम में वह भजन गाने आता हैं। वहीं पर प्राचार्य मनीष अपने बचपन के दोस्त मोती की कहानी सुनाता हैं। सुनाते–सुनाते बीच में ही विमलानन्द बोलकर उस कहानी को पूरा करता हैं और कहता हैं आपका वह मोती ही आज विमलानन्द बन गया हैं। उसका भजन सुनकर उसका गला फूलों के हारों से भर गया। तभी प्राचार्य मनीष की आँखें भर आई, दर–दर की ठोकरें खाने वाला मोती आज सभी के हृदय को जीतकर ले गया। 'सुनील कौशिक' की कहानी अंधेरे का सैलाब में कहानी का निःशक्त पात्र सौरभ को स्कूल जाते समय रिक्शा की दुर्घटना में आँखें गँवानी पड़ी। डॉक्टरों ने कई ऑपरेशन किये लेकिन उन्होंने सौरभ की आँखों की रोशनी वापिस आने से मना कर दिया। ऐसे बच्चों का सूर्य उदय होने से पहले ही छिप जाता हैं, बड़ा दुःख होता हैं। 'सत्यराज' की कहानी 'छोटू' एक मानसिक दिव्यांग बच्चे की हैं। जिसका मस्तिष्क पूर्ण रूप से विकसित नहीं हो पाता जैसे–जैसे बड़ा होता हैं अजीब हरकते करता हैं। जिसके कारण पूरे घर का वातावरण सहमा–सहमा सा रहता हैं। 'भीष्म साहनी' की कहानी 'कंठहार' में निःशक्त पात्र 'सुषमा' हैं। जिसके परिवार में सभी उसकी उपेक्षा करते हैं। स्वयं उसकी माँ अपनी बेटी की तरफ ध्यान न देकर, पार्टी में जाने लिए जो हार पहनती हैं उसे बार–बार आइने में देखती हैं। 'श्रीमती रेखा पालेश्वर' की कहानी 'खुली आँखों का दुःख' में शिवाराम पढ़ा–लिखा हैं। वह अपनी डिग्रियों को लेकर घूमता हैं परन्तु नौकरी नहीं मिलती। उसको एक अंधा आदमी मिलता हैं जो सिर्फ संगीत कला के कारण नौकरी पा जाता हैं तो शिवाराम सोचता है। आदमी में गुणों का होना जरुरी हैं। 'डॉ. चन्द्रावती नागेश्वर' की कहानी 'अपाहिज विमला बुलंदियों के शिखर पर' की नायिका पैरों से निःशक्त हैं परन्तु अपने मेहनत के बल पर वह आज बुलन्दियों के शिखर पर हैं। किन्नर वर्ग को भी दिव्यांग माना गया हैं। प्रदीप सौरभ ने पूर्ण रूप से किन्नरों को समर्पित उपन्यास 'तीसरी ताली' व वेश्यावृत्ति को लेकर 'मुन्नी मोबाइल' की रचना की। इसी वर्ग पर महेन्द्र भीष्म ने 'किन्नर गाथा' व निर्मला भुराड़िया ने 'गुलाममण्डी' की रचना की हैं। जिसमें इन लोगों की समस्या पर पूरा ध्यान दिया गया हैं। क्योंकि समाज का इतना बड़ा वर्ग सिर्फ माँगकर खाता हैं। यह देश व समाज के लिए बहुत बड़ी समस्या हैं।

कहानियों के साथ–लघुकथाओं व संस्मरणों में भी दिव्यांग पात्रों की समस्या दर्शायी गई हैं। लघुकथाओं में प्रसिद्ध रत्नकुमार सांभरियाँ की कुछ लघुकथाऐं हैं जिनमें दिव्यांग पात्रों का चित्रण हैं– 'आटे की पुड़िया' इस लघुकथा में एक मजदूरिन हैं जिसका पति निःशक्त हैं, वह स्वयं मजदूरी करके खाने का जुगाड करती हैं उसका डेढ़ वर्षीय बेटा भूख के कारण कुपोषण का शिकार हैं। पति भी भूखा हैं वह स्वयं भी भूखी हैं कुछ पैसों से दुकान से आटे की पुड़ियाँ ले जाती हैं। दूसरी

लघुकथा 'पात्रता' में एक यात्री बस स्टैण्ड पर खड़ा हैं वहाँ पर उसके पास एक के बाद एक भिखारी आता हैं। जिनमें हर पीछे वाली की निःशक्तता उसे अधिक लगती हैं तो उसे समझ नहीं आता कि पात्रता की श्रेणी में पहले किसे रखा जाए? 'बांझ' लघुकथा में रामेख की पहली पत्नी को बच्चें नहीं होते तो दूसरी शादी करता हैं जिससे उसको एक बेटा हो जाता हैं। अब रामेख फूला नहीं समाता अपनी पहली पत्नी पर छिंटाकशी करता हैं। वह अपनी पत्नी को ही निःशक्त मानता हैं। जबकि उसकी पत्नी सोचती हैं यदि मैं भी इसकी दूसरी पत्नी की तरह इसके दोस्तों से होती तो यह मुँह नहीं खोलता।

'प्रतापसिंह सोढ़ी' की लघुकथा 'वसीयत', 'रामकुमार घोटड़' के लघुकथा संग्रह 'भारतीय हिन्दी लघुकथाएँ' में हैं– वसीयत लघुकथा–एक माँ–बेटी की हैं, बेटी जन्म से अंधी हैं माँ उसका हरसंभव इलाज कराना चाहती थी परन्तु डॉक्टरों के मना करने पर हताश होकर उसने आत्महत्या कर ली। अपना हस्तलिखित पत्र वसीयत के रूप में बेटी के नाम से छोड़ जाती हैं। 'इसी लघु कथा संग्रह' में धर्मपाल साहिब की लघुकथा 'पहचान' में एक बुर्जुग पिता का मानसिक संतुलन खो जाने से बेटे–बहू उसे घर से निकाल देते हैं। जब वह पार्क में किसी को बेसुध पड़ा मिलता हैं। तो भला आदमी उसके पते पर घर पहुँचाता हैं परन्तु बहू–बेटे उसे अपनाने से ही मना कर देते हैं। 'डॉ. आशा पुष्प', 'जिजीविषा' में एक अंधे मूँगफली बेचने वाले का वर्णन लेखिका ने आँखों देखा किया हैं। इस प्रकार समकालीन साहित्य की हर विद्या में निःशक्त पात्रों का चित्रण दिखाई पड़ता हैं। उपन्यास, कहानी, लघुकथा, संस्मरण, आत्मकथा आदि अन्य उपलब्ध विधाओं में इनके प्रति संवेदना प्रकट हुई हैं। महादेवी वर्मा का संस्मरण 'अंधा अलोपी' में अलोपी अंधा हैं परन्तु अपने कर्त्तव्य का पक्का हैं वह जिस कार्य के लिए लेखिका के पास आया था उसे बखूबी निभाता हैं फिर चाहे आंधी या तूफान कुछ भी आये वह रुकता नहीं था। 'गुंगिया' भी इस तरह की पात्र हैं जो माँ की ममता में अंधी हैं। माँ से ज्यादा प्यार देकर जिस हुलासी को पालकर उसने बड़ा किया वही हुलासी उसे बिना बताऐ घर छोड़कर चला जाता हैं तो उसके विरह में वह सूख जाती हैं।

एकदम निःशक्त प्रसिद्ध लेखिका 'हेलनकेलर' ने अपनी 'आत्मकथा' में अपना जीवन संघर्ष वर्णित किया हैं।

निष्कर्ष

निःशक्तजन अनुशीलन के अन्तर्गत यह निःशक्तता जन्म से दुर्घटनावश, किसी लम्बी बीमारी या प्राकृतिक आपदा किसी भी कारण हो सकती हैं। इसलिए यह ईश्वर की देन मानकर इन लोगों के प्रति सहानुभूति या दया का भाव रखना चाहिए। साहित्यकार के द्वारा चिंतन–मनन व बार–बार

किया जाने वाला अध्ययन, किसी विषय के सभी अंगों पर सूक्ष्म दृष्टि से विचार करना और फिर अपनी लेखन कला से किसी के बहते आँसू पोंछ दें, किसी के दर्द पर मरहम पट्टी लगा दें, किसी के बुझे दिल में रोशनी जला दें, हार–माने मन को चलने का साहस प्रदान कर दें तब ही हमारा अनुशीलन सार्थक हो सकता हैं।

निःशक्तजन का अर्थ–वह व्यक्ति जिसके किसी अंग में विकार हो, शरीर का कोई अंग ज्यादा या कम हो, यह निःशक्तता, जन्म से भी हो सकती हैं या फिर किसी दुर्घटना, लम्बी बीमारी, अचानक प्राकृतिक आपदा किसी से भी हो सकती हैं, इस वर्ग में विकृत अंग वाला, बांझ औरत और किन्नर वर्ग भी आता हैं। क्योंकि इनमें भी कोई पूर्ण रूप से सामान्य नहीं हैं, जो भी असामान्य हैं वही निःशक्त हैं। फिर इनकी समस्या पर अनुशीलन करना साहित्यकारों का कर्त्तव्य बनता हैं। क्योंकि साहित्य के माध्यम से इनकी पीड़ा उत्पीड़न व उपेक्षा को अपनी लेखनी से वाणी दी जा सकती हैं। इसी कारण साहित्य व समाज का अटूट रिश्ता हैं।

'कथा साहित्य में विकलांग–विमर्श' की भूमिका में डॉ. विनय कुमार पाठक लिखते हैं– स्त्री 'दलित और जनजाति' विमर्श के बाद इक्कीसवीं सदी के प्रथम दशक की दस्तक के रूप में 'विकलांग–विमर्श' स्थापित हो रहा हैं जो शुभलक्षण का संकेत है। दिव्यांग वर्ग की पीड़ा सदियों से काव्य–कला के केन्द्र में रही हैं–अष्टावक्र, मंथरा, अहल्या, ऋषिच्वयन, कुब्जा, धृतराष्ट्र, शकुनि जैसे विभिन्न पात्रों की दुःख व्यथा एवम् जीवन चित्रण प्राचीन साहित्य में किया गया हैं। निःशक्तजन के प्रति सहानुभूति और समानुभूति का भारतीय और लोक भाषाओं में वर्णन हैं।

हमारे समाज में इनके प्रति यह अवधारणा बनी हुई हैं, ये निःशक्तता पूर्व जन्म के पापों का फल हैं, दोषयुक्त व्यक्ति को कोढ़ी हो जाने का शाप देते हैं, ऐसी बात का शास्त्रों में अनेक जगह वर्णन हुआ हैं। स्वयं निःशक्त व्यक्ति भी स्वयं को प्रायश्चित् मानकर कष्ट भोगता हैं। प्राचीनकाल में निःशक्त व्यक्ति को अधिकारों से वंचित कर दिया जाता था।

इसके अतिरिक्त इस अनुशीलन की कुछ विशेषताएँ भी रही हैं जिसके कारण निःशक्तजन को नया जीवन–जीने की प्रेरणा व सम्मान मिलें। आज तक उन्हें समाज में उपेक्षित समझा जाता था परन्तु साहित्य की आवाज ने उन्हें भी अपनी जिन्दगी सशक्त की तरह जीने का अधिकार दिलाया हैं। सरकार इनकी शिक्षा, बीमारी, आर्थिक सहयोग व निःशक्त की रोकथाम के लिए कार्य कर रही हैं। ताकि ये लोग किसी पर निर्भर न रहे। सरकार तो हर सम्भव प्रयास कर रही हैं परन्तु इन तक पहुँचते–पहुँचते वे सुविधाऐं आधी हो जाती है क्योंकि हमारे देश के भ्रष्ट नेता जो सिर्फ

अपने बारे में ही सोचते हैं। वे सरकार द्वारा दी जाने वाली सुविधाओं के पैसों को दिव्यांगजन तक न पहुँचाकर स्वयं हजम कर जाते हैं। ऐसे कर्मचारियों व राजनेताओं पर कार्यवाही होने चाहिए।

प्रसिद्ध विद्वान् व साहित्यकार इनकी समस्या को दूर करने में लगा हुआ हैं। समकालीन साहित्य की हर विधा में इन दिव्यांग पात्रों को ध्यान में रखकर इन पर होने वाले अत्याचार व उपेक्षापूर्ण भाव को दर्शाया हैं। समाज की दृष्टि इन्हें हीन भाव से देखती हैं। इन्हें खुशी के मौके पर अपशकुन मानती हैं। साहित्य ही समाज की आवाज को उठाता हैं, तो इस अनुशीलन को भी केन्द्र में रखकर इसकी परेशानी को दूर करने में जुटा हैं।

≈≈≈≈

सन्दर्भ सूची

1. हिन्दी गद्यमाला एवं कविता कानन साहित्य, आ. शिवपूजन सहाय, पृ.–21
2. विकलांग विमर्श का वैश्विक परिदृश्य, डॉ. सुरेश माहेश्वरी, पृ.–117
3. वही, पृ.–378
4. वही
5. मराठी शब्दकोश खण्ड सं. लक्ष्मण शास्त्री जोशी, पृ.–265
6. विकलांग–विमर्श का वैश्विक परिदृश्य, डॉ. सुरेश माहेश्वरी, पृ.–189
7. वही, पृ.–469
8. कथा–साहित्य में विकलांग–विमर्श, डॉ. विनय कुमार पाठक, पृ.–39
9. वही, पृ.–158
10. विकलांग विमर्श का वैश्विक परिदृश्य, डॉ. सुरेश माहेश्वरी, पृ.–154
11. विकलांग विमर्श, डॉ. विनय कुमार पाठक, पृ.–78
12. कथा–साहित्य के विकलांग–विमर्श, डॉ. विनय कुमार पाठक, पृ.–179
13. विकलांग विमर्श, डॉ. विनय कुमार पाठक, पृ.सं.–98
14. विकलांग विमर्श का वैश्विक परिदृश्य, डॉ. सुरेश माहेश्वरी, पृ.–115, भगवत् गीता 5/18
15. सेवक की अवधारणा और विकलांग चेतना, डॉ. इन्द्र बहादुर सिंह, विकलांग–विमर्श सं. विनयकुमार पाठक, प्रकाशन अखिल भारतीय चेतना परिषद, बिलासपुर द्वितीय संस्करण 2009, पृ.–122
16. विकलांग विमर्श का वैश्विक परिदृश्य, डॉ. सुरेश माहेश्वरी, पृ.–133
17. विकलांग विमर्श, डॉ. विनय कुमार पाठक, पृ.–25
18. विकलांग विमर्श का वैश्विक परिदृश्य, डॉ. सुरेश माहेश्वरी, पृ.–27
19. साहित्यांचल द्विमासिक पत्रिका अंक नवम्बर–दिसम्बर 2017, हमीमा ओ.पी., विकलांग बच्चों के गीत, पृ.–26
20. वही
21. वही, पृ.–27
22. वही
23. वही, प्रेरणा गीत, पृ.–22
24. कथा साहित्य में विकलांग–विमर्श, डॉ. विनय कुमार पाठक, पृ.–19
25. विकलांग विमर्श, डॉ. विनय कुमार पाठक, पृ.–233

26. विकलांग–विमर्श का वैश्विक परिदृश्य, डॉ. सुरेश माहेश्वरी, पृ.–118, ऋग्वेद 1/164/37

27. विकलांग–विमर्श, डॉ. विनय कुमार पाठक, पृ.–122

28. वही, पृ.–140

29. विकलांग विमर्श का वैश्विक परिदृश्य, डॉ. सुरेश माहेश्वरी, पृ.–365

30. मुंशी प्रेमचंद, रंगभूमि, पृ.–160

द्वितीय अध्याय
हिन्दी कहानी में निःशक्त केन्द्रित अनुशीलन

(1) आधुनिक हिन्दी कहानी और निःशक्तजन अनुशीलन

(2) स्वातंत्र्योत्तर कहानी और निःशक्तजन अनुशीलन

(3) समकालीन कहानी और निःशक्तजन अनुशीलन

(4) समकालीन कहानी में नारी निःशक्तता

(5) समकालीन कहानी में निःशक्तता के विविध रूप

(अ) शारीरिक निःशक्तता

(ब) मानसिक निःशक्तता

(स) दृष्टि निःशक्तता

(द) किन्नर वर्ग

निष्कर्ष

द्वितीय – अध्याय

हिन्दी कहानी में निःशक्त केन्द्रित अनुशीलन

हिन्दी साहित्य में कथा एवं कहानी का जन्म मानव की उत्पत्ति तथा सृष्टि के साथ ही हुआ। पुराणों में मानव की उत्पत्ति को भी कथा माना गया हैं। हर कहानी अतीत को व्यक्त करती हैं और भविष्य को कुछ देना चाहती हैं। 'कथा' शब्द 'कथ्य' से बना है जिसका अर्थ हैं 'कहना' यह वह कहानी हैं जिसे बुजुर्ग लोग अपनी आने वाले युवा पीढ़ी को सुनाते हैं। वैदिक साहित्य से लेकर आधुनिक कथा साहित्य तक कथा–कहानियों का प्रसार हम देख रहे हैं। वैदिक युग में भगवान देवता, राक्षस आदि से संबंधित कहानी होती थी।

प्राचीन काल से कहानी कहने तथा सुनने की परम्परा चली आ रही हैं, लेकिन अन्तर इतना हैं कि उस समय मौखिक कथा होती थी। परन्तु धीरे–धीरे उसने लिपि का रूप ले लिया। साहित्य में कथाओं को लिपिबद्ध किया जाने लगा। भारतवर्ष में कथा साहित्य का प्रारम्भ कथासरित्सागर से माना जाता हैं। वृहत् कथा संग्रह भी इसी श्रृंखला की कड़ियाँ हैं। पंचतंत्र, हितोपदेश, सिंहासन–बत्तीसी तथा जातक–कथाएँ इसके उदाहरण हैं। हिन्दी कथा साहित्य का आगमन संस्कृत के बाद हुआ या फिर कहें कि उन्हीं के अनुवाद से हुआ। हिन्दी कथा साहित्य ने अपनी जीवन यात्रा में धरातल के विविध यथार्थ को तय किया हैं। विषयवस्तु की दृष्टि से देखें तो यह पर्याप्त एवं गहन हैं। फिर चाहे उपन्यास हो या कहानी–जनजीवन की विविध छवियाँ अपना भिन्न–भिन्न रूप पाती हैं। धीरें–धीरें कथा साहित्य में भी परिवेशगत बदलाव से उपजे प्रश्न समय के साथ बड़े होते गयें। समय के बदलाव के साथ–साथ कथाकारों की रचनाओं में कुछ नया रूप देखने को मिलता हैं। क्योंकि कथाकार कहानी के माध्यम से जीवन के सभी मार्गों को दिखाता चलता हैं। यह कहानी नये जीवन की गुंजाइश पैदा करते हुए भविष्य के प्रति आँखें खोलती हैं, इसी बदलाव ने समाज को ऊपर उठाने की कोशिश की हैं।

उन्नसवीं शताब्दी से हिन्दी साहित्य में गद्य का आर्विभाव हुआ उसी के साथ–साथ कथा साहित्य का भी विकास हुआ। कहानी शब्द को–कथा, गल्प, आख्यिका आदि शब्दों से भी जाना जाता हैं। साहित्यकार मुंशी प्रेमचंद, जयशंकर प्रसाद, चन्द्रधर शर्मा गुलेरी, विशम्भरनाथ शर्मा कौशिक और गिरिजा कुमार घोष के नाम इस विद्या के लिए विशेष प्रसिद्ध हैं। स्वतंत्रता के बाद इस साहित्य में काफी परिवर्तन हुआ सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, व्यक्तिगत परिस्थितियों पर

कहानी लिखी जाने लगी। प्रेमचन्द जी के पहले भी कथाकारों ने मौलिक कहानियाँ लिखी हैं। यह बात भी स्पष्ट है कि हिन्दी में कहानियों की प्राण–प्रतिष्ठा प्रेमचन्द जी ने ही की। उन्हीं की रचनाओं में हमें कला का परिष्कृत, परिमार्जित और पुष्ट रूप मिलता हैं। कहानियाँ कुछ घटना–प्रधान होती हैं। कुछ चरित्र प्रधान, अधिकांश कहानियों में छोटी–छोटी घटनाओं के द्वारा जीवन की एक झलक दिखाई देती हैं। छोटी कहानियों में जीवन की सत्यता को देख पाते हैं। यही कारण हैं कि प्राचीनकाल से लेकर आज तक कथा साहित्य लोकप्रिय रहा और इसी के द्वारा लोगों में धर्म और नीति के सिद्धान्त प्रचलित हुऐ हैं।

कहानी की कुछ परिभाषाएँ निम्न हैं–

मुंशी प्रेमचन्द के अनुसार – "कहानी वह ध्रुपद की तान हैं, जिसमें गायक महफिल शुरु होते ही अपनी सम्पूर्ण प्रतिभा दिखा देता हैं। एक क्षण में चित्र को इतने माधुर्य से परिपूरित कर देता है, जितना रात भर गाना सुनने से भी नहीं हो सकता हैं।"[1]

बाबू गुलाबराय के अनुसार – "छोटी कहानी एक स्वतःपूर्ण रचना हैं, जिसमें एक तथ्य या प्रभाव को अग्रसर करने वाला व्यक्ति केन्द्रित घटना या कहानी के आवश्यक, परन्तु कुछ अप्रत्याशित ढंग के उत्थान पतन और मोड़ के साथ पात्रों के चरित्र पर प्रकाश ड़ालनें कौतूहलपूर्ण वर्णन करें।"[2]

"कथा शब्द कथ्य से बना हैं, जिसका अर्थ होता हैं– कहना अर्थात् जिसे कहा जाए, सुनाया जाए, रामायण–महाभारत भी कथा–साहित्य हैं जिसमें इतिहास संरक्षित हैं। हर कहानी, हर इतिहास एक कथा हैं, जिसे बुजुर्ग भावी पीढ़ी को सुनाते है। कथा में इतिहास और इतिहास में कथा समाहित हैं, दोनों में कल्पना का कुछ अंश तक समावेश हैं।"[3]

हिन्दी के लेखकों में प्रेमचंद सबसे उत्तम कहानी उसे मानते हैं "जो मनोवैज्ञानिक सत्य पर आधारित हो तथा अनुभूतियाँ रचनाशील भावना में अनुरंजित होकर कहानी बन जाती हैं।"[4]

जयशंकर प्रसाद– "कहानी के सौंदर्य का मूल उसका रस मानते हैं।"[5]

इलाचन्द्र जोशी मानते हैं– "कि जीवन की परिस्थितियों को स्वाभाविक गति प्रदर्शित करने वाली विद्या कहानी हैं।"[6]

हिन्दी के लेखकों में प्रेमचंद पहले व्यक्ति हैं जिन्होंनें अपने तीन लेखों में कहानी के संबंध में विचार व्यक्त किये कहानी (गल्प) एक रचना हैं जिसमें जीवन के किसी एक अंग या किसी मनोभाव को प्रदर्शित करना लेखक का उद्देश्य रहता हैं। उसके चरित्र, उसकी शैली, उसका कथा विन्यास, सब उसी एक भाव को पुष्ट करते हैं। उपन्यास की भाँति उसमें मानव–जीवन का सम्पूर्ण

तथा वृहत् रूप दिखाने का प्रयास नहीं किया जाता। वह ऐसा रमणीय उद्यान नहीं जिसमें भाँति–भाँति के फूल, बेल–बूटे सजे हुए हैं, बल्कि एक गमला हैं जिसमें एक ही पौधे का माधुर्य अपने समुन्नत रूप में दृष्टिगोचर होता हैं।

(1) आधुनिक हिन्दी कहानी और निःशक्तजन अनुशीलन

हिन्दी साहित्य में कहानी–आधुनिक युग की कला हैं। जब से हिन्दी साहित्य में मासिक पत्रों का प्रचार हुआ, तब से आख्यायिकाएँ लिखी जानें लगी। पहले हिन्दी में मौलिक आख्यायिकाएँ नहीं लिखी जाती थी, बंग भाषा या अंग्रेजी भाषा की अच्छी कहानियों के अनुवाद हिन्दी के मासिक पत्रों में प्रकाशित होते थे। कभी–कभी उन कहानियों के आधार पर नई कहानियाँ भी लिखी जाती थी। वैसी कहानियों को कहानी न कहकर छायाचित्र या भावानुवाद कह सकते हैं।

भारतेन्दुकाल और उसके पूर्व जो कहानियाँ लिखी गई, वे पश्चिम ढंग पर आधारित थी जो आधुनिक कहानी से एकदम भिन्न हैं। इंशाअल्ला खाँ की 'रानी केतकी' की कहानी 1805 के लगभग दास्तान शैली की लम्बी कहानी हैं। वास्तविक मानव जीवन से दूर, अतिमानव प्रसंगों से युक्त कथाकृति से हिन्दी कहानी–परम्परा का आरम्भ नहीं कहा जा सकता। प्रारम्भिक कहानियाँ आख्यायिका शैली की हैं जिनमें–पं. माधवप्रसाद मिश्र की 'मन की चंचलता' 1900 ई. के लगभग 'गुलबहार', मास्टर भगवानदास कृत 'प्लेग की चुड़ैल', गिरिजादत्त वाजपेयी 'पंडित और पंडिताइन' आचार्य शुक्ल की 'ग्यारह वर्ष का समय' जयशंकर प्रसाद की 'ग्राम' आदि कहानियाँ प्रेमचन्द पूर्व युग में ही लिखी गई।

सन् 1916 के आसपास प्रेमचन्द और जयशंकर प्रसाद कहानी के क्षेत्र में आए। इसके बाद हिन्दी कहानियों पर बांग्ला व अंग्रेजी का प्रभाव कम हो गया, द्विवेदी युग की 'सरस्वती', 'इन्दु' आदि पत्रिकाओं का हिन्दी कहानी के प्रारम्भिक विकास में बड़ा महत्त्वपूर्ण योगदान हैं। प्रेमचन्द पूर्व युग से लेकर, नयी कहानी, संचेतन कहानी, अकहानी, सहज कहानी, समानान्तर कहानी, समकालीन कहानी के रूप में लगातार चल रही हैं। अब वर्तमान में व्यक्तिगत समस्या पर कहानियाँ लिखी जा रही हैं, क्योंकि भौतिकता की आपाधापी में खून के रिश्तों में दरार आने लगी। ऐसे दौर में हिन्दी के कई कहानीकारों जयशंकर प्रसाद, धर्मवीर भारती, रांगेय–राघव, ममता कालिया, यशपाल, गौरापंत शिवानी, रत्नकुमार सांभरिया, जया जादवानी आदि ने व्यक्तिगत समस्या को ज्यादा ध्यान में रखा हैं और वर्तमान समस्या से अवगत करवा रहे है। व्यक्तिगत समस्या को लेकर विभिन्न विमर्शों की शुरुआत हो चुकी हैं। जैसे दलित विमर्श, स्त्री विमर्श, आदिवासी विमर्श और अब दिव्यांग विमर्श की कहानियाँ आ रही हैं।

कथा साहित्य का नवीन रूप भी 'निःशक्तजन अनुशील' के रूप में उपस्थित हुआ क्योंकि दिव्यांग जन भी समाज का एक हिस्सा हैं। तो उन्हें भी साथ लेकर चलना होगा। इक्कीसवीं सदी के आरम्भ के दशकों से ही दिव्यांग जन को समाज की मुख्यधारा से जोड़नें के लिए कहानी को माध्यम बनाया गया क्योंकि कहानी को पढ़ने में आमजन की रूचि होती हैं। इसलिए निःशक्तजन की संवेदनाओं का भी उचित माध्यम कथा ही होगा। परिणामस्वरूप अनेक साहित्यकार इस वर्ग को अपनी कथा का विषय बनाकर साहित्य रचना कर रहे हैं। साथ ही समीक्षक अपने समय की सूचनाओं और अवधारणों द्वारा टिप्पणी करने लगे हैं।

इसी प्रकार कथा–साहित्य की रचनाऐं की गई जो आज तक विद्यमान हैं, उदाहरण स्वरूप कथा साहित्य में निःशक्तजनों का वर्णन अत्यन्त प्राचीनकाल से होता आया हैं। हमारी पौराणिक कथाओं में कई ऐसे पात्रों का वर्णन हैं। जिनकी बौद्धिकता च अदम्य साहस ने सशक्तों को भी आश्चर्यचकित किया हैं। 'कुब्जा' मथुरा नरेश कंस की सेविका थी, जिसका काम था राजमहल में राजपरिवारों के लिए सौन्दर्य सामग्री जुटाना और उसे राजा–रानी को लगाना। 'कुब्जा' जन्म से कुबड़ी हैं इस वजह से सभी उसे कुब्जा अर्थात् कुबड़ी कहकर मजाक उड़ाते, जिससे वह तंग आ गई। इसलिए वह बहुत दुःखी रहती थी, एक बार श्रीकृष्ण और बलराम मथुरा आ जाते हैं। जब कुब्जा राजा को उबटन लगाने जाती हैं। तभी उसकी भेंट श्रीकृष्ण से होती हैं। तब कृष्ण भगवान उससे कहते हैं–हे सुन्दरी! तुम रोज उस कुरुप राज को उबटन लगाती हो आज हमें भी थोड़ा उबटन लगा दो। कुब्जा अपने प्रति 'सुन्दरी' शब्द सुनकर तिलमिला उठी और कहने लगी मैं कोई सुन्दरी नहीं हूँ। तुम मेरा मजाक उड़ा रहे हों।

श्रीकृष्ण उसको समझाते हुए कहते हैं कि 'तुम्हारे पास जो सुन्दरता हैं, वह किसी के पास नहीं और जब कृष्ण थोड़े से उबटन लगाने के बदले कुब्जा का कुबड़ ठीक करके उसे सच में सुन्दर बना देतें हैं। तब तो कुब्जा स्वयं भी निःशब्द श्रीकृष्ण के चरण पकड़ लेती हैं। क्योंकि उसे कुबड़ेपन से मुक्ति मिल जाती है। यहाँ ऐसी स्त्री का वर्णन हैं जो दूसरों को सुन्दर बनाती हैं परन्तु स्वयं निःशक्तता का जीवन जी रही हैं।

इसी प्रकार रामकथा में ऋषि अष्टावक्र जन्म से ही दिव्यांग थे। उनका शरीर आठ स्थानों से टेढ़ा–मेढ़ा हो गया था। अपनी साधना को आगे बढ़ाते हुए आत्मा में परमात्मा को स्थापित करने में सफल भी हो जाते हैं। वे इतने ज्ञानी हुये कि मिथिला नरेश को ज्ञान प्राप्ति के लिए उनके पास जाना पड़ा था। इसी प्रकार महाभारत में धृतराष्ट्र का नाम आता हैं जो कुरुवंश के ज्येष्ठ पुत्र थे परन्तु आँखों की अपंगता के कारण उन्हें राज्यधिकार से वंचित रखा गया। इसी तरह 'महर्षिच्यवन'

की कथा भी पढ़ने को मिलती हैं। एक बार राजा सर्याति और उनकी पत्नी तथा पुत्री सुकन्या वन विहार के लिए गये। जब राजकुमारी अपनी सहेलियों के साथ खेल रही थी तभी उन्होंने एक ऊँचा टीला देखा जो चींटीयों के द्वारा बनाया गया था। उसमें कुछ चमकीलें दो बिन्दु दिखाई दिये। चंचलतावश राजकुमारी ने कोई नुकीला तिनका उठाया और चमकीलें छेदों में डाल दिया तथा उन्हें अच्छे से घुमा दिया। देखते ही देखते खून की धारा बहनें लगी। वह दौड़कर अपने पिता के पास गई और सारी कहानी बताई। पिता ने सेवकों से सावधानी पूर्वक मिट्टी हटाने की आज्ञा दी। तभी उन्होंने देखा एक ऋषि समाधि अवस्था में बैठा था और कराह रहा हैं। राजा क्षमा याचना माँगने लगा। ऋषिच्यवन उसकी अनेक प्रकार से प्रायश्चित्त भरी याचना सुनकर उन्हें शांत करके अभयदान देते हैं। राजा अपनी पुत्री सुकन्या का विवाह ऋषिच्यवन से कर देते हैं ताकि वह जिंदगी भर अंधे ऋषि की सेवा कर सकें। राजा राजमहल लौट जाता हैं। सुकन्या ऋषि के सामने हाथ जोड़कर बैठ जाती हैं वह स्वयं भी ध्यान में मग्न हैं। जब ऋषि का ध्यान टूटता हैं तो सुकन्या के पतिव्रत–धर्म से प्रसन्न होकर अश्विनी कुमारों को बुलाकर अपनी जीर्णकाया और अंधेपन की चिकित्सा करने को कहते हैं। अश्विनी कुमार औषधियों का एक कुण्ड तैयार कर उसमें ऋषि को स्नान कराते हैं जिससे उनका अंधत्व समाप्त हो जाता हैं। फिर औषधियों के मिश्रण से स्नान करवाकर नवयौवन को प्राप्त करता हैं। फिर सुकन्या के साथ वर्षो गृहस्थी का सुख–भोग करता हैं।

मंथरा भी स्त्री निःशक्तता के लिए प्रसिद्ध हैं। बचपन में सन्निपात के कारण रीढ़ की हड्डी टेढ़ी हो गई दोनों कंधें और गर्दन भी झुक गई। धीरें–धीरें चल पाती थी और कुबड़ भी निकल आया था। इसलिए कुबड़ी मंथरा कहलाने लगी। वह रानी कैकेयी की प्यारी सहेली थी इसलिए उसमें राजकन्याओं के गुण भी थे। वह बहुत तीव्र दिमाक वाली थी परन्तु अंग विकृति के कारण आजीवन कुंवारी बनी रही। उस समय रावण और बाली अयोध्या के कट्टर दुश्मन थे। महर्षि विश्वामित्र ने उसकी वाक्पटूता के कारण उसे मंत्र कोकिला कहा हैं। वे चाहते थे कि राम के राज्याभिषेक के पूर्व ही रावण और बालि मारे जाए। महर्षि विश्वामित्र ने मंथरा को ये पाठ पढ़ाया कि उसने अपनी वाक् पटूता से रानी कैकेयी को काबू में करके राम को वनवास दिलाने में कामयाब हो गई। इससे पता चलता है कि वह अयोध्या की हितैषी थी।

दिव्यांगों के पोषक भगवान शिव – देवों के देव महादेव भगवान शंकर स्वयं निःशक्तों के पोषक हैं। दुनिया की लोकलाज किये बिना अपनी बारात में सभी निःशक्तों को ले जाता हैं। उन्हें दिव्यांगों का मान बढ़ाया तथा समाज में उनकी पहचान बनाई। जबकि उनकी बारात में ब्रह्मा, विष्णु के साथ सभी देवता भी बाराती थे। ये अपने साथ निःशक्तों को भी ले गये–

"लगे संवारने सकल सुर, वाहन विविध विमान।

होहि सगुन मंगल सभुद्र, करहिं अपछरा गान।।"[7]

वैदिक साहित्य व पुराणों के निरन्तर वर्णन से अब हिन्दी साहित्य के आधुनिक काल के कथा साहित्य में दिव्यांग वर्ग की समस्या से अवगत किया जा रहा हैं। आधुनिक हिन्दी साहित्य के लेखकों ने निःशक्त पात्रों के प्रति संवेदना एवं सहानुभूति प्रकट करके पाठकों का ध्यान इस समस्या के प्रति आकृष्ट किया हैं। सिर्फ निःशक्त व्यक्ति ही नहीं पूरा परिवार भी इस समस्या को बोझ मानने लगता हैं। अब साहित्यकारों की जागृत चेतना ने आत्मीय रूप से समस्या का अनुभव किया और साहित्य में प्रकट करने का फैसला लिया। आधुनिककाल में उपन्यास, नाटक, लघुकथा, कहानी आदि सभी विधाओं में निःशक्त अनुशीलन की लहर दौड़ रही हैं। आधुनिक हिन्दी कहानियों में चित्रित निःशक्त पात्र एवं उनके रचनाकार–प्रसिद्ध साहित्यकार 'अज्ञेय' की कहानी 'खितीनबाबू' के पात्र 'खितीनदा' हैं। वे साधारण क्लर्क थे जब लेखक ने उसे पहली बार देखा, तो उसमें कुछ खास दिखाई नहीं दिया। बस इतना की चेचक के दागों से ऊभरा उनका चेहरा, एक आँख नहीं थी और एक बाँह भी गायब। समाज में काने को अपशकुन तो माना ही जाता हैं। यही खितीन बाबू के साथ था। एक आँख बचपन में चेचक के कारण चली गई थी, बाँह पेड़ के गिरने पर टूट गई थी और कटवानी पड़ी। परन्तु उनका स्वभाव इतना हँसमुख और मिलनसार था कि सभी प्रशंसा करते थे। लेखक अपने मित्र के घर उससे मिलता हैं। फिर छह महीने बाद दोबारा उनसे भेंट हुई तो उनकी एक टाँग भी गायब थी। रेलगाड़ी की दुर्घटना में टाँग कट जाने से वे अस्पताल में रहे और बैसाखियों का सहारा लेकर बाहर आये।

जब उनसे मिला तो उनसे हाथ मिलाकर सहानुभूति प्रकट करना चाह रहा था तभी पता चला एक अंग के चले जाने से दूसरा कितना मजबूत हो जाता हैं। अब उन्होंने लेखक से कहा, "देखा आपने, कितना व्यर्थ बोझा आदमी ढ़ोता चलता हैं? मैंने टांसिल कटवाए थे, कोई कमी मालूम नहीं हुई, एपेन्डिक्स कटवाई, कुछ नहीं गया, केवल उनका दर्द गया। भगवान औघड़दानी हैं न, सब कुछ फालतू देते हैं– दो हाथ, दो कान, दो आँखे। अब जीभ तो एक हैं, आप ही बताइए, आपको स्वाद लेने के साधन की कमी मालूम हैं?"[8] लेखक देखते ही रह गये! परन्तु खितीन बाबू की हँसी सच्ची हँसी थी। उनकी आँखों में जीवन का आनन्द था, उसमें कहीं भी अधूरेपन की निःशक्तता की छाया नहीं थी। जब लेखक ने उसको तीसरी बार देखा, तो वे दूसरी बाँह भी खो चुके थे। मालूम हुआ कि रिक्शे से उतरते समय गिर गये थे, कोहनी टूट गई थी और घाव में संक्रमण फैल गया, जिससे कोहनी से कुछ ऊपर से बाँह काट दी गई।

दोनों हाथ नहीं, दोनों टाँगें नहीं, एक आँख नहीं। टांसिल, एपेन्डिक्स वगैरह तो, जैसा वे स्वयं कहते, रूंगे में चढ़ा दी जा सकती हैं। उस दिन के बाद मैंने उन्हें फिर नहीं देखा। टहलने ले जाते समय उनकी पहिएदार कुर्सी एक मोटर ठेले से टकरा गई थी, वे नीचे आ गए और गाड़ी का पहिया उनके कन्धे के ऊपर से चला गया। बाँह अलग की गई और कन्धे की पट्टी हुई, ऑपरेशन के बाद उन्हें होश आया और उन्होंने पूछा कि कन्धा हैं या नहीं? फिर कहा। मालूम हो गया इसके बिना भी काम चल सकता हैं। लेकिन अबकी बार चलना अधिक देर नहीं रहा अस्पताल से निकले शरीर में जहर फैल गया और भोंर में उनकी मृत्यु हो गई।

खितीन बाबू–एक साधारण क्लर्क–साधारण दुर्घटना–मृत्यु हो गई। लेकिन क्या सचमुच? अब भी उन्हें देख सकता हूँ। लेखक का उद्देश्य है कि अंगों से निःशक्त होने पर मनुष्य असहाय नहीं होता। मन से दिव्यांग मानने पर होता हैं इसलिए कहते है कि मानसिकता में निःशक्ता को हावी न होने दें।

"खुदी को कर बुलन्द इतना, कि हर तकदीर से पहले।
खुदा बन्दे से स्वयं पूछे, बता तेरी रजा क्या है।"[9]

निःशक्त अगर स्वयं को पहचान ले तो वह सारी सफलताओं को हासिल कर सकता हैं। हिन्दी कथा साहित्य में ये कहानियाँ नये विषय और भाव–बोध को लेकर अवतरित हुई हैं अतः इनका महत्त्व किसी भी प्रकार कमतर करके नहीं आंका जा सकता।

'नेत्रहीन' कहानी 'विष्णु प्रभाकर' द्वारा रचित हैं। इस कहानी का निःशक्त पात्र खेतिया जो आँखों से अंधा हैं। लेखक की भेंट उसके मामा के घर हिसार हुई थी। उन्होंने खेतिया को पहली बार 1924 में देखा और अन्तिम बार 1963 । मामा के सरकारी दफ्तर में पंखा–कुली का काम खेतिया करता था। जब तक वहाँ बिजली नहीं पहुँची थी, कपड़ें के झालरदार लम्बे–लम्बे पंखे छत में लटकाए जाते थे और उनमें बंधी हुई लम्बी डोरिया दीवार की सुराख में होकर बन्द दरवाजों के बाहर लटकती रहती थी। दरवाजे इसलिए बन्द किये जाते थे कि गर्म हवा अन्दर न आ सकें। माना जाता हैं कि हिसार का तापमान बहुत अधिक होता हैं। इसी लू में स्वेद–स्नात वे पंखा–कुली अमीर वर्ग के लोगों का पसीना सुखाते थे। खेतिया नेत्रहीन था फिर भी भरी दुपहरी में पंखा खींचते–खींचते उसके नेत्र मुंद जाते थे। यदि पंखा रुक जाता तो अमीर लोग तमतमाते। पंखा–करते–करते कुलियों को भी पसीना आ जाता, पसीना कहीं जाता नहीं था। अन्दर सूखता तो बाहर आ जाता। एक को कष्ट पहुँचाकर ही दूसरा ऐश–आराम करता हैं। खेतिया बड़े बाबू के घर भी काम करता, पानी भरना, बर्तन माँजना, झाड़ू लगाना इसके अलावा बड़े–बड़े मटके उठाकर

दूर–दूर से पानी लाना। उन कुओं में पानी बहुत गहरा था। मीठे कुएँ बहुत कम थे, इसलिए दूर–दूर पर थे, वह हर रोज अपने समय पर पानी लाता था। आँधी, बारिश कुछ भी हो परन्तु वह अपना काम नियम से करता था। कन्धें पर बड़ा–सा मटका टिकाए, एक हाथ में उसे संभाले, दूसरा हाथ एक लड़के के कन्धें पर रखें, वह तेज गति से झूमता हुआ आता। लड़के की दृष्टि भटक सकती थी परन्तु, खेतिया की दृष्टि अन्तर्मुखी थी, मात्र निशानें पर केन्द्रित। वह ठीक स्थान से घड़ा उठाता और अपने स्थान पर ही लाकर रखता आँखों वाले घड़े फोड़ देते थे परन्तु खेतिया ने ऐसी गलती कभी नहीं की।

वह सुबह बहुत जल्दी आ जाता था। एक फटी सी धोती, मैला–कुचला कुर्ता सिर पर लिपटा हुआ एक छोटा सा साफा, एक हाथ में लकड़ी और दूसरा हाथ लड़के के कंधे पर, मुँह को ऊपर उठाये, सदा ईश्वर को देखता हुआ। द्वार पर आकर उपस्थिति देता, लेखक यह सब देखता कि इसके आँखें नहीं हैं फिर भी यह सब कैसे देख लेता हैं। वह कभी दीवार को टटोलता, कभी हवा में हाथ फैलाकर रास्ते को सूंघता। लेखक ने चंचलतावश पूछ लिया खेतिया तुम तो अंधे हो फिर कैसे देख लेते हो? उसने आँखों को आकाश की ओर उठाकर कहा मैं नहीं देखता भगवान देखता हैं, क्या तुम भगवान को देख लेते हो? "भगवान को देखने के लिए आँखें नहीं, मन चाहिए।"[10] मैं सोचता रहा भगवान इतना कृपालू हैं तो उन्हें आँखें क्यों नहीं दी। खेतिया कह देता हैं यदि भगवान की माया को हम जान लें तो फिर भगवान रहे कहाँ?

अब मशीन का युग आ गया बिजली आ गई, नौकरों का पंखा वाला धंधा बंद हो गया बेरोजगार हो गये। अब नौकरों को तो बाबू जी ने और कामों में लगा लिया परन्तु खेतिया न तो चौकीदारी कर सकता था, न चपरासी का काम और न ही बच्चें उसको सौंप सकते थे। बड़े बाबू ने कहा तुम घर पर काम करते रहो, जो उचित होगा तुम्हें मिल जाएगा। खेतिया शायद घर पर काम करने का एक भी पैसा न लेता था, उस समय कोई नहीं लेता था। फिर उन्हें पेंशन मिल गई। खेतिया तब भी उनके घर आता था। 21–22 वर्ष तक पेंश्न ली। इतने दिनों पानी भरता रहा खाट बुनता रहा। सन् 1963 में जब बड़े बाबू नहीं रहे तो रो रहे थे। उसकी अंधेरी दुनिया का वह पचास वर्ष का साथी जुदा हो गया था। लगभग आधी जिंदगी साथ रहे। जब भी हिसार जाता खेतिया वैसा ही नजर आता। मेरी आवाज सुनकर उसके चेहरे पर रौनक आ जाती। वही कपड़ें, वही चाल, वही आकाश की गहराइयों में झाँकना। दीवार टटोलना या हवा में हाथ फैंलाकर राह ढूँढ़ना।

बचपन में उसे देखकर जो करुणा मेरे मन में जागती थी, उसके स्थान पर अब धीरें–धीरें, आदर और श्रद्धा का थोड़ा–थोड़ा भाव जागता आ रहा था। एक दो बार कुछ देंने को हाथ उठा

परन्तु रुक गया कि मेरी करुणा उसके इस विजय–गर्व को खण्डित नहीं कर देगी? मुझे लगा उसे कुछ देने की आवश्यकता नहीं बल्कि प्रेरणा लेने की जरुरत हैं। निःशक्त होकर भी अपने कर्त्तव्य का पालन कर रहा हैं। प्रभाकर जी ने दिव्यांग खेतिया की कर्मशीलता, साहस एवं दृढ़ निश्चयी होकर जीवन को व्यर्थ न गंवाया बल्कि निःशक्तों को प्रेरणा दी कि वो सभी अपने अन्दर ऐसी तड़प पैदा करे जिसे चाहने की हर संभव कोशिश हो–

"तड़प न हो तो बया एक छोटी सी चिड़ियाँ।
तड़प के हाथों ही वह घोंसला बनाती है।।
प्यास इल्म की, तामीर की, तरक्की की।
प्यास वो है जो रास्ता दिखाती है।"[11]

रांगेय–राघव की कहानी 'गूंगें' जिसका पात्र एक गूंगा–बहरा लड़का हैं, जिसे एक माँ का हृदय रखने वाली स्त्री दया की भावना से अपने घर नौकर रख लेती हैं। अब गूंगा न तो बोलता और न ही सुनता, पर काम करता रहता हैं। वह काम छोड़कर भाग भी जाता हैं, जन्म से बहरा होने के कारण वह गूंगा हैं। इतना ही नहीं अनाथ भी है, उसके बुआ–फूफा ने उसे पाला था इसकी कीमत वो पीट–पीटकर चुका लेते हैं। वे चाहते हैं गूंगा बाजार में नौकर का काम करे, बारह–चौदह आने कमाकर लाये। इसी मार–पीट व बुआ–फूफा के सपनों को पूर्ण न कर पाने के कारण गूंगा अब घर नहीं जाता। गूंगे को चमेली अपने घर पर नौकर रख लेती हैं। एक दिन चोरी का शक होने पर वह भी उसे धक्कें मारकर घर से बाहर कर देती हैं। "मक्कार, बदमाश! पहले कहता था–भीख नहीं मांगता हैं, रोज–रोज भाग जाता हैं, पत्ते चाटने की आदत पड़ गई हैं। कुत्ते की दुम क्या कभी सीधी होगी? नहीं, नहीं रखना है हमें, जा तू इसी वक्त निकल जा।"[12] यहाँ पर चमेली की मनुष्यता प्रकट होती हं कि वह दीन–हीन के प्रति कितनी संवेदनशील हैं। लेखक का उद्देश्य है कि ये गूंगे...अनेक हो, संसार में भिन्न–भिन्न रूपों में छा गए हैं, जो कहना चाहते हैं, पर कह नहीं पाते। इनके हृदय को कभी न्याय नहीं मिला। क्योंकि वे बोलने में असमर्थ हैं।

इस प्रकार दीन–हीन, बेबस और लाचार को भी अपने स्वार्थ में ही फंसाते हैं। हर इंसान अपने–अपने स्वार्थ के जाले बुनता हैं। अब वे ये नहीं देखते की इस जाले में फंसने वाला कौन हैं? उनकी तरफ से गूंगा, बहरा, अंधा, काना, लंगड़ा जो भी हो।

इसी तरह रांगेय–राघव की कहानी 'पंच–परमेश्वर' का निःशक्त पात्र 'कन्हाई काना' हैं। यह गाँव की नहीं शहर की कहानी हैं। शहर में निम्नवर्ग के लोग आर्थिक अभावों में दरिद्रता के प्रकोप में नरक का जीवन जीते हैं। ऊपर से यदि कोई निःशक्त या छिन्न–भिन्न अंग हो तो जीवन

और नीरस तथा सूना–सूना हो जाता है। 'कन्हाई' भी इसका प्रत्यक्ष उदाहरण हैं। 'कन्हाई' की निःशक्तता उसे एक वर्ग के दायरे में खड़ा करती हैं, लेकिन हम वर्ग नहीं देखते, वर्ग में मानव देखते है, वर्गों का महत्त्व हमारे लिए इसलिए है कि मानव वर्गों में हैं–एक समाजशास्त्री ने कहा था, पंचमेश्वर में जनता का मजाक उड़या गया हैं, न कि काने कन्हाई का। अर्थात् इस कहानी में एक निःशक्त पात्र के माध्यम से कमजोर वर्ग को दिखाया हैं।

'यशपाल' का कहानी संग्रह 'अभिशप्त' की कहानी 'पुनिया की होली' इस कहानी की मुख्य नायिका पुनिया हैं। उसका पति 'धनकू' निःशक्त हैं। अब पुनिया ही मेहनत मजदूरी करके बच्चों को पालती थी। वह एक साहूकार के घर में उनके बच्चें की 'आया' बनकर उसे संभालती हैं। 'धनकू' एक वर्ष से आतशिक के जोर के कारण हाथ–पैरों से निःशक्त हो जाता हैं। अब इस कहानी में घर का मुखिया निःशक्त हैं, बीवी कमाती हैं, तो वह अपनी कमाई की धौंस भी जमाती हैं परन्तु अपनी मर्दानगी का अपमान तो धनकू भी सहन नहीं कर सकता। वह जोरू की गुलामी न करके उलटा उसे ही कहता है, दस रूपया महीने भर के कमाके उसे मोल थोड़े ही खरीद लेगी।

होली के दिन बच्चें पूरी खाने व रंग लाने की जिद्द करते हैं तो वह माँ की ममता से घिर जाती हैं। वह चोरी तक कर लेती है, जब पुनिया चोरी के लिए पकड़ी जाती है तो मोहल्लें वाले कहते हैं। बड़ी अकड़ चलती थी, अब पुलिस के हाथ आ गई सारी निकल जाएगी। 'धनकू' ऐसा पात्र है जो निःशक्त होने पर भी यह नहीं भूलता की हमारा देश पुरुष प्रधान हैं। इसी कारण कहता है, "दस रूपया महीनाभर क्या कमा लाती है जैसे मर्द खरीद लिया हैं। ऐसी मुँहजोर हो रही हैं कि बात–बात पर लड़ती हैं। धनकू के लिए अपनी मर्दानगी का अपमान सहन करना असम्भव सा हो जाता है, तब वह थप्पड़ से लात–घूंसे से मर्द का अधिकार जमा लेता हैं।"[13] परन्तु फिर भी पुनिया भारतीय पत्नी होने के नाते अपना कर्त्तव्य नहीं भूलती। जब 'धनकू' को पैरों में तेज पीड़ा होती है तो वह दुकानदार से उधार तेल लाकर पति के पैरों की मालिश भी करती हैं। जबकि दुकानदार उसे झिड़क देता है, उधार देने से मना करता हैं। लाखों मिन्नतें करने पर ही उसे तेल मिलता हैं।

अतः आधुनिक कहानी साहित्य की वह विधा है जो गद्य में और छोटे आकार में लिखी जाती है। यह मानव–जीवन या जगत् की किसी घटना, वस्तु, स्थिति मनोभाव या विचार को लेकर अपने उत्थान को ऐसे बनाये कि पाठक उसे पढ़कर साधारण हुए बिना न रह सकें। इसलिए कहा जाता हैं। कहानी गद्य और लघु आकार में होने वाली वह रचना है जिसमें एक मूल संवेदना हो और उस संवेदना की तार्किक प्रभावन्विति हो। पाठक जब कहानी को एक बार पढ़ना आरम्भ करे तो उसे समाप्त करके ही छोड़े, यही कहानी की मुख्य ताकत हैं।

(2) स्वातंत्र्योत्तर कहानी और निःशक्तजन अनुशीलन

स्वतंत्रता मिलने के बाद हिन्दी कहानी ने दूसरी महत्त्वपूर्ण करवट ली या समय के अनुसार उसे लेनी पड़ी। क्योंकि आजादी से पहले जिसकी कल्पना की गई थी वैसे समाज का निर्माण संभव नहीं लग रहा था। दूसरे विश्व युद्ध विभाजन की त्रासदी और समानता के सपनों के बिखरते परिदृश्य ने देश की जनता का मोहभंग कर दिया था। परिणाम स्वरूप नई कहानी के कहानीकारों ने अपनी–अपनी संवेदनाओं की नई जमीनें तलाशी। अपनी भाषा और सामाजिक यथार्थ के अनुसार नई रचना की खोज की। एकाध कहानियाँ तो सभी पत्रिकाओं में छपती थी परन्तु कहानी विधा में बाढ़ लाने वाली तो 'कहानी' नामक पत्रिका हुई। जिसके यशस्वी संपादक प्रेमचंद के ज्येष्ठ बेटे श्रीपतराय थे।

स्वातंत्र्योत्तर कहानी मुख्य रूप से स्वतंत्रता के बाद बदले परिवेश की कहानी हैं। इस परिवेश में मानव की मानसिकता में बदलाव आने लगा। अब कहानीकार जीवन के कटु और कठोर सत्य से परिचित होने लगा। आम आदमी की भूख, बेरोजगारी, सामाजिक उपेक्षा कहानीकार के हृदय को स्पर्श करने लगा। यह काल समाज का यथार्थ वर्णन करता है। समाज का गरीब वर्ग, शोषित वर्ग, उपेक्षित वर्ग को कहानी का मुख्य पात्र बनाया गया। समाज की समस्या को केन्द्र बनाकर रचनाएँ की गई है। इन समस्याओं में व्यक्तिगत रूप से स्त्रीविमर्श, दलित विमर्श के बाद कहानीकारों ने दिव्यांग विमर्श को केन्द्र बनाया है। 1950 से लेकर 1980 तक की कहानियों को स्वातंत्र्योत्तर कहानी या नई कहानी कहा जाता हैं। "आठवें दशक की कहानियों का ढ़ाँचा पश्चिमी कहानियों की अनुकृति और प्रतिकृति नहीं हैं, कहानी का भारतीय ढ़ाँचा उभरकर सामने आया।"[14] अनेक हिन्दी कहानियों में दिव्यांग पात्रों का चित्रण हुआ है। वे कहानी तथा कहानीकार निम्न है–

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कहानियों में 'धर्मवीर भारती' ने अपनी प्रसिद्ध कहानी 'गुलकी बन्नों' में कहानी की मुख्य पात्र 'गुलकी' की निःशक्तता उसका कुबड़ापन हैं। यही कुबड़ापन उसके अन्दर हीन भावना को पैदा भी करता हैं। वह इसी की वजह से समाज से पराजित होकर टूट जाती हैं। गुलकी सिर्फ बच्चों के मजाक का पात्र बची हैं। वे उससे मसखरी करते हैं। क्योंकि समाज में इनके प्रति संवेदनशीलता तो बची ही नहीं हैं। कहानी का एक पात्र मेवा कहता है, "ए कुबड़ी, ए कुबड़ी अपना कुबड़ दिखाओं। और एक मुट्ठी धूल उसकी पीठ पर छोड़कर भाग जाता हैं।"[15] अब बच्चों के द्वारा बार–बार सतायी जाने वाली कुबड़ी उनकी इन आदतों से परेशान हो गई। वह सिर्फ बच्चों के द्वारा ही नहीं सतायी गई हैं बल्कि अपने, पति, समाज, परिवार, भाग्य व भगवान को भी इसका दोषी मानती है अर्थात् सभी के द्वारा सतायी गई हैं। गुलकी की बुआ भी उसे खरी–खोटी

सुनाती हुई कहती है, "ऐ हां! बच्चें हैं। तु हूँ तो दूध पिबत बची हो। कह दिया जबान मत लड़ाओं हमसे हाँ दुनियाँ भर के अंधे कोढ़ी बटुरे रहत है। चलो उठाओं अपनी दुकान हियां से तुम्हें।"[16] भारती जी ने गुलकी में समाज का संवेदनहीन व्यवहार को दृष्टिगत किया हैं। यह कहानी मानवीय संवेदना को अर्थ देती हैं।

इसी प्रकार 'ममता कालिया' की कहानी 'राजू' का पात्र 'राजू' एक आँख से काना हैं। एक आँख न होने के कारण ही इसे निःशक्तता की श्रेणी में खड़ा कर देता हैं। समाज की यही विडम्बना है कि वे इसे सहानुभूति देने के बजाय अपशकुन मानते हैं। खुशी के समय पर इन्हें अशुभ व अपशकुनिया कहकर इनकी अवहेलना की जाती हैं। राजू की माँ स्वयं विधवा हैं। इसलिए समाज शुभ मौके पर उसकी माँ को तो अपशकुन मानते ही है तथा ऊपर से अपने इस निःशक्त बेटे को साथ लेकर जाना उसे और भी तिरस्कृत कर देता हैं। एक बार वह अपने बेटे के साथ एक वैवाहिक कार्यक्रम में पहुँचती है तब स्वयं उसकी बहन कहती है, "भग्गी ये (कजहा) काना कपूत घर में छोड़कर आती तो क्या तेरा एक दिन में दूध सूख जाता, विवाह के घर में लाकर खड़ा कर दिया सामने।"[17]

उसके काने बेटे राजू को इस बात का अहसास ही नहीं हैं कि उसकी माँ के साथ ऐसा व्यवहार क्यों किया जा रहा हैं। वह अनजान बालक बारात देखने के लिए अपनी माँ से जिद्द करता हैं, तब उसकी माँ झल्लाकर कहती है, "निकलकर देख तू कोठरी के बाहर, तेरी हड्डी–पसली न तोड़ दूँ। मरता भी नहीं अपशकुनिया कहीं का।"[18] राजू को अपशकुनिया का भी अर्थ मालूम नहीं है, जबकि वह अपने बारे में लोगों से बार–बार यही शब्द सुनता हैं। लेकिन जब उसने यह शब्द आज अपनी माँ के मुँह से सुना तो उसकी फूटी आँख में भी आँसू आ गये। अब उसके दिल को इतनी गहरी चोट लगती है कि अनुमान लगाना भी असम्भव हैं।

'फणीश्वरनाथ रेणु' की कहानी 'ठेस' का निःशक्त पात्र 'सिरचरन' हैं। जो तुतलाकर बोलता हैं। इसी तुतलाहट के कारण उसे निःशक्त माना जा रहा हैं। कहा जाता है कि वह कारीगरी का काम करता है वह मुँह जोर हैं। कामचोर नहीं अर्थात् वह निःशक्त है परन्तु स्वयं अपनी मेहनत के बल पर कमाता है और खाता है। वह यह बात स्वीकार नहीं करता कि उसकी निःशक्तता के बहाने वह माँगकर खाये।

'मैत्रेयी पुष्पा' की कहानी 'सहचर' के अनपढ़ बंशी की पत्नी को ग्रैंगीन हो जाने के कारण लंगड़ी हो गई हैं अब इसे इसका इलाज करवाना पड़ेगा। दूसरा विवाह करने में उसका बिल्कुल भी विश्वास नहीं हैं। यही उनका पति–पत्नी का अटूट संबंध प्रकट करता हैं। पैर कट जाने से पत्नी

के निःशक्त हो जाने से इलाज करवाने की दृढ़ इच्छा, पत्नी के प्रति समर्पण और सद्भाव जहाँ दिव्यांगता के प्रति उपेक्षा के भाव से ऊपर उठाया गया हैं। यहाँ लेखिका ने दिव्यांगों के प्रति समाज में संवेदनशीलता को बनाये रखने का प्रयास किया हैं। साथ ही यह भी रेखांकित किया कि उन्हें भी सामान्य मनुष्य की तरह समझना चाहिये एवं उनके साथ प्रेम–पूर्वक व्यवहार करें ताकि वे समाज से अलग न रहे। आज एक ऐसा दिन है कौन यहाँ गूंगा नहीं है। किसका ह्रदय समाज, राष्ट्र, धर्म और व्यक्ति के प्रति विद्वेष से, घृणा से नहीं छटपटाता, किन्तु फिर भी कृत्रिम सुख की छलना अपने जाल में उसे नहीं फंसा देती क्योंकि वह स्नेह व समानता चाहता हैं।

'ज्ञान प्रकाश विवेक' की कहानी 'अंधा सूरज'। यहाँ सूरज अपनों के द्वारा ही उपेक्षित हैं। हम ये बात जानते है कि हर इंसान किसी समाज में ही जन्म लेता हैं और समाज में वह परिवार में, तो यदि उसे परिवार वाले सम्मान, इज्जत देंगे तभी बाहर वालों से अपेक्षा कर सकते हैं। वहीं इस कहानी में हुआ है। सूरज का नाम उसके गुणों के ठीक विपरीत हैं। सूरज के माता–पिता को दो लड़के पैदा हुए जिनमें सूरज और अजय दोनों भाइयों के नाम रखे गए। उसके पिता पुलिस विभाग में डी.एस.पी. हैं। माता सुधा ने जिसका नाम सूरज रखा था वह जन्म से ही अंधा था। माँ की ममता सभी बच्चों को समान हक देती हैं। वह उसमें निःशक्तता नहीं देखती। सूरज जन्म से अंधा है इसलिए उसके सपने अधूरे रह जाते हैं। वह कुछ भी देख नहीं पाता जन्मजात अंधा हैं। ज्ञान प्रकाशन विवेक ने कहानियों में पारिवारिक जीवन परिलक्षित किया हैं। अब माँ भी अपने लड़के अजय को ही पसंद करती हैं। "सूरज अब चार साल का हो गया, यह उसकी खेलने–कूदने की उम्र है परन्तु परिस्थितिवश उसे एक टापू में पड़ा रहना पड़ता हैं। वह भागना चाहता है, परन्तु रास्ते अंजान है, वह खेलना चाहता है किन्तु उसकी आँखों ने आँगन छिन लिया।"[19] यही दृष्टिहीन अब उपेक्षा का पात्र बन गया। जब उसका परिवार कहीं शादी पार्टी में जाता है तो सूरज को जंजीरों से बांधकर एक कोठरी में बंद कर दिया जाता हैं। वह बहुत दुःखी होता हैं। परन्तु उसके माता–पिता उसके सपनों व जिन्दगी की तरफ ध्यान न देकर उलटा ये सोचते है कि यदि वह हमारे साथ जाएगा तो हमारी बेइज्जती हो जाएगी। पिता दीवाकर सोचते हैं कि उसे साथ देखकर, लोगों के मन में प्रश्न आयेगा कि डॉ. एस.पी. दिवाकर का लड़का अंधा हैं। अतः अपनी शान को बनाये रखने के लिए, वह पिता उसे कोठरी में बंद करके जाना उचित समझता हैं।

इतना ही नहीं जब उनके घर कोई मेहमान आता हैं, तब भी उसकी माँ सूरज को दूसरे कमरे में बंद कर देती थी, तब उसकी माँ की ममता पत्थर हो जाती थी। एक दिन उनके घर पर एस.पी.साहब खाना–खाने के लिए आए और अचानक कमरा बंद न होने के कारण सूरज घिसट–घिसटकर बाहर आ गया। उसके पिता ने उसे डाँटना–फटकारना शुरु कर दिया। इस

सबको देखकर घर आये मेहमान बहुत दुःखी हुये और उन्होंने उसके पिता को समझाते हुए कहा– "दीवाकर ईश्वर ने उसको दृष्टिहीन किया है और तुम हो जो जान बूझकर अंधे बने हुए हो। तुम उसे अपराधियों की तरह यातना दें रहें हो..........वह दृष्टिहीन हैं, परन्तु अपराधी नहीं...........वह तुम्हारा अपना पुत्र है, इस बात से तुम मुँह नहीं मोड़ सकते। दीवाकर, पुलिसवर्दी के नीचे एक बाप का दिल भी जिंदा रहता हैं।"[20]

अपनी प्रतिष्ठा और अपनी सुविधा के कारण परिवार में माता–पिता भी संवेदनाहीन होते जा रहे हैं। इसलिए यह घोर कलयुग हैं। अपने ही अपनो से दूर हो रहे हैं। जबकि निःशक्त पैदा होने वाले की इसमें क्या गलती हैं। भगवान ने उसे बनाया हैं।

विवेक जी निःशक्त बालकों के प्रति ज्यादा ही संवेदनशील हैं। इन्हीं को लेकर उनकी दूसरी कहानी 'अंधेरे के खिलाफ' में निःशक्त बालक अजय की दुःख भरी कहानी हैं। जन्म के पश्चात् उसके माँ–बाप को पता चलता है कि उनका बच्चा अपंग हैं। डॉक्टर उसके माँ–बाप को सलाह देते हैं कि इसे खत्म कर देना तुम्हारे लिए अच्छा रहेगा। क्योंकि ये जैसे ही बड़ा होगा स्वयं भी हीनभावना से ग्रस्त रहेगा और तुम्हें भी जिन्दगी भर बोझा ढ़ोना पड़ेगा। तो उसकी माँ की ममता चिल्लाकर कहती है, "यह जीवित मांस–पिण्ड नहीं, मेरा बेटा है......नौ माह तक मैंने अपने पेट में रखा इसे, अब यह दिव्यांग पैदा हुआ तो इसकी हत्याकर दूँ?..इसलिए इसे 'फिनिश' कर दूँ कि मैं पढ़ी–लिखी हूँ?....डॉक्टर साहब पढ़ी–लिखी माँ की ममता पत्थर नहीं हो जाती।"[21] पिता ने निश्चयकर लिया है कि वह अपने बेटे को अंधेरे के विरुद्ध लड़ना सिखायेगा। अजय के बड़ा होने पर, वे उसके लिए फुटबॉल लेकर आए। वह जिस पैर से ठीक है, उस पाँव से फुटबॉल खेलेगा, वे उसका हौंसला बढ़ाऐंगे। परिणामस्वरूप अजय ने पढ़ाई में इतनी मेहनत की कि वह कक्षा में प्रथम स्थान पर आया। वह दौड़ प्रतियोगिता में भी प्रथम स्थान पर रहा, जबकि वह बैसाखियों के सहारे दौड़ रहा था। स्कूल में उसे 'बेस्ट एथलीट ऑफ द इयर' से पुरस्कृत किया गया। कहानीकार का उद्‌देश्य यह हैं कि समाज का कर्त्तव्य है कि वे इस तरह के निःशक्त बालकों के प्रति उपेक्षा का भाव न रखे यदि उन्हें धैर्य व विश्वास प्रदान किया जाए तो कामयाबी उनके पीछे दौड़ पड़ेगी। लेखक ने निःशक्तजन की स्थिति को बड़े ही मार्मिक ढंग से प्रस्तुत किया हैं। उनके कहानी कहने का ढंग इतना सरल व रोचक है कि कहानी में प्राण डाल देता हैं।

विवेक जी अत्यन्त कोमल हृदय के हैं। 'अंधा सूरज' कहानी में 'सुधा' जो गर्भवती हैं, के मनोभावों को चित्रित करते हुए गर्भवती की मनोदशा का सुन्दर चित्रण किया हैं। यह वर्णन मनोवैज्ञानिक धरातल पर हुआ हैं। यथा– "नौ मास तक तारीखों के जंगल में सुधा भटकती रही।

सोच की सिलाइयों पर कल्पनाओं को बुनते–बुनते उसकी दृष्टि ममतामयी हो जाती है दीवार पर टंगे मरफी रेडियों के कैलेण्डर में बच्चे का मासूम चित्र देखती है तो उसके मन में विचित्र सी अनुभूति उठती हैं। हाँ 'ऐसा ही होगा' बार–बार अपने मन को आश्वस्त करती।"[22] जब पुत्र पैदा हुआ तो अंधा था। सुधा ने उसका नाम सूरज रखा। उसे अंधेपन से मुक्ति दिलाने हेतु डॉक्टरी प्रयास के साथ साधु–सन्न्यासियों के भी चक्कर लगाये। कोई भी माँ अपने बच्चे के भविष्य के लिए सब प्रकार के प्रयत्न करती हैं। "दर पर कोई फकीर, कोई साधु या संन्यासी आता है तो सुधा झटपट उसे अन्दर बुलाती हैं। सूरज का हाथ दिखाती हैं। न जाने कितना गण्डा–ताबीज वह सूरज के गले में बाँध चुकी थी। जानती थी, यह सब परछाइयों को पकड़ना जैसा है, परन्तु दिल के कोने में दबी ममता कोई न कोई भ्रम पाले रहती हैं।"[23]

'निर्मल वर्मा' का कहानी संग्रह 'परिंदे' की कहानी 'तीसरा गवाह'। यह बात स्पष्ट हो चुकी है कि निःशक्तता की श्रेणी में सिर्फ अंगहीन लोग नहीं बल्कि विकृत अंग वाले भी आते हैं। इस कहानी का निःशक्त पात्र भी विकृत अंग वाला हैं। इस कहानी की मुख्य नायिका 'नीरजा' अपनी बीमार के साथ शहर आती है तथा उसका इलाज करवाती हैं। वह किराये के मकान में रहती है, उसके साथ वाले मकान में रोहतगी नाम का युवक रहता हैं। जब–जब उसकी माँ की हालात ज्यादा खराब होती हैं। वह उसी की सहायता लेती हैं। इसी कारण उन दोनों में आपसी बातचीत व नजदीकियाँ बढ़ जाती हैं। फिर दोनों शादी के लिए तैयार हो जाते हैं। वे कोर्ट में शादी करने की बात करते हैं। रोहतगी कोर्ट में जाकर शादी से संबंधित जरुरी कागजात तैयार करवाता है और शादी की तारीख भी निश्चित हो जाती हैं। दोनों निश्चित समय पर कोर्ट पहुँच जाते हैं। परन्तु उन्हें वहाँ तीसरा गवाह का इन्तजार करना पड़ता हैं। तीसरा गवाह समय से कोर्ट में नहीं पहुँच पाता। कोर्ट में बैठें मजिस्ट्रेट के क्लर्क से कुछ पूछते हैं तो, नीरजा उसके कहने के अर्थ को व्यंग्य मान लेती हैं। क्योंकि उसके होठों का आकार विकृत हैं। जिससे देखने वाले को ऐसा लगे कि वह मुँह चढ़ाकर बात कर रहा हैं। "उसके होंठ विकृत मुद्रा में मुड़े थे, जिसे देखकर लगता था मानों वह व्यंग्यात्मक भाव से मुस्करा रहा हो।"[24] अंगों की विकृता के कारण ही नीरजा का चेहरा कातर–सा हो जाता है, वह उसकी मिचमिचाती आँखें को देखती है और मौका पाकर भाग जाती हैं।

रोहतगी 'तीसरी गवाह' के आने पर नीरजा को ढूँढ़ता फिरता है और वह उसे नहीं मिलती। अतः शाम तक वह उसे हर जगह ढूँढकर, पागल की तरह बिखर जाता हैं। सोचता है मैंने उस पर विश्वास क्यों किया, नीरजा ने मुझे धोखा दिया है, कभी सोचता है यदि तीसरा गवाह समय से आ जाता तो उसकी शादी हो जाती।

उधर नीरजा दौड़ती हुई घर पहुँचकर अपना सामान बाँधकर और अपनी बीमार माँ को उठाकर उस शहर से चली जाती हैं। जब रोहतगी अपने घर जाकर देखता है तो बगल में रहने वाली नीरजा वहाँ भी नहीं हैं। अब उसे पक्का विश्वास हो जाता है कि उसने यह चाल–चली और मुझे धोखा देकर भाग गई। लेखक का उद्देश्य इस कहानी के माध्यम से आज के अविश्वासी रिश्तों के प्रति हैं। जो बहुत ही जल्दी अपने हाव–भाव खो देते हैं। थोड़ी सी मुसीबत आने पर भाग खड़े होते हैं। आज की युवा पीढ़ी में मुसीबतों से ड़टकर सामना करने की हिम्मत नहीं हैं।

'ममता कालिया' का कहानी संग्रह 'छुटकारा' की कहानी 'बीमारी' कहानी के अन्तर्गत मुख्य पात्र को कुछ बिमारियाँ हैं, नायिका को सांस लेने में कुछ तकलीफ हुई और किडनी में इंफेक्शन हो जाता हैं डॉक्टर उसे इलाज की सलाह देते हैं। परेशान होकर वह अपने भाई–भाभी को देखभाल करने के लिए बुलाती हैं। तो वह अपने भाई तथा भाभी का व्यवहार देखकर बहुत दुःखी होती हैं। उसकी भाभी उसकी बीमारी को भी शंका की दृष्टि से देखती हैं। उसका भाई उस पर किये गये खर्च का, एक–एक पैसे का हिसाब बनाकर बिल उसके हाथ में दें देता हैं। नायिका को उनके व्यवहार को देखकर स्वयं पर बहुत ज्यादा गुस्सा आ रहा हैं। वह अपने आपसे बात करते हुए, "मुझे स्वयं पर गुस्सा आ रहा हैं। मैंने भावुकता के क्षण में भाई को चिट्ठी लिखी थी कि मैं कितनी बीमार और अकेली हूँ।"[25] अब वह भाई–भाभी को वापिस घर भेजकर अस्पताल में रहकर ही इलाज करवाने का संकल्प ले लेती हैं।

'ममता कालिया' के इसी संग्रह की एक और कहानी है 'दो जरुरी चेहरे' कहानी की नायिका 'मिताली' पढ़ी–लिखी हैं वह अपने प्रेमी श्याम से विवाह कर लेती हैं। इस विवाह के कारण उसका इकलौता भाई उससे नाराज हैं। इसलिए वह उसके पति से बात नहीं करता। वह अपने भाई को पिता की तरह मानती थी परन्तु अब वह चिंतित है भाई की नाराजगी के प्रति। मिताली को अपेन्डिक्स की शिकायत रहती हैं। अचानक एक दिन इतना तेज पेट दर्द हुआ कि वह चक्कर खाकर जमीन पर गिर जाती हैं। उसे उठाकर अस्पताल ले जाया जाता हैं। डॉक्टर ऑपरेशन करवाने की सलाह देते हैं। इस मौके पर उसके भाई और पति में नजदीकी बढ़ जाती हैं। यह देखकर वह मन ही मन प्रसन्न होती है। "बाँह पर बोझ आया, दूसरी पर एक बोझ और आया, पहली से हल्का बोझ, फिर पकड़ फिर कोई नाम। डूबते दिमाक में गिरा देर बाद निकला वापिस और आँखों ने तब देखे, दो जरुरी चेहरे।"[26]

प्रसिद्ध कहानीकार 'उषा प्रियवंदा' की कहानी 'टूटे हुए' में 'तंत्री' नामक–नायिका कहानी की मुख्य पात्र हैं। उसका पति कृष्णमूर्ति प्राधाध्यापक हैं। तंत्री एक निःशक्त लड़के की माँ हैं। जो

अस्पताल में है, उसे बेटे के ठीक होने की उम्मीद नहीं हैं। बेटे के लालच में वह अपने पति से दूर होकर, पति के दोस्त 'भास्कर' से दैहिक संबंध बना लेती है ताकि वह फिर से पुत्र को जन्म दें सकें। उसका पति संतान पैदा करने में असमर्थ हो गया हैं। भास्कर भी अन्दर से टूटा हुआ नजर आने लगता हैं। 'तंत्री' के तंत्र भी सचमुच टूट गये लगते हैं। भास्कर कहता है, "नहीं तंत्री में लज्जित हूँ, नहीं हूँ पर कभी–कभी व्याकुल अवश्य हो उठता हूँ। तुम्हें प्रोफेसर की तरह–सुख–सुविधा नहीं दें पाऊँगा।"[27]

यहाँ मन में यह सवाल उठता है कि तंत्री इतनी निराश हो चुकी थी वह देह भी पर पुरुष को सौंप देती है? उसे काम सुख भी मिल जाता हैं। परन्तु पुत्र प्राप्ति की इच्छा अधर में लटक जाती हैं। यहाँ कहानी के सभी पात्र टूटे हुए लगते है। 'तंत्री' को अपने पैदा हो चुके बेटे की तरफ ध्यान देना, चाहिए था उसकी अच्छी देखभाल करनी चाहिए थी परन्तु अपने पुत्र का हौंसला बढ़ाने के बजाय नये पुत्र पैदा करने की लालसा में 'भास्कर' से संबंध बनाती है परन्तु वह भी पूरी नहीं होती। इसलिए वर्तमान समाज की सोच में परिवर्तन करना हैं। कि ये दिव्यांग हमारे ही परिजन हैं। इनके प्रति घृणा का भाव न रखकर संवेदना का भाव रखे तो ये भी देश के सफल नागरिक बन सकते हैं।

इसी प्रकार हिन्दी की प्रतिष्ठित कहानीकार 'मालती जोशी' की स्वयंर कहानी की नायिका 'प्रभा' नारी पात्र हैं। उसके पिता का स्वर्गवास हो गया है इसलिए परिवार की जिम्मेदारी का भार अब उसी के कंधों पर हैं। वह परिवार में सबसे बड़ी है। परिवार का भार ढ़ोते–ढ़ोते अब वह बत्तीस साल की हो गई। इस उम्र में उससे कौन शादी करेगा। उसके बारे में सोचने वाला भी कोई नहीं हैं। अब वह स्वयं अपाहिज 'गोपाल दा' से शादी का प्रस्ताव रखती हैं। वह कहती है, "आपको तो किसी चीज की जरुरत नहीं है गोपालदास, पर मुझे है मुझे एक वर चाहिए। गोपाल दा, सिर छिपाने के लिए थोड़ी सी जगह चाहिए, क्या आपके घर में थोड़ा स्थान निकल सकेगा? बोलिए रामचरण का हाथ बँटाती हुई आपके चरणों में पड़ी रहूंगी उम्र भर।"[28]

प्रभा पढ़ी–लिखी है और आर्थिक दृष्टि से भी सम्पन्न हैं। भाई–बहनों का बोझा ढ़ोते हुए वह बत्तीस साल की हो गई उसे पता है अब उससे शादी कौन करेगा? वह यह भी जानती है कि शादी करना आसान नहीं हैं। इसलिए वह अंधे गोपाल–दा के सामने विवश होकर शादी का प्रस्ताव रखती हैं। इसलिए इस कहानी का शीर्षक 'स्वयंवर' रखा गया हैं। घर में वह स्वयं बड़ी थी तो उसे लिए कौन लड़का ढूँढता? इसलिए उसने स्वयं अपने लिए वर ढूँढ लिया और गोपाल दा जैसे दिव्यांग व्यक्ति को आधार दिया। उसकी जीवनसंगिनी बनी गई।

मनोवैज्ञानिक 'लेखक', 'यशपाल' की कहानी 'उतरा नशा' में एक दम्पती की कहानी है। पति अपने पुरुष होने के हक को भूलता नहीं वह अपनी पत्नी को मानसिक दबाव में रखता है, जिसके कारण वह मानसिक रूप से दिव्यांग हो जाती हैं। मनुष्य की कौनसी भावना कब ठेस पहुँचा दें और सुनने वाले को ठेस भी इतनी लगे की वह अपना मानसिक सन्तुलन खो दें। यहाँ एक निर्मला (मैनेजर की पत्नी) की स्थिति नहीं, वरन् अधिकांश भारतीय नारियों की स्थिति हैं। इस मानसिक विकार के कारण ही आदमी दिव्यांग कहलाता हैं। "सार्वजनिक जीवन में सौजन्य दिखाने के लिए आतुर मैनेजर साहब घर के भीतर अत्यन्त कटु हो जाते हैं। अत्यन्त व्यस्त निर्मला की तनिक सी चूक से वे आपे से बाहर हो जाते हैं। मैनेजर साहब के व्यवहार में ऐसे भेद से चिरंजीत को जान पड़ता है, निर्मला में शैथिल्य और चूक न होने पर भी लाला बनारसीदास अपनी शक्ति और अधिकार का अनुभव करने के लिए बेबस निर्मला पर अत्याचार करके संतोष पाते थे।"[29]

यशपाल की कहानियों में मनोवैज्ञानिक विकार या मानसिक दिव्यांगता को अच्छी तरह प्रकट किया गया हैं। इस कहानी के जरिए यशपाल ने भारतीय पुरुषों की मानसिक दिव्यांगता को सूक्ष्म दृष्टि से प्रकट करने का प्रयास किया हैं।

इसी प्रकार 'गौरा पंत शिवानी' ने स्वातंत्र्योत्तर कहानियाँ लिखी जिनमें उनके कहानी संग्रह 'मेरी प्रिय कहानियाँ', 'पुष्पहार' में दुर्गी नामक औरत का पति फौजी सूबेदार था। पाकिस्तान की लड़ाई भी उसका कुछ न बिगाड़ सकी, वहाँ से वह सकुशल लौट आता है परन्तु घर में पड़ी एक कील चुभनें से वह निःशक्त हो जाता हैं। उसके बायें पैर में कील चुभी फिर घुटने तक उसे पैर कटवाना पड़ा। तब से ही वह निःशक्त हो गया। उसकी पत्नी घर का कार्य संभालती है, वह घर से बाहर भी काम के लिए जाती हैं। दुर्गी भेड़ चराने जाती हैं तो वहाँ पर वह गैर पुरुष से संबंध बना लेती हैं। इस बात की खनक सूबेदार को लग जाती है, अब वह बेबस होकर दिन–रात नशे में डूबा रहता हैं। एक दिन दुर्गी जब बकरी चराने जाती है तो उसके पति के विवशता के आंसू झलक पड़ते हैं। वह सारी रोटी उठाकर खिड़की से बाहर फेंक देता हैं। "दिनभर साली हरामजादी बकरियों के साथ खुद कैसी–कैसी हरि घास चरती हैं।"[30] वह भी पति का चेहरा देखकर समझ जाती हैं कि अब उसकी बात उजागर हो चुकी हैं। एक दिन जब वह बकरी चराने जाती हैं तो वह भी उसके पीछे छुपके से जाता हैं और बैसाखी के सहारे पेड़ के मोटे तने के पीछे छिप–छिपकर उसकी जल क्रीड़ा देखता हैं। दूसरे दिन पूरा गाँव पंचों सहित उसके साथ जाता हैं। क्रोध से उत्तेजित वह अपाहिज किनारे से ही गालियों के पत्थर बरसानें लगता हैं।

रंगे हाथों पकड़ा गया चोर वह मंत्री अब अपने आप नीचे सिर करके खड़ा हैं। किन्तु दुर्गी गजब के दुःसाहस पूर्ण कौशल से तैरती–तैरती किनारे तक आ गई, न उसके चेहरे पर लज्जा की एक रेखा थी, न अपदस्थ होने का संकोच। फिर भीड़ की ओर बिना देंखे अपने प्रेमी को बीच भँवर में छोड़कर निकल गई। अब वह मंत्री जिन गलियों से कभी चुनाव जीतने पर उसे नन्दादेवी के डोले की भाँति सजाकर लाया जाता था। वही बलि के बकरे–सा ही निर्ममता से घसीटा गया। रातभर थप्पड़, घूंसे और लंगड़े की बैसाखी की मार खाकर वह बेदम पड़ा था कि न जाने कहाँ से उसकी माँ को पता लग गया। वह सारे गाँव वालों को दुहाई देती हैं। अब वह असम के कोयलों की खान में रहता। एक दिन वहाँ विस्फोट होने से उसका पूरा शरीर जख्मी हो गया। उसकी आँखों की पलकें जल गई। बोल भी नहीं सकता था। उसे मरा हुआ समझकर पटक दिया। न उसे कोई रोने वाला बचा। वह बड़ी कोशिश से उठा और एक–एक पेड़–पत्ते को पहचानता अपनी लाश घसीटने लगा। अचानक एक परिचित खिलखिलाहट ने तानकर भाला फैंका जो उसके कलेजे को चीर गया। सामने खड़ी–दुर्गी और सीट पर बैठा लम्बा–चौड़ा फौजी उसे हाथ पकड़कर अपनी और खींचता पहाड़ी में कह रहा था। जल्दी चलो दुर्गी फिर कुछ समय बाद वह फौजी अफसर के सामने एक कंकाल आकर खड़ा हो गया और कहने लगा साहब गाड़ी में बिठाकर कुछ दूर छोड़ दो बीमार हूँ। उसने रूखे भाव से कहा बैठ जा। आगे मोड़ पर घसीटकर उतार दिया। वह उन्मत फटी आँखों से एक टक दुर्गी को देखने लगा। उसने सहमकर फौजी की बाँह पकड़ ली। वह उसके साथ बैठकर फुर्र हो गई। वह देखता रह गया। दुर्गी भी नारी की पतिव्रता पर कलंक हैं। वह अपने निःशक्त पति को छोड़, कितनों से संबंध बना लेती हैं।

(3) समकालीन कहानी और निःशक्तजन अनुशीलन

समकालीन हिन्दी कहानियों के लिए वर्तमान युग महत्त्वपूर्ण रहा हैं। इस युग में घटित होने वाली घटनाओं एवं जन्म लेने वाली परिस्थितियों ने प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में कहानीकार को उद्वेलित किया हैं। आलोच्य युग के कहानीकारों ने अपने समकालीन अनुभवों को कच्चे माल के रूप में उपयोग किया। उन्होंने अपनी अनुभूति एवं दृष्टि–क्षमता के आधार पर कहानियों का सृजन किया। इसलिए उसमें समसामयिक स्थितियों का सुन्दर चित्रण मिलता हैं। इनके साथ ही तत्कालीन राजनीति एवं सामाजिक स्थितियों की पड़ताल आवश्यक हो गई। यह युग कहीं राजनीति से पूरी तरह प्रभावित हैं तो कहीं सामाजिक एवं राजनीतिक स्थितियाँ एक–दूसरे में ऐसे घुल–मिल गई है कि इन्हें अलग–अलग करके देखना भी मुश्किल हो जाता हैं।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने समकालीन हिन्दी कहानी के निर्माण में प्रमुख कारकों के बारे में कहा हैं, "जीवन के गंभीरतर समझे जाने वाले प्रश्नों का साहित्य में समाधान खोजना आधुनिक प्रवृत्ति हैं।"[31] इस प्रकार कोई भी रचना अपने युग से अलग होकर जीवित नहीं रह सकती। यह एक तथ्य हैं कि जो रचनाकार आधुनिक प्रवृत्ति से युक्त होकर, जीवन–जगत् की समझ रखता हैं। सामाजिक प्रश्नों पर गम्भीतापूर्वक विचार करता है, वह अपने समय को छोड़कर कहीं नहीं जा सकता। हमारे यहाँ यह भी माना जाता है कि साहित्य का सामाजिक सरोकार होना चाहिए। यदि उसमें सामाजिक सरोकार नहीं हैं तो वह सच्चा साहित्य नहीं बन सकता। इसलिए मुंशी प्रेमचन्द जी ने इस पद पर विस्तृत प्रकाश डाला है, "आलोच्य युग में सामाजिक सरोकारों की बात हो ही गई, साथ ही साहित्य को सामाजिक परिवर्तन की भूमिका के साथ जोड़कर देखा गया। वस्तुतः सामाजिक, राजनीतिक एवं अपने सहज संवेदनशील व्यक्तित्व एवं रचनादृष्टि के चलते उन स्थितियों को अपनी रचना में उतारते हुए, उसके समूचे कार्य–कारण श्रृंखला पर विचार करते हुऐ, नयी रचनाशीलता के साथ सामने आता है।"[32] वह अपने सृजनात्कता का परिचय देते हुए समस्या को कहीं व्यंग्य रूप में प्रस्तुत करता है तो कहीं उसके छिपे भावों को प्रकट करता हैं।

यह बात स्पष्ट करने लायक है कि समकालीन हिन्दी कहानी से जुड़ा यह कार्य सन् 1985 से 1995 तक की सीमा में बंधकर भी नहीं बंधा है, पर जैसा सभी जानते है कि कोई भी रचनाकार या युग अचानक पैदा नहीं हो जाता बल्कि एक लम्बी विकास यात्रा के बाद ही वह इस बिन्दु पर पहुँचा हैं। यह आम आदमी की कहानी है। आम आदमी को केन्द्र में रखकर लिखी गई हैं। समकालीन कहानी में आम आदमी की स्थिति परिस्थिति को जानने एवं समझने में नई दृष्टि मिली हैं। समकालीन कहानियों में हम जिस आम आदमी को देखते हैं। वह पूर्ववर्ती आन्दोलनों के आम आदमी से भिन्न हैं। वह न तो सर्वहारा है और न ही उदास, कुंण्ठित एवं लघु हैं। यह वह आम–आदमी है जो जिन्दगी एवं समाज के विविध तकलीफों को सहन करता हैं।

यह कहानी आन्दोलन ही समकालीन कहानीकारों के प्रयास घोर व्यक्तिवादी एवं अति यथार्थवादी दृष्टिकोण एवं खुले यौन चित्रण और भोगों के नियंत्रण में सफल रहा। ये कहानीकार आंतरिक संकट–संघर्ष एवं उलझनों को व्यक्त करते हैं। स्वातंत्र्योत्तर कहानी आजादी के बाद स्वयं को स्वतंत्र कर नयी जिन्दगी के सपनों की कहानी रही हैं। इसी के विपरीत समकालीन कहानी सपनों की कहानी न रहकर यथार्थ व मनुष्य की आंतरिक पीड़ा को झाँककर उसे उजागर कर रही हैं। परिस्थितियों के तीव्र बदलाव के चलते पूरे देश का परिवेश बदला, समस्याएँ बदली, यथार्थ

नये–नये रूपों में सामने आया, समस्याएँ, जटिलताएँ विषमताएँ और भी भयावह होती गयी, गाँव जो कि राजनीति से अछूते रहते हैं। वे भी राजनीति के अखाड़े बन गए, नये तरह की ऊँच–नीच की भावना ने जन्म लिया।

इसी की आड़ में कहानियों में विमर्श साहित्य आया, दलित विमर्श और स्त्री विमर्श के बाद समकालीन कहानीकार दिव्यांग–विमर्श पर चर्चा कर रहे हैं। निःशक्त होना अभिशाप नहीं हैं। वे भी एक सशक्त के समान समाज का अंग हैं। समकालीन साहित्य मनुष्य के अन्तर्मन की समस्या को समझने की कोशिश कर रहा है। अब निःशक्तजन पर सभी साहित्यकारों का ध्यान केन्द्रित हैं। वे लोग स्वयं को हीन मानकर किसी कोने में चुपचाप पड़े रहते हैं। वे इस समस्या को अपने बुरे कर्मों का फल मानते हैं। समाज भी उन्हें उपेक्षा की दृष्टि से देखता हैं। समकालीन कहानीकारों ने उनकी समस्या को केन्द्र में रखा वे कहानीकार निम्न हैं।

'ममता कालिया' का कहानी संग्रह 'सीट नम्बर छह' की कहानी 'आजादी' एक वृद्ध व निःशक्त महिला की हैं। वह एक पैर से अपाहिज है जिससे वह ढ़चक–ढ़चक करके चलती हैं। दूसरे पैर में हमेशा दर्द रहता हैं। उसका पति व परिवार के अन्य सदस्य भी उस पर कोई ध्यान नहीं देते। सिर्फ उसकी छोटी सी पोती के अलावा कोई नहीं पूछता। उसका बेटा बाहर शहर में नौकरी करता है इसलिए घर पर कम ही आता है परन्तु आता है तब भी वह माँ की तरफ ध्यान नहीं देता। उसकी बहू उससे बात तक नहीं करती। उसके पति का उसके प्रति इतना बेरुखा व्यवहार है कि जब डॉक्टर को दिखाने की बात करती है तो वह उसे मना कर देता हैं। एक बार उसको किसी ने बताया कि शहर में कोई अच्छा डॉक्टर आया है तो वह अपने पति से वहाँ जाने की जिद्द करती हैं। तो उसका पति उपेक्षा प्रकट करते हुए कहता है कि "अच्छे डागटरन की फीस भी अच्छी होगी, क्या फायदा तुम्हें कौन ब्याह रचाना हैं। मर्ज और कर्ज समय पाकर ही जाते हैं। बब्बू की माँ डागटरन की चीरफाड़ से तो या जन्म भी खराब और वा जन्म भी खराब।"[33] यह सुनकर वह अपना घरेलू उपचार भी बंद कर लेती है। उसका पति उसके प्रति सहानुभूति बिल्कुल भी नहीं रखता उलटा उसे ही झिड़कता रहता था। दादी दर्द वाले पैर के घरेलू उपचार में एक कलछी घी, हल्दी और पिसी हुई सोंठ डालकर चूल्हे पर चढ़ा देती। जब वह नारंगी रंग का हो जाता तो रुई से पंजे पर हल्दी–सोंठ लगाती। जब उसकी पोती पूछती दादी तुम्हारी टाँग कब ठीक होगी?

जब दादी जवाब देती कि, "जब मेरा लटूरबाबा डॉक्टर मुन्नालाल बनेगा तब।"[34]

रात को जब मुन्नी कहती दादी सो जाओ तो दादी दर्द के मारे कहती ये मेरा पैर दम ही खींच लेगा किसी रोज और दादाजी को अनिन्द्रा की बीमारी थी, चीख पड़ते, "ससुरी हमें गाली देती है, एक टाँग भगवान ने तोड़ दी, एक हम तोड़ देगें समझी।"[35] दादा–दादी की लड़ाई में दादी तड़ाक–तड़ाक बोलती रहती, फिर बाबा उठकर उन्हें दो–एक धोल जमाकर मुँह फेरकर लेट जाते, इस डर की मारी पोती अपनी माँ के पास सोती थी। अपने बेटे के आने पर दादी इतनी खुश हो जाती कि लगता वे बिल्कुल ठीक हो गई, न उनका पैर दुखता, न आँखे पनियाती हैं। उस दिन वे अपने हाथ से खाना बनाती और सामने बैठकर खिलाती पोती सोचती है अगर बाबूजी, जल्दी–जल्दी आया करें तो कितना अच्छा हो।

आजादी के दिन उसकी पोती सफेद कपड़े पहनकर स्कूल जाने को तैयार होती है तो दादी कारण पूछती है तो वह समझाती हैं। दादी आज आजादी का दिन हैं। दादी बोली, "री मुन्नी थोड़ी आजादी मेरे लिए भी ले आना पुड़ियाँ में बाँध के।"[36] स्कूल में मुन्नी को पताशे मिलें, उन्हें वह अपनी दादी के लिए बचाकर लाती हैं। वह दादी की कोठरी में गई 'देखो दादी मैं सच्ची–मुच्ची आजादी लायी हूँ पुड़ियाँ में बाँधकर। परन्तु दर्द का जहर दादी के शरीर में फैलनें से वह मर चुकी थी।

पोलियों के कारण काफी बच्चें निःशक्त हो जाते हैं। पहले की अपेक्षा वर्तमान में कुछ सुधार हुआ। इसी समस्या पर 'कुलदीप बग्गा' की कहानी 'पोलियों' रचित हुई। इस कहानी की पात्र 'मणिका' बहुत सुन्दर रूप, शील स्वभाव व गुण वाली लड़की हैं। जो पोलियों से ग्रस्त हैं। परन्तु सभी गुण होने के बावजूद भी जब वह चलती है तो सभी का मुँह लटक जाता हैं। कहानीकार उसी के शब्दों को व्यक्त करता हैं, "कुछ लोग मेरे साथ सहानुभूति जतलाते हैं, अपने भीतर दिल रखने का प्रमाण देते हैं। मुझे यह घिनौना स्वर 'पिटी' लगता हैं।"[37] मनीष नाम का कोई लड़का उससे प्यार करता हैं, जब लड़का अपनी माँ को मणिका से मिलवाने के लिए लाता हैं। तब वह उसकी बहुत प्रशंसा करता है परन्तु जब वह उठकर चलती है तो उसकी माँ के चेहरा का रंग बदल जाता हैं। वास्तव में मनीष अपनी माँ को उसकी निःशक्तता के बारे में शादी के बाद बताने वाला था परन्तु अब वह भी माँ की आज्ञा का पालन करेगा। जो माँ कहेगी वहीं करेगा। अब मणिका को एक जीवनसाथी की जरुरत थी परन्तु घर वाले उसकी शादी की बात भूल गए कि निःशक्त हैं शादी करके क्या करना। वह अन्दर ही अन्दर टूटने लगती हैं।

इस बात की तरफ परिवार व समाज का ध्यान अवश्य होना चाहिए कि निःशक्त भी एक इंसान ही हैं। समय आने पर उसे हर चीज की जरुरत होती है और रही बात जीवनसाथी की वह तो उसके लिए बहुत ही जरुरी हैं।

'ममताकालिया' का कहानी संग्रह निर्मोही के अन्तर्गत 'मुन्नी' कहानी की पात्र मुन्नी न जाने कितनी बिमारियों की शिकार हैं। चेचक, काली खाँसी, बुखार जैसी जानलेवा बिमारियों से घिरी मुन्नी जीवन के लिए संघर्ष करती रहती हैं। रात–दिन खाँसती रहती फिर इतनी कमजोर हो जाती हैं कि वह चल भी नहीं सकती। उसके अपाहिज होने के पीछे उसकी दादी का अंधविश्वास हैं। दादी उसे पोलियों के टीके नहीं लगाने देती, जब डॉक्टर पोलियों के टीके देने आता है तो दादी उसे लेकर कोठरी में छिप जाती हैं। "क्या फायदा दो घाव और कर जाएगा मरा पहले ही छोरी का खाँसियों से बुरा हाल हैं।"[38] दादी की लापरवाही की वजह से मुन्नी पुरी तरह पोलियों की शिकार हो जाती हैं। एक पाँव घसीट–घसीटकर चलती हैं। उसके पिताजी कहते हैं, "इससे तो अच्छा भगवान इसको मुक्ति दें, गूंगी बहरी लड़की मैं क्या करुँगा।"[39] निःशक्त होने पर भी मुन्नी पढ़ाई में हमेशा प्रथम आती हैं। कहानीकार ने 'मुन्नी' में निःशक्त लड़की के साहस का परिचय दिया हैं।

समकालीन कहानी में 'सुरभि बेहरा' की कहानी 'बिखरे ख्वाब' की पात्र सुप्रभा अपने माँ–बाप की इकलौती बेटी हैं। जिसके पिता की किसी दुर्घटना में मृत्यु हो जाती हैं। उसकी दादी उसे अपशकुन मानकर घर से निकाल देती है तो उसे अपने ननिहाल में रहना पड़ता हैं। वहीं पर पली–बढ़ी और पढ़ाई–लिखाई सभी वहीं पर हुआ। पढ़ाई में इतनी होशियार थी कि डॉक्टर बन गई। अपने सपनों के राजकुमार अक्षय से शादी भी हो गई। अक्षय भी डॉक्टर है। दोनों पति–पत्नी डॉक्टर है, अक्षय चाइल्ड स्पेशलिस्ट और सुप्रभा 'गाइनोलोजिस्ट' एक तरह से दोनों ही बच्चों के डॉक्टर थे। दिनभर बच्चों की किलकारियों के बीच दिन गुजर जाता। परन्तु समय कब मोड़ लेता है इसका पता नहीं चलता। यहीं सुप्रभा के साथ हुआ बच्चों की जरुरत ने दोनों में मन–मुटाव पैदा कर दिया। बदकिस्मती से सुप्रभा माँ न बन सकी और अक्षय ने बच्चें की लालसा में दूसरी शादी कर ली। जिस सपनों के शहजादे की उसे बचपन से चाह थी, उसे पाकर भी उसने खो दिया। सुप्रभा अब अपनी माँ के साथ दूसरे शहर में चली जाती हैं। जहाँ वह सरकारी अस्पताल में नौकरी करती हैं। वहाँ उसकी आखिरी इच्छा भी पूरी हो जाती हैं। एक दिन ऐसी लड़की आती है जो बिना ब्याही माँ बन जाती हैं। वह लड़की को जन्म देती हैं। उस लड़की को सुप्रभा गोद ले लेती हैं। उसके साथ अब सुप्रभा इतनी खुश व व्यस्त रहती हैं। कि समय का पता ही नहीं चलता।

इतने दिनों तक उसने कई बच्चों को गोद में लिया, प्यार से अपनी बाँहों में कसा, परन्तु आज इस नन्हीं–सी बच्ची को अपनी गोद में लेते हुए उसे एक अजीब सा अपनापन महसूस हो रहा था। उसकी आँखों से मातृत्त्व की खुशी साफ झलक रही थी।

वह महीने में एक बार शहर के प्रसिद्ध चाइल्ड स्पेशलिस्ट से उसका चेकअप जरुर करवाती थी। वहीं पर एक दिन उसकी मुलाकात अक्षय से हो गई। पहले तो वह उसे पहचान नहीं पाई, फिर बातों ही बातों में उसे पता चला कि अक्षय अपने पांच साल के बेटे के लिए अकसर यहाँ आया करता हैं। पिछले तीन–चार साल से उसके लड़के का इलाज इसी डॉक्टर से हो रहा हैं। लोगों का मानना है कि डॉक्टर के हाथ में जादू है। वह किसी भी रोगी को हाथ लगा दे तो वह ठीक हो जाता हैं। अक्षय ने बताया, दरअसल जन्म से ही उसका बेटा अपंग पैदा हुआ था। वैसे तो शुरु में ही पता चल गया था कि बच्चा नॉरमल नहीं है फिर भी मन में एक आस थी शायद छह–सात महीने बाद सुधार आ जाये। लेकिन कुछ ही दिनों में उसके तौर–तरीके ने सभी को मायूस कर दिया। वह न कुछ समझ सकता था और न ही कुछ बोल पाता था। अब तो दिन–रात उनकी सेवा करने में ही उनका आधा समय गुजर जाता हैं। हर वक्त अपने बच्चें की चिन्ता ने उसकी माँ को भी अन्दर से तोड़ दिया। वह ज्यादातर किसी न किसी बीमारी के कारण बीमार ही पड़ी रहती हैं। सचमुच सुप्रभा, "यह सब मेरे कर्मों का ही फल है, जो आज मुझे भुगतना पड़ रहा हैं।"[40]

सुप्रभा अक्षय की ऐसी हालत में चाहकर भी कुछ नहीं कर पाई। केवल धैर्य बँधानें के अलावा। दूसरा कोई उपाय नहीं था। घर जाकर भी वह अक्षय के बारे में सोचती रही परन्तु समय बीत चुका था। अक्षय ने अपने हाथों से अपनी खुशियाँ गँवाई हैं। सच्चाई यही है कि हर गुजरने वाला पल एक याद छोड़कर जाता है वह याद चाहे खट्टी हो या मीठी।

'शिवानी' का कहानी संग्रह 'अपराजिता' में 'सौत' कहानी की मुख्य पात्र नीरा हैं। वह अपने पति के साथ शहर में रहती हैं। नीरा की पड़ोस में रहने वाली लड़की 'राज्यम' से गहरी दोस्ती हैं। दोनों एक–दूसरे से घुल–मिल जाती हैं। परन्तु इसी का फायदा उठाकर 'राज्यम' नीरा के पति से अवैध संबंध बना लेती हैं। वह अच्छी पढ़ी–लिखी भी है इसलिए नीरा को धोखा देने में कामयाब हो जाती हैं। जब नीरा की भाभी नीरा से मिलने आती हैं। तो वह नीरा को सचेत करती हैं कि राज्यम व उसके पति के बीच कुछ चल रहा हैं। जिससे नीरा अनजान है। नीरा की भाभी कहती है, देखती नहीं हो कैसे उसके पति से चिपकर स्कूटर पर बैठकर मस्ती करती हैं। तुम्हें इन बातों के बारे में जरा भी ध्यान नहीं हैं। जिसका डर था वही हुआ कुछ दिन बाद दोनों घर से फरार हो गये। जब

नीरा के घर वाले नीरा को अपने पास ले जाते हैं। वहाँ पर वह अपने–आपको एक कमरें में बन्द रखती है, न किसी से बात करती है और न ही खुश हैं। कई डॉक्टरों को दिखाया कहते हैं, "दिमाक का मर्ज है, किसी दिमाक के डॉक्टर को दिखाए। हृदय पर कोई गहरा आघात लगा है।"[41] एक शील स्वभाव पत्नी के साथ इतना बड़ा धोखा जिसे वह सहन ही ना कर सकीं अपने दिमाक का संतुलन खोकर पागल हो जाती हैं। अब नीरा मात्र मानवमूर्ति बनकर रह जाती हैं। स्वार्थी समाज व रिश्तों के प्रति लेखिका ने चिंतन व्यक्त किया हैं।

'शिवानी' की 'मेरी प्रिय कहानियाँ' की कहानी 'चीलगाड़ी' की नायिका की माँ मर जाती हैं। जिससे उसकी शादी जल्दी हो जाती हैं। परन्तु ससुराल में भी उसे विचित्र प्राणी मिले। दो विधवा जेठानी, विधवा ननद भी वहीं रहती हैं। बड़ी जेठानी के बच्चे नहीं हैं। परन्तु छोटी वाली को राक्षसाकृति का निःशक्त पुत्र था। वह उसे हमेशा गोदी में टाँगे रहती थी। वह पन्द्रह वर्ष का विचित्र–सा जीव था। कभी–कभी आँखों की पुतलियों को लट्टू सा घुमाता। उसका पति भी 'यक्ष्मा' का रोगी था। जिन्हें नियमित रूप से पी.पी. लगने से उनकी तोंद बाहर निकल आयी थी। ऐसे ही उसे तेज खाँसी शुरु हो जाती। कहते है यक्ष्मा के रोगी को अन्त समय तक ज्ञान बना रहता हैं। मेरे पति की मृत्यु भी बोलते–बोलते हुई थी, "मेरी घड़ी कहाँ हैं? उन्होंने चीखकर पूछा और उनकी पुतलियाँ अचल हो गई।"[42] घर में स्त्रियों का विलाप शुरु हो गया। ऐसे ही जिन्दगी के दिन कट गये क्योंकि उसका पति शादी से पहले ही निःशक्त था। जिससे कि उसे जीवित पति का भी कोई सुख नहीं मिला। 'ममता कालिया' का 'कहानीसंग्रह', 'सीट नम्बर छह' की कहानी 'उपलब्धि' में चेतन और प्राची पति–पत्नी थे। 'चेहल्लुम' का रोज था जुलूस निकाला जा रहा था। "इस अवसर पर महीने भर मुस्लिम लोग, बच्चें, बूढ़ें सब काले कपड़े पहनकर घूमते थे। रोज शाम से शुरु होकर जुलूस, कोल्हन, टोला, रानी मण्डी से गुजरता कर्बला जाता।"[43] ऐसा चार–पाँच साल से चल रहा था चेतन परिवार इसका अभ्यस्त हो चुका था। प्राची और चेतन को इकलौता पुत्र बबलू था। जब औरतों के साथ प्राची बारजे पर खड़ी थी, सभी लोग गली का नजारा देखने में व्यस्त थे तभी बबलू को पानी की प्यास लगी वह पानी पीते–पीते बारजे पर आ गया। फिर नीचे के लोगों की तरह मातम करने लगा, हाथ से गिलास छूटकर पानी नीचे गली में लोगों पर पड़ा। लोगों में गुस्सा उतरा आप हमारे मजहब की तौहीन कर रहे हैं।

इसी बीच प्राची रसोई में चली गई थी। तभी वहाँ भगदड़ मच गई। प्राची दौड़ी आई और बबलू–बबलू चिल्लाने लगी। भीड़ छिट जाने और हर जगह ढूँढने पर भी उन्हें बबलू नहीं मिला। पति–पत्नी दोनों घबरा गए और इधर–उधर दौड़नें लगें। तभी मोहल्लें की 'गूँगी बहरी शहनाज' सहमी हुई अन्दर आई। उसने प्राची का आँचल पकड़ लिया। वह सिर्फ गूंगी ही नहीं बहरी भी हैं।

फिर प्राची चिल्लाई मेरा बबलू मेरा बबलू और कुछ सुनाई नहीं दिया। शहनाज चेतन की तरफ देखकर हँसी और उसके हँसने का मतलब दस पैसा चाहिए। चेतन ने उसके हाथ पर दस पैसे रख दिया। फिर शहनाज ने प्राची का आँचल पकड़ा और उसे 'मोती मंजिल' ले गई। वहाँ मंझली बी कोठरी से निकलकर आई और कहती है इतना मत घबराओं बबलू को हम लें आये थे। तब प्राची और चेतन बबलू को पाकर खुशी से उछल पड़े। प्राची ने दौड़कर बबलू को सीने से लगा लिया और मन ही मन शहनाज का शुक्रिया अदा किया। शहनाज निःशक्त है परन्तु दिमाक से तेज होने के कारण वह बबलू और प्राची की स्थिति को जान लेती हैं और उनके पुत्र से मिलवा देती हैं। गूंगी–बहरी हैं परन्तु इनकी शक्ति भगवान ने उसको दिमाक में दें दी।

'ममता कालिया' की कहानी 'फर्क नहीं', 'सीट नम्बर छह' कहानी संग्रह से हैं। इस कहानी की नायिका उनके घर में रहने वाली किरायेदारनी का वर्णन करती हैं। जिसका नाम प्रमिला अरोड़ा हैं। वह कमरे का सौ रूपये किराया देती हैं। मेरी नजर में वह लूट थी लेकिन दादाजी दो तारीख आते ही पैसों के लिए उनके कमरे के पास मंडराने लगते। वह 'हिन्दी निदेशालय' में 'रिसर्च–असिस्टेन्ट' थी। मैं उसके साथ उठने–बैठने लगी। माँ को मेरा उसके साथ उठना–बैठना पसन्द नहीं था क्योंकि उसके पंजों और पिण्डलियों पर सफेद दाग थे जो धीरें–धीरें ऊपर फैल रहे थे। मेरी माँ, "इसे छुतहा बीमारी मानती थी जबकि मुझे अक्सर ख्याल भी न आता कि उसकी देह विकार ग्रस्त हैं।"[44] लेखिका कहती है मुझे ये ही समझ नहीं आता कि समाज शरीर की बाह्य कमी के कारण उससे घृणा करता हैं। जबकि जिसका मन सुन्दर है तो बाह्य शरीर के विकार तो दूर हो सकते हैं। इसके विपरीत जिसका मन विकारग्रस्त है। उसकी बाह्य सुन्दरता किसी काम की नहीं हैं। जिसका मन मलिन है, वह साफ भी नहीं हो सकता।

यही इस कहानी में स्पष्ट हुआ है कि श्रीमति 'प्रमिला अरोड़ा' मन से सुन्दर हैं। परन्तु उसके पैरों पर दाग–धब्बों की वजह से मेरी माँ जैसी औरते घृणा करती हैं।

'गौरा पंत शिवानी' का 'कहानी संग्रह' अपराजिता में 'मेरा–भाई' कहानी का अनाथ पात्र 'सुब्य्या' हैं। उसकी दूर की रिश्तेदार नाते में बुआ लगने वाली 'गिरिजा बाई' उसे अपने घर ले आती हैं। सुब्य्या रंग का काला और एक आँख भैंगी थी। कभी–कभी ऐसा लगता था कि आँखों में पुतली ही नहीं हैं। ललाट के बीचों–बीच आँख के आकार का बड़े घाव का निशान था। गुस्सा आने पर गिरिजा बाई कहती थी, "यह मेरा शिव सुब्य्या का तीसरा नेत्र।"[45] गिरिजा बाई पड़ोंस की लड़की को उसे पढ़ाने के लिए कहती है, लड़की उसे मन लगाकर अपने भाई की तरह पढ़ाती है, परन्तु उसकी माँ उस विकृत शरीर वाले सुब्य्या को देखकर कहती है, "सुबह–सुबह इस काले

कलुटे कनुवे का मुँह देख लिया न जाने कैसे दिन बीतेगा। वह काना नहीं है भैंगा है माँ।"[46] इस प्रकार उसका उसके घर पर आना–जाना हो जाता है और समय बीतता रहा। रक्षाबंधन के दिन वह उसके पास राखी बंधवाने आता उसको देखकर उसकी माँ फिर से चिढ़ जाती और ईर्ष्या करती हुई कहती जा तेरा 'काला कलूटा कनुआ' भाई आ गया तुझसे राखी बंधवाने। छिः माँ! कनुआ क्यों कहती हो वह काना नहीं भैंगा है। मैं कहती, जब मैं होस्टल जाने के लिए निकलती तो वह मुझे स्टेशन पर छोड़नें जरुर आता। इस प्रकार वह मेरे भाई जैसा बन गया, कोई कुछ भी कहे वह चुपचाप नीची गर्दन करके रखता। गिरिजा बाई उससे अपने घर का पूरा काम करवाती और ऊपर से गुस्सा आने पर पिटाई भी कर देती।

पता नहीं ऐसी क्या परिस्थिति रही कि वह नामी डकैत बन गया। एक बार जब वह ट्रेन से घर जा रही थी तब वह यात्रियों को लूटने के लिए उसी डिब्बे में चढ़ा जिसमें वह थी। मुँह पर कपड़ा बांध यात्रियों को धमकाया कि जरुरी सामान निकाल कर रख दें। सभी डर के मारे अपना सामान रख देते हैं। परन्तु जब मैंने कहा कि वह उसका पासर्पोट न ले जाए तो वह शायद आवाज पहचान लेता है और राखी बँधवानें के लिए हाथ आगे बढ़ाता हैं। फिर उसके सूटकेस में अपना पर्स छोड़कर चला जाता हैं। उस पर्स में ढेर सारे पैसे हैं इस प्रकार वह आज भी अपनी बहन के प्रति अपना कर्त्तव्य नहीं भूला।

इंसान के बाहरी रंग–रूप से उसे आन्तरिक गुणों का पता नहीं लगाया जाता। देखने में तो गुलाब भी सुन्दर हैं परन्तु तोड़ने के लिए हाथ बढ़ाए तो कांटे चुभा देता हैं।

'शिवानी' के इसी संग्रह की दूसरी कहानी 'दण्ड' हैं। जिस कहानी का मुख्य पात्र एक डॉक्टर हैं। उसका एक नौकर जो गूंगा हैं। डॉक्टर की पत्नी मर चुकी है उसका एक होनहार बेटा हैं। बेटे का नाम मृत्युजंय एवं डॉक्टर के सेक्रेटरी का नाम सुशील हैं। दोनों पिता पुत्र तीव्र बुद्धि का खजाना है, दोनों में अगाढ़ प्रेम भी हैं। उसके पुत्र की अचानक मृत्यु ने डॉक्टर को झकझोंर दिया। वह बहुत परेशान हो गया। अपना मानसिक संतुलन बनाये रखने में असमर्थ हो गया। एक दिन की घटना ने सबके होश उड़ा दिये। जब डॉक्टर, ने 'सुशील' के नाम से एक पत्र लिखकर, उस बेजुबान बदलू के हाथ में देकर स्वयं पता नहीं कहाँ निकल गये। सुशील ने पत्र देखा तो उसको झिंझोड़कर पूछा कब गए? कहाँ गए? "परन्तु फलहीन ठूँठ–सा वृक्ष गूंगा बदलू हिलाए जाने पर भी फल कैसे गिरा सकता था? गूंगी जिह्वा को बड़ी चेष्टा से हिलाकर उसने कहा 'पफ–पफ' फिर विवशता से शून्य में फैलें हाथों के दुहत्थड़ माथे पर मार दिए।"[47] बेचारा बदलू आँसू बहाये जा

रहा था। उसकी निःशक्तता के कारण वह किसी को कुछ बता भी नहीं सकता था? यहाँ एक गूंगे पात्र की विवशता स्पष्ट झलक रही है, वह चाहकर भी कुछ नहीं बता पा रहा।

'डॉ. इन्द्रबहादुर सिंह' की कहानी 'विमल' का पात्र विमल रेलवे दुर्घटना में पैर खो जाने के कारण अपंग हो गया है। इसी दुर्घटना में विमल ने अपने माँ–बाप को खो दिया और अब वह अनाथ हैं। अनाथ होने के कारण उसे अनाथालय में रहना पड़ता है परन्तु वहाँ पर उन लोगों का व्यवहार उसे अच्छा नहीं लगता और वह निकलने का मौका ढूँढ़ता है और एक दिन वह वहाँ से निकलने में कामयाब हो जाता हैं। वहाँ से भागकर वह भीख माँगता हैं। भीख से पैसें जोड़कर वह मूँगफली खरीदता है और अब वह मूँगफली बेचता हैं। एक बार वह काम की तलाश में ट्रेन के द्वारा मुम्बई जा रहा था। जगह न मिलने के कारण वह बैसाखियों के सहारे ऊपर वाली सीट पर चढ़कर लेट गया। तभी उसी डिब्बे में एक बदमाश डकैती करने आता हैं। वह सभी यात्रियों को धमकाता है तथा कीमती सामान निकालने के लिए कहता हैं। महिलाऐं व बच्चों के चिल्लानें पर वह जान से मारने की धमकी देता हैं। थोड़ा शोर–शराबा सुनकर विमल ने अपनी सीट से देखा कोई बदमाश मुँह पर कपड़ा बाँधकर, कीमती सामान इक्ट्ठा कर रहा हैं। तभी विमल को उपाय सूझा। उसके पास उसकी मूँगफली वाली थैली थी जिसमें मिर्च–मसाले थे। उसने जोर से कहा कौन है भाई क्यों चिल्ला रहा हैं। जैसे ही बदमाश विमल की तरफ लपका उसने उसकी आँखों में मिर्च डाल दी। आँखों को मसलने लगा तभी विमल ने अपनी बैसाखी से तीन–चार प्रहार उसके सिर पर कर दिये। जिसके कारण घायल होकर वह भागने लगता है तथा ट्रेन से कूद जाता है। तभी सभी लोग इकठ्ठे होकर विमल को शाबाशी देते हैं। तभी पुलिस उस घायल व्यक्ति को पकड़कर लाती है तब विमल कहता है, साहब यही है वह बदमाश, पुलिस विमल की पीठ थपथपाती है और कहती है इस बदमाश ने महीनों से हमें परेशान कर रखा हैं।

यहाँ लेखक ने स्पष्ट किया है कि जिस समय विमल उस बदमाश से जंग जीत रहा था तब, क्या और पुरुष उस डिब्बे में नहीं थे? क्या सभी निःशक्त थे? लेखक का उद्देश्य है सभी कायर थे। जान बूझकर सोने का नाटक कर रहे थे। दिव्यांग विमल नहीं, डिब्बे में सवार वे सभी थे जो अपने–आपको सकलांग बताते हैं।

'श्रीमती रेखा पालेश्वर' की कहानी 'दिव्यांग बेटा–बेटी का खोना' इस कहानी की मुख्य पात्र 'प्रमिला ठाकुर' जो लेखिका की दोस्त हैं। प्रमिला से जब उसके बेटे रघुवीर का जन्म होता है तो पूरे घर में खुशी का माहौल रहता हैं। परन्तु जैसे–जैसे रघुवीर बड़ा होता है उसकी समस्याएँ साफ नजर आने लगती हैं। उसके पेट व सिर का आकार बढ़ने लगता हैं। उसका शरीर विकृत

आकार लेता जा रहा है, जिसके कारण वह डरावना लगता हैं। माँ–बाप चिन्ता में सूखने लगते हैं, डॉक्टरों के चक्कर लगाते हैं परन्तु डॉक्टरों से भी उन्हें कोई फायदा नहीं मिल रहा। जब रघुवीर छह साल का हो गया था तब उन्हें एक बेटी अंजुला पैदा हुई। वह भी अपने भाई की तरह असामान्य थी। माँ–बाप पर समस्याओं का पहाड़ टूट गया। अब माँ–बाप दोनों बच्चों को लेकर डॉक्टरों के चक्कर लगाते रहते हैं। परन्तु फायदा अभी भी कोई नहीं मिल रहा था। समय के अनुसार 'प्रमिला जी' को दो बच्चें और पैदा हुये– 'अन्नपूर्णा व प्रदीप' इन बच्चों ने माँ–बाप के दिल को थोड़ी शान्ति दी। ये दोनों बच्चे सामान्य थे, बल्कि यह कह सकते हैं कि समय से पहले समझदार भी हो गये थे। क्योंकि माँ–बाप के पास इनकी देखरेख के लिए समय ही नहीं था। वे तो रघुवीर और अंजुला को लेकर डॉक्टरों के चक्कर लगाते रहते थे। घर आने पर भी माँ उन्हीं दोनों में ज्यादा व्यस्त रहती थी। माँ की अनुपस्थिति में अन्नापूर्णा ने घर के सारे कार्य अपनी छोटी उम्र में ही सीख लिये। घर के कार्यों में उसका भाई भी उसका हाथ बँटाता था। भाई–बहन की स्थिति ने इन दोनों बच्चों को समय से पहले ही समझदार बना दिया।

समय का चक्र समान चल रहा था। डॉक्टर निःशक्त बच्चों की स्थिति में कोई सुधार नहीं कर पा रहे थे। अब रघुवीर ने खाना–पीना छोड़ दिया और धीरे–धीरे दुर्बल होता चला गया। अब वह पानी पीने में भी असमर्थ हो गया। 23 वर्ष की उम्र पाकर अब रघुवीर मौत का ग्रास बन गया। माँ–बाप रोते रहे, अब उनका पूरा ध्यान अंजुला पर था परन्तु उसकी स्थिति में भी कोई सुधार नहीं हुआ। वह भी अपने भाई की तरह 23वें वर्ष में आते ही मौत का ग्रास बन गई। माँ–बाप के लिए यह दुःख भूलना मुश्किल था। प्रदीप व अन्नपूर्णा की शादी हो गई थी दोनों को बच्चें भी पैदा हो गये थे। उनका अच्छा भरा–पूरा परिवार था। परन्तु फिर भी माँ–बाप को अंजुला और रघुवीर की कमी महसूस होती थी। क्योंकि बच्चे माँ–बाप के लिए कभी बोझ नहीं होते।

'प्रदोष मिश्र' की कहानी 'आँखें' यह एक अंधे वैज्ञानिक की कहानी हैं। जिसकी आँखें एक विस्फोटक के कारण चली गई। अब वह अंधा वैज्ञानिक बनकर रह गया। एलिजा नामक मनोविज्ञान की अध्यापिका उसके सम्पर्क में आती हैं। जिसको वह पहले से ही जानता हैं। एलिजा कहती है, लगता है तुम्हें कुछ भी मालूम नहीं है मेरे बारे में मैं पहले एक व्यक्ति से प्यार करती थी, वह मुझे बहुत अच्छा लगता था। यह प्रेम कैसे और किस परिस्थिति में हुआ मुझे याद नहीं। तुम जानते हो कि मैं मनोविज्ञान की अध्यापिका हूँ, इसलिए उसकी मन की स्थिति पढ़ लेने में समय नहीं लगा परन्तु शादी करने का विचार कभी नहीं आया। एक बार मेरे नारीत्व की जरुरत ने शादी के लिए मजबूर किया, तो वह उसके पास शादी का प्रस्ताव लेकर गई। तब उसे पता लगा कि वह एक

बलात्कारी हैं। पुलिस ने उसको पकड़ लिया हैं। उसे इस बात पर विश्वास न हुआ और स्वयं थाने में उससे मिलने चली गई। उसमें उसकी तरफ देखने की हिम्मत नहीं हुई नजरें घुमा ली। उसे समझ नहीं आया कि इतने दिनों साथ रहने के बाद भी वह उसे क्यों नहीं समझ पाई। उस दिन के बाद उससे घृणा हो गई। सिर्फ उसी से नहीं सारी पुरुष जाति के प्रति शंका व घृणा का भाव पैदा हो गया। उसने कहा कि उसी समय उसने आजीवन अविवाहित रहने का फैसला कर लिया था।

परन्तु अब पता नहीं क्यों अचानक ऐसा हुआ कि यदि विवाह नहीं करुंगी तो सारी जिन्दगी उस बलात्कारी की यादों के साथ जीना पड़ेंगा। एलिजा नीरज रंजन (वैज्ञानिक) से कहती है, "मैं तुम्हारे पास विवाह का प्रस्ताव लेकर आने से पहले कई पहलुओं पर देर तक सोचती रही हूँ। तुम कभी मत सोचना कि मैं किसी प्रकार का प्रतिशोध का भाव लेकर या निरुपाय होकर तुम्हारे पास आई हूँ। मना कर देने पर भी मुझे कोई दुःख नहीं होगा। परन्तु तुम्हारे पास आने का मेरा एक मकसद है, जिसे तुम मेरा स्वार्थ भी कह सकते हो। एक तो मैं तुम्हारे व्यक्तित्व से पूर्व परिचित हूँ, दूसरे तुम जैसे दृष्टिहीन वैज्ञानिक की सहायता करके मैं अपने–आपको एक निर्दिष्ट उद्देश्य के पीछे खो देना चाहती हूँ। आप जानते हो कि रोगी की सेवा और नीरोग व्यक्ति की सेवा में कितना फर्क होता हैं? रोगी की सेवा में जो आन्तरिकता, त्याग और लगन की आवश्यकता होती है इससे तुम वाकिफ हो। तुम्हारी सेवा मुझे शेष जीवन के प्रति कर्त्तव्यपरायणता सिखा पाएगी मैं अपने समय को सार्थक कर पाऊँगी। मैं तुम में इतना तल्लीन हो जाना चाहती हूँ कि जो पीछे छोड़ आई हूँ उसके बारे में सोचने का वक्त ही न मिले।[48]

दोनों की शादी हो जाती हैं। खुशी–खुशी रहते हैं। अचानक किसी की दान की गई आँखों से वैज्ञानिक को नई दुनिया मिल गई। उसने अंधेरी गुफा से निजात पा लिया। इसलिए दोनों पति–पत्नी की खुशी का ठिकाना नहीं था। खुशी में इतने दिन गुजर गये कि उन्हें पता ही नहीं चला। परन्तु कुछ दिन बाद रंजन ने कहा– "एलिजा तुम उस महान व्यक्ति का फोटो देखना नहीं चाहोगी? जिन्होंने मुझे आँखें दान में देने की इच्छा जाहिर की? मेरे हाथों से फोटो लेकर देखते ही एलिजा के चेहरे का रंग बदल गया।"[49] एलिजा चिल्लानें लगी बन्द करो इन आँखों को कैसे हिम्मत की उसने मेरी जिन्दगी में आने की। ये आँखें उसी बलात्कारी प्रेमी की हैं। जिससे वह सबसे ज्यादा नफरत करती हैं।

नीरज रंजन कहता है– “मनुष्य के सारे अंग मस्तिष्क के दास है और जब मस्तिष्क मेरा अपना है, तब देह में जुड़ी हुई आँखें कैसे दूर हो सकती हैं। ये उसी दिन से मेरी हो गई, जिस दिन से मेरे मस्तिष्क से संचरित होने लगी।”[50] परन्तु एलिजा और नीरज रंजन में ये आँखें दूरियां पैदा कर देती है। मनुष्य का स्वभाव ईश्वर ने कुछ ऐसा बनाया हैं कि सुखद संसार को एक क्षण में ही दुखद में बदल देता हैं।

‘गौरा पंत शिवानी’ की मेरी प्रिय कहानियाँ संग्रह की कहानी ‘शपथ’ में बुजुर्ग व अंधा पात्र हैं। वह विधुर है, उसकी इकलौती बेटी की शादी हो गई है ससुराल वाले उसे कभी–भी एक रात अपने पिता के पास नहीं रुकने देते। जबकि उसकी बेटी की ससुराल उसके घर से दो मील दूर हैं। अंधे पिता की देखभाल करने वाला कोई नहीं हैं। उसके ससुराल वाले इतने स्वार्थी है कि वे उसको इसलिए अपने पिता के पास नहीं रहने देते क्योंकि पूरे घर का कार्य उसी के कंधों पर हैं। ससुराल में बेचारी सिर्फ नौकरनी बनकर कार्य करती रहती है उधर पिता की इस हालत को सोचकर अन्दर ही अन्दर घुटती रहती हैं।

‘मिलन’ कहानी ‘माधुरी मिश्र’ की हैं। इस कहानी की मुख्य पात्र ‘कृष्णाचाची’ मानसिक रूप से निःशक्त हैं। ‘कृष्णा’ उसका नाम है चाचा की पत्नी होने के कारण उसे सभी कृष्णा चाची ही कहते हैं। अब वह चाचा की पत्नी क्या बनी जब दोनों पति–पत्नी का मिलन ही नहीं हुआ। कहानी कुछ इस प्रकार है– ‘कृष्णा चाचा व चाची’ की शादी छोटी उम्र में हो जाती हैं। कृष्णा चाचा की माँ उन दोनों पति व पत्नी को नहीं मिलने देती। कृष्णा चाचा अपनी पत्नी से मिलने की जिद्द करता हैं। परन्तु उसकी माँ तब भी नहीं मिलने देती। पत्नी से मिलने की कोशिश में सफल न होने से परेशान कृष्णा चाचा ने दशहरें के दिन जहर खाकर आत्महत्या कर ली। घर से सामूहिक रूप से रोने–चिल्लाने की आवाज आई। आवाज सुनकर सभी लोग इकट्ठें हो गए। जब पता चला तो सभी लोग हैरान रह गये। कृष्णा चाची को पति के पास जब लाया गया, जब उनकी लाश पड़ी थी। उससे कहा कि चलों अपने पति के आखिरी दर्शन कर लों। वह समझ नहीं पाई कि आखिरी दर्शन का मतलब क्या होता है। घर के लोगों के रोने का कारण नहीं पता।

कृष्णा चाची को पति का मतलब तब समझ में आया जब उसको उसकी ननद की शादी में शामिल नहीं किया गया। नन्हीं सी उम्र में हाथों की चूड़ियाँ तोड़ दी गई। सादी व सफेद साड़ी देकर सब खुशियों से दूर कर दिया गया। जब वह समझने लगी तो बहुत रोती परन्तु घर के लोग उसे रोने भी नहीं देते। उलटा उसको मारते भी थे। वसुधा नाम की लड़की उसके प्रति सहानुभूति रखती है वह उसकी यह हालत देखकर बहुत दुःखी होती थी। एक दिन कृष्णा चाची घर से

निकलकर मुर्दाघाट में चली गई जहाँ कृष्णा चाचा को जलाया गया था। चाची अपना मानसिक संतुलन खो चुकी थी और जहाँ हड्डियाँ दफना रखी थी वहाँ मिट्टी को हाथ से खोदने लगी। बोलें भी जा रही थी, "आप यहाँ निश्चिन्त है, मेरी कितनी दुर्गति होती है, उसकी परवाह नहीं आपको मैं एक रात भी नहीं सोई और आप यहाँ सोये हैं? मैं आपको सोने नहीं दूंगी।"[51] सारी हड्डियाँ घर ले आती है सभी को बताती है ये हैं मेरे पति अब देखती हूँ कौन हाथ लगाता है मुझे? कृष्णा चाची वसुधा से कहती है, "सुनो, ये हड्डियाँ तुम्हारे चाचा की हैं। उन्होंने कहा है मैं इसी में हूँ और तुम्हें पता है, मेरे बच्चें भी हैं। लेकिन उसने कहा हमारा तो मिलन ही नहीं हुआ तो बच्चें कहाँ से हैं? वे कहते है जिस दिन तुम आओगी मैं 'घर सजाऊँगा, पलंग सजाऊंगा और अपने हाथों से उठाकर अपने घर लाऊँगा"।[52] सभी मुझे पागल कहते हैं, लेकिन मुझे वहीं जलाना जहाँ तुम्हारे चाचा जलाये गये थे।

इस कहानी की पात्र कृष्णा चाची की इस हालत की जिम्मेदार उसकी सास हैं। पति के दर्शन तक नहीं किये और उसकी विधवा बनकर रह गई। पति की याद में रो–रोकर पागल हो गई। अब सभी उसे पागल कहते हैं। उसे जंजीरों से बांधा जाता है और मार पिटाई भी की जाती हैं। यह मानव जाति की समझदारी है, जो मनुष्य पर पशुओं जैसा व्यवहार करता हैं।

'त्रिभुवन पाठक' की कहानी 'करु बहियां बल आपनो' में निःशक्त पात्र विमलानन्द है जो आँखों से अंधा हैं। वह एक भजन कार्यक्रम में भजन गाने आता हैं। प्राचार्य मनीष भी इस कार्यक्रम में आमंत्रित किये गये हैं। जो वहाँ पर मौजूद अंधे विमलानन्द को देखकर अपने सहपाठी मोती की जीवन गाथा सुनाता हैं। मनीष बताता है कि गाँव में भयंकर बीमारी फैलनें के कारण उसका मित्र मोती अंधा हो जाता हैं। उसकी माँ तो पहले ही मर चुकी थी। बाद में पिता भी चल बसे और अन्धा अब अनाथ हो गया। अब वह अपने चाचा के पास रहने लगता है एक दिन चाचा की मार के कारण वह घर छोड़कर भाग जाता हैं। फिर मुझे नहीं पता वह कहाँ गया? तो विमलानन्द कहता है मैं बताता हूँ आगे की कहानी दर–दर की ठोंकर खाकर आपका मोती विमलानन्द बन गया। भजन गायन में प्रवीण होकर आज आपके सामने हूँ। कार्यक्रम में लोग विमलानन्द को फूलों की माला पहना रहे है। यह देखकर मनीष सोचता है। दर–दर की ठोंकर खाने वाला मोती इतना सम्मानीय होगा ऐसी तो कभी कल्पना भी न की थी। "जो ईश्वर का हो जाता है, ईश्वर भी उसी का हो जाता है।"[53] यह मनीष के मन का चिन्तन हो रहा हैं। अब प्राचार्य मनीष अपनी कुर्सी से उठे और विमलानन्द जी को काफी देर तक छाती से लगाये रखा।

'सत्यराज' की कहानी 'छोटू' का निःशक्त पात्र छोटू मानसिक रूप से निःशक्त हैं। 'छोटू' का मस्तिष्क पूर्ण रूप से विकसित नहीं हो पाता जैसे–जैसे बड़ा होता है वह अजीब हरकतें करता हैं। एक दिन उसने अपने बड़े भाई की अँगुली का आगे का हिस्सा चबा लिया, इसके कारण भाई को तकलीफ और घृणा दोनों हुई। उसका भाई उसे अस्पताल में भर्ती कराना चाहता है परन्तु माता–पिता ऐसा नहीं करना चाहते। उसके मुख से निकले शब्द सचमुच सत्य होते हैं जैसे– "पागल राजू को डॉक्टर! पागल आदमी को जीने का कोई अधिकार नहीं हैं। उसका जीवन तो नरक होता ही है, घर का वातावरण हर समय–सहमा–सहमा और नरक से भी बदतर हो जाता हैं। न वह खुद खाता हैं। न दूसरों को खाने देता है, न वह खुद शांत रहता है, न दूसरे उसके शोर–शराबे और तरह–तरह की अमानुषिक क्रियाओं के बीच शांति से रह पाते हैं। आप नहीं जानते डॉक्टर, मैं जानता हूँ सोलह साल तक एक पागल के साथ रहा हूँ।"[54] इस प्रकार समाज व परिवार निःशक्तजनों से परेशान हो जाते हैं।

'सुनील कौशिक' की कहानी 'अंधेरे का सैलाब' इस कहानी का पात्र सौरभ है जो आँखों से अंधा हैं। वह केवल साढ़े छह साल का लड़का हैं। वह स्कूल में रिक्शा से जाता था। एक दिन उस रिक्शा का अगला हिस्सा ट्रक से जा टकराया। इस दुर्घटना में सौरभ ने अपनी आँखों की रोशनी खोनी पड़ी। वह अपने माता–पिता की इकलौती संतान था। आँखों का ऑपरेशन हुआ लेकिन डॉक्टर ने बताया कि– "तुम बच्चें के पिता हो, झूठ तो मैं नहीं बोलूंगी। एक्सीडेन्ट के कारण आँख की मैकूला इंजर्ड हो चुकी थी कुछ नहीं किया जा सकता था। रोशनी का वापिस आना नामुमकिन है।"[55] यह सुनकर सौरभ के पिता सुन्न रह गए। सौरभ के सारे सपने चकनाचूर हो गए, न अब वह कोई खिलौना देख सकता है और न ही अपनी पसन्द की चीज देख सकता हैं। ऐसे बच्चे जिनके जीवन में सूरज आने से पहले ही ढ़ल जाता हैं। वे खोऐं हुए मुसाफिर की तरह भटकने लगते हैं लेकिन समाज तथा परिवार के सदस्य अवश्य उसे आशा दिखाकर आगे बढ़ा सकते हैं।

'आगे जिन्दगी होती तो' डॉ. इन्द्रबहादुर सिंह की कहानी में नायक बीमारी के बाद ज्यादा सशक्त, सजग तथा आत्मनिर्भर हो जाता है, बुद्धि और तर्क में हर बात को नाप कर देखता हैं। वह स्वयं निःशक्त होकर बाबा आमटे के निःशक्त आश्रम को आर्थिक सहायता देता है, "और कुछ दिनों बाद मैंने सुना पिताजी ने अपनी वसीयत पंजीकृत कराई हैं। अपनी सम्पूर्ण सम्पत्ति में आधा भाग माताजी और सुमन (पुत्र) को दिया है, शेष अपनी संपत्ति बाबा आमटे के कृष्णक्षम में भेंट कर दी।"[56]

'नैन न तिरपति भेल' डॉ. इन्द्रबहादुर सिंह इस कथा का पात्र बृजलाल एक आँख से निःशक्त है' वह अपने से कम उम्र की फुलमतिया नामक औरत से विवाह करने के लिए बीस हजार रुपये में बैल बेच देता है और फिर अपने पिता से मार भी खाता हैं। उसकी माँ मर चुकी है और पिता क्रूर स्वभाव वाले है इसलिए उसकी चाची उसका साथ देती हैं। धीरें–धीरें जब फूलमती सुन्दरता बिखेरती है तब बृजलाल की आँखें तृप्त होती हैं। जब फूलमति गर्भवती हो जाती है तो बृजलाल अपनी पत्नी के लिए इमली–आचार, मिठाई सबकी व्यवस्था करता हैं। बीमारी और इलाज से बृजलाल का चेहरा काला पड़ गया हैं। बार–बार बृजलाल को चिंता सताती है, लड़का उसी की तरह काला न हो। चाची समझाती हैं। गाँव में चर्चा है मनमोहन के बैद को पैसा देकर बृजलाल का रूप–रंग बिगड़वा दिया हैं। लड़का सांवला ही पैदा हुआ हैं। बृजलाल कंचन के कदली दल पर अति सलोनी सी आभा वाली फूलमती की तिरछी मुसकान पर निछावर हैं। बृजलाल का शंका से भरा मन फूलमती की बात से हर्षित हो उठता है, "दाऊजी झुनझुना और रूपिया दे गए है, लौटा देना।"[57] बृजलाल ने गाँव वालों से सुना है कि मनमोहन अपनी जमीन बच्चें के नाम कर रहा हैं। बृजलाल उबल पड़ता है, "साली ढ़ोंगिना रूपया लौटा दो, झुनझुना लौटा दो और खेत लिखा रही हैं।"[58] उसे इस बात से भी क्रोध है कि फूलमती बृजलाल के सामने बृजलाल के द्वारा रखे गए बालक के नाम 'बंसी' को अच्छा बतलाती है, पर पुकारती है मनमोहन के दिए नाम 'मुरली' से। यह संदेह रोज–रोज परेशान करता हैं। बृजलाल कई बार मनमोहन को रंगे हाथों पकड़ चुका है। बृजलाल को भगत की बात याद आती है, "शंकापाप का मूल हैं। कभी मन में मत लाना शंका रामचन्द्र जी ने सीता माता पर की थी। सीता धरती में समा गई। नहीं, नहीं! माफ करना प्रभो, मैंने मन में शंका नहीं की। मनमोहन का हमारे सिवा है ही कौन? फूलमती टहल नहीं करेगी तो कौन करेगा।"[59]

फूलमती को मनमोहन से बात करते देख उसे मारता–पीटता भी हैं। अपने ससुराल अकोढ़ी–विरोधी मनमोहन को मेहमानी और न्यौता लेकर जाते देख और पत्नी द्वारा बच्चें को मुरली नाम से पुकारते सुन बृजलाल का मन पत्थर–काठ का बना हुआ भी पिघल जाता हैं। पर सात परतों के अन्दर मांस–खून का बना दिल केवल जलता है, सुलगता है, तड़पता है। उसने कलेवा नहीं किया, नहाया–धोया नहीं, सूरज देवता ढ़ल गये। परन्तु जब ससुराल वालों ने मनमोहन को मार–मारकर अधमरा कर दिया तो वहीं बृजलाल उसे साईकिल पर लादकर लाता हैं मनोविकारों, सूक्ष्मातिसूक्ष्म मनोभावों और संवेदनाओं को व्यक्त करने में कहानी की संकेतात्मकता प्रशंसनीय है।

'मछुआरे की लड़की', 'डॉ. विनोद कुमार शर्मा' की कहानी की निःशक्त पात्र 'सरस्वती' मछुआरे की कन्या हैं। वह दाहिने पैर से दिव्यांग है परन्तु फिर भी नर्मदा की भीषण बाढ़ में फंसे

सौ लोगों की जान रात के अंधेरे में पिता के सहयोग से बड़े कष्ट से बचा पाती हैं। कुछ लोग डोंगे में न आ पाने के कारण बाढ़ में बह जाते हैं। इस वीरता के लिए सरस्वती को गणतंत्र दिवस पर सम्मानित किया जाता हैं। धीरे–धीरे इस महान वीरता पर धूल जमने लगती है। समाज, त्याग और बलिदान को अधिक समय तक याद नहीं रख पाता न ही वीर साहसी व्यक्ति को याद रखने का प्रयास करते। "प्रियवंदा सरस्वती? अनपढ़, निपट गंवार और पगली!! और वह देश परदेश में मिले मान–सम्मान और समालोचकों की उपमाओं से बेखबर नर्मदा के थपेड़ों बाबूजी की झिड़कियों और रोजमर्रा की समस्याओं से जूझती विस्मृति के कुहासे में कहीं खो गई।"[60] 'वह नियोगी' डॉ. इन्द्रबहादुर की कहानी वह नियोगी में मान्यता हैं, "कि आजादी क्रांतिकारी के आत्मबलिदान का परिणाम है न कि गांधी जी की अहिंसा का। नियोगी का मलाल है यदि एक हाथ और होता तो वह भ्रष्ट नेताओं का गला दबा देता। भ्रष्ट व्यवस्था बदलने के लिए लगातार संघर्षरत नियोगी को प्राणों से हाथ धोना पड़ता है।"[61]

'भीष्म साहनी' की कहानी 'कण्ठहार' की पात्र सुषमा निःशक्त हैं। उसके परिवार वाले मतलब स्वयं उसके माता–पिता उसके साथ पशुत्व व्यवहार करते हैं। वे उसे अपना बच्चा मानने में शरमाते हैं। एक दिन घर में पार्टी चल रही थी सभी पार्टी का आनन्द ले रहे थे। तब सुषमा उनकी आवाज सुनकर विचलित हो रही थी वह भी उनके साथ पार्टी में आनन्द लेना चाहती थी, परन्तु उसे एक कमरे में बंद कर दिया जाता हैं। वह चिल्लाती रहती है परन्तु उसे बाहर नहीं निकाला जाता। बंद कमरे में नौकरानी उसे दूध देने जाती है तो वह दूध के गिलास को फर्श पर पटक देती हैं। उसके लिए उसे डांट खानी पड़ती हैं। उसकी माँ को मेडिकल इंस्टीट्यूट के बड़े डॉक्टर से पता चला कि सुषमा का रोग असाध्य है, उसका कोई इलाज नहीं है, तब उसे लगा, कि उसको किसी ने ऊपर उछालकर नीचे पटक दिया हैं। उसकी बेटी 15 साल की हो गई, उसकी टाँगे सूख गई थी, वह चारपाई से नहीं उठ सकती थी, अतः मालती उसकी माँ होकर भी बेटी के प्रति उदासीन हो गई। वह अपनी बेटी की स्थिति को भूलकर यह सोचने लगी कि पार्टी में यह कण्ठहार पहनकर जायेगी तो वह शान से कहेगी कि पाँच हजार का आया हैं। वह बार–बार अपने को आईने में देखती हैं।

'सिम्मीहर्षिता' की कहानी 'अनिमंत्रित' का पात्र 'मनु' जन्म से निःशक्त हैं। मानसिक रूप से अपरिपक्व हैं। ऐसी परिस्थिति में परिवार के लिए मनु का अस्तित्व भय और चिंता का कारण बन गया है। अतः जब उनके घर पर कोई अतिथि आता हैं तो उसे पकड़कर घर में बंद कर देते है, बच्चें खिड़कियों, दरवाजे से देखकर पागल–पागल कहकर चिल्लातें हैं। मनु शारीरिक रूप से तो विकसित होता जा रहा है परन्तु मस्तिष्क का विकास न होने के कारण वह घरवालों के लिए

समस्या बनता जा रहा हं। एक दिन माँ की अनुपस्थिति में उसकी बड़ी बहन उसके अधोभाग को धोते हुए और फिर नहलाते हुए उसके मन में क्रोध व नफरत पैदा हो गयी। वह भूल गई कि मनु उसका छोटा भाई हैं। उसने गुस्से में कहा– "बैल की तरह बड़े होते जा रहे हो–शर्म नहीं आती तुम्हें? तुम क्यों जीवित हो अब तक? क्यों जीने का तुम्हें बहुत मोह हैं? तुम्हें भला जीकर करना भी क्या है यहाँ.....?"[62] एक दिन मानी घर के कामों से निपटकर गुनगुने दूध की प्याली और चम्मच लेकर उसके पास आई तो वह सोता हुआ मिलता है। इन कहानियों में व्यक्त दिव्यांग बच्चों का दर्द पाठक के मन–मस्तिष्क को तरल बना देता है।

'श्रीमति रेखा पालेश्वर' की कहानी 'खुली आँखों का दुःख' का पात्र 'शिवराम' पढ़ा लिखा बेरोजगार हैं। वह हर रोज अपनी डिग्रियों को साथ लेकर ऑफिसों के चक्कर लगाता रहता हैं। ऐसे ही चक्कर लगाते हुए उसकी मुलाकात एक अंधे आदमी से हो जाती। उस अंधे आदमी को किसी, आदमी से मिलने जाना था, वह कोई पर्वतीय अफसर था। जो अपने बच्चें को संगीत की शिक्षा देने के लिए अध्यापक की तलाश में था। उसके यहाँ जाने के लिए उसने शिवराम की सहायता ली, "वैसे तो मैं फूंक–फूंककर कदम रखता हूँ, पर सावधान रहने के क्षण में सारी होशियारी धरी रह जाती है और मैं झंझट में फंस जाता हूँ।"[63] क्योंकि पहले वह एक आदमी से धोखा खा चुका था। किसी संगीत विद्यालय में काम देने के बहाने पैसे लेकर गायब हो गया। तब से वह इधर–उधर भटक रहा था और बाद में इस दयालु आदमी का फोन उसे मिला था। उसने शिवराम से कहा, "दाज्यू साहब मैं अंधा ठहरा आप ही कहीं से फून कर दीजिए।"[64] शिवराम ने उसके लिए फोन करने अपनी अठन्नी खर्च कर दी अब वह उससे पीछा छुड़ाना चाहता था तभी अंधे ने एक, दो और पांच रूपये के नोट निकालकर शिवराम की तरफ बढ़ा दियें। वह कहता है आप मेरे लिए भगवान के समान हो ये पैसे लेकर जल्दी से पहुँचने का प्रबन्ध कर दें। उसकी प्रार्थना सुनकर शिवराम सोचता है। मुझे तो कोई जल्दी नहीं है, एकदम निठल्ला–बेकार हूँ, दिनभर, जबकि उसके हाथ में डिग्रियाँ और उसके स्वयं के सर्टिफिकेट दबे पड़े थे। परन्तु फिर भी उसे नौकरी के लिए कोई आमंत्रण नहीं मिला।

थोड़े ही देर में वे दोनों वेस्ट पटेल नगर के दफ्तर में पहुँच गये। वहाँ जाने पर साहब से उसकी बात–चीत हुई और बातों ही बातों में अंतरंग हो गए। उस दयालू आदमी ने नौकरी के साथ–साथ रहने की भी व्यवस्था कर दी। शिवराम ने भी अंग्रेजी में बोल–बोलकर कई बार प्रभावित करने की कोशिश की किन्तु नाकाम रहा। उस ऑफिस से बाहर आने के बाद उसने सोचा उसकी डिग्रियाँ फालतू व बोझ हैं। उस रद्दी से शिवराम को घोर विरक्ति हो उठी। उस बोझ को उठाने का क्या फायदा जिसमें गुणवता न हो। उसके सामने अंधा बाजी मार गया वह देखता रह गया।

जैसे ही वह बाहर आकर देखता है कि एक दीन–हीन टूटा–फूटा सा आदमी चार–छह कुर्सियाँ लिए बैठा था। शाम तक शायद वह उन्हें बुन लेगा और थोड़ा बहुत रूपया कमा लेगा। कई सारे दिव्यांग व्यक्ति ऐसे होते है, जो किसी न किसी गुण के कारण प्रतिष्ठित हो जाते हैं। आवश्यकता है तो सिर्फ उनको समझने की, संघर्ष को महसूस करने की–

"आधी हो या तूफान हो, रूख हवाओं को हम भी ताड़ सकते है।
मौका मिले तो आकाश में भी, कामयाबी के झण्डे गाड़ सकते हैं।।"[65]

'गौरापंत शिवानी' की कहानी 'अपराजिता' में लेखिका ने ऐसा जीवंत उदाहरण दिया हैं कि हौंसलें बुलन्द हो तो जिन्दगी में किसी भी ऊँचाई को छुआ जा सकता हैं। 'चन्द्रा' एक ऐसी लड़की है जिसका शरीर कमर से नीचे पूरा निःशक्त हैं। वह व्हील चेयर पर अपनी जिन्दगी काटती हैं। परन्तु हौंसला उस माँ का भी कम नहीं था जिसने हार न मानकर, उसे प्रेरित किया। जीवन में सार्थक करने के लिए न तो वह बेटी को बोझ मानती थी और न ही उसे महसूस होने देती। बल्कि हमेशा उसका हौंसला बढ़ाती रहती थी। "पाँव नहीं दिए तो क्या हुआ, विधाता ने जीवन तो दिया है। जीवन को सार्थक बनाना तो अपने हाथ में होता है।"[66] चन्द्रा पढ़ने में होशियर थी डॉक्टर बनना चाहती थी, लेकिन अपात्र करार दे दी जाती है, उसकी माँ हिम्मत नहीं हारने देती। फिर अपने बुलन्द हौंसलों के दम पर एक दिन वह फिजिक्स में डॉक्टरेट की उपाधि प्राप्त कर लेती हैं। इस कहानी के माध्यम से निःशक्तजन को आन्तरिक रूप से प्रेरित कर सकते हैं।

इस प्रकार 'छत्रपाल' की कहानी 'रोशनी से दूर' में एक पोलियों ग्रस्त बालक की पीड़ा व्यक्त हुई हैं। एक दिन उसके पिता किसी निःशक्त आदमी से मिलते है जो बैसाखियों पर चल रहा था उसने आग्रह किया कि वह एक दिन उनके घर चलकर उनके अपाहिज बच्चें को धैर्य प्रदान करे, ताकि उसमें भी जीने की इच्छा बढ़े पिता के याचना भरे शब्द कुछ इस प्रकार– "आप किसी दिन घर आकर उसे ढ़ाँढ़स बंधा जाऐं। असल में मैं पिछले कुछ दिनों से आप जैसे किसी आदमी की तलाश में था जो उसे जीने की प्रेरणा दें। सचमुच वह बहुत घबराया हुआ है, चलते–चलते रुक गये, चलेंगे न मेरे साथ।"[67] बनावटी पैर लगाने पर क्या वह फुटबॉल तो नहीं, पर इनडोर गेम वह अवश्य खेल सकेगा। वास्तव में वे उसे इस सच्चाई से अवगत कराना चाहते थे कि सभी चीजें गतिशील दिखेंगी और वह एक स्थान पर बंधा होगा, पूरी जिन्दगी नारकीयता को समर्पित होगी। शायद किसी दिन वह बच्चा यह भी पूछेगा कि चलना क्या होता है?

'नगेन्द्र नागदेव' की कहानी 'समापन' में जन्म से अपाहिज बच्चें की पीड़ा है। रीढ़ की हड्डी की खराबी के कारण बच्चा अपंग रहा। उसको उठाने पर उसके हाथ–पैर, गर्दन बेजान से

झूलने लगें थे। डॉक्टर ने उसके पिता को समझाया कि यह बच्चा ऐसा ही रहेगा, करवट भी नहीं बदल पायेगा और यह इसका संदेह है कि उसका दिमाक भी विकसित नहीं होगा। सुजाता और उसका पति दोनों बबलू के जीवन में किसी चमत्कार का इंतजार किया करते थे। महीनों दवाइयाँ चलती रही। वे सोचते थे कि यदि यह दशहरे तक कुछ ठीक हो जाए तो इसे रावण दिखाने लें जाऐगें। यदि कार्तिक में ठीक हुआ तो कार्तिक में घुमाने लें जाऐंगे, लेकिन एक के बाद एक त्योहार आकर चला गया पर बच्चा ठीक न हुआ। केवल डेढ़ साल के जीवन के बाद उसे मृत्यु प्राप्त हुई। विकास व विज्ञान के इस युग में भी ऐसे बच्चों की मौत को नियति मानकर मौन रहना पड़ता हैं। 'पानू खोलिया' की कहानी 'अन्ना' में भी एक बच्ची की करुण स्थिति अभिव्यक्त हुई हैं। प्रो. बसन्त की पुत्री अन्ना जब पाँच साल की थी तभी उसे अचानक फीट का दौरा आया और वह सीढ़ीयों से गिर पड़ी, जिससे उसका शरीर कमजोर व अपाहिज हो गया। तभी से बसन्त मेहता के परिवार को एक ही घटना ने उठाकर कॉलोनी का एक महत्त्वपूर्ण घर बना दिया। उसके जन्मदिन पर पिछले साल की अपेक्षा अधिक लोग आये और उसे फिर गहरा दौरा आया। उसकी भवें ज्यादा सिकुड़ गई, फिर कई दिनों तक बच्ची चारपाई पर निढ़ाल पड़ी रही। उसकी माँ बेटी की इस परिस्थिति से बहुत परेशान हो गई थी। डॉक्टर की सलाह पर जयपुर अस्पताल में पिता को भी साथ रहना पड़ा। उन्हें नौकरी से छुट्टी करनी पड़ी। बिना वेतन के आर्थिक स्थिति भी खराब हो गई।

एक दिन बच्ची ने करुण स्वर में पूछा—पापा! अब सबकी तरह कभी नहीं होंगे? हम मर जाऐंगे? बेटी की आवाज सुनकर पिता अवाक् रह गया। इसके पश्चात् वे लोगों के कहने पर उसे बाबा के पास ले गये, परन्तु वे वहाँ भी उसे ठीक नहीं कर पाए और बेटी मौत का ग्रास बन गई।

'अपाहिज बिमला बुलंदियों के शिखर पर', 'डॉ. चन्द्रावती नागेश्वर' इस कहानी की मुख्य पात्र बिमला पैरों से निःशक्त हैं। परिवार में 6—7 भाई—बहन होने के कारण उसके परिवार की आर्थिक स्थिति भी ठीक नहीं हैं। उसके पिता के पास 8—10 भैंसे और 3—4 गायें थी। दूध बेचकर गुजारा होता था। लेखिका उनके घर दूध लेने जाती थी। वह उसे पढ़ाने के लिए उसके पिता से कहती। बहुत समझाने पर पिता मान गये उसे स्कूल भेजने लगे पाँचवी कक्षा में द्वितीय स्थान प्राप्त किया। अब वह खाली समय में रद्दी से लिफाफें बनाने लगी जिससे उसे कुछ आमदनी भी होने लगी। जब बिमला का पाँचवी कक्षा का रिजल्ट आया तो लेखिका ने सुन्दर सी डायरी व पेन उपहार दिया—उसके प्रथम पृष्ठ पर लिखा था—

"प्रिय बिमला,
पांव नहीं तो क्या हुआ?

हौंसलों की तुम में नहीं है कमी।

मुसीबतों से न हारना कभी।

आँखों में हो बेबसी की नमी।।"[68]

बिमला के लिये डायरी की वह कविता जीवन मंत्र बन गयी। गाँव के नजदीक सरकारी स्कूल जिसमें बिमला पढ़ती थी। वह आठवीं कक्षा तक ही था। आठवीं के बाद उसकी पढ़ाई बंद हो गई। अब बिमला उदास हो गई क्योंकि वह आगे पढ़ना चाहती थी। उसने दसवीं की पढ़ाई प्राइवेट की, उधर लेखिका बिलासपुर चली गई। बिमला पत्र के माध्यम से खबर देती रहती थी। गर्मी की छुट्टियों में मेहन्दी लगाना और ब्यूटी पार्लर का कोर्स ज्वाइन कर लिया। अब उसके आय के साधन बढ़ गये। अब बिमला के पिता भी जंगल में भालू के हमले से अपाहिज हो गये। बुजुर्ग माँ–बाप और बिमला साथ रहे बाकि सभी भाई–बहन अपने–अपने बाल–बच्चों के साथ व्यस्त हो गये। माँ–बाप की जिम्मेदारी बिमला पर ही थी।

बाहरवीं पास करने के बाद बिमला को दिव्यांग कोटे से शिक्षाकर्मी की नौकरी मिल गई। उसका सपना था कि वह निःशक्त बच्चों के लिए स्कूल खोलें। फिर उसने 'नारायण संस्थान उदयपुर' के बारे में जानकारी मिली फिर वह अपने भाई के साथ उदयपुर चली गई। उसके पैरों का ऑपरेशन हुआ और बैसाखियों के सहारे चलने लगी। अब बिमला का सपना पूरा होने लगा। वह अपनी आय का 45 प्रतिशत राशि संस्थान में देती और स्वयं कम खर्चे से काम चला लेती। दस वर्ष के बाद 'चैती बाई निःशक्त विद्यालय' खोला। कलेक्टर साहब के हाथों उद्‌घाटन हुआ।

कई स्वयंसेवी, अर्द्धसरकारी, सरकारी संस्थाओं से आर्थिक सहायता मिलने लगी। बिमला को छत्तीसगढ़ स्थापना के दिवस पर राज्यपाल के द्वारा पुरस्कृत किया गया। जिसकी तस्वीर अखबार में देख आज लगा एक छात्रा की जिन्दगी संवारने में जो आंतरिक जुड़ाव था, वह सार्थक हो गया। लेखिका का विचार–अखबार पढ़ने के बाद।

'श्रीमति अंजना सिंह ठाकुर' की कहानी 'एक थी शकुन' में शकुन एक धनवान सेठ की पुत्री थी। उसके दो भाई व वह इकलौती बहन थी। पिता का अच्छा कारोबार था। दोनों भाई समय के अनुसार क्रीड़ाऐं कर रहे थे परन्तु शकुन चार साल में भी चल नहीं पाई। उसके माता–पिता उसे लेकर डॉक्टरों के चक्कर लगाते रहें। बस अब इतना फायदा हुआ कि वह बैसाखी के सहारे चल सकती थी। परन्तु शकुन में अपने आप में हीन भावना पैदा हो गई थी। वह एक कमरे में अपने–आपको बन्द करके रहती हैं। उसे किसी की खुशी–गमी से कोई मतलब नहीं हैं।

चाहरदीवारी ही उसकी जिन्दगी बन गई थी। दोनों भाई नौजवान हो गये थे। अब तीनों बाप–बेटों को शकुन की चिंता रहती थी। परन्तु अब सभी सोचने लगे की दो बहूएँ घर में आ गई तो शकुन की जिंदगी नरक बन जाएगी।

परन्तु हुआ कुछ उलटा बहू 'सुभा' शकुन को प्रोत्साहित करती थी। उसे आगे बढ़ने की हिम्मत देती। धीरें–धीरें शकुन की जिन्दगी में कुछ बदलाव दिखाई देने लगा। एक दिन वह अपनी भाभी के साथ बाजार जाने के लिए घर से निकली तभी एक नौजवान ट्रायसाइकिल पर आता हुआ नजर आता हैं। शकुन उसे और वह शकुन को देखता रहता हैं। दोनों नजर नहीं हटाते और फिर अचानक शकुन ने कहा भाभी अब जल्दी घर चलों। सुभा शकुन की स्थिति भांप गई और उसने उस आदमी को ढूँढा। जिसका नाम 'गोपाल' था। स्नातक तक पढ़ाई करने के बाद वह बैंक में जॉब करता हैं। ये जानकर सुभा खुश हुई फिर गोपाल और शकुन को मिलाया। दोनों एक–दूसरे को अच्छे से समझ सकते थे। अब घर वालों की इजाजत लेनी थी।

एक दिन खाने के समय जब सभी मौजूद थे तो सुभा ने पूरी कहानी बताई। तो तीनों बाप–बेटे उबल पड़ें। क्या हम अपनी बहन की देखरेख नहीं कर सकते सुभा के पति ने कहा। उसने सभी को धीरे–धीरे समझाया। यदि हम लाखों रुपये देकर किसी से शकुन की शादी करते हैं तो वह सिर्फ पैसों के लालच में रहेगा वह शकुन को कभी कुछ नहीं समझेगा। उसकी जिन्दगी नरक बन जायेगी। शादी निभाने के लिए नहीं एक–दूसरे का साथ देने के लिए होती हैं। एक निःशक्त व्यक्ति की पीड़ा वही समझ सकता है। जिसने उसको भोगा हैं। गोपाल भी इस पीड़ा को भोग चुका है और भोग रहा है तो उसे शकुन को समझने में कोई दिक्कत नहीं हैं। मैं यही चाहती हूँ कि शकुन एक तिरस्कृत जिंदगी न जी कर पूरे स्वाभिमान के साथ जीये। मेरा उद्देश्य बाबूजी, गोपाल और शकुन का विवाह कराने का हैं।

धीरें–धीरें सब मान गये आज शकुन और गोपाल का विवाह हैं। शकुन का चेहरा आज पथराया हुआ नहीं, वह तो गुलाब की तरह खिला हुआ है–

"आओ दोस्तों कुछ अनोखा कर जाऐं,
जो न सोचा किसी ने वह हम कर दिखायें।
उगते सूरज को तो करता हर कोई सलाम है
पंक्ति के अन्त में............
खड़ा है उसको भी जीना सीखाये, मुस्कुराना सिखाये।"[69]

इस प्रकार सुभा की तरह सभी को अपना कर्त्तव्य निभाना चाहिए।

'अरमान' कहानी 'मुकुन्द कौशल' द्वारा रचित– इस कथा में धनुष और दुलारी दोनों पति–पत्नी है और दोनों ही निःशक्त है। दोनों ने अपने जीवन में आरम्भ से लेकर अब तक संघर्ष किया हैं। धनुष एक गरीब मजदूर का बेटा था। जिनके माता–पिता की असमय मृत्यु के कारण वह अनाथ हो गया। वह पढ़ाई में बहुत तेज था। लेकिन अब उसके सपनों पर पानी फिर गया। अब वह वेल्डिंग का काम सीखकर अपना पेट भरता हैं। परन्तु बचपन से वह बाँये पैर से पोलियो ग्रस्त थे इस कारण और काम न कर सके और वेल्डिंग वाले काम में ध्यान लगाकर ईमानदारी से करता है। तो वह जल्द ही काम सीख जाता है और अपनी अलग दुकान बना लेता हैं। उसका काम अच्छा चलता हैं। उसी दौरान उसकी भेंट 'दुलारी' नामक औरत से होती है जिसका दायाँ हाथ लकवाग्रस्त हैं। एक सम्मेलन में उन दोनों की शादी हो जाती हैं।

दुलारी भी उस समय पढ़ाई करती थी, धनुष ने उसको मना नहीं किया। परन्तु जब वह माँ बन गई तो उसे अपनी गृहस्थी संभाली (किरन) बेटी पैदा हुई दोनों पति–पत्नी इसे देखकर बहुत खुश थे। उन्होंने और बच्चें न करने व 'किरन' को पढ़ाई में आगे ले जाने का संकल्प लिया दुलारी कहती है, "समय की गाज अगर असमय उन पर ना गिरी होती तो आज वे भी पढ़े–लिखें होते.... किन्तु किरन ने?....किरन ने तो उनके सारे अरमान पूरे कर दिये।"[70] वह आज कम्प्यूटर इंजीनियर बन गई हैं। इसलिए आज का दिन उनके लिए बहुत खुशी का हैं। सर्वाधिक अंक प्राप्त करके नगर का नाम रोशन करने वाली यशस्वी छात्रा किरन वर्मा के विषय में सूचना मिलते ही पत्रकार आ पहुँचें। उसने अपनी सफलता का सारा श्रेय अपने मम्मी–पापा को दिया। जबकि वे स्वयं निःशक्त थे लेकिन बेटी के हौंसलों को बनाए रखा।

इस प्रकार हिन्दी कहानियों में निःशक्त जीवन के दुःख–दर्द को सबके सामने उजागर करके, सभी को उनकी स्थिति से अवगत कराना साहित्यकार का उद्देश्य हैं। निःशक्तजन को बोझ नहीं समझना चाहिए। उसे सिर्फ प्रेरित करने की आवश्यकता हैं। लक्ष्य उसके हाथ में है, वह उसे पाने की हर सम्भव कोशिश करेगा। सरकार भी उनके हित में कदम उठा रही है परन्तु अभी तक उन्हें पूर्ण लाभ नहीं मिल पाया हैं। उन्हें आरक्षण देकर ज्यादा से ज्यादा सरकारी नौकरी की कोशिश की जा रही। इन लोगों के हित में अनेक प्रयास हो रहे हैं। साथ–ही मानसिकता को भी बदला जा रहा हैं।

(4) समकालीन कहानी में नारी निःशक्तता

समकालीन कहानीकारों ने वर्तमान समाज व वातावरण को अन्दर तक झांककर महसूस किया हैं। कहानी में समाज से उन पात्रों को लिया गया हैं। जिनकी तरफ जनता का ध्यान नहीं है

और वह वर्ग लगातार शोषण व उपेक्षा का शिकार हो रहा है, उन्हीं को मुख्य पात्र बनाकर समाज का दृष्टिकोण बदलने की चेष्टा रही हैं। नारी की निःशक्तता को देखते हुए किसी भी प्रकार का रोग मनुष्य के व्यवहार और आचरण को अवश्य प्रभावित करता हैं। रोग की अवधि कम हो या अधिक, रोगग्रस्त व्यक्ति का आचरण सामान्य नहीं होता। रोग दो प्रकार का होता है–एक शारीरिक, दूसरा मानसिक। मानसिक रोग के अन्तर्गत व्यक्ति का मानसिक संतुलन बिगड़ जाता है।

नारी की निःशक्तता पुरुष जाति से कुछ ज्यादा दुःखदायी होती है क्योंकि स्त्री के नाम से ही हर पुरुष को अपने लिए उससे बहुत कुछ पाने की लालसा रहती हैं। एक नारी सूर्य के साथ उठती है और रात को सब सो जाने के बाद स्वयं सोती हैं। वह दिनभर परिवार की इच्छापूर्ति में लगी रहती हैं। यही नारी जब निःशक्तता की शिकार हो जाती है तो वही परिवार जो हमेशा औरत से पाने की इच्छा रखने वाला, उसको देने के लिए कुछ नहीं रखता। पूरे परिवार का ध्यान रखने वाली का, पूरा परिवार ध्यान नहीं रख पाता। उसे केवल प्रताड़ना और उपेक्षा का शिकार होना पड़ता हैं। एक औरत का अपंग होना, पुरुष की बजाय ज्यादा कठिन रहता हैं। इन भावनाओं को बदलने के लिए समकालीन कहानीकारों ने कहानी का निःशक्त पात्र भी उसी स्त्री को बनाया हैं। जो लगातार उपेक्षा सहन करती आई है, दूसरी तरफ ऐसी महिलाऐं भी है जो दिव्यांग होने पर भी अपने हौंसलों से पुरुष जाति ही नहीं सम्पूर्ण मानव जाति को धूल चटा देती हैं।

इस प्रकार के कथाकार व कथा जिनमें दिव्यांग नारी का चित्रण है निम्न है– 'ममता कालिया' का कहानी संग्रह 'सीट नम्बर छह' की कहानी आजादी–ऐसी औरत की कहानी हैं। जो बुजुर्ग है और एक पैर से निःशक्त दूसरे पैर में लगातार दर्द रहता हैं। जिसका वह घरेलू उपचार करती रहती हैं। वह हमेशा दर्द से कहराती रहती है परन्तु परिवार का कोई भी सदस्य उसकी तरफ ध्यान नहीं देता। उसका पति हमेशा उससे झगड़ता रहता हैं। जब वह शहर में आये हुए अच्छे डॉक्टर की खबर सुनती हैं। तो वह स्वयं को भी डॉक्टर के पास दिखाने के लिए कहती है तो उसका पति कहते हैं कि– 'तुम्हें कौन–सा ब्याह रचाना है अच्छे डॉक्टर की फीस भी अच्छी होगी।'

उस परिवार में सिर्फ उसकी पोती मुन्नी ही अपनी दादी की तरफ ध्यान देती है। एक दिन आजादी के दिन उसकी पोती सफेद कपड़े पहनकर तैयार हुई तो दादी ने पूछा मुन्नी आज तुमने सफेद कपड़े क्यों पहने हैं। मुन्नी कहती है दादी आज स्वतंत्रता का दिन हैं। आज के दिन हमें आजादी मिली थी। दादी कहती हैं। मुन्नी मेरे लिए थोड़ी–सी आजादी लें के आना पुड़ियाँ में

बाँधकर पोती स्कूल जाती हैं। राष्ट्रगान के बाद उन्हें पताशे मिलते हैं। वह उन पताशों को स्वयं न खाकर अपनी दादी के लिए लाती हैं। जैसे ही वह घर पहुँचती तो दादी की कोठरी में जाकर दादी–दादी चिल्लताी हैं। परन्तु दादी नहीं उठती। क्योंकि दादी को आजादी मिल चुकी थी।

'गौरापंत शिवानी' की कहानी 'सौत' में कहानी की मुख्य पात्र 'नीरा' भी अपने पति के द्वारा उपेक्षित होकर अपना मानसिक संतुलन खोकर, पागल हो जाती है। 'नीरा' शहर में अपने पति के साथ रह रही है। वही उसके बगल में 'राज्यम' नामक औरत रहती है। राज्यम नीरा की अच्छी दोस्त बन जाती है परन्तु धीरें–धीरें वह नीरा की दोस्ती की जगह उसके पति के प्रति आसक्त होकर नीरा को धोखा देती है। नीरा को कोई खबर नहीं है कि हो क्या रहा है, जब नीरा की भाभी उससे मिलने आती है। तो वह उसे अपने पति के प्रति सचेत होने की चेतावनी भी देती है परन्तु भोली नीरा नहीं समझ पाती है और मौका पाकर 'राज्यम', 'नीरा' के पति के साथ फरार हो जाती हैं। नीरा का मानसिक संतुलन गड़बड़ा जाता हैं। उसके भाई–भाभी अपने पास ले आते हैं परन्तु वह वहाँ आकर भी स्वयं को एक कमरे में बन्द कर लेती है। जब डॉक्टर को दिखाया तो उन्होंने कहा– "दिमाक का मर्ज है, किसी दिमाक के डॉक्टर को दिखाइए। ह्रदय पर कोई भारी आघात लगा है।"[71]

इस कहानी में स्वयं के पति के द्वारा ऐसा छल हुआ है कि वह सहने में असमर्थ है और पत्थर की मूर्ति बनकर बाकि नरक जैसी जिन्दगी बिताने को मजबूर हैं।

'माधुरी मिश्र' की कहानी 'मिलन' एक ऐसी ही औरत की है जो अपने पति की याद में मानसिक संतुलन खोकर पागल हो जाती हैं। इस कहानी में 'कृष्णा चाचा' की शादी 'मीना' से हुई। परन्तु शादी कम उम्र में होने के कारण उन्हें मिलने नहीं दिया। एक दिन कृष्णा चाचा ने अपनी पत्नी से मिलने की जिद्द की परन्तु वह सफल न हो सका तो उसने जहर खाकर आत्महत्या कर ली। सारे घर में रोना–पीटना शुरु हो गया परन्तु उनकी पत्नी को समझ नहीं आ रहा था कि हो क्या रहा है। फिर उसको कहा कि चलो अपने पति के अन्तिम दर्शन कर लो, तब उसने पहली बार पति का नाम सुना अब अन्तिम दर्शन का मतलब नहीं समझ पा रही थी।

उसके बाद उसे धारण करने के लिए सफेद वस्त्र दें दिये और खुशी के मौके में शामिल न होने का आदेश दिया। घर वाले उसके साथ मार पिटाई भी करते हैं। अब वह धीरें–धीरें समझदार होने लगी तो वह अपने पति के लिए जोर–जोर से रोती। घर वाले उसे पागल कहने लगे। एक दिन वह घर से निकलकर शमशान में जाकर अपने पति की हड्डियाँ बीनकर ले आती है और कहती है मेरा पति इन्हीं हड्डियों में हैं। उसके बाद घर वाले उसे लोहे की जंजीर से बांधकर

रखने लगे। गाँव की वसुधा नाम की लड़की उनके घर आती जाती हैं। तो वह कृष्णा चाची से थोड़ी बात कर लेती है तो वह खुश हो जाती है। वह वसुधा से कहती है। जो "मैं ये हड्डियाँ लाई हूँ इन्हीं में तुम्हारे चाचा है उन्होंने कहा है कि मैं इन्हीं में हूँ और तुम्हें पता है हमारे बच्चें भी है लेकिन उन्होंने कहा जब हमारा मिलन होगा तब हमारे बच्चें होंगे। जिस दिन तुम आओगी मैं घर सजाऊँगा, पलंग सजाऊँगा और अपने हाथों से उठाकर घर में लाऊँगा............।"[72] इस प्रकार वह वसुधा से ही अपने मन की बात कहती हैं। वह कहती है जब मेरी मृत्यु हो तब मुझे भी वहीं जलाना जहाँ तुम्हारे चाचा को जलाया गया था। उसका मानना है कि मृत्यु के बाद उन दोनों पति–पत्नी का मिलन होगा, वहाँ कोई रोकने वाला नहीं होगा।

'गौरा पंत शिवानी' की प्रसिद्ध कहानी 'अपराजिता' की प्रमुख पात्र 'चन्द्रा' जिसका कमर से नीचे का पूरा हिस्सा निष्प्राण हैं। वह चलने–फिरने में असमर्थ है। उसकी माँ हौंसलों के बीज अंकुरित करके अपनी बेटी के भविष्य को आगे बढ़ाती हैं। "पाँव नहीं दिए तो क्या हुआ, विधाता ने जीवन तो दिया है न जीवन को सार्थक बनाना तो अपने हाथ में होता हैं।"[73] उसका डॉक्टर बनने का सपना है परन्तु निःशक्त होने के कारण उसे अपात्र घोषित कर दिया गया हैं। उसकी माँ उसे हार नहीं मानने देती और फिजिक्स में पी.एच.डी की डिग्री हासिल करती हैं।

शिवानी ने 'अपराजिता' की नायिका 'चन्द्रा' की उससे तुलना कर समाज को संदेश देना चाहती है कि यदि दिव्यांग जन भी उन्नति के मार्ग पर बढ़ने की ठान लें तो बड़ी से बड़ी उपलब्धि हासिल कर लेता है–इस दृष्टव में कुछ पंक्तियाँ–

"तन विकलांग है तो क्या मन को फौलाद बनाना है।
दृढ़ आत्मविश्वास से स्वयं को आगे बढ़ाना है।
तन की कमियों से घबरा मायूस न होना कभी बृजेश
मायूसी का काम अवसाद उपजाना है।"[74]

इस प्रकार दृढ़ इच्छा, अद्भुत धैर्य व लगातार प्रयास के बल पर निःशक्तता पर भी विजय प्राप्त की जा सकती हैं।

'मैत्रेयी पुष्पा' की कहानी 'सहचर' में भी बंशी अपनी निःशक्त पत्नी को हार नहीं मानने देता उसमें हीन भावना पैदा नहीं होने देता। वह अपनी दिव्यांग पत्नी की सेवा दिल से करता हैं। दूसरी शादी करने की सलाह देने वालों से झगड़ा कर देता हैं। यहाँ पत्नी–पति का अगाढ़ प्रेम दिखा हैं। प्यार के बीच में निःशक्तता भी बाधा नहीं बनती। रिश्ते दिल से जुड़ते हैं स्वार्थ के लिए नहीं। यह इस छोटी सी कहानी ने दर्शा दिया हैं।

'डॉ. विनोद कुमार वर्मा' की कहानी 'मछुआरे की लड़की' में कहानी की पात्र दाहिनें पैर से निःशक्त है उसका नाम सरस्वती है जो एक मछुआरे की कन्या हैं। नर्मदा की भीषण बाढ़ में फंसे सौ लोगों की जान, अपने पिता के साथ रात के अंधेरे में बचाती हैं। इस वीरता के लिए उसे गणतंत्र दिवस पर पुरस्कार भी दिया जाता हैं। परन्तु मनुष्य किसी के उपकार को थोड़े ही दिन याद रखता है, तो वह त्याग भी विस्मृति के गर्त में चला जाता हैं। क्योंकि समाज की प्रकृति ही ऐसी है कि त्याग और बलिदान को अधिक समय तक याद नहीं रख सकता। "प्रियवंदा सरस्वती? अनपढ़, निपट, गंवार और पगली......और वह देश परदेश में मिले–मान–सम्मान और समालोचकों की उपमाओं से बेखबर नर्मदा के थपेड़ों, बाबूजी की झिड़कियों और रोजमर्रा की समस्यों से जूझती, विस्मृति के कुहासे में कहीं खो गई।"[75] अर्थात् आज जब उसे जरुरत है तो कोई पूछने वाला नहीं हैं। जबकि उसने दूसरों की सेवा में अपनी जान जोखिम में डाली थी।

'भीष्म साहनी' की कहानी 'कण्ठहार' भी एक निःशक्त लड़की की हैं। जो अपने माँ–बाप के द्वारा ही उपेक्षित हैं। उसके माता–पिता, मालती और रमेश है, लड़की सुषमा हैं। वे अपनी निःशक्त लड़की की भावनाओं को नहीं समझते। जब उसे डॉक्टर को दिखाने ले गए तब डॉक्टर ने कहा इसकी बीमारी असाध्य है यह कभी ठीक नहीं हो सकती, तब उसकी माँ को लगा की उसे पटक कर मार दें। अब सुषमा पन्द्रह साल की हो गई उसकी टाँगें सूख गई। वह पलंग पर पड़ी रहती हैं। उसकी माँ के ह्रदय में बेटी के लिए ममता की जगह ही नहीं वह उसकी तरफ ध्यान न देकर पार्टी में जाने के लिए कंठहार पहनती है और बार–बार आइने में देखती हैं। जब लोग उसे कहेंगें की कितने का आया है तो वह शान से कहेगी पाँच हजार का।

यहाँ लोगों का झूठा दिखावा व स्वार्थ भाव दृष्टिगत हैं। अपनी बेटी की स्थिति की तरफ ध्यान न देकर सुषमा की माँ अपनी झूठी शान के लिए उत्तेजित हो रही हैं। 'ममता कालिया' का कहानी संग्रह 'सीट नंबर छह' की कहानी 'उपलब्धि' इस कहानी के मुख्य पात्र एक दंपती है प्राची और चेतन हैं। इनका एक इकलौता बेटा है बबलू। मुसलमानों का कोई प्रसिद्ध त्योहर चल रहा था। जुलूस निकाला जा रहा था। सभी लोग काले कपड़े पहनकर रोज शाम से शुरु होकर, टोला, कोल्हन, रानी मण्डी से जुलूस गुजरता। ऐसा चार–पाँच साल से लगातार हो रहा था। चेतन परिवार इसका अभयस्त हो चुका था। सभी औरतों के साथ प्राची भी बारजे पर खड़ी थी। सभी नीचे चल रहे जुलूस को देखने में व्यस्त थे। इसी दौरान प्राची रसोई में चली गई। वापिस आई तो देखा वहाँ भगदड़ मच गई। प्राची ने दौड़कर अपने बबलू को ढूँढा। उसे वहाँ कहीं पर भी बबलू नहीं मिला। वह बबलू–बबलू चिल्लाती रही। अपने बेटे बबलू को न पाकर दोनों पति–पत्नी परेशान हो गये। तभी पड़ोस की गूंगी–बहरी शहनाज आकर प्राची का पल्लू पकड़ लेती है और उसे मोती

महल ले गई। वहाँ मंझली बी कोठी से निकलकर आई और कहती है इतना मत घबराओं बबलू को हम ले आये थे। तब दोनों पति–पत्नी ने उनका शुक्रिया अदा किया। प्राची ने दौड़कर बबलू को अपनी छाती से चिपका लिया। अब वे दोनों खुश हैं। क्योंकि एक गूंगी–बहरी शहनाज की वजह से उन्हें अपना बेटा मिल गया था। जो सभी की उपेक्षा का पात्र बनते हैं वही लोग मुसीबत की घड़ी में हमारे काम आ सकते हैं।

'ममता कालिया' की कहानी 'फर्क नहीं' इस कहानी में एक निःशक्त पात्र 'प्रमिला अरोडा' रिसर्च असिस्टेन्ट' है जो नायिका के घर में किराये के कमरे में रहती हैं। इस कहानी की नायिका का दादाजी महीने की दो तारीख आते ही चील की तरह उसके कमरे के चारों तरफ मंड़राने लगते हैं जो उसे पसन्द नहीं हैं। नायिका उसके साथ उठती–बैठती है जो उसकी माँ को पसन्द नहीं है क्योंकि उसके पैरों की अँगुलियों और पिण्डलियों पर सफेद दाग हैं। मेरी माँ इसे छुतहा बीमारी मानती थी जबकि मुझे अक्सर ख्याल भी न आता था कि उसका शरीर विकार ग्रस्त हैं। लेखिका स्वयं भी कहती है कि मुझे समझ नहीं आता कि समाज मनुष्य के बाह्य विकार को देखकर घृणा क्यों करता है जबकि जिसका मन सुन्दर है तो काया का कोई मोल नहीं रहता।

'श्रीमती रेखा पालेश्वर' की कहानी 'विकलांग बेटा–बेटी का खोना' इस कहानी की मुख्य पात्र 'प्रमिला ठाकुर' हैं। जिसके दो बच्चें निःशक्त हैं। वह कहती है जब उसका पहला बेटा रघुवीर पैदा हुआ तो घर में खुशी का माहौल था। परन्तु जैसे–जैसे रघुवीर बड़ा हुआ उसका शरीर असामान्य दिखने लगा पेट व सिर का आकार बढ़नें लगा माँ–बाप डॉक्टरों के चक्कर लगाने लगे किन्तु कोई फायदा नहीं हुआ। ऐसे ही छह साल गुजर गये तभी उनको एक बेटी अंजुला पैदा हुई। वह भी अपने भाई की तरह असामान्य थी अब तो मानों माँ–बाप के ऊपर पहाड़ टूट पड़ा हो। अब दोनों को लेकर वे एक साथ डॉक्टरों के चक्कर लगाने लगे। तभी उनके दो बच्चें और पैदा हुए अन्नपूर्णा व प्रदीप। वे दोनों सामान्य थे। माँ–बाप डॉक्टरों के चक्कर लगाते रहते थे उनके पास छोटे दोनों बच्चों को संभालने का समय ही नहीं था। इसलिए वे दोनों समय से पहले ही समझदार हो गये।

समय गुजरता रहा परन्तु उनकी स्थिति में कोई सुधार नहीं हुआ। रघुवीर जब 23 वर्ष का होने वाला था वह इस संसार से चल बसा। अब पूरा ध्यान माँ–बाप का अन्नपूर्णा पर था। परन्तु वह भी अपने भाई की तरह 23वाँ वर्ष में पैर रखते ही संसार छोड़ गई। दोनों माँ–बाप रोते रह गये। आज उनका भरा–पूरा परिवार खुशी से रहता हैं। परन्तु माँ–बाप को फिर भी रघुवीर व अन्जुला की कमी महसूस होती हैं। क्योंकि बच्चे माँ–बाप के लिए कभी बोझ नहीं होतें।

'पानू खोलिया' की कहानी 'अन्ना' में एक निःशक्त बच्ची हैं। प्रो. बसन्त की पुत्री (अन्ना) को एक दिन अचानक 'फीट' का दौरा आया। वह सीढ़ियों से गिर गई। जिसके कारण उसका शरीर कमजोर व निःशक्त हो गया। कुछ दिन बाद उसे फिर गहरा दौरा आया। उसकी भवें ज्यादा सिकुड़ गई, फिर कई दिनों तक चारपाई पर निढ़ाल पड़ी रही। उसकी माँ अपनी बेटी की इस स्थिति के कारण काफी परेशान थी। जब डॉक्टर ने अन्ना के पिता को कुछ समय अन्ना को अस्पताल में रुकने के लिए कहा तो पिता ने वो भी किया। एक दिन बेटी ने करुण स्वर में पूछा—पापा! अब सबकी तरह नहीं होंगे? हम मर जाएंगे? बेटी की आवाज सुनकर पिता आवाक् रह गया। इसके बाद वे लोगों के कहने पर लड़की को बाबा के पास ले गए। परन्तु उसे कोई नहीं बचा पाया। कहानी के माध्यम से पानूखोलिया ने चित्रित किया है कि मिरगी, दौरे, हिस्टीरिया, फिटस, बेहोशी कुछ शब्द है जो सारी खुशियाँ छिन लेता हैं।

'डॉ. चन्द्रावती नागेश्वर' की कहानी 'बुलंदियों के शिखर पर बिमला' इस कहानी की मुख्य पात्र बिमला निःशक्त हैं। इसके परिवार में 6–7 भाई–बहन होने के कारण परिवार की स्थिति ठीक नहीं है, उसके पिता के पास 8–10 भैंसे और 3–4 गायें थी। दूध बेचकर उनका गुजारा होता था। लेखिका उनके घर पर दूध लेने जाती थी। उन्होंने बिमला के पिता से उसे पढ़ाने के लिए कहा, पिता ने मना कर दिया। परन्तु बहुत समझाने पर वे मान गये। बिमला स्कूल जाने लगी पाँचवी कक्षा में द्वितीय स्थान प्राप्त किया।

दसवीं की पढ़ाई उसने प्राइवेट से की, उधर लेखिका बिलासपुर चली गई। वह लेखिका को पत्र के माध्यम से जानकारी देती रहती थी। इस बार गर्मी की छुट्टियों में उसने ब्यूटी पार्लर का काम सीख लिया था। अब वह बच्चों को ट्यूशन पढ़ाती और कुछ काम पार्लर का कर लेती थी तो आमदनी अच्छी होने लगी। एक दिन उसके पिता पर जंगल में एक भालू ने हमला करके घायल कर दिया। बच तो गया परन्तु वह अपाहिज बनकर चारपाई में पड़नें को विवश हो गया। वह दिव्यांग आरक्षण से शिक्षाकर्मी में नौकरी लग गई। परन्तु उसका एक सपना था निःशक्तों के लिए स्कूल खोलें। उसने 'नारायण सेवा संस्थान उदयपुर' के बारे में सुना और अपनी नकली टाँगे लगवाकर बैसाखी के सहारे चलने लगी। उसका सपना पूरा होने लगा वह अपनी आय का 45% राशि संस्थान में देकर बाकि से अपना काम चलाती। दस वर्ष के बाद 'चैती बाई निःशक्त विद्यालय' खोला। जिसका उद्घाटन कलेक्टर साहब के हाथों से हुआ।

अखबार में ये खबर पढ़ने के बाद लेखिका को लगा— 'जिसकी तस्वीर देखकर आज लगा, एक छात्रा की जिंदगी संवारने में जो आंतरिक जुड़ाव था वह सार्थक हो गया।'

'श्रीमति अंजना सिंह ठाकुर' की कहानी 'एक थी शकुन' की पात्र शकुन चार साल की होने पर भी चल न सकी। जिससे उसकी माँ की चिन्ता ज्यादा बढ़ जाती हैं। पूरा परिवार खुश था बेटे नौजवान हो गये पिता के कारोबार में हाथ बँटाने लगे परन्तु जैसे ही वे शकुन को देखते तो पूरा परिवार उदास हो जाता शकुन अपने आपको को एक कमरे में बंद रखती हैं। न तो वह किसी की खुशी में शामिल होती और न ही बाहर की दुनिया से कोई मतलब हैं। चाहरदीवारी में अपनी जिन्दगी को कैद कर लिया हैं। अब लड़कों की शादी हो गई सभी सोचते हैं कि अब बहुएँ घर में आ गई तो पता नहीं शकुन की क्या दुर्दशा होगी।

परन्तु सभी ने सोचा था वैसा कुछ नहीं हुआ। बहू सुभा तो शकुन को प्रोत्साहित करती थी। वह उसे घर की चाहरदीवारी से बाहर निकलने के लिए प्रेरित करती हैं। धीरें–धीरें उसका असर दिखने लगता हैं।

सुभा शकुन व गोपाल को मिलवाकर उनकी शादी की बात करती हैं। गोपाल व शकुन के खुश होने पर वह परिवार को भी मना लेती हैं। धीरें–धीरें करके पूरा परिवार राजी हो गया। आज शकुन व गोपाल का विवाह है। शकुन का चेहरा आज गुलाब की तरह खिला हुआ हैं।

'ममता कालिया' की कहानी संग्रह 'छुटकारा' में बीमारी नामक कहानी की नायिका को किड़नी में इंफेक्शन हो जाता है, अब उसे सांस लेने में दिक्कत होती हैं। वह शहर में अकेली रहती हैं। जब वह काम करने में असमर्थ हो जाती हैं। तो अपने भाई–भाभी को मदद के लिए बुलाती है। भाभी का व्यवहार इतना बेढंगा है कि वह स्वयं से कहती हैं, "मुझे स्वयं पर गुस्सा आ रहा है भावुकता के क्षण में मैंने भाई को चिठ्ठी लिखी थी कि मैं कितनी बीमार और अकेली हूँ।"[76] उसका भाई उस पर किये गये खर्च का बिल बनाकर उसके हाथ में रख देता है, वह बदले में उसे चैक देती हैं। बाद में उसे अस्पताल में रहकर ही इलाज करवाना पड़ता हैं। भाभी उसकी बीमारी को भी शक की दृष्टि से देखती हैं।

'ममता कालिया' की दूसरी कहानी 'काके दी हट्टी' के अन्तर्गत 'अभिधा नामक नायिका' आँखों की समस्या से परेशान हैं। पढ़ाई–लिखाई करने वाली अभिधा की आँखों में पानी बहता रहता हैं। जिससे चश्मा जल्दी गीला हो जाता हैं। "कहाँ वो पचास पृष्ठ पढ़ा करती थी, वह आज पाँच पृष्ठ भी ठीक से नहीं पढ़ पाती।"[87] जब वह इलाज कराने डॉक्टर के पास जाती है तो डॉक्टर आँखें जाँचकर उसकी आँख के कोर में सुई चुभा देता हैं। जिससे वह बिना इलाज करवाये डरकर भाग जाती हैं।

'ममता कालिया' का कहानी संग्रह 'निर्मोही' के अन्तर्गत 'मुन्नी' कहानी की मुख्य पात्र मुन्नी न जाने कितनी बिमारियों की शिकार हैं। रात–दिन खाँसती है वह इतनी कमजोर हो जाती है कि चल भी नहीं सकती। उसके अपाहिज होने के पीछे उसकी दादी का अंधविश्वास हैं। दादी उसे पोलियों के टीके नहीं लगवाने देती। दादी की लापरवाही के कारण मुन्नी पुरी तरह से पोलियों की शिकार हो गई हैं। अब वह एक पाँव घसीट–घसीटकर चलती है, उसके पिताजी कहते हैं, निःशक्त होने पर भी मुन्नी पढ़ाई में बहुत तेज है वह पढ़ाई में हमेशा प्रथम आती हैं। फिर भी कहानीकार ने मुन्नी को हार नहीं मानने दिया हैं।

इसी प्रकार 'कुलदीप बग्गा' की कहानी 'पोलियो' में एक पोलियो ग्रस्त लड़की मणिका बहुत ही सुन्दर व शील स्वभाव वाली है परन्तु उसकी चाल को देखकर सभी का मुँह लटक जाता हैं। कहानीकार ने उसी के शब्दों में कहा है, "कुछ लोग मेरे साथ सहानुभूति बतलाते हैं, अपने भीतर घिनौना दिल रखने का प्रमाण देते हैं। मुझे ये घिनौना शब्द पिटी लगता हैं।"[78] मनीष नाम का लड़का मणिका से प्यार करता हैं। वह उससे शादी भी करना चाहता हैं। परन्तु वह मणिका से अपनी माँ को मिलवाने लाता है तो उसकी माँ मणिका को देखकर खुश हो जाती हैं। परन्तु जैसे ही मणिका उठकर चलती है तो उसकी माँ का चेहरा बदल जाता हैं। जबकि मनीष अपनी माँ को शादी के बाद ये बताने वाला था परन्तु अब वह वही करेगा जो उसकी माँ कहेगी। अब घर वाले भी मणिका की शादी का विचार छोड़ देते हैं, सोचते हैं निःशक्त को शादी की क्या जरुरत हैं। मणिका अन्दर ही अन्दर टूटने लगती हैं। जबकि और कोई भी उसकी तरफ ध्यान नहीं देता।

इस प्रकार एक स्त्री हमेशा अपने त्याग, बलिदान, ममता व दयालुता के कारण सर्वोपरि रही हैं। क्योंकि जो त्याग एक स्त्री कर सकती है वह त्याग पुरुष जाति कभी नहीं कर सकती। यही उद्देश्य होना चाहिए कि एक इंसान के लिए इंसान होना काफी नहीं है उसमें मनुष्यत्व भी होना जरुरी हैं। दिल पिघलता हैं। पत्थर कभी नहीं पिघलते, यही समाज की विडम्बना रही है कि एक मनुष्य के साथ भी पशुओं जैसा व्यवहार किया जाता हैं। उन निःशक्तजनों की भावनाओं को समझने की बजाय उनका उपहास उड़ाया जाता हैं।

(5) समकालीन कहानी में निःशक्तता के विविध रूप

समकालीन कहानी में निःशक्तजन को स्थान दिया गया है, उनकी समस्या को केन्द्र में रखकर कहानी का मुख्य पात्र बनाया हैं। उनकी समस्या से मानवीय भावना को दृष्टिगत किया जाता है। निःशक्त होने की वजह कोई भी सकती है, जैसे–जन्म से पूर्व, प्रसव के समय और प्रसव होने के बाद के समय में। जन्म से पूर्व गर्भावस्था में अगर किसी बीमारी का शिकार हो या भ्रूण की

विकास संबंधी दुर्घटना हो तो बच्चा अपंग पैदा हो सकता हैं। इसके बाद यदि प्रसव काल में ऑक्सीजन की कमी या समय से पहले पैदा होता है तो ये समस्या हो सकती हैं। इनके अलावा कोई बच्चा या व्यक्ति दुर्घटना, संक्रमण या अन्य किसी बीमारी का शिकार हो तो वह निःशक्त हो सकता हैं। श्रवणहीनता, दृष्टिहीनता, शरीर के किसी अंग में कमी होना, अविकसित मानसिकता आदि अपंगता के अन्तर्गत आता हैं। किन्नर वर्ग भी अंगहीनता की श्रेणी में ही आता हैं। समकालीन कहानियों में भी दिव्यांग जन के विविध रूपों का वर्णन हुआ हैं।

(अ) शारीरिक निःशक्तता

शरीर में किसी भी प्रकार का विकार, किसी विशेष अंग का न होना या फिर विकृत होना शारीरिक अपंगता कहलाती हैं। शारीरिक रूप से निःशक्तजन अपने कार्य को एक सामान्यजन के बराबर नहीं कर सकता। सामान्यजन की तुलना में निःशक्त व्यक्ति को समायोजन में विभिन्न समस्याओं का सामना करना पड़ता हैं। निःशक्त होने के कारण शारीरिक दोष को ध्यान में रखते हुए उन्हें विभिन्न प्रशिक्षण दिये जाने चाहिए। निम्न कहानियों में शारीरिक निःशक्तता का वर्णन है–

'गौरा पंत शिवानी' की कहानी 'पुष्पहार' का पात्र सूबेदार एक पैर से अपंग हैं। इसलिए उसकी पत्नी सभी काम करती हैं। घर से बाहर जाने–आने के कारण वह गैर पुरुषों से संबंध भी बना लेती हैं। जिसका उसके पति सूबेदार को बहुत दुःख होता है। वह सिर्फ बेबसी के आँसू बहाता हैं। 'राजेन्द्र कौर' की कहानी 'लुंज के बाबूजी' इस कहानी के मुख्य पात्र इन्दु के पिता को कैंसर के कारण अपनी एक बाँह कटवानी पड़ती हैं। "वह सोचता था कि अपनी बेटी इन्दु को बहुत पढ़ाऊंगा लिखाऊंगा। परन्तु अब उसको लग रहा है वह शायद मेरे दफ्तर में ही क्लर्क बनकर रह जाएगी और फिर किसी से ब्याही जाएगी।"[79] अब उनका स्वभाव बदलने लगा हैं। उन्हें स्वयं को लगने लगा है कि वह निःशक्त हैं।

'गिरीराजशण अग्रवाल' की कहानी 'परकटा परिंदा' में विभु का बायाँ पैर बस दुर्घटना में कट गया। अब वह बच्चा जब दूसरों को खेलता देखता है तो उसके मन में उड़नें की लहर उठती हैं। वह अपनी दीदी से बातें करता है कृत्रिम टांगे भी वास्तविक लगेगी, कोई उसे ऐसे नहीं देखेगा जैसे मैं कोई अजूबा हूँ। 'तुलसी देवी तिवारी' की कहानी 'शाम के पहले की स्याही' में अमिता और मिसरी पति–पत्नी हैं। उसकी पत्नी अमिता करन्ट लग जाने से निःशक्त हो जाती हैं। उसका पति दूसरी औरत से शादी करता है। वह भी मानसिक संतुलन खो देती हैं। अब मिसरी का जीवन दुभर हो जाता है। उसके जीवन में दो–दो औरत निःशक्त हो जाती है। 'सूर्यबाला' की कहानी 'फरिशते' में 'मटरुआ' मुख्य पात्र हैं। यहाँ शोषक और शोषित वर्ग के माध्यम से दिखाया गया है कि मटरुआ

के पिता को शोषणकर्ता जेल भेज देता है उसकी माँ को अपने घर पर नौकरानी रख लेता है और मटरुआ को पेड़ की पतली टहनी पर चढ़ा देता है जिससे वह पेड़ से गिरकर निःशक्त हो जाता हैं। उसके बेटे को खुश करने के लिए मटरुआ को अपनी जिन्दगी दांव पर लगानी पड़ी।

'निश्तर खानकाही' की कहानी 'आधा हाथ पूरा जीवन' की पात्र मीरिया साइमन मुख्य पात्र हैं। वह कुछ बदमाशों का शिकार होने के कारण निःशक्त हो जाती हैं परन्तु जिन्दगी में हार नहीं मानती, अब उसने बाएँ हाथ से टाइपिंग सीखकर एक अच्छी टाइपराइटर बन जाती हैं।

'सच्चिदानन्द धूमकेतू' की कहानी 'जिजीविषा मरी हुई' का पात्र गोंविदा हैं। जो अच्छी मेहनत मजदूरी करके खाने वाला व्यक्ति हैं। एक दिन ठेकेदार के यहाँ काम करते हुए जब वह तीसरी मंजिल पर बोझा लेकर चढ़ रहा था। तब फिसलकर गिरने से उसकी रीड की हड्डी व पसलियाँ टूट गई। अब वह निःशक्त होकर चारपाई में पड़ा हुआ हैं। उसकी पत्नी की मृत्यु कुछ समय पहले ही हो चुकी थी। अब उसका एक बेटा रमना है जो कुछ माँगकर लाता है और दोनों खाते हैं एक दिन उसे कुछ नहीं मिला तो केकड़े भूनकर खा लिये जिससे गोविंदा की मृत्यु हो गई। उसका बेटा रमना रह जाता। वह सोचता है कि ठेकेदार व कोई सरकारी सहायता उसे मिले। 'डॉ. इन्द्र बहादुर' की कहानी 'विमल' हैं। जिसका पात्र विमल रेलवे दुर्घटना में अपने परिवार सहित दोनों पैर गंवा देता हैं। परन्तु वहीं विमल एक इनामी डकैत को पकड़वाने में मदद करता हैं। ट्रेन में होने वाली डकैती से लोगों की सहायता करता हैं। वह काम जो एक सशक्त आदमी न कर सकता है वही काम एक निःशक्त व्यक्ति ने कर दिखाया।

'ममता कालिया' का कहानी संग्रह 'सीट नम्बर छह' की कहानी 'आजादी' में निःशक्त व बुजुर्ग पात्र है। जिसके एक पैर में हमेशा दर्द रहता और दूसरे से दिव्यांग हैं। घर के सभी सदस्य उसकी उपेक्षा करते हैं। उसकी तरफ मुन्नी के सिवाय कोई ध्यान नहीं देता। वह अपनी पोती को आजादी के दिन थोड़ी सी आजादी पुड़ियाँ में बाँधकर लाने को कहती है और जब मुन्नी स्कूल से आती है तो दादी उसे हमेशा के लिए सोई मिलती हैं। दूसरी कहानी 'उपलब्धि' में 'ममता कालिया' ने गूंगी–बहरी शहनाज नामक पात्र का वर्णन किया हैं। जो गूंगी–बहरी होने पर भी अपने तेज दिमाक के कारण बबलू को उसके माता–पिता से मिलवाती हैं। 'भीष्म साहनी' की कहानी 'कंठहार' की निःशक्त पात्र 'सुषमा' चलने–फिरने में निःशक्त हैं। घर में उसकी तरफ कोई ध्यान नहीं देता घर के लोग ही उसे उपेक्षा की दृष्टि से देखते हैं। स्वयं उसकी माँ पार्टी में जाने के लिए जो कंठहार पहनती है उसे बार–बार आइने में देख रही है सोच रही है जब उससे पूछा जाएगा हार कितने रुपये का है तो वह शान से कहेगी पाँच हजार का हैं। बेटी की इच्छा को बिल्कुल नजर

अंदाज करती हैं। 'डॉ. विनोद कुमार वर्मा' की कहानी 'मछुआरे की लड़की' इस कहानी की मुख्य पात्र सरस्वती एक पैर से निःशक्त हैं। जब वह अपने पिता के साथ मिलकर बाढ़ में फंसे लोगों की सहायता करती तो उसे पुरस्कार मिलता हैं। परन्तु जब वह निःशक्त हो गई तो आज वह भूखी मर रही है कोई उसकी तरफ ध्यान नहीं देता।

'गौरापंत शिवानी' की कहानी 'अपराजिता' की मुख्य पात्र 'चन्द्रा' जो कमर के नीचे वाले पूरे हिस्से से निःशक्त हैं। पढ़ाई में बहुत तेज होने पर भी डॉक्टरी की परीक्षा में उसे प्रवेश नहीं मिलता, परन्तु वह हार नहीं मानती उसकी माँ उसका सहयोग करती है और फिजिक्स में पी.एच.डी. की उपाधि हासिल करती हैं।

'श्रीमती रेखा पालेश्वर' की कहानी 'विकलांग बेटा–बेटी का खोना' इस कहानी की मुख्य पात्र 'प्रमिला ठाकुर' के दो बच्चें निःशक्त है, वह हार नहीं मानती दोनों बच्चों को लेकर डॉक्टरों के चक्कर लगाती रहती हैं। परन्तु बच्चों की स्थिति में कोई सुधार नहीं होता दोनों भाई–बहन 23 वर्ष की उम्र पाकर मृत्यु को प्राप्त हो जाते हैं। 'प्रमिला' जी का आज भरा–पूरा परिवार है परन्तु फिर भी उसे अंजुला और रघुवीर की कमी महसूस होती रहती हैं

'ममता कालिया' का कहानी संग्रह 'सीट नम्बर छह' की कहानी 'फर्क नहीं' में मुख्य नायिका के घर में एक किरायेदार रहती हैं। जिसके पैरों व पिण्डलियों पर सफेद दाग हैं। नायिका की माँ अपनी बेटी को उसके पास बैठने से मना करती है क्योंकि वह उसे छुतहा रोग मानती हैं।

'शिवानी' के कहानी संग्रह 'मेरी प्रिय कहानियाँ' में 'चीलगाड़ी' कहानी की मुख्य पात्र अपनी ससुराल के निःशक्त पात्रों का वर्णन करती है। उसकी जेठानी का राक्षसाकृति का अपंग पुत्र था। उसके पति की तोंद निकली हुई लगातार खाँसी चलने जैसी बीमारियाँ हैं। 'ममता कालिया' का कहानी संग्रह 'निर्मोही' के अन्तर्गत 'मुन्नी' की पात्र निःशक्त है उसे अनेकों बिमारियाँ हैं। उसकी दादी उसको पोलियों के टीके नहीं लगवाती अब वह पूरी तरह से निःशक्त हो चुकी हैं। एक पाँव को घसीटकर चलती हैं। अब स्वयं उसके पिता कहते हैं, भगवान इसको मुक्ति दें, दें तो अच्छा है, मैं इसका क्या करुंगा। परन्तु वह निःशक्त होने पर भी हमेशा पढ़ाई में अव्वल आती हैं।

'कुलदीप बग्गा' की कहानी 'पोलियो' की पात्र 'मणिका' बहुत सुन्दरशील स्वभाव वाली है परन्तु जब उसकी चाल को देखते हैं तो सभी का मुँह लटक जाता हैं। वह पोलियों की शिकार हैं। 'सुरभि बेहरा' की कहानी 'बिखरे ख्वाब' की मुख्य पात्र सुप्रभा माँ न बन पाने के कारण निःशक्त हैं। वह अपने सपनों के राजकुमार से शादी करती है परन्तु बच्चें की लालसा ने दोनों को अलग कर दिया। उसके पति अक्षय ने दूसरी शादी कर ली परन्तु उसको जो बच्चा पैदा हुआ है वह जन्मजात

निःशक्त हैं। वह न तो हिल–डुल सकता है और न ही उठता, बोलता हैं। अब उसके पति को अपने किये पर पछतावा होता हैं। 'उषा प्रियवंदा' की कहानी टूटे हुए में तंत्री नामक नायिका का निःशक्त पुत्र हैं। उसका पति बच्चें पैदा करने में अक्षम हो गया हैं। तंत्री दूसरे पुत्र की चाह में 'भास्कर' नामक युवक से संबंध बनाती है परन्तु फिर भी टूटी हुई लगती हैं।

(ब) मानसिक निःशक्तता

एक मनुष्य के लिए निःशक्त होना तो अभिशाप है ही परन्तु मानसिक रूप से निःशक्त मनुष्य को ज्यादा समस्याओं का सामना करना पड़ता हैं। शारीरिक रूप से दिव्यांग मनुष्य सिर्फ किसी अंग के कारण ही निःशक्त होता है उस अंग की क्षति पूर्ति वह दूसरे अंग से कर लेता हैं। परन्तु मनुष्य के पूरे शरीर का कंट्रोल दिमाक के ऊपर निर्भर करता हैं जब दिमाक ही काम करना बन्द कर दें तो पूरा शरीर भले ही कितना ही स्वस्थ और तदंरुस्त हो उसका कोई उपयोग नहीं हैं। ऐसे ही कुछ पात्रों का वर्णन समकालीन कहानियों में हुआ हैं।

'गौरा पंत शिवानी' का कहानी संग्रह 'मेरी प्रिय कहानियाँ' में 'सौत' कहानी की मुख्य पात्र नीरा हैं। जो उसके पति के द्वारा धोखा दिया जाने के कारण अपना मानसिक संतुलन खो देती हैं। उसका पति उसकी पड़ोस में रहने वाली राज्यम नामक लड़की को लेकर घर से फरार हो जाता हैं। अब नीरा अपने–आपको एक कमरे में बन्द रखती हैं। डॉक्टर कहते है। इसको दिमाक का मर्ज हैं।

'यशपाल' की कहानी 'उतरा नशा' ये मनोवैज्ञानिक निःशक्त चेतना के कहानीकार हैं। इस कहानी के मुख्य पात्र मैनेजर साहब स्वयं का गर्व व्यक्त करने के लिए पत्नी को मानसिक रूप से परेशान रखते हैं। "सार्वजनिक जीवन में सौजन्य दिखाने के लिए आतुर मैनेजर साहब घर के भीतर अत्यन्त कटु हो जाते हैं। अत्यन्त व्यस्त निर्मला की तनिक सी चूक के कारण वे आपे से बाहर हो जाते हैं। मैनेजर साहब के व्यवहार में ऐसे भेद चिरंजीत को जान पड़ता निर्मला से शैथिल्य और चूक न होने पर भी लाला बनारसीदास अपनी शक्ति और अधिकार अनुभव करने के लिए बेबस निर्मला पर अत्याचार करके संतोष पाते हैं।"[80] 'सत्यराज' की कहानी 'छोटू' एक ऐसे बच्चें की कहानी हैं। जिसका मस्तिष्क पूर्ण रूप से विकसित नहीं हो पाता, इसी कारण वह अजीब सी हरकतें करता हैं। एक दिन वह अपने भाई भुवन की अँगुली काटकर चबा गया। ऐसी स्थिति में घर का माहौल अशांत रहता हैं। इस प्रकार के निःशक्तजनों से समाज और परिवार परेशान रहता हैं।

इसी प्रकार 'माधुरी मिश्र' की कहानी 'मिलन' में कृष्णा चाची अपने पति की मृत्यु के बाद अपना मानसिक संतुलन खो देती हैं। कृष्णा चाचा की मीना चाची के साथ बचपन में शादी होती

हैं। परन्तु चाचा की माँ उन्हें कभी मिलने नहीं देती इसी कारण चाचा आत्महत्या कर लेता हैं। अब उसे अपने पति के बारे में पता चलता है तो जोर–जोर से रोती है जिसके कारण सभी उसको पागल कहते हैं। वह अपने पति की हड्डियाँ बीनकर ले आती है और कहती है मेरे पति इन्हीं हड्डियों में हैं। मुझे भी वहीं जलाना जहाँ मेरे पति को जलाया गया था। इस प्रकार एक औरत की पीड़ा मिश्र जी ने व्यक्त की हैं।

'सिम्मी हर्षिता' की कहानी 'अनिमंत्रित' का मनु जन्म से ही मानसिक रूप से निःशक्त हैं। वह इधर–उधर दौड़ता रहता हैं। घर वाले उसे पकड़कर, उठाकर, घसीटकर किसी सामान की तरह बंद कर देते हैं। वह कमरे में चिल्लाता रहता हैं। खिड़कियों व दरवाजों से बच्चें उसे देखकर पागल कहकर चिल्लातें हैं। वह शरीर से तो विकसित हो रहा है परन्तु उसका मस्तिष्क का विकास रुका हुआ हैं। एक दिन माँ की अनुपस्थिति में उसकी बड़ी बहन उसे धोकर साफ करती है। वह यह भूल जाती है कि मनु उसका छोटा भाई हैं। गुस्से में कहती है, "बैल की तरह बड़े होते जा रहे हो....शर्म नहीं आती तुम्हें? तुम क्यों जीवित हो अब तक? क्यों जीने का तुम्हें बहुत मोह है? तुम्हें भला जी कर करना भी क्या है यहाँ.....?"[81]

इन कहानियों में व्यक्त मानसिक निःशक्तता का दर्द स्पष्ट हुआ है परन्तु छोटे–छोटे बच्चों की निःशक्तता पाठक के मन में उथल–पुथल मचा देती हैं। इन निःशक्त बालकों को देखकर मन में एक प्रश्न उठता है कि ईश्वर का अस्तित्व हैं? और यदि है तो इतना निर्दय, इतना निष्ठुर क्यों हैं? इस प्रकार पाठक और साहित्यकार संवेदनशील होकर इन बच्चों को साहित्य के माध्यम से कालजयी बनाने का प्रयास करता हैं।

(स) दृष्टि निःशक्तता

दृष्टि निःशक्तता भी बहुत बड़ी समस्या हैं। यदि मनुष्य आँखों से देख सके तो वह अच्छा बुरा महसूस कर सकता हैं। परन्तु दृष्टि निःशक्तता से ग्रसित व्यक्ति अपनी जिन्दगी को अंधेरी गुफा में गुजारने को मजबूर हो जाता हैं। क्योंकि आँखों के बिना आदमी के लिए दिन और रात बराबर हो जाते हैं। वह सिर्फ स्पर्श करके ही हर चीज की जानकारी लेता रहता हैं। ऐसे ही कुछ पात्रों का वर्णन समकालीन कहानियों में हुआ हैं। जो निम्न प्रकार है–

'ममता कालिया' की कहानी 'राजू' में राजू एक आँख से काना हैं। यह निःशक्तता उसे समाज में अशुभ बना देती हैं। समाज में इनके प्रति सहानुभूति प्रकट न करके उल्टा अपशकुनी और अशुभ कहकर मजाक उड़ाया जाता हैं। राजू की विधवा माँ जब अपने काने बेटे के साथ विवाह में शामिल होने जाती है तो वहाँ पर बेटे के साथ माँ को भी तिरस्कार सहन करना पड़ता

हैं। वह अनजान बच्चा बारात में जाने की जिद्द करता हैं। तब उसकी माँ झल्लाकर कहती है, "निकलकर देख तू कोठरी के बाहर तेरी हड्डी–पसली न तोड़ दूँ। मरता भी नहीं अपशकुनिया कहीं का।"[82] इसमें उस नादान बच्चें का क्या दोष हैं? जो इतना अपमान सहन करता हैं। परन्तु समाज जानबूझकर अनजान बना हुआ हैं।

'प्रदोष मिश्र' की कहानी 'आँखें' भी एक अंधे वैज्ञानिक की कहानी हैं। लैब में विस्फोटक के कारण उसे अपनी आँखें गंवानी पड़ती हैं। उसकी सहायता के लिए एलिजा नामक युवती जो मनोविज्ञान की अध्यापिका है उससे शादी करती है। नीहार रंजन (वैज्ञानिक) कुछ समय के बाद दान की गई आँखों को ऑपरेशन से प्रत्यारोपण करवा लेता है। नीहार रंजन अब अंधेरी गुफा से मुक्ति पाकर बहुत खुश होता हैं। फिर एक दिन वह एलिजा से कहता है कि तुम उस महान आदमी की फोटो नहीं देखना चाहोंगी जिसने मुझे आँखें दान की है। उस आदमी की फोटों देखते ही एलिजा का मुँह उतर जाता है। क्योंकि ये आँखें उसके पूर्व प्रेमी की है जिसने एलिजा को धोखा दिया था। वह एक बलात्कारी व अपराधी था। अब आँखें उन दोनों को अलग कर देती हैं। 'शिवानी' के कहानी संग्रह 'अपराजिता' की कहानी 'मेरा भाई' में एक अनाथ लड़का है जिसका नाम 'सुबय्या' है वह काले रंग तथा एक आँख से भैंगा भी हैं। उसकी दूर की रिश्तेदार गिरिजाबाई अपने पास रखती हैं। गिरिजा बाई उसे पड़ोस में पढ़ने भेजती हैं। वह जिस लड़की से पढ़ता है उसे अपनी बहन मानकर हर बार रक्षाबंधन पर राखी बंधवाता हैं। लेकिन परिस्थितिवश वह इनामी डकैत बन जाता हैं। परन्तु जब वह चोरी करने जिस ट्रेन में चढ़ता है उसी में वह लड़की यात्रा कर रही होती है, तब भी वह उससे राखी बंधवाकर अपना पैसों से भरा पर्स बहन को देकर अपना कर्त्तव्य निभाता हैं।

शिवानी की दूसरी कहानी 'शपथ' में एक विधुर बुजुर्ग आदमी है, जो आँखों से अंधा हैं। उसकी बेटी की ससुराल पड़ोस में ही है परन्तु कभी एक रात भी अपने अंधे पिता के पास नहीं रुक पाती।

'त्रिभुवन पाठक' की कहानी 'करु बहियां बल आपनो' में अंधा विमलानन्द है। जो भजन कार्यक्रम में भजन गाने आते हैं। प्राचार्य मनीष भी वहीं पर आमंत्रित हैं। वे विमलानन्द को देखकर अपने सहपाठी मोती की जीवन–गाथा सुनाते हैं। यह सुनते–सुनते विमलानन्द बताता है कि आपका मोती ही आज विमलानन्द हैं। प्राचार्य मनीष यहाँ तक कहानी सुनाते है कि उसके माँ–बाप मर जाने के बाद, उसके चाचा के पास रहता हैं। वह उसकी मार–पिटाई करता है और अन्त में वह घर छोड़कर भाग जाता है, दर–दर की ठोंकर खाने वाला मोती आज विमलानन्द बन गया। आज

उसका गला फूलों के हारों से भरा हुआ है ये देखकर प्राचार्य मनीष की आँखें भर आती हैं। क्योंकि उसी अंधा मोती ने अपने मीठे गले से भजन गाकर सभी को मंत्रमुग्ध कर लिया हैं।

'सुनील कौशिक' की कहानी 'अंधेरे का सैलाब' इसका मुख्य पात्र 'सौरभ' वह केवल छह साल का लड़का हैं। एक दिन स्कूल जाते समय हुये एक्सीडेन्ट ने उसकी आँखों की रोशनी छीन ली। अब वह अंधेरी कोठरी में जीने को मजबूर हो गया। डॉक्टरों ने ऑपरेशन तो किये परन्तु उन्होंने बताया कि आँख की मैकूला इंजर्ड हो चुकी थी। कुछ नहीं किया जा सकता, रोशनी वापिस आना नामुमकिन हैं। इस प्रकार सौरभ जैसे छोटे बच्चों के प्रसंग आते हैं तो लगता है ये फूल खिलने से पहले ही कुम्हला जाते हैं कि वे निराशा की गहराई से निकलकर आशा की सतह देख सकें।

'श्रीमती रेखा पालेश्वर' की कहानी 'खुली आँखों का दुख' का पात्र एक अंधा आदमी है जिसको बहुत अच्छा गाना आता है इसलिए एक साहब उसे अपने घर अपने बच्चों को गाना सिखाने के लिए बुलाते हैं। एक पढ़ा–लिखा शिवराम भी अपनी डिग्रियाँ लेकर काम की तलाश में घूमता रहता है तभी इसकी भेंट उस अंधे से हो जाती है वह उसे अपने पते पर पहुँचाने की मदद माँगता हैं। मजबूरीवश उसे उसकी मदद करनी भी पड़ती है तभी वह देखता है कि जब वह अंधा साहब के घर पहुँचता है तो साहब उसे रहने का कमरा देते हैं, महीने का वेतन भी बता देते हैं और खाना–पीना सब वहीं होगा। यह देखकर शिवराम को लगा कि मैं आँखों वाला और पढ़ा–लिखा होकर भी आज तक बेरोजगार घूम रहा हूँ। वह बाहर आता और देखता है कि एक आदमी कुर्सी बना रहा है लगता है वह शाम तक तीन–चार बना ही लेगा। इसलिए वह कहता है कि मनुष्य के लिए अंग उतने जरुरी नहीं है जितना गुण, यदि आदमी में कुछ करने की काबलियत है तो, उसे कोई भी अंग रोक नहीं पायेगा।

'ममता कालिया' का कहानी संग्रह 'काके दी हट्टी' के अन्तर्गत कहानी 'इलाज की नायिका अभिधा नेत्र की समस्या से ग्रसित हैं। उसकी आँखों से लगातार पानी बहता रहता हैं। उसे पढ़ाई करने में बहुत समस्या होती है परन्तु जब वह डॉक्टर के पास इलाज के लिए जाती है तो डॉक्टर उसकी आँख में सूई चुभो देता हैं। अब वह डर के मारे इलाज ही नहीं करवा पाती।

'ज्ञान प्रकाश विवेक' की कहानी 'अंधा सूरज' में सूरज और अजय दो भाई है। उनकी माँ ने उनके ये नाम रखे। परन्तु जिसका नाम सूरज रखा वह सूरज को अपनी अंधेरी कोठरी से निकलकर कभी देख नहीं पाया। वह जन्म से अंधा हैं। सूरज के पिता डी.एस.पी. हैं। माँ दोनों बेटों को समान प्यार करती हैं। सूरज अब चार वर्ष का हो गया यह उसकी खेलने कूदने की उम्र हैं।

परन्तु उसकी आँखों ने उसका आंगन छिन लिया हैं। वह अपने घर में ही उपेक्षा का पात्र बना रहता हैं। जब उनके घर पर अतिथि खाना खाने आते है तो उसे खींचकर अंधेरी कोठरी में बन्द कर दिया जाता है और जब परिवार वाले कहीं शादी–पार्टी में जाते हैं तो उसे साथ नहीं ले जाते, स्वयं उसके पिता सोचते हैं कि यदि वह उनके साथ जायेगा तो सभी उसे देखकर कहेंगें यह अंधा लड़का दीवाकर साहब का हैं।

अपनी झूठी शान को दिखाने के लिए वे उस अंधे बच्चे पर अत्याचार करते रहते हैं। वे उसे घर में कैद करके रखते हैं। पिता का दोस्त समझाता है दीवाकर इसको तो भगवान ने अंधा बनाया है और आप लोग तो जानबूझकर अंधे बने हुये हो। 'अंधे सूरज' की माँ न जाने कितने जादू टोने अपने बेटे के लिए करवाती है। जब भी कोई साधु द्वार पर आता है तो वह दौड़कर आती है और सूरज का हाथ दिखती है।

(द) किन्नर वर्ग

निःशक्त व्यक्ति को अपनी इच्छापूर्ति व काम–काज के लिए दूसरों पर निर्भर रहना पड़ता हैं यह सारा संसार रूप–रंग, सुन्दर–असुन्दर, तुच्छ महान सब कुछ ब्रह्मा द्वारा निर्मित होने पर भी इनमें फर्क क्यों? कहा जाता है चौरासी लाख योनियों में भटकने के बाद मनुष्य का जन्म मिलता है इसलिए मनुष्य ब्रह्मा की सबसे महत्त्वपूर्ण रचना है क्योंकि यही वह प्राणी है जिसके पास दिल दिमाक और वाणी तीनों हैं। परन्तु यह सब होने पर भी एक पूर्ण मनुष्य की क्षमता न रखने वाला किन्नर निःशक्त की श्रेणी में आता हैं। समाज द्वारा उपेक्षित इस वर्ग की भीतरी जिंदगी की पड़ताल करती है जिसे हम 'खुसरे या हिजड़ें' के नाम से जानते हैं। लैंगिक विकृति से पीड़ित ये प्राणी भी आम इंसान की तरह जीना चाहते हैं पर जीवन–निर्वाह हेतु 'मसखरापन' या 'स्वांग' रचने को मजबूर है ये लोग तो अपने को बदलने की कोशिश कर रहे है परन्तु समाज अपनी सोच नहीं बदल सकता। इसी प्रकार कुछ किन्नर पात्रों का वर्णन हो रहा है–

'साथी हाथ बढ़ाना', 'डॉ. मुदितचन्द्रा' द्वारा रचित है जिसमें 'संध्या' नाम की लड़की जो आँखों से अंधी हैं। वह अपनी बहनों और पिता की बहुत प्यारी है। इसी कारण उसे कभी अपना अंधापन महसूस नहीं हुआ उसकी शादी के समय लड़के वाले धोखा करते है। एक किन्नर लड़के से शादी करवाकर लड़के वाले किसी दूसरे लड़के से संध्या के संबंध बनवाकर अपने बेटे के नाम

की संतान का स्वांग रचते हैं। परन्तु अंधी होने पर भी संध्या उनके जाल में नहीं फंसती। समाज ऐसे किन्नरों को निःशक्त नहीं मानता है, संध्या बिना बच्चें के अपने पति के साथ जीवन गुजारने का वादा करती हैं।

किन्नर वर्ग को लेकर 'प्रदीप सौरभ' का उपन्यास 'तीसरी ताली' में उभयलिंगी सामाजिक दुनियाँ के बीच और बरक्स, हिजड़ों, लौंडे बाजों, लेस्बियनों और विकृत प्रकृति की ऐसी दुनिया हैं जो हर शहर में मौजूद है और समाज के हाशिए पर जिन्दगी जी रहे हैं। अलीगढ़ से लेकर आरा, बलिया, छपरा, देवरिया यानी 'एबीसीडी' तक दिल्ली से लेकर पूरे भारत में फैंली यह दुनिया समानान्तर जीवन जीती हैं। प्रदीप सौरभ ने इस दुनिया के उस तहखाने में झाँका है जिसका अस्तित्व सब 'मानते' तो है लेकिन 'जानते' नहीं। यहाँ जितने भी चरित्र आते है वे सब नपुंसकत्व या परलिंगी या अप्राकृत यौन वाले ही है। परिवार परित्यक्त, समाज बहिष्कृत दंडित ये 'जन' भी किसी तरह जीते हैं। असामान्य लिंगी होने के साथ ही समाज के हाशियों पर धकेल दिये गये, इनकी सबसे बड़ी समस्या आजीविका है जो इन्हें अन्ततः इनके समुदायों में ले जाती हैं। इनका वर्जित लिंगी होने का अकेलापन 'ऐक्स्ट्रा' है और वही इनकी जिन्दगी का निर्णायक तत्व है, अकेले–अकेले बहिष्कृत ये किन्नर जन आर्थिक रूप से भी हाशिये पर डाल दिये जाते हैं। यह जीवन शैली की लिंगीयता हैं जिसमें स्त्री लिंगी–पुल्लिंगी मुख्य धाराएँ हैं जो इनको दबा देती हैं। नपुंसकलिंगी कहाँ कैसे जिऐगें? समाज का सहज स्वीकृत हिस्सा कब बनेगें?

इन लोगों का कमाने खाने का साधन नाच–गाना, नाटक करके या फिर माँगकर खाना। जब भी किसी घर में खुशी होती हैं ये लोग शकुन माँगने पहुँच जाते हैं। मुँह माँगे रुपये न मिलते तो ये बद्दुआऐं भी देते हैं। समाज इनसे बद्दुआऐं नहीं लेना चाहता इसलिए पैसे दें देते हैं। 'तीसरी ताली' उपन्यास में डिम्पल डेरे की मुखिया हैं। उसको 'मंजु' नामक लड़की उसके माता–पिता ने गरीबी के कारण डिम्पल हिजड़ा को थोड़े से रूपयों में बेच दिया था। डिम्पल ने उसे माँ की तरह पाला परन्तु डिम्पल यह बात भूल गई की वह किन्नर नहीं हैं। राजा नाम का आदमी उनके डेरे में काम करता हैं। मंजु व राजा संबंध बना लेते हैं। जब डिम्पल को पता चलता हैं। मंजु माँ बनने वाली हैं। तो वह मंजु का गर्भ गिरवाकर उसका गर्भाशय निकलवा देती है और राजा का लिंग कटवा देती हैं। उन दोंनों को वह जबरदस्ती नपुंसक बनवा देती हैं।

दिल्ली के हाउसिंह सोसाइयटी में रहने वाले गौतम साहब को कई सालों बाद लड़का हुआ था। हिजड़ों को पता चला आ धमके। सभी को पता था गौतम साहब बहुत कंजूस हैं वो हिजड़ों को भी कुछ नहीं देते। हिंजड़ें कहते हैं यदि हिजड़ों को शकुन नहीं दोगें तो पुत्र भी हिजड़ा बनेगा।

कई सालों ऐसे ही चलता रहा अब तो गौतम साहब की पत्नी भी घर में कैद हो गई थी और गौतम साहब भी परेशान रहते परन्तु किसी को असलियत नहीं पता था। उनके घर की नौकरानी शन्नों जब से उनके घर में काम करती है वह एक सदस्य की तरह थी परन्तु मोहल्लें की आनन्दी आण्टी को सब जानते थे। उसके सामने शन्नों का मुंह खुल गया गौतम साहब का जो लड़का हैं उसके पूरे शरीर का विकास हो रहा है परन्तु पुरुषांग विकसित नहीं हो रहा। डॉक्टरों के चक्कर लगाने पर पता चला, "बच्चें में स्त्री और पुरुष दोनों के लक्षण हैं। माँ के पेट में ग्यारहवें सप्ताह में सेक्सुअल आर्गन को विकसित करने वाले हारमोन्स अपनी भूमिका पूरी नहीं कर पायें।"[83] यह सुनकर आनन्दी आन्टी के होश उड़ गये। वह बेसुध होकर बिस्तर पर गिर पड़ी। वह गौतम साहब के लिए नहीं बल्कि उसकी स्वयं की याद ताजा हो गई, अपनी बेटी निकिता के लिए। वह भी उसे सामान्य समझती थी परन्तु धीरें–धीरें जब निकिता बड़ी हुई तो मजबूरी वश आनन्दी आन्टी को निकिता, नीलम हिजड़ा को सौंपनी पड़ी। निकिता माँ से अलग होते समय दहाड़ मारकर रोती रही। हिजड़ों के डेरे में ऐसा देखकर वह परेशान हो जाती कि वह कैसे नाचेगी और नाचना गाना हिजड़ों का काम हैं। इसी कारण वह जहर खाकर आत्महत्या कर लेती हैं।

ज्योति नाम का युवक नाचने गाने वाला लौंडा अपना पुरुषांग कटवाकर हिंजड़ा बन जाता हैं। जिससे वह अच्छा पैसा कमा सके और अपने माँ–बाप को पैसे भेज सकें। वह नीलम के डेरे में शामिल हो जाता हैं।

इधर सुविमल भाई जिसको स्त्री गंध से ही नफरत हैं। वह समान लिंग से संबंध बनाता हैं। वह रति नामक युवती से शादी कर लेता हैं परन्तु उसके साथ संबंध नहीं बनाता। जिसके कारण वह परेशान रहती है। परन्तु वह देखती हैं एक दिन वह अनिल नामक युवक के साथ सुविमल को रंगे हाथ पकड़ लेती हैं। रति बहुत दुःखी होती है वह सोचती है कि उसकी शादी एक हिजड़ें से हुई।

अब रति व सुविमल भाई के बीच तलाक होगा। उसके बाद रति ने सीपीआई (कार्यकर्ता मुनेश्वर) से शादी करके दो बच्चें पैदा किये। फिर उन्होंने एक एनजीओं तैयार किया। उधर सुविमल भाई भी अनिल के साथ खुलेआम पति–पत्नी की तरह रहने लगे। उधर गौतम साहब के बेटे में समय के साथ लड़कियों के गुण आने लगे। अब बच्चें भी उनके साथ खेलने से कतराने लगे। घर वालों की गैर मौजूदगी में वह अपनी बहनों के कपड़े पहनकर मेकअप करके स्वयं को आइने में निहारता। वह घर से बाहर निकलने में शर्म महसूस करता था। परन्तु अब वह घर से बाहर निकलना चाहता था। एक दिन वह अपनी बहन के कपड़े पहनकर जल्दी सुबह घर से किसी

को बिना बताये निकल गया। वह दिल्ली में घूम रहा था तभी सौदा करने वालों की गाड़ी वहाँ आकर रुकी और उसे अपने साथ लेकर उसके साथ अश्लील हरकतें करने लगे। पहले तो विनीत को अच्छा नहीं लगा परन्तु फिर लड़की बसी अन्दर ने कुलाँची मारने शुरु की और उसकी औरत की जरुरत पूरी हो गई। जब मोहल्लें के हिजड़ों को इस बात का पता चला तो उन्होंनें उसे पकड़ने की योजना बनाई यह हमारे धन्धें पर लात मारने वाला कहाँ से आ गया? अगले दिन की शाम को उसी समय उसे पकडकर हिजड़ों ने विनीत को मार–मारकर अधमरा कर दिया।

अब पता नहीं उसे कहाँ–कहाँ की ठोकरें खानी पड़ेगी। उसका नाम विनीत से विनीता हो गया था। हिजड़ों से छुटाकर एक चौधरी साहब उसे अपने घर में ले आते हैं। चौधरी साहब को अपने बच्चें नहीं थे इसलिए उसका दिल पसीजा। घर में चौधरी की पत्नी उसे देखते ही हिजड़ा कहकर चौधरी से लड़ती हैं। एक दिन विनीता ने चौधरी साहब से कहा बाबूजी मुझे पार्लर का काम आता है आप मुझे 'ब्यूटी पार्लर' में भेज दो मैं थोड़ा–बहुत कमाकर अपना गुजारा कर लूँगी। चौधरी साहब उसे पार्लर में भेज देते हैं। वह अच्छी ट्रेनर हैं जिससे पार्लर में उसकी जल्द ही लोकप्रियता बढ़ गई। अब वह फैशन शो में जज बनकर जाने लगी। वह अपने पिता गौतम साहब से नफरत करती थी कि बेटे की चाह में उसे बेटा बनाकर रखा। बेशक वह दूर निकल गई थी और प्रतिशोध में अपने जीवित माता–पिता की तेहरवीं भी कर चुकी थी। लेकिन सब कुछ होने के बावजूद भी वह अकेली थी। वह शराब के बिना सो नहीं सकती थी। रात के अंधेरे में भी उसे अपना पुराना घर दिखता था।

एक बार उसका पिता गौतम साहब उससे मिलने आ पहुँचा। सिक्योरिटी गार्ड ने उसे अन्दर नहीं घुसने दिया तो विनीता ने कहा कौन है अन्दर आने दो। उस बुजुर्ग पिता को देखकर विनीता की, व विनीता को देखकर पिता की आँखें पथरा गई। विनीता पिता के गले से लग जाती है और सोचती है कि यदि पिता ने उसको ब्यूटीशियन की ट्रेनिंग न दिलाई होती तो वह शायद यहाँ नहीं पहुँच पाती।

जुलेखा व यास्मीन दोनों चचेरी बहने हैं जिस प्रकार सुविमल भाई को औरत की गंध से नफरत थी उसी प्रकार उनको पुरुष की गंध से नफरत थी। दोनों जवान हो जाती है इनके घर वालों को अब उनके लिए लड़का ढूँढ़ने की चिंता हो गई। परन्तु उन दोनों को पुरुष की गंध व शादी के नाम से नफरत होती हैं। एक दिन वे मौका पाकर घर से कुछ पैसे लेकर फरार हो जाती हैं। अब उन्होंनें समलैंगिक विवाह करके दुनिया के सामने खुले पति–पत्नी के समान रहती हैं। यास्मीन पति की भूमिका और जुलेखा पत्नी की भूमिका अच्छे से निभाती हैं। यास्मीन और जुलेखा

की शादी के बाद तो देश के हर कोने से ऐसी खबरें आने लगी। सुविमल भाई और अनिल की शादी आर्य समाज रीति से हो गई। कोर्ट में तो दोनों की शादी होनी थी। समलैंगिक क्लब सामूहिक विवाह के आयोजन करने लगें। हिजड़ों में तो ऐसे आयोजन पहले से होते हैं। अब समलैंगिकों के आयोजन भी तड़क–भड़क के साथ होने लगें।

इस तरह हिजड़ें भी हैं तो इसी समाज का हिस्सा तो उन्हें अलग–थलग क्यों रखा जाता हैं। जब वेद पुराण, गीता, महाभारत में हर जगह इनके लिए स्थान रहा परन्तु वर्तमान समाज में इनका कोई स्थान नहीं हैं। यदि इनको भी समाज का हिस्सा समझा जाये तो देश अधिक उन्नति कर सकता हैं। इन्हें माँगने–खाने की बजाय कमाई धन्धे के बारे में जानकारी दें। इनको शिक्षा भी दी जानी चाहिए। यदि यह वर्ग सुधर जाये हमारे देश में कुछ अश्लीलता कम हो सकती हैं। क्योंकि ये अश्लील काम ही करते हैं। यदि इनको भीख न दें तो भी ये अश्लील शब्दों का प्रयोग खुल्लें आम करते हैं इनको कोई नहीं रोक सकता। इतने बड़े वर्ग को यदि प्रगति के क्षेत्र में लगाया जाए तो देश व समाज की आर्थिक स्थिति में भी सुधार हो सकता हैं।

निष्कर्ष

विमर्शों के इस दौर में कहानी विद्या ने भी सहयोग दिया हैं। आधुनिक काल में जन्मी हिन्दी कहानी की गधय में अहं भूमिका हैं। कहानी किसी घटना या तथ्य की जानकारी को पूर्ण रूप से स्पष्ट करती है। यह बीती हुई घटना का स्पष्टीकरण करती हैं। इसकी शैली रोचक होने के कारण पाठक को मंत्र मुग्ध कर लेती हैं। इसकी लोकप्रियता के कारण ही इसमें समाज की हर समस्या से अवगत करवाया जाता हैं। मनुष्य की प्रकृति कहानी कहने–तथा सुनने की प्राचीन काल से ही रही हैं। इसी कारण प्राचीनकाल से शुरु हुई, धीरें–धीरें विकास करके समकालीन साहित्य में इसकी अहं भूमिका हैं। प्राचीनकाल से कहानी चली आ रही है परन्तु गद्य में इसका उद्‌भव 19वीं शताब्दी में हुआ। समाज की परिस्थिति के साथ साहित्यकार भी साहित्य में बदलाव लाता हैं। यही बदलाव हमें कहानियों में देखने को मिलता हैं आधुनिककाल के बाद स्वातंत्र्योत्तर कहानी में काफी बदलाव हुआ हैं। स्वातंत्र्योत्तर काल के बाद मनुष्य स्वयं के कटघरे में उलझ गया और उसमें उत्पन्न कुण्ठा, घृणा, त्रासदी, पीड़ा ने पूरी तरह झकझोंर दिया। इसी पीड़ा को समकालीन साहित्यकार व्यक्त करता है। इक्कीसवीं सदी में विमर्शों का दौर शुरु हुआ और इसी दौर में निःशक्त विमर्श भी आज समाज की आवश्यकता हैं। क्योंकि हमारे देश कीं 15 प्रतिशत से अधिक आबादी निःशक्त हैं। उनके सामने इतनी सारी समस्याऐं खड़ी हो जाती है कि समाज उन्हें उपेक्षा

की दृष्टि से देखता हैं। वे अपने स्वयं के कार्य करने या पेट भरने के लिए भी मजबूर हो जाते हैं या फिर किसी के आश्रित हो जाते हैं।

समकालीन कहानी आमजन की कहानी हैं मुख्य रूप से व्यष्टि व समष्टि की कहानी रही हैं। क्योंकि वर्तमान में मानव जाति पर हो रहे अत्याचारों से कोई भी अनजान नहीं हैं। मनुष्य के साथ पशुओं जैसा व्यवहार किया जाता है इस समस्या पर ध्यान देते हुए आधुनिकाल के प्रमुख कहानीकार अज्ञेय, विष्णुप्रभाकर का खेतिया अंधा पात्र है परन्तु अपनी मेहनत करके पेट भरता हैं। स्वातंत्र्योत्तर कहानीकारों में यशपाल मनोवैज्ञानिक कहानीकार रहे हैं। उन्होंने मनुष्य की मानसिक पीड़ा व दबाव को महसूस किया और कहानियों में चित्रण किया है जैसे 'मैनेजर साहब' अपनी पत्नी को मानसिक दबाव में रखते हैं। धर्मवीर भारती की 'गुलकी बन्नों' में गुलकी अपनी कुरूपता के कारण उपेक्षित हैं। इसी तरह समकालीन कहानीकारों ने तो इस तरह की कहानियों की बाढ़ ला दी। समकालीन साहित्य मुख्य रूप से व्यक्तिगत पीड़ा पर ही निर्भर हैं। इस पीड़ा में दिव्यांग जन की समस्या आज विशेष रूप लेकर उपस्थित हो चुकी है। समकालीन कहानियों में निःशक्त पात्र की पीड़ा को दर्शाया गया है। दिव्यांग जन किसी एक अंग की कमी के कारण भी देश व दुनिया में अपना नाम चमका सकता हैं। क्योंकि कहा जाता है कि यदि भगवान किसी एक अंग को छिनता है तो उसकी शक्ति दूसरे अंग में दें देता हैं। हमने सुना है कि अंधा आदमी टटोल–टटोलकर चलता है और कभी गलत स्थान पर नहीं जाता। क्योंकि भगवान उसके ह्रदय में आँखें देता हैं। इसी तरह जब इनका परिवार व समाज हौंसला बनाये रखे तो ये हर चुनौती को हासिल कर सकते हैं।

परन्तु सहयोग जरुर चाहिए। हमने कहानियों में बहुत सारे ऐसे पात्रों को देखा है जिन्होंने निःशक्तता को मात देकर अपनी जीत फतह की है। बहुत सारे ऐसे पात्र भी देखें हैं जो स्वयं के परिवार के द्वारा ही उपेक्षित किये गये हैं। वे घर की कोठरी में टूटे–फूटे बर्तन की तरह पड़े हुए हैं, कोई उनकी तरफ ध्यान नहीं देता। परिवार वालों को उन्हें अपना कहने में भी शर्म महसूस होती हैं। इसलिए अंधेरी कोठरी में बंद कर देते हैं। जहाँ वे घुट–घुटकर मरते हैं।

यह समाज व परिवार की बहुत ही बड़ी भूल हैं। जिसको बार–बार दोहरानें से रोकना होगा। वरना हमारा देश दुनिया में बहुत पीछे चला जाएगा।

≈≈≈≈

संदर्भ सूची

1. कुछ विचार, प्रेमचन्द, पृ.–27, विकलांग विमर्श का वैश्विक परिदृश, डॉ. सुरेश माहेश्वरी, पृ. –443
2. काव्य के रूप, डॉ. गुलाबराय, पृ.–26
3. विकलांग विमर्श का वैश्विक परिदृश्य, डॉ. सुरेश माहेश्वरी, पृ.–298
4. आधुनिक हिन्दी कहानियाँ, हेतु भारद्वाज, भूमिका
5. वही
6. वही
7. कथा साहित्य में विकलांग–विमर्श, डॉ. विनय कुमार पाठक, पृ.–36
8. विकलांग विमर्श की कहानियाँ–डॉ. विनय कुमार पाठक, पृ.–51
9. विकलांग–विमर्श, डॉ. विनय कुमार पाठक, पृ.–97
10. विकलांग–विमर्श की कहानियाँ, डॉ. विनय कुमार पाठक, पृ.–56
11. विकलांग–विमर्श, डॉ. विनय कुमार पाठक, पृ.–122
12. विकलांग–विमर्श का वैश्विक परिदृश्य, डॉ. सुरेश माहेश्वरी, पृ.–373
13. यशपाल, अभिशप्त, 'पुनिया की होली', पृ.–127
14. हिन्दी साहित्य का इतिहास, डॉ. नगेन्द्र, पृ.–737
15. गुलकी बन्नों, डॉ. धर्मवीर भारती, पृ.–108
16. विकलांग–विमर्श का वैश्विक परिदृश्य, डॉ. सुरेश माहेश्वरी,पृ.–357
17. वही, पृ.–357
18. वही, पृ.–358
19. विकलांग विमर्श का वैश्विक परिदृश्य, डॉ. सुरेश माहेश्वरी, पृ.–444
20. अलग–अलग दिशाएँ (अंधा सूरज), ज्ञान प्रकाश विवेक, पृ.–5
21. (पिताजी चुप रहते है) अंधेरे के खिलाफ, ज्ञानप्रकाश विवेक, पृ.–28
22. (अंधा सूरज) अलग–अलग दिशाएँ, ज्ञान प्रकाश विवेक, पृ.–1
23. वही, पृ.1
24. कहानी संग्रह परिंदे (तीसरा गवाह), निर्मल वर्मा, पृ.–51
25. कहानी संग्रह छुटकारा (बीमारी), ममता कालिया, पृ.–32
26. कहानी संग्रह छुटकारा (दो जरुरी चेहरें), ममता कालिया, पृ.–128
27. विकलांग विमर्श का वैश्विक परिदृश्य, डॉ. सुरेश माहेश्वरी, पृ.–438

28. मालती जोशी की कहानियाँ (स्वयंवर), पृ.–75
29. उतरा नशा, यशपाल, पृ.–44
30. मेरी प्रिय कहानियाँ, गौरापंत शिवानी, पृ.–72
31. हजारी प्रसाद द्विवेदी, मध्यकालीन बोध का स्वरूप, हजारी प्रसाद ग्रंथावली–5, पृ.–51
32. प्रेमचंद : साहित्य का उद्देश्य, पृ.–26
33. सीट नम्बर छह (आजादी) ममता कालिया, पृ.–100
34. वही, पृ.–97
35. वही, पृ.–96
36. वही, पृ.–103
37. विकलांग जीवन की कहानियाँ, गिरिराजशरण अग्रवाल, पृ.–12
38. ममता कालिया, 'निर्मोही' कहानी संग्रह (मुन्नी), पृ.–434
39. वही, पृ.–436
40. विकलांग विमर्श की कहानियाँ, डॉ. विनय कुमार पाठक, पृ.–164
41. अपराजिता, गौरा पंत शिवानी, पृ.–102
42. मेरी प्रिय कहानियाँ (चीलगाड़ी), गौरा पंत शिवानी, पृ.–79
43. सीट नम्बर छह (उपलब्धि), ममता कालिया, पृ.–87
44. सीट नम्बर छह (फर्क नहीं) ममता कालिया, पृ.–29
45. अपराजिता (मेरा भाई), गौरा पंत शिवानी, पृ.–60
46. वही, पृ.–60
47. वही 'दंड', पृ.–13
48. विकलांग विमर्श की कहानियाँ, डॉ. विनय कुमार पाठक, पृ.–152–53
49. वही, पृ.–154
50. विकलांग विमर्श का वैश्विक परिदृश्य, डॉ. सुरेश माहेश्वरी, पृ.–367
51. विकलांग–विमर्श की कहानियाँ, डॉ. विनय कुमार पाठक, पृ.–168
52. वही, पृ.–169
53. वही, पृ.–63
54. विकलांग जीवन की कहानियाँ, गिरिराजशरण अग्रवाल, पृ.–140
55. वही, पृ.–163

56. आगे जिन्दगी होती तो, डॉ. इन्द्रबहादुर सिंह, पृ.–73, विकलांग विमर्श की कहानियाँ, डॉ. विनय कुमार पाठक
57. नैन न तिरपति भेल, डॉ. इन्द्रबहादुर सिंह, पृ.–113, विकलांग विमर्श की कहानियाँ, डॉ. विनय कुमार पाठक
58. नैन न तिरपति भेल, डॉ. इन्द्रबहादुर सिंह, पृ.–113, विकलांग विमर्श की कहानियाँ, डॉ. विनय कुमार पाठक
59. नैन न तिरपति भेल, डॉ. इन्द्रबहादुर सिंह, पृ.–105, विकलांग विमर्श की कहानियाँ, डॉ. विनय कुमार पाठक
60. मछुआरे की लड़की, डॉ. इन्द्र बहादुर सिंह, पृ.–187, विकलांग विमर्श की कहानियाँ, डॉ. विनय कुमार पाठक
61. वह नियोगी, डॉ. इन्द्र बहादुर सिंह, पृ.–189–93, , विकलांग विमर्श की कहानियाँ, डॉ. विनय कुमार पाठक
62. विकलांग जीवन की कहानियाँ, गिरिराजशरण अग्रवाल, पृ.–151
63. विकलांग–विमर्श का वैश्विक परिदृश्य, डॉ. सुरेश माहेश्वरी, पृ.–386
64. वही
65. वही, पृ.–414
66. विकलांग–विमर्श का वैश्विक परिदृश्य, डॉ. सुरेश माहेश्वरी, पृ.–359
67. विकलांग जीवन की कहानियाँ, गिरिराजशरण अग्रवाल, पृ.–12
68. विकलांग विमर्श, डॉ. विनय कुमार पाठक, पृ.–127
69. वही, पृ.–196
70. कथा साहित्य में विकलांग विमर्श, डॉ. विनय कुमार पाठक, पृ.–95
71. गौरा पंत शिवानी, अपराजिता, पृ.–102
72. विकलांग विमर्श की कहानियाँ, डॉ. विनय कुमार पाठक, पृ.–169
73. विकलांग विमर्श का वैश्विक परिदृश्य, डॉ. सुरेश माहेश्वरी, पृ.–359
74. कथा–साहित्य में विकलांग विमर्श, डॉ. विनय कुमार पाठक, पृ.–213
75. विकलांग विमर्श का वैश्विक परिदृश, डॉ. सुरेश माहेश्वरी, पृ.–351
76. ममता कालिया, छुटकारा (बीमारी), पृ.–32
77. विकलांग विमर्श–का वैश्विक परिदृश्य, डॉ. सुरेश माहेश्वरी, पृ.–426
78. विकलांग जीवन की कहानियाँ, गिरिराजशरण अग्रवाल, पृ.–12

79. विकलांग विमर्श का वैश्विक परिदृश्य, डॉ. सुरेश माहेश्वरी, पृ.–393
80. यशपाल, उतरा नशा, पृ.–44
81. विकलांग जीवन की कहानियाँ, गिरिराज शरण अग्रवाल, पृ.–12
82. विकलांग विमर्श का वैश्विक परिदृश्य, डॉ. सुरेश माहेश्वरी, पृ.–358
83. प्रदीप सौरभ, तीसरी ताली, पृ.–41

तृतीय अध्याय

हिन्दी उपन्यास में निःशक्त केन्द्रित अनुशीलन

(1) आधुनिक हिन्दी उपन्यास और निःशक्तजन अनुशीलन

(2) स्वातंत्र्योत्तर उपन्यास और निःशक्तजन अनुशीलन

(3) समकालीन उपन्यास और निःशक्तजन अनुशीलन

(4) निःशक्त अनुशीलन की विशिष्ट लेखिका

निष्कर्ष

तृतीय – अध्याय

हिन्दी उपन्यास में निःशक्त केन्द्रित अनुशीलन

हिन्दी गद्य साहित्य में उपन्यास, महत्त्वपूर्ण विद्या के रूप में प्रतिष्ठित हैं। हिन्दी साहित्यकारों ने उपन्यास लेखन की प्रेरणा यूरोपीयन साहित्य से ग्रहण की हैं। उपन्यास विद्या की उत्पत्ति चौदहवीं–पन्द्रहवीं शताब्दी के लगभग मानी जाती हैं। जबकि हिन्दी साहित्य में इसका आरम्भ उन्नीसवीं शताब्दी से हुआ। उपन्यास शब्द दो शब्दों से मिलकर बना हैं– 'उप+न्यास' जिसका अर्थ हुआ पास में रखी वस्तु या रचना। इस साहित्य में किसी ऐतिहासिक घटना, सामाजिक समस्या या किसी महापुरुष का जीवन वर्णन होता हैं। साहित्यकार जब भी साहित्य की रचना करता हैं तो वह पाठक को अपने भावों से जोड़ने के लिए कल्पना एवं अनुभव का सहारा लेता हैं। इसी प्रयास के कारण यह हिन्दी साहित्य की सर्वश्रेष्ठ सशक्त तथा लोकप्रिय विद्या के रूप में समादृत एवं प्रतिष्ठित हैं। वर्तमान युग में मानव जीवन के जितने संघर्षशील, संवेदनशील, विश्वसनीय एवं वैविध्यपूर्ण चित्र उपन्यास विद्या में दृष्टिगोचर होते हैं, उतने अन्य किसी विद्या में नहीं।

प्रेमचन्द जी उपन्यास को मानव जीवन का दर्पण ही स्वीकार करते हैं– वे लिखते हैं– "मैं उपन्यास को मानव चरित्र का चित्र मानता हूँ। मानवचरित्र पर प्रकाश डालना और उसके रहस्यों को खोलना ही उपन्यास का मूल तत्व हैं।"[1] उन्होंने दूसरी जगह कहा हैं– "उपन्यास में विषय का विस्तार, मानव चरित्र से किसी प्रकार कम नहीं है उसका संबंध अपने चरित्रों के कर्म और विचार, उनके देवत्व और पशुत्व उनके उत्कर्ष–अपकर्ष से हैं। मनोभावों के विभिन्न रूप और भिन्न–भिन्न दशाओं में उनका विकास उपन्यास का मुख्य विषय हैं।"[2]

इसी प्रकार उपन्यास की प्रमुख परिभाषाऐं निम्न हैं–

"मध्य युग में जो स्थान महाकाव्य का था अथवा भारतेन्दु युग में जो स्थान नाटक का था, वही वरन् युग के अनुकूल उससे भी कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण स्थान आज उपन्यास का हैं।"[3] अर्नेस्ट ए. बेकर के अनुसार अंग्रेजी के महान उपन्यासकार हेनरी फील्डिंग–ने अपनी रचनाओं को गद्य में लिखे गए व्यंग्यात्मक महाकाव्य की संज्ञा दी। उन्होंने उपन्यास की इतिहास से तुलना करते हुए उसे अपेक्षाकृत अधिक महत्त्वपूर्ण कहा। जहाँ इतिहास कुछ विशिष्ट व्यक्तियों एवं महत्त्वपूर्ण घटनाओं

तक ही सीमित रहता हैं, उपन्यास प्रदर्शित जीवन के सत्य, शाश्वत और सर्वदेशी महत्त्व रखते हैं। साहित्य में आज उपन्यास का वस्तुतः वहीं स्थान हैं जो प्राचीन युग में महाकाव्यों का था। व्यापक सामाजिक चित्रण की दृष्टि से दोनों में प्रर्याप्त साम्य हैं लेकिन जहाँ महाकाव्यों में जीवन तथा व्यक्तियों का आदर्शवादी चित्र मिलता हैं। उपन्यास, जैसा कि इनकी परिभाषा से स्पष्ट हैं। एक विद्वान आलोचक के शब्दों में इतना कहा जा सकता हैं, "आज का जीवन अपनी अनेकमुखी विविधता में, अपनी जटिलता और विशदता में यदि किसी की पकड़ में आ सकता हैं तो वह उपन्यासकार ही हैं। स्वस्थ व संयोजित ढंग से लिखी गई औपन्यासिक कृतियाँ संकृति की उन्नायक हो सामाजिक प्रगति का साधन बनती हैं। उपन्यासकार के पास विचारशील और विवेकपूर्ण जीवन दृष्टि होनी चाहिए जिससे संचित मानव मूल्यों की रक्षा करते हुए अपने यथार्थ भाव बोध व स्वतंत्र वैचारिक शान्ति के आधार पर इन्हें और भी समृद्ध कर आगत पीढ़ियों के लिए एक महान भार विरासत के रूप में छोड़कर जा सकें।"[4]

हिन्दी साहित्य का प्रथम उपन्यास आचार्य शुक्ल जी ने 'परीक्षा गुरु' को माना हैं। कुछ विद्वानों ने भाग्यवती को, देवरानी–जेठानी की कहानी को प्रथम उपन्यास माना हैं। परन्तु साहित्य में हिन्दी का प्रथम उपन्यास 'परीक्षा गुरु, लाला श्री निवासदास द्वारा रचित हैं। जिसमें दिल्ली के एक सेठ के पुत्र की कहानी हैं। हिन्दी साहित्य में उपन्यास सृजन का श्रेय पश्चिमी उपन्यासों को दिया जाता हैं। हिन्दी साहित्यकारों ने उन्हीं के अनुवादों से साहित्य में उपन्यास की रचना की। फिर उन्होंने अनुवाद से प्रेरणा लेकर मौलिक उपन्यास को जन्म दिया। उपन्यास साहित्य को, उपन्यास सम्राट् मुंशी प्रेमचंद को केन्द्र में रखकर उसके युगों में बाँटा हैं। जैसे उनके वर्गों के नाम निम्न हैं– प्रेमचन्दपूर्व युग, प्रेमचन्द युग, प्रेमचन्दोत्तर युग–प्रेमचन्दोत्तर युग को भी, प्रगतिवादी, प्रयोगवादी, सामाजिक, आंचलिक, मार्क्सवादी, ऐतिहासिक आदि भागों में बाँटकर इस विधा को श्रेष्ठता प्रदान की।

हिन्दी गद्य में इस विद्या का सृजन प्रेमचन्द पूर्व युग से लेकर समकालीन उपन्यास तक अनेक परिवर्तनों के साथ चल रहा हैं। शुरुआत में उपन्यास का लेखन मनोरंजन के लिए किया गया था। इस काल में 'जासूसी, तिलस्मी, ऐय्यारी उपन्यासों की रचना हुई। फिर समय के साथ धीरें–धीरें बदलाव होता रहा। इस बदलाव के रास्तें में ऐतिहासिक, सामाजिक, आंचलिक आदि उपन्यास लिखें गये। अब वर्तमान में यथार्थवाद के साथ व्यक्तिगत या व्यक्ति की निजी समस्या तक पहुँच गया हैं।

वर्तमान साहित्य में विमर्श के द्वारा समाज में फैले अंधविश्वास व पुरानी परम्पराओं से छुटकारा दिलाने का प्रयास हो रहा हैं। ये विमर्श गद्य साहित्य की सभी विद्याओं में हो रहे हैं। फिर चाहे उपन्यास हो, कहानी, नाटक, लघुकथा या फिर मुहावरें–लोकोक्तियाँ। सभी के माध्यम से समाज के अन्दर पनप रही बुराइयों को दूर करने का संकल्प लें रखा हैं। विमर्शों के द्वारा स्त्री को उसका सम्मान व हक दिलाकर, दलित वर्ग को खुलकर जीने की इच्छा दी, आदिवासी भी अपने हक के साथ जियेगें तो फिर दिव्यांग वर्ग पीछे कैसे छूट सकता था? इसी वर्ग पर हमारा उपन्यास साहित्य कार्य कर रहा हैं। हिन्दी साहित्य के उपन्यासों में निःशक्तजन को उपन्यास का मुख्य पात्र बनाकर उसकी समस्या से अवगत करवाया हैं।

(1) आधुनिक हिन्दी उपन्यास और निःशक्तजन अनुशीलन

उपन्यास विद्या आज के युग में जनप्रिय विद्या हैं। यह अन्य सभी विद्याओं की अपेक्षा जीवन के सर्वाधिक समीप हैं। हिन्दी उपन्यास को तीन भागों में बांटा गया हैं। 1950–60 तक व साठोतरी उपन्यास नाम दिया। प्रथम दशक के उपन्यास प्रगतिवाद से प्रभावित थे। दूसरे प्रयोगवाद तथा तीसरा आधुनिकतावादी। उत्तर आधुनिकतावादी के उपन्यास मनोवैज्ञानिक, प्रतीकवाद, घोर नग्न यथार्थवाद आदि विशेषताओं से परिपूर्ण रहें। उपन्यास लेखन प्रेमचन्दपूर्व युग से लेकर परिवर्तन के साथ अग्रसर हैं। इक्कीसवीं सदी का उपन्यास ऐतिहासिक व सामाजिक न रहकर व्यक्तिगत संवेदना तक पहुँच गया। इसी संवेदना को व्यक्त करने के लिए अनेक अनुशीलन साहित्य में तहलका मचाये हुए हैं। अन्य अनुशीलनों की तरह ही निःशक्तजन अनुशीलन भी निःशक्तजन की समस्या को दूर करने के लिए जरुरी हो गया। गद्य की सभी विधाऐं निःशक्तजन को केन्द्र में रखकर लिखी जा रही हैं। उपन्यास साहित्य भी समाज की हीन भावना को दूर करने में जुटा हैं।

समय के अनुसार जैसे–जैसे सामाजिक संरचना में परिवर्तन आया तदनुसार साहित्य के स्वरूप व विषयों में भी परिवर्तन होता गया। सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक मूल्यों में भी परिवर्तन आया। ऐसे समय में ऐसे विषय जो अब तक अछूते थे, साहित्य के केन्द्र में आ गए हैं। 20वीं शताब्दी के अंतिम दशक में वैश्वीकरण, स्त्री व दलित–विमर्श प्रारम्भ हुआ। 21वीं सदी के प्रथम दशक में आदिवासी विमर्श और अब दिव्यांग जन की मानसिक व शारीरिक पीड़ा का प्रश्न हैं। उदाहरण के लिए महाभारत का शकुनि और रामायण की मंथरा, श्रीमदभागवद् में कुब्जा आदि के प्रति उपेक्षा का भाव दिखाई देता हैं। प्राचीनकाल से शारीरिक व मानसिक रूप से निःशक्त लोगों के प्रति सभी के मन में यह अवधारणा बनी हुई हैं कि ऐसे लोगों में कुटिलता पाई जाती हैं। वे अहितकारी होते हैं। आधुनिककाल के साहित्यकारों ने इस समस्या को प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप से

स्पष्ट किया हैं। सभी रचनाओं के साथ उपन्यास साहित्य में भी निःशक्तजन की समस्या को दर्शाया गया हैं। आधुनिक काल के लेखक, तिलस्मी, ऐन्द्रजालिक, जासूसी व घटना प्रधान उपन्यासों के लेखन में जुटा हुआ था। परन्तु फिर भी कुछ साहित्यकार व्यक्तिगत समस्याओं पर लेखन कर रहे थे। व्यक्तिगत व यथार्थवादी समस्या को लेकर रचना करने वाले साहित्यकार जिन्होंने उपन्यास में निःशक्तजन की समस्या से अवगत करवाया हैं निम्न हैं–

कथा सम्राट् 'मुंशी प्रेमचन्द' ने अपने प्रसिद्ध उपन्यास 'रंगभूमि' में निःशक्त पात्र 'सूरदास' का चित्रण किया है जो आँखों से अंधा हैं। लेखक ने निःशक्त होने पर भी सूरदास के प्रति उसके चरित्र व स्वाभिमान पर आँच नहीं आने दी हैं। वह निपट अंधा हैं परन्तु दिल से साफ व ईमानदारी का परिचय देता हैं। हमारे समाज में अपंग लोगों के लिए बना–बनाया काम भीख माँगना हैं और अंधों का बना–बनाया नाम सूरदास हैं। सूरदास नीच जाति अर्थात् चमार जाति का हैं, दुर्बल शरीर और स्वभाव से सरल व शील हैं। भीख माँगकर अपना तथा अपने भाई के लड़के मिठ्ठू का पेट भरता हैं। वह स्वयं चाहे भूखा रहे परन्तु मिठ्ठू की हर जरुरत को पूरा करता हैं। रोज सुबह सड़क के किनारे बैठकर यात्रियों के कुशल की दुआ करता हैं। जब यह अंधा भिखारी जानसेवक की भिटन के पीछे दौड़ता हैं और कुछ हाथ नहीं लगता तो धैर्य और विश्वास को चित्रित करता हैं– "भगवान की चाकरी करता हूँ किसी दूसरे की ताबेदारी नहीं हो सकती।"[5] लेखक यहाँ स्पष्ट करना चाहते हैं कि निःशक्त व्यक्ति सूक्ष्मदर्शी होते हैं। जानसेवक के पैसें न देने पर भी सूरदास परेशान व दुःखी नहीं होता, उलटा उनके लिए दुआ करता हैं। "मिसा साहब, इसकी क्या चिंता? भगवान तुम्हारा कल्याण करें, तुम्हारी दया चाहिए, मेरे लिए यही बहुत हैं।"[6] वह भिखारी है परन्तु अपने अन्दर एक मनुष्य का ह्रदय रखता हैं।

सूरदास के पास अपने बाप–दादा की जमीन हैं, पुरखों की निशानी बेचना नहीं चाहता, लेकिन जानसेवक उसकी जमीन को खरीदना चाहता हैं। सूरदास अमीर लोगों के स्वार्थ को समझता हैं। वह सोचता है जब मैं भीख माँग रहा था तो मुझे कुत्ते से भी नीचे समझा, अब लल्लों–चम्पों करने लगे। अर्थात् यह मानव जाति ही और उसमें सबसे ज्यादा अमीर लोग स्वार्थी होते हैं। अपना काम निकालने के लिए ये गधा को भी अपना बाप बना लेते हैं। वह सोचता हैं पूरे मोहल्लें की गाय, भैंस सूरदास के खेत में चरती हैं। यदि यह खेत ही बेच दिया जायेगा तो ये बेचारी कहाँ पर चरेगी, इनके साथ अन्याय होगा। वह आँखें से अंधा हैं परन्तु ह्रदय की रोशनी बहुत तेज हैं। वह सोचता है एक कुआँ खुदवा दूँ, गया जाकर पित्रों का पिण्डदान करूं और मिठ्ठू का ब्याह कर दूँ। इन सभी कार्यों के लिए वह पैसे जोड़ता हैं। सूरदास की ईमानदारी व शील स्वभाव के कारण वह पूरे मोहल्लें का चहेता हैं। परन्तु कुछेक लोग जरुर ईर्ष्या करते हैं जैसे भैंरों।

वह उससे चिढ़ता रहता हैं कि अंधा भीख माँगकर खाता हैं परन्तु फिर भी अकड़ में रहता हैं। वह चाहता हैं कि यह भिखारी हमारी ताबेदारी करें।

एक दिन भैरो अपनी पत्नी सुभागी को मारता–पीटता हैं, तो वह दौड़कर सूरदास की झोंपड़ी में छुप जाती हैं। भैरो सूरदास पर चरित्रहीनता का आरोप लगा देता हैं। जिससे वह बहुत दुःखी होता हैं। अंधी आँखों से वह पूरी रात रोता रहता हैं। क्योंकि सूरदास अपने ईमान–धर्म पर अडिग रहता हैं। वह सुभागी को अपने घर से इसलिए नहीं निकलता क्योंकि वह औरत जात हैं और रात में वह कहाँ जाएगी उसकी इज्जत की बात हैं। भैरों उसको जो चाहे कहें परन्तु वह सुभागी को अपनी बहन के समान मानता हैं। भैरों अपनी इसी ईर्ष्या का बदला लेने के लिए सूरदास की झोपड़ी में आग लगा देता हैं और उसके एक–एक करके जोड़ा हुआ पैसा निकाल ले जाता हैं। पूरे मोहल्लें में ये बात फैल गई की सूरदास की झोंपड़ी में आग किसने लगाई। सूरदास को तो पता ही था कि भैरो के अलावा और कोई भी इतनी नीच हरकत नहीं कर सकता। परन्तु वह सभी को मना करता रहा कि उसके चूल्हे की आग से लग गई होगी। अब सूरदास के लिए पैसों की बात चिंता व शर्म दोनों थी। उधर सूरदास की झोंपड़ी जल रही थी और इधर सूरदास पैसों की चिंता में खोया था। जैसे ही आग शांत हुई, फिर राख ठण्डी हुई और सूरदास अपनी पैसों की पोटली को ढूँढने लगा। वह ढूँढ़ता रहा लेकिन उसे कुछ नहीं मिला अब सूरदास को विश्वास हो गया कि भैरो ने उसके पैसों के लिए लिए ही सूरदास की झोंपड़ी में आग लगाई थी। जब सुभागी को पता चलता है कि मेरी वजह से सूरदास की झोपड़ी में आग लगाई गई और भैरों ने उसके पैसे भी चुरा लिये तो वह निश्चय कर लेती हैं कि वह सूरदास के पैसे वापिस देगी।

वह मौका देखती हैं और अवसर पाते ही उसके पैसे लौटाने जाती हैं। परन्तु सूरदास उन पैसों को नहीं लेता और कहता हैं कि भिखारी के पास इतने रूपये कहाँ से आयेगें? वे पैसे भैरो के हैं उसे लौटा दें। यहाँ पर सूरदास का देवता रूप झलकता हैं। जगधर के बार–बार कहने पर भी सूरदास पैसों की हामी नहीं भरता। सूरदास भीख जरुर माँगता हैं परन्तु अपने आत्मस्वाभिमान को नष्ट नहीं होने देता। परन्तु सुभागी को बचाने के लिए जब वह भैरो को द्वार पर ही रोक लेता हैं तो भैरो कहता हैं– "दूर हट जाओ नहीं तो तुम्हारी हड्डियाँ तोड़ दूगाँ, सारा बगुला भक्तपन निकल जाएगा। बहुत दिनों से तुम्हारा रंग देख रहा हूँ। आज सारी कसर निकाल लूँगा।"[7] यह सुनकर उसे ठेस पहुँचती हैं तो फूट–फूटकर रोता हैं क्योंकि वह बदनामी का कलंक अपने माथे नहीं लगवा सकता। वह जीवन को खेल का मैदान समझकर चलता हैं। राजा साहब को जमीन के मुक्कदमें में पराजित कर देता हैं। परन्तु वह हार व जीत में अन्तर नहीं मानता वह झूठी शान का

गुलाम न बनकर उनसे आगे निकल जाता हैं। वह न तो खेल की जीत पर ज्यादा खुश होता और न ही हार पर निराश उसकी घोषणा हैं–

"तू रंगभूमि में आया दिखलाने अपनी माया,
क्यों धरम–नीति को तोड़े? भई क्यों रन से मुँह मोड़े?"[8]

वह अपने जीवन में संघर्ष करता हुआ चलता हैं। दो तरह के मुक्कदमें लड़ता हैं। एक तो औद्योगिकरण और पूंजीवाद के विरुद्ध दूसरा गाँव के लोगों की ईर्ष्या और द्वेष की लड़ाई जारी रहती हैं। सूरदास मिठ्ठू पर अपनी जान देता हैं। मिठ्ठू बारह–तेरह साल का लड़का हैं परन्तु सूरदास उसको प्राणों से भी ज्यादा प्यार करता हैं। वह "आप चाहे फांके मार, पर मिठ्ठू को तीन बार अवश्य खिलाता था। आप मटर चबाकर रह जाता हैं, पर उसे शक्कर और रोटी कभी घी और नमक के साथ रोटियाँ खिलाता था अगर कोई भिक्षा में मिठाई या गुड़ दें देता तो उसे बड़े यत्न से अंगोछे के कोने में बाँध लेता और मिठ्ठू को ही देता था।"[9] वह उसके रोने को एक पल भी बर्दाश्त नहीं कर सकता। भैरो से पिटकर रोते हुए मिट्ठुआ की आवाज सुनकर सूरदास क्रोधित हो ललकारता हैं, "भैरो भला चाहते हो तो उसे छोड़ दो, नहीं तो भला नहीं होगा। जब तक जीता हूँ, कोई उसे तिरछी निगाह से नहीं देख सकता।"[10]

अपनी ईमानदारी व सत्यनिष्ठता के कारण राजा साहब के कानून को जनता द्वारा उलटवा देता हैं। वह दृढ़ निश्चयी हैं। मुकदमा चलता हैं, जेल होती हैं, जुर्माना होता हैं, झोंपड़ी दो बार जलायी जाती हैं। परन्तु वह हार नहीं मानता मनुष्य होने का प्रमाण देता हैं। जिस मिठ्ठू को प्राणों से ज्यादा प्यार करता हैं वही बड़ा होकर अपने अंधा दादा की खबर तक नहीं लेता। उल्टी उसे ही खरी–खोटी सुनाता हैं तो उसका ह्रदय छलनी हो जाता हैं, जब अपने क्रियाकर्म की कहता हैं। 'तो यह आघात गोली से भी घातक था'। वह अंधा होने पर भी दुनिया से संघर्ष करता हैं, कभी भी हार नहीं मानता। सूरदास नीरा अंधा है नीच जाति से हैं परन्तु उसके कर्मों से वह श्रेष्ठ हैं। वह अपने गाँव पांडेपुर के नेतृत्व करता हैं और साथ में जानसेवक, राजा महेन्द्र कुमार जैसे पूँजीपतियों के घुटने भी टिकवा देता हैं। वह भविष्य के प्रति जागरुक व वर्तमान में सचेत था। वह ईमानदार व सत्य का साथी था। उसका कार्य सारे भारतीय समाज को नैतिक धरातल पर कर्त्तव्यों का अमर संदेश देता हैं। निःशक्त होकर भी सभी सक्षम लोगों को धूल चटा दी। वे सशक्तजन के लिए प्रेरणा स्रोत बनें।

'आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी' द्वारा रचित 'अनामदास का पोथा' प्रसिद्ध उपन्यास हैं, राजा जानश्रुति 'रैक्वऋषि' से मिलकर ज्ञान प्राप्त करता हैं। इस उपन्यास में भी 'ऋषि रैक्व' निःशक्त

पात्र हैं जो उपन्यास का मुख्य नायक हैं। द्विवेदी जी ने यह उपन्यास छान्दोग्य उपनिषद् के 'रैक्व आख्यान' पर कहानी के रूप में लिखा था। बाद में परिवर्तित करके उपन्यास लिखा। यह बताया जाता हैं कि ऋषि कुमार रथ के नीचे बैठकर अपनी पीठ खुजलाते रहते थे। ये उनकी जन्मजात बीमारी हैं या बाद में किसी परिस्थितिवश हुई इसका कहीं कोई वर्णन नहीं हैं। परन्तु सभी अनुमान अलग–अलग लगाते हैं कि ऋषि की पीठ में मैल जम जाने या फिर मुनि लोग नहाते तो जरुर हैं परन्तु पानी न पोंछने से दाद बन गया होगा। 'ऋषि रैक्व' से पूछने पर वह अपने पाप–कर्मों का फल मानता हैं। परन्तु कारण जो भी रहा हो, लेकिन वो रथ के नीचे बैठकर पीठ खुजलाते रहते हैं। रथ की कहानी से ऋषि कुमार का कुछ गहरा संबंध भी हैं। एक बार तेज बारिश व आंधी के कारण हुई दुर्घटना में राजा की पुत्री को तो रैक्व ऋषि ने बचा लिया परन्तु गाड़ीवान को वह नहीं बचा पाया। राजकुमारी को सकुशल राजमहल में पहुँचाने के बाद ऋषिकुमार अपने स्थान पर लौट गये। उस घटना के बाद राजकुमारी व ऋषि कुमार दोनों एक–दूसरे को चाहने लगते हैं। 'राजकुमारी जाबाल' राजा जनश्रुति की बेटी हैं। अब राजकुमारी ऋषि कुमार की चाहत में सुध–बुध खो बैठी।

ऋषि कुमार तापस जो ठहरे, ये शादी और औरत के बारे में कुछ नहीं जानते परन्तु प्रेमवश स्वप्न में उसे शुभा (जाबाल) के अमृत वचन सुनाई देते हैं– "ऋषि कुमार तुम्हारी पीठ में बड़ी वेदना हैं। आओ तुम्हारी पीठ को सहला दूँ।"[11] अब शुभा भी दिन–रात ऋषि कुमार के सपनों में खोई रहती हैं और धीरें–धीरें उसका स्वास्थ भी बिगड़ने लगता हैं। उसके पिता को बेटी की इस अवस्था की चिंता सताने लगती हैं। शुभा को ऐसी शंका हैं कि वह तापस कुमार यही कहीं आस–पास हैं। वह कहीं दूर अपने रथ के नीचे बैठकर पीठ को खुजलाता रहता हैं। राजा बेटी को स्वस्थ करवाने के लिए विधि–विधान करवाता हैं। उधर गाड़ीवान की पत्नी और बच्चा रैक्व ऋषि से मिलते हैं, वह उनकी सहायता करता हैं और राजा के पास पहुँचा देता हैं। वह गाड़ीवान की पत्नी को अपनी बहन मानता हैं। माँ भगवती गाड़ीवान की पत्नी को शुभा के पास ले जाती हैं। जब गाड़ीवान की पत्नी शुभा को अपने भाई तापस ऋषि के बारे में बताती हैं कि वह स्त्री जाति से बिल्कुल अनजान हैं। उसे पत्नी, शादी जैसे शब्दों का नहीं पता तो शुभा समझ जाती हैं कि यह उसी तरुण तापस की बात कर रही हैं। उसकी बातों से धीरें–धीरें सब कुछ स्पष्ट हो जाता हैं। ऋषिकुमार को माँ भगवती कहती हैं कि मैं तुम्हारी पीठ में इगुंदी का तेल और उबटन लगा दूँ? तो कहता हैं, "नहीं माँ वह मेरे पापों का फल हैं। मैंने पाप किया था। उसी का दण्ड भोग रहा हूँ। यहाँ बड़ी सनसनाहट मालूम होती हैं।"[12]

दूसरी तरफ राजा अपनी बेटी के लिए बड़े विधान आयोजन करते हैं। जब वह अतिथिशाला के पास ध्यानावस्था में बैठे थे तो माँ 'ऋताम्बरा' उसे लाने जाती हैं और जाबाल से कहती हैं, "बेटी अब उनके आने में थोड़ी सी देर होगी, इसलिए थोड़ा यज्ञ शिष्ट प्रसाद ग्रहण कर लो। फिर निश्चिन्त होकर एक बार देख आऊँ।"[13]

उस यज्ञ की सबसे महत्वपूर्ण पात्र जाबाल थी। जाबाल और तरुण तापस का विवाह राजा जनश्रुति बड़ी धूमधाम से करते हैं। ऋषि कुमार अपने ज्ञान का मार्ग शुभा को ही मानते हैं। वह जाबाल से गाड़ी माँग लेता हैं और दिन–रात तप में ध्यान लगा रहता हैं। जब उसे पीठ खुजलाने का समय नहीं मिलता। जाबाल के प्रति प्रेम या निष्ठता ही ऋषि कुमार की तपस्या को पूर्णता प्राप्त करती हैं। ऋषि कुमार का अपनी खुजली के बारे में अंधविश्वास हैं कि उसके बुरे कर्मों का फल हैं जिसके कारण उसकी पीठ में खुजली होती रहती हैं। ऋषि तपस्वी हैं परन्तु संसार के ज्ञान से अनभिज्ञ हैं। जाबाल का प्रेम ही उसकी तपस्या की पूर्णता हैं।

उक्त धारणा एक अपंग व्यक्ति के लिए प्राचीनकाल से ही बनी हुई हैं कि यह उसके बुरे कर्मों का फल हैं। ज्ञानी 'ऋषि रैक्व' सोचता हैं कि यह उसके कर्मों का फल हैं। इतना महान ज्ञानी होने पर भी ऋषि कुमार की धारणा भी यही हैं। परन्तु यह सोचना गलत हैं क्योंकि अंगविकार होना किसी के बस की बात नहीं होती। कहा भी गया हैं– "जहाँ मनुष्यहीन भावना से भर जाता हैं वहीं से निःशक्तता शुरु हो जाती हैं।"[14]

आधुनिक काल के उपर्युक्त उपन्यास ही दिव्यांग विमर्श पर केन्द्रित हैं। जिन्होंने अपने मुख्य नायक को निःशक्त रखकर उसकी पीड़ा व समस्या के बारे में चिंतन का अवसर दिया हैं। हमें तो सोचकर भी डर लगता हैं कि यदि हमारा कोई अंग न हो तो क्या होता? या फिर कभी किसी एक अंग के बिना कार्य करके देखें कि अंगहीन वाले मनुष्य के सामने कितनी समस्या आती होगी। यदि ऐसा करके देखेगें तो पत्थर दिल में भी संवेदनशीलता पैदा हो जाएगी। क्योंकि कहा जाता हैं जिसके ऊपर गुजरती हैं वहीं जानता हैं। या फिर "जाके पैर फटी न बिवाई, वो क्या जाने पीर पराई।" पीड़ा को महसूस करने के लिए स्वयं को उसके अन्दर से गुजरना पड़ता हैं।

(2) स्वातंत्र्योत्तर उपन्यास और निःशक्तजन अनुशीलन

स्वातंत्र्योत्तर उपन्यासों में बदलते समाज का परिवेश समग्र रूप से उपन्यास विधा में चित्रित हैं। देश की आजादी के बाद साहित्य में जो उपन्यास लिखे गये उन्हें ही स्वातंत्र्योत्तर उपन्यास कहा गया हैं। हिन्दी में स्वतंत्रता के बाद के साहित्य को 'नया शब्द' जोड़कर नाम दिया हैं, जैसे नयी कविता, नयी कहानी आधुनिक उपन्यास आदि। स्वातंत्रयोत्तर उपन्यासों में बदलते जीवन मूल्य

व विघटित होती संस्कृति पर भी प्रकाश डाला हैं। आधुनिक समाज पश्चिम सभ्यता की दौड़ में शामिल हो रहा हैं इसी कारण स्वतंत्रता के बाद जो उपन्यास लिखे उनमें मानव जीवन का बदलाव दिखाई दें रहा हैं।

स्वतंत्रता आन्दोलन व ऐतिहासिक विषयों को लेकर उपन्यास लिखे गये। समाज व जनता ने यह सोचा था कि स्वतंत्रता के बाद उनका देश उनके लिए पूर्ण स्वतंत्र होगा। परन्तु जो सपने देखें थे वे पूरे होते नजर नहीं आये। क्योंकि आधुनिक समाज में फैल रहे अंतर्विरोध, विसंगतियाँ, सामाजिक समस्याऐं व मनुष्य की मानसिकता में चल रहे द्वन्द्व को समझने के लिए उपन्यास से बेहतर माध्यम नहीं हो सकता। जीवन की जटिलताओं को व्यापक रूप में प्रतिबिम्बित करने का साहस यही विद्या रखती हैं। क्योंकि शहर से लेकर गाँव के आम आदमी तक सभी की पीड़ा को व्यक्त किया जाता हैं सातवें–आठवें दशक में पिछले उपन्यासों से अधिक बदलाव हुआ। फ्रॉयड का मनोविश्लेषणवाद, मार्क्स का मार्क्सवादी सिद्धान्त, इतिहास, अर्थशास्त्र, सामाजिक आंचलिक आदि सभी नवीन अवधारणाओं के साथ उपन्यास सृजन हुआ। 1950–1980 तक के काल को स्वातंत्र्योत्तरकाल और उसके बाद के साहित्य को समकालीन काल कहा हैं।

आजादी के बाद हिन्दी साहित्य में समाज की समस्याओं के 'उन्मूलन' के लिए 'विमर्शों' का सहारा लिया गया समय–समय पर अनेक विमर्श आये जैसे–स्त्री विमर्श, स्त्री की समस्या को लेकर साहित्य लिखा गया। दलित विमर्श, दलित समाज की समस्या को उठाया, आदिवासी विमर्श, जिसमें आदिवासी वर्ग पर चिंतन मनन हुआ। अब इनके बाद में 'दिव्यांग विमर्श' भी समय की जरुरत बन गया हैं। इसलिए साहित्य में दिव्यांग वर्ग को साहित्य में मुख्य पात्र बनाकर उसके साथ घटित होने वाली समस्याओं को चित्रित किया हैं। भगवान सभी को बराबर बनाता हैं परन्तु हम देखते हैं कि कोई भी आदमी दूसरे के समान नहीं होता। उसी प्रकार निशःक्तजन को भी ईश्वर औरों की तरह ही बनाता हैं। भगवान की तरफ से तो वह सभी के समान हैं परन्तु समाज में उसे हीन दृष्टि से देखा जाता हैं।

मनुष्य अपनी इसी सोच को बदलने का प्रयास नहीं करता कि निःशक्तजन भी हमारे समाज का हिस्सा हैं। उन्हें भी उतना ही हक हैं जितना हमें हैं। साहित्यकार साहित्य के माध्यम से इसी मानसिकता को बदलने की कोशिश करता हैं।

निःशक्तजन पर आधारित निम्न उपन्यास हैं–

'श्रीलाल शुक्ल' का उपन्यास 'रागदरबारी' इस उपन्यास का मुख्य पात्र 'लंगड़' हैं। हमारे समाज की यही विशेषता हैं कि निःशक्तजन को हीनदृष्टि से देखता हैं और उसका उपेक्षापूर्ण नाम

भी रख दिया जाता हैं। वैसे ही इस उपन्यास का पात्र पैरों से निःशक्त होने के कारण इसे 'लंगड़' कहते हैं। वह शिवपालगंज से पाँच कोस दूर एक गाँव का भगत हैं। सनीचर के मत में वह मौजी आदमी हैं। उसकी पत्नी मर चुकी हैं। अपने बेटों से नाराज लंगड़ ने कचहरी में एक दीवानगी मुक्कदमा दायर किया हुआ हैं इसलिए उसे एक पुराने फैसले की नकल की आवश्यकता हैं। अपने शील व संत स्वभाव के अनुकूल नकल हेतु उसने दरख्वास्त दी। उसमें कुछ कमी रह जाने से वह खारिज हो जाती हैं। इसलिए दूसरी दरख्वास्त दी और अब वह नकल लेने जाता हैं तब नकलनवीस ने उससे पाँच रूपये माँगे तो लंगड़ ने कहा रेट दो रूपये के हैं। इसी बात पर दोनों में झगड़ा हो गया दोनों ने कसमें खाई कि न एक पैसा लेगें और न देंगे जो कुछ भी करेंगे कानून के अनुसार करेंगें। अब लंगड़ गाँव छोड़कर तहसील के एक रिश्तेदार के यहाँ डेरा डाल लेता हैं। अब वह सुबह से शाम तक तहसीलदार व नोटिस बोर्ड के इर्द–गिर्द चक्कर काटता रहता हैं उसे यह भय हैं कि नोटिस बोर्ड पर उसकी दरख्वास्त की कोई खबर निकले और उसे पता ही न चले। इसलिए उसने नकल लेने के सब कायदे रट लिये और फीस का पूरा चार्ट याद कर लिया हैं। परन्तु उसकी तमाम सजगता और तत्परता के बावजूद भी उसे नकल नहीं मिल पाती। क्योंकि एक बार लंगड़ को अपनी बिरादरी के घर में गमी हो जाने के कारण अपने गाँव जाना पड़ता और वहाँ जाने पर स्वयं लंगड़ भी बीमार पड़ जाता हैं। वह इतना ज्यादा बीमार हो गया कि पूरे सत्रह दिन तक चारपाई से हिल भी नहीं पाया। जब वह बीमारी से उठा तो जल्दी करके तहसील में गया और वहाँ जाकर अपनी नकल के बारे में पूछता हैं तो उसे बताया जाता हैं कि तुम्हारी नकल तो कई दिन पहले निकल चुकी थी और नोटिस बोर्ड पर लगाई गई थी। परन्तु यहाँ का यह कानून हैं कि यदि पन्द्रह दिन तक कोई अपनी नकल नहीं लेता तो उसे फाड़कर फेंक देते हैं। यह सुनकर लंगड़ के होश गुम हो गये। बेचारा निःशक्त आदमी जिस काम के लिए इतने दिनों चक्कर लगा रहा था। वही नकल उसकी फाड़कर फेंक दी गई। अब वह सोचता हैं यदि उसे मालूम होता कि नकल को पन्द्रह दिन बाद फाड़कर फेंक दिया जाता हैं तो वह गाँव भी नहीं जाता।

लंगड़ की दृष्टि में रिश्वत लेना पाप हैं और वह पाप करना नहीं चाहता था। इसी कारण उसकी दरख्वास्त किसी न किसी कारण से मंजूर नहीं होती। श्री लाल शुक्ल ने व्यंग्य की तिक्तता इस स्थिति में बढ़ाई हैं कि लंगड़ से सहानुभूति रखने वाले उसकी सत्य की लड़ाई में उसका साथ नहीं देते बल्कि सलाह देते हैं। कि नकलनवीस को पैसें देकर इस झंझट से छुटकारा पा सकते हैं। इस परिस्थिति में व्यंग्य, तीखा व क्षोभ देने वाला हो गया हैं। 'शुक्ल जी' ने इस उपन्यास के माध्यम से राजनीति की तत्कालीन स्थित पर प्रकाश डाला हैं कि कैसे भ्रष्ट अधिकारी हमारे देश को खोखला कर रहे हैं जो अन्दर ही अन्दर जनता को खाये जा रहे हैं। परन्तु इस भ्रष्टाचारी को

बढ़ावा देनें में जनता का भी अधिकारियों के जितना ही हाथ हैं क्योंकि यदि हम हर कार्य को नियम से करें और रिश्वत माँगने वाले के खिलाफ कारवाई दर्ज करवायें तो यह समस्या खत्म हो सकती हैं। परन्तु हमारा उद्देश्य उस समस्या को खत्म करना नहीं होता। बल्कि अपना काम निकालना होता हैं कि थोड़े से पैसों का लालच देकर अपना काम जल्दी करवा लिया जाये। लंगड़ ने ठीक कहा हैं, यह आधुनिक चाटुखोरी, भ्रष्टाचारी हैं जिस काम के लिए अधिकारियों को सरकार पैसा देती हैं उसी काम को करने के लिए हम अलग से पैसे दें? यदि लंगड़ जैसे सभी लोग हो जाए तो शायद इस समस्या से जल्दी छुटकारा पाया जा सकता हैं। पैरों से अपंग होने पर भी लगातार कचहरी के चक्कर लगाता रहता है परन्तु हार नहीं मानता।

रंगनाथ, लंगड़ को समझाते हैं कि तुम्हारे कानून जानने से कुछ नहीं होने वाला मुकद्दमों में जनता इतनी आसानी से नहीं जीत सकती। अब हार गये तो कोई बात नहीं अपने गाँव जाकर खेती करो। "खेती कैसे करुँगा बापू? खेतों का ही तो मुकद्दमा चल रहा हैं।"[15] लंगड़ के साथ इतना होने के बाद भी उसे सत्य पर विश्वास है वह सोचता हैं कि भगवान के घर देर हैं अंधेर नहीं। जब तक मुझे तहसील से नकल नहीं मिल जाती मरुंगा नहीं। क्योंकि वह सत्य की लड़ाई लड़ रहा हैं। रिश्वत का देना व लेना पाप समझता हैं। एक सिपाही ने लंगड़ को कहा था, "तुम साले बांगडू हो दो रूपये के पीछे जिन्दगी बरबाद कियें हो ठोक क्यों नहीं देते तो दो रूपये।"[16] रंगनाथ भी उसे एक वकील कर लेने की सलाह देता हैं कि बिना रिश्वत के काम नहीं होगा। इतना संघर्ष करने के बाद भी लंगड़ के माध्यम से सशक्तों को प्रेरणा दी है कि सत्य की हमेशा जीत होती है पाप का विरोध करके हमें सत्य का साथ देना चाहिए।

'उषा प्रियवंदा' का उपन्यास 'पचपन खंभे लाल दीवारे' की मुख्य्य पात्र सुषमा हैं। नायिका सुषमा के पिता लकवाग्रस्त हैं इसी कारण घर–परिवार की जिम्मेदारी अब सुषमा के ऊपर हैं। उपन्यास के माध्यम से मध्यमवर्गीय पारिवारिक जीवन एवं उसकी समस्याओं का चित्रण हैं। सुषमा परिवार के दायित्वों में बंधी हुई हैं। पिता के कंधों का भार उठा रही हैं। सुषमा जीवन व प्रेम का बलिदान करने वाली मध्यवर्गीय नारी की प्रतीक हैं। छात्रावास के पचपन खंभेलाल दीवारें उसके दायित्व की पद और गरिमा, पारिवारिक मर्यादा की कुंठा की दीवारें हैं जिनमें आबद्ध रहना उसकी नियति हैं। वह ऊब तथा घुटन महसूस करती हैं परन्तु उससे बाहर नहीं आ पाती। उसकी माँ उसे बार–बार जिम्मेदारी का अहसास कराती हैं जिससे उसका कर्त्तव्यबोध और भी दुष्ट बन जाता हैं। अपने से कम उम्र के नील नामक युवक से प्रेम करती हैं। सुषमा ने भीतर से स्त्री के मन को सहज रूप से नील के प्रति समर्पित कर दिया, "सुषमा ने आश्चर्य से अपने नये व्यक्तित्व का जन्म

होते देखा। उसकी सब इंद्रिया अधिक तीक्ष्ण, संवेदनशील हो गई थी। उसके माथे की बिंदी और भी चमकने लगी है उसके होठों में बड़ी कोमलता आ गई।"[17]

सुषमा की माँ ने बेटी की नील से बढ़ती नजदीकीयाँ भाँप ली। उसे लगा यदि उसकी बेटी शादी कर लेगी तो घर का खर्च कौन चलाएगा? धीरे–धीरे सुषमा को भी ऐसा लगने लगा कि भविष्य में कभी न कभी नील उससे अलग होगा ही। उसके समीप रहने पर वह सदैव उससे दूर होने की आशंका से घिरी रहती हैं। परिवार की जिम्मेदारी और उसकी माँ की स्वार्थपूर्ण इच्छाओं की मानसिकता से घिरी रहती हैं। नील ने उसको बहुत भरोसा दिलाया और उसे जीवन साथी के रूप में पाने हेतु प्रतीक्षा करता रहा परन्तु सुषमा सामाजिक और पारिवारिक विवशताओं की मानसिकता से नहीं निकल पाई और नील से भी दूर हो गई।

यहाँ पर लेखिका ने स्त्री विवशताओं को दर्शाया हैं। अपने पिता के अपंग होने पर और माँ स्वार्थी होने पर वह अपनी जिन्दगी भर की खुशी दाँव पर लगा देती हैं। यदि उसके पिता निःशक्त नहीं होते तो उसे भी खुलकर जीने का अवसर मिलता हैं। यही निःशक्तता कहीं न कहीं मनुष्य को व उस पर आधारित सदस्यों के जीवन को उजाड़ देती हैं। जब घर का मुखिया ही लाचार होकर पलंग का सहारा ले लेता हैं तो उस घर की स्थिति दयनीय होना स्वाभाविक बात हैं और उसकी निःशक्तता का प्रभाव हर सदस्य पर पड़ता हैं। इस उपन्यास की नायिका आवां की नायिका की तरह पिता की जिम्मेदारी स्वयं निभाती हैं।

प्रसिद्ध उपन्यासकार 'अमृतलाल नागर' ने 'खंजन–नयन' में सूरदास के जीवन संघर्ष का वर्णन किया हैं।

खंजन–नयन उपन्यास में तत्कालीन युग के परिवेश तथा युगबोध हुआ हैं। इस उपन्यास की रचना नागर जी ने 1981 में की। लेखक ने अंधे कवि की आंतरिक और बाह्य पीड़ा, जिज्ञासा की प्रवृत्ति और जिजीविषा को बड़ी ही बारीकी से चित्रित किया हैं। नागर जी ने उन्हें लोकमानस से मानवीय धरातल पर एक आदर्श मनुष्य के रूप में दर्शाया हैं। नागर जी 1914 में जैसलमेर में किला देखने गये वहाँ उन्होंने एक अंधा गाइड मिला। उसने अंधे को अपने साथ इसलिए लिया ताकि वह उसको परख सके कि अंधा कैसे गाइड करता हैं लेकिन जब वह उसे हर चीज के बारे में बारीकी से समझाने लगा तो लेखक भी हैरान रह गये। वे आश्चर्यचकित होकर सोचते रहे कि अंधेपन के बावजूद उसमें जो दृष्टि थी, उसी ने उसे खंजन नयन लिखने के लिए मजबूर किया। ये तो रहा खंजन नयन की रचना का कारण अब खंजन–नयन में किसी ब्राह्मण के घर में जन्में सूरदास, जन्म से अंधे थे। उनके पिता उनके सुमधुर गायन के कारण, उन्हें गायन विद्या में पारंगत

करना चाहते हैं। गाँव के सभी बच्वें 'सूर' का मजाक करते और उस पर पत्थर फैंकते थे। उसके पिता ने उसे विद्या प्राप्त करने अच्छे शिक्षक के पास भेज दिया। तो स्वयं उसके भाई उससे चिढ़ने लगे। पिताजी उन्हें प्यार से सूरा कहकर पुकारते थे। वह अपने गुरु के पास रहकर ही विद्या ग्रहण करने लगा ताकि आनें–जानें में उसे परेशानियों का सामना न करना पड़े। इस बात से उसके भाई उससे अब और ज्यादा ईर्ष्या करने लगे। एक दिन उन्होंने झूठ बोलकर कहा माँ बहुत बीमार है अब माँ ने सूरा को अपने पास बुलाया हैं। वह उनकी बात को सत्य मानकर घर की ओर चल पड़ता हैं तभी रास्ते में उसके भाई उसके ऊपर पत्थर फेंकना शुरु कर देते हैं। कोई आगे से तो कोई पीछे से मारने लगा वह बेसुध होकर गिर पड़ा। अपने भाईयों व मोहल्लें के बच्चों द्वारा सताये जाने पर वह श्याम की शरण में मथुरा आ जाता हैं।

मथुरा के 'युवा विद्वान' डॉ. विष्णु चतुर्वेदी ने बताया कि एक वार्ता के अनुसार युवा सूरदास किसी मल्लाहिन के इशकिया चक्कर में फंसकर बुरी तरह मारे व पीटे गए। यह वार्ता पढ़ने को नहीं मिल सकी इसलिए वह इश्क मल्लाहिन भले ही सच हो या न हो परन्तु इस उपन्यास में कंतों, मल्लाहिन युवा सूर की सार्थक प्रेमिका हैं। कंतों यद्यपि बदसूरत हैं, तथापि अंधे सूर का मन कंतों की ओर आकर्षित हो जाता हैं। सूर का मधुर गाना और ज्योतिष ज्ञान कंतों को अपनी ओर आकृष्ट कर लेता हैं। खंजन नयन की कंतों सूर को पूर्ण पुरुष बनाने में सहायक होती हैं। काम आवेग में एकांत पाते ही सूर कंतों से भोग करने को ज्यों ही तैयार हुआ, त्यों ही सूर का श्याम मन स्मरण करने लगता हैं। सूर का श्याम मन कंतों से कहता है, 'जो सुख मैं पाना चाहता हूँ, वह मैं उसे नहीं दूंगा, समझी। इसी विकल्प से सूर अपनी काम–भावना का उन्नयन करते हैं और व्यक्ति की ओर उत्तरोतर उन्मुख होते हैं। जीवन की पूर्णता की प्यास दोनों की समस्या हैं। सूर को भी न आँखें मिली न तुम (श्याम) मिले, न जीवन को कोई ओर सुख पा सका। कंतों को भी जीवन में अगर कुछ मिला है तो वह घृणा मिली हैं, उपेक्षा मिली, तिरस्कार मिला हैं। सब उसे दुत्कारते हैं। उसे अपने दुर्भाग्य की दूसरी मूर्ति देखकर सूर उसकी ओर आकर्षित होते हैं और कंतो भी–

मेरो किनारों तो तुम्हीं हो सामी जी।

कंतो सूर का साथ नहीं छोड़ती। उसका प्रेम इस कोटि का हैं जिसके द्वारा वह न तो सूर की वर्ण जाति को बिगाड़ना चाहती हैं और न ही उसे भक्ति मार्ग से विमुख करना चाहती हैं। कंतों का स्पर्श कल तो वारूणी थी, अब सुधासम लगने लगा हैं? कंतों विशुद्धमति हो जाती हैं। उसके प्रति सूर का आकर्षण अब विशुद्ध निष्काम प्रेम में बदल जाता हैं और उनका काम? अब काम ही राम हैं श्याम हैं। खंजन–नयन के सूर अपनी सारी अच्छाइयों, बुराइयों तथा सबलताओं, दुर्बलताओं

के साथ सहज मानव के रूप में चित्रित हुए हैं। सूर तिरस्कृत कंतों से जुड़ते हैं। एक बार रात्रि को सूर का शरीर कंतों के शरीर का स्पर्श पाते ही उत्तेजित हो उठता हैं। वह कंतों को अपने आलिंगन–पाश में बाँधना चाहता हैं। इस अवसर पर कंतों का मन भी कमजोर हो जाता हैं, किन्तु उसका मुख ना करता जाता हैं। तत्क्षण ही कंतों सूर को हनुमान का स्मरण करवाती हैं। जिससे सूर मन लड़खड़ाकर पश्चात्ताप से विगलित हो जाता हैं और आत्मग्लानि से भर उठता हैं।

सूर और कंतों के माध्यम से काम के संबंध में नागर जी के अभिव्यक्त उक्त दृष्टिकोण मात्र एक व्यक्ति या प्राणी के लिए नहीं, बल्कि वह सम्पूर्ण मानव–जीवन और समाज से जुड़ी हुई हैं और मानव स्वभाव के अनुरूप हैं। नागर जी इस पूरे काम विषयक मूल चिंतन में यह स्थापित करने का प्रयास किया हैं कि काम–प्रवृत्ति अन्य मूल प्रवृत्तियों में अपना प्रमुख स्थान रखती हैं। यह मूल प्रवृत्ति अपने संकीर्ण अर्थ में जहाँ शारीरिक तृप्ति या संतान प्राप्ति के उद्‌देश्य तक सीमित हैं, वही अपनी व्यापकता में जीवन के चरम या उच्च लक्ष्यों की प्राप्ति में भी सहायक होती हैं। नागर जी काम प्रवृत्ति के दमन का विरोध करते हैं और इसे अस्वीकार करते हैं। इसलिए काम प्रवृत्ति का उन्नयन और उदात्तीकरण रूप ही व्यक्ति और समाज दोनों के समुचित विकास में सहायक होता हैं। खंजन–नयन में सूर और कंतों के माध्यम से काम विषयक मूल्यों की अभिव्यक्ति सामाजिक संदर्भों में हुई हैं। जो इस संदर्भ में उपन्यास की सार्थक सामाजिक चेतना को स्पष्ट करती हैं।

सूरदास के माध्यम से नागर जी हिन्दू समाज में विघटित होते और कमजोर पक्ष का उद्‌घाटन करते हैं। जिसका बीज आज भी समाज में विद्यमान हैं। एक अन्य स्थल पर अयोध्या के राम मंदिर से दर्शन करके निकलते वक्त एक व्यक्ति के शंका के समाधान के रूप में नागर जी ने सूर स्वामी के माध्यम से स्पष्ट किया है हमारे यहाँ तो व्यक्ति–व्यक्ति का स्वार्थ इतना अलग हो गया हैं कि हम कहीं मिल ही नहीं पाते इसलिए जी भी नहीं पातें। इस प्रकार उपन्यास में जनसाधारण में व्याप्त धार्मिक भीरूता, धार्मिक रूढ़ियों तथा जादू टोना का चित्रण ऐतिहासिक और युगानुरूप हैं। दोनों हिन्दू मुसलमान सम्प्रदायों के लोगों में जो धार्मिक कट्टरता तद्‌युगीन समाज में थी, उसी कट्टरता का रूप आज समाज में देखा जाता हैं। सब कुछ मिलाकर इस उपन्यास में सूरदास के चरित्र–विन्यास में मानवीय गुणों पर ही लेखक की दृष्टि रही हैं और वह संघर्षरत सबल मानव को अंकित करने में सफल रहा हैं। सूरदास शरीर धर्म को समझते हैं, शरीर के विकास को पहचानते हैं। युवावस्था प्राप्त करने पर सबकी तरह सूर में काम भोग की इच्छा जागती है। सूर अपनी इस दुर्बलता से गहरे आत्म संघर्ष की प्रक्रिया से गुजरते हैं। नागर जी ने आत्म संघर्ष की इसी प्रतिक्रिया को विस्तार से अंकित कर सूर चरित्र कसे मनोवैज्ञानिक आधार प्रदान किया हैं। अपनी कल्पना से जिस सूरदास को संघर्षरत मानवीय भूमिका में उभारना चाहा हैं, वह

कंतों नाम की एक कुरुप तिरस्कृत कन्या के सम्पर्क में आने के बाद संभव हुआ। कंतों का सम्पर्क सूर के लिए चुनौती बन गया।

खंजन–नयन में सूर के अन्तः संघर्ष की सार्थक प्रस्तुति हैं। इसमें नागर जी ने सूर के श्याम मन तथा काम मन को आत्म संघर्ष का सूक्ष्म चित्रण किया हैं। सूर की लंबी जीवन यात्रा में मान–अपमान, निन्दा स्तुति, हर्ष–विषाद, द्वंद्व–संघर्ष, भाव–अभाव के अनेक पड़ाव हैं सूरदास किसी पड़ाव में नहीं भटके हैं और न लक्ष्य भ्रष्ट हुए हैं। अपनी समस्त मानवीय दुर्बलताओं से जूझते, उन्हें पहचानतें और यथाशक्ति परास्त करके आगे बढ़ जाते। नागर जी ने कहीं भी किसी प्रलोभन में फंसने नहीं दिया हैं उनकी यह सोद्देश्य निर्मित रचनाधर्मिता को स्पष्ट करती हैं।

जन्मांध होने पर भी सूर ने हिन्दी साहित्य में धूम मचाई। वे भक्तिकाल के प्रसिद्ध महाकवि थे। स्वामी जी ने आठ वर्ष की आयु में गुरुजी से एक श्लोक सुना, उन्होंने कविता के अर्थ के बारे में कहा–"कविता का अर्थ न तो आन्ध्र–प्रदेश की स्त्रियों के कुचों की तरह खुला रहे और न गुजरातियों के पयोधरों के समान पूरी तरह ढका ही रहे। कविता का अर्थ तो मराठी स्त्रियों के स्तनों के समान कुछ–कुछ ढ़का और कुछ–कुछ उजागर होना चाहिए इसी में काव्य का लालित्य हैं।"[18] गुरू का रहस्य भरा अर्थ सूरा के लिए साहित्य रचना का मार्गदर्शक बना। भाईयों की प्रताड़ना से परेशान होकर घर छोड़कर चला गया किसी टीले पर बैठकर गाने लगा–

"विमुख जनन को संग न की जै
जिनके विमुख वचन सुनि स्त्रवननि
दिन–दिन देही छीजै।
मोकों नेकु नहीं यह भावत
परबस कौ कहा की जै।।
छिकइहि घर धिक इन गुरुजन कौ
इनमें नहीं बसी जै।"[19]

सूरज ने अपना दर्द व्यक्त किया फिर मथुरा चले गये और वहाँ जाकर भगवान की जन्मभूमि में लीन हो गये। भगवान श्याम के रंग में रंग गये। उन्होंने अपने प्रसिद्ध ग्रंथ सूरसागर में भगवान कृष्ण का वात्सल्य वर्णन ऐसा किया हैं कि हम मान ही नहीं सकते वे अंधे हैं। क्योंकि उनकी इस रचनाधर्मिता के आगे आँखों वाले कवि भी पानी भरते हैं।

(3) समकालीन उपन्यास और निःशक्तजन अनुशीलन

उन्नीसवीं सदी के बाद बीसवीं सदी अनेक साहित्यिक वादों की, चिंतन और चिंतकों की शताब्दी रही। फ्रायड, मार्क्स, गांधी इत्यादि के विचारों में व्यक्ति, समाज तथा राष्ट्रों में नई चेतना जागृत की। जबकि इक्कीसवीं शताब्दी में सामाजिक उत्तरदायित्व तथा कर्त्तव्य बोध से आशान्वित लेखक, विद्वान, उपेक्षित वर्ग को केन्द्र में रखकर विमर्श करता हैं। उत्तर आधुनिकता, स्त्री–विमर्श के साथ दलित–विमर्श, आदिवासी जनजातीय–विमर्श आधुनिक चिंतन के केन्द्रीय कारक हैं। किसान की समस्याएँ भी भारतीय समाज का आइना हैं। आधुनिकता की अंधी दौड़ उसे भी निर्धन से निरीह बनाने में कोई कसर नहीं छोड़ती। किसान चुनावीवादों में दृष्टिगोचर होने के बाद लुप्त हो जाता हैं। हमारे देश में बुजुर्ग और बेसहारा निःशक्तजन को भी आधुनिकता ने हाशिये पर लाकर खड़ा किया हैं। भारतीय निःशक्तजन जनगणना संबंधी आंकड़े 2001 से उपलब्ध होते हैं। एक सर्वे के अनुसार पूरे देश में काफी सारे अपंग लोग हैं।

प्रेमचन्द युग के बाद का साहित्य आंचलिक ऐतिहासिक व आधुनिक समय तक आते–आते व्यक्तिगत हो गया। वर्तमान में जो भी नये उपन्यासकार आ रहे हैं। वे समाज को परख कर समाज के व्यक्ति की पीड़ा तक पहुँच रहे हैं। वे देख रहे हैं कि भौतिकवादी युग पूर्ण रूप से स्वार्थ पर टीका हुआ हैं। गरीब–असहाय का फायदा उठाता हैं, जितना हो सकें उसे दबाते ही रहते हैं ताकि ऊपर न उठ सके और उसे अपने अधिकारों का ज्ञान न हो सकें।

वैज्ञानिक युग ने जहाँ मनुष्य के लिए सुविधाऐं प्रदान की हैं उन्हीं सुविधाओं ने दूसरी ओर मानवीय रिश्तों को छीन लिया हैं। मनोविज्ञान जहाँ मनुष्य के सर्वांगीण विकास की बात करता हैं। परन्तु फिर भी एकाकीपन अधिक बढ़ा हैं।

गद्य की सभी विद्याओं के समान उपन्यास में भी संघर्षशील चरित्रों की भरमार हैं। जिन्होंने अपनी बुद्धिमता और बहादुरी से अपनी अक्षमता को दरकिनार कर मानवता की एक नई मिसाल कायम की हैं– वे उपन्यास निम्न प्रकार हैं जो निःशक्तजन पर केन्द्रित हैं।

इस दिशा में समकालीन साहित्य में दिव्यांगजन की श्रेष्ठ लेखिका 'मृदुला सिन्हा' का उपन्यास 'ज्यों मेंहदी को रंग' की रचना अपने बेटे परिमल की संवेदना से प्रेरित होकर की। लेखिका ने अपने पुत्र परिमल की अपंगता के साथ भोगे गए यथार्थ का चित्रण भी किया हैं। इस उपन्यास में लेखिका ने परिमल के स्थान पर शालिनी को आरोपित करके मुख्य नायिका बनायी हैं। उनका उद्देश्य हैं– अपने पुत्र परिमल के प्रति किस भाव की भाषा में अपना संसार व्यक्त करूं? यह सच हैं उसकी स्थिति ने ही मुझे इस उपन्यास की रचना के लिए बाध्य किया, कहूँ तो

अतिश्योक्ति नहीं होगी। अपना शरीर क्या अँगुली भी एक इंच हिला पाने में असमर्थ अठारह वर्षीय पुत्र के जीवन में दस वर्षों तक वह पूर्णरूप से परिवार पर निर्भर था। परन्तु परिवार में न केवल मैं, न उसके पिता बल्कि चाचा अभयसिंह, दोनों भाई और नन्ही बहन मीनाक्षी किसी ने भी उसको यह महसूस नहीं होने दिया कि वह निःशक्त हैं। पूरा परिवार उसे सामान्य समझता था, उसे दीन–हीन होने का आभास ही नहीं होने देते। ईश्वर कृपा, उसके अन्दर जिजीविषा जगाए रखने में उसके पिता की महत्त्वपूर्ण भूमिका थी। उसे तो जाना ही था, उस सुबह के आने से पहले वह सूचना देकर चला गया। जाने की अन्तिम रात में माँ, मुझे गोद में लें लो, आगे उपन्यास लेखिका लिखती हैं– सच यह कि उसके साथ बिताए दस वर्षों के काल–खण्डों की अनुभूतियों को ही उपन्यास के पन्नों पर उतारा हैं। ये अनुभूति उन सभी माँ–बाप की हैं जिनकी स्थिति मेरे जैसी हैं। निःशक्तजन जिस पीड़ा को भोगता हैं, उसकी अनुभूति मीरा के शब्दों में 'घायल की गति घायल जाने' की तरह या लोकोक्ति 'जाके पांव न फटे बिवाई, वो क्या जाने पीरा पराई' की भांति तो हैं ही लेकिन उन आत्मीयों और अभिभावकों की संवेदनाओं को भी नहीं भूला जा सकता। इनका महत्त्व कहीं–कहीं पीड़ित से भी ज्यादा हो जाता हैं क्योंकि अधिकांश अपंग सेवा सुश्रुषा और सहयोग के अभाव में या तो यथास्थिति से समझौता करके कृतज्ञता का दयनीय जीवन जीने के लिए विवशता का वृत बना लेते हैं। उनकी इन परिस्थितियों से उबारने के लिए अभिभावकों, आत्मीयों और समाज–सेवी संस्थाओं का योगदान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण प्रमाणित होता हैं।

इसलिए यह उपन्यास निःशक्तजन की मानसिक स्थिति से समानुभूति के साथ जूझती और उनकी विविध समस्याओं की परिक्रमा और पड़ताल करते प्रायः पूरे परिवेश को जीती, समझती और उनके निदान को स्पष्ट करती हुई विभिन्न पात्रों के माध्यम से जीवन्त बनाती उस लेखिका की एक दशक की स्वयं की अनुभूति हैं।

प्रस्तुत उपन्यास में शालिनी मुख्य पात्र हैं। उसकी निःशक्तता पूर्व के सुनहले–रूप जीवन के दंश को झेलती हुए मनःस्थिति को निरूपण, संघर्षक्षमता का अंकन और परिवर्तित परिस्थितियों में भी त्याग की भावना रखती हैं। शालिनी अपने मायके में भी खुश रही और सुसराल में भी व्यवहार व शालीन स्वभाव के कारण खुश थी। शालिनी अपने पति व विवाह से खुश थी और पति राजेश भी उसकी सुन्दरता, चपलता, कार्य–कुशलता, संस्कारशीलता आदि से प्रभावित थे। उसके पैरों की चाल व पायल की झंकार से सभी को नयी वधु के आगमन का आभास होता। सास–ससुर पर उसने जादू कर दिया था। उसकी सास भी बहू को बहुत पसन्द करती थी और सदैव यही इच्छा रखती थी कि मीना से जड़ित घुंघरू वाली पायल से नववधु अपने आने का आभास दिलाती रहें। वह बचपन से ही तेज चलने की आदत के कारण कई बार टोकी भी जा चुकी थी। परन्तु वह

अपनी आदत को न छोड़, पति से भी आगे निकल जाती। राजेश के साथ जाते समय मुजफ्फरपुर से पहलेजाघाट से स्टीमर पर यात्रा करनी थी। शालिनी की हड़बड़ी में गड़बड़ी हो गई। भीड़–भाड़ के बीच शालिनी सरपट चाल से आगे बैठ गई। उतरते समय धक्कापेल से स्टीमर के डेग में फंसकर उसकी दोनों टांगे कटकर गंगाजी के तेज बहाव में बहकर अंतर्ध्यान हो गई। यहीं से उसका निःशक्त जीवन आरम्भ हो गया। उसकी सारी दुनिया बदल गई दोनों पैर कट जाने के बाद बिहार प्रांत की शालिनी, शर्मा जी के माध्यम से उपचारार्थ संस्था में आती हैं। शर्मा जी शालिनी के पिता और द्दाजी दोनों के मित्र हैं। लम्बे समय तक उसका उपचार चलता रहा, इस लम्बे उपचार ने शालू को सबसे अलग कर दिया। परिवार और पति का प्रेम भी तिरोहित होता चला गया। अब वह जीवन को बोझ समझने लगी। उसे कृत्रिम पैर भी मिल गये थे। उधर पति की माँ ने बेटे का घर बसाने के लिए उसकी दूसरी शादी करवा दी। जब शालिनी को इस बात का पता चलता है तो वह अन्दर तक टूट जाती हैं और संस्था में रहकर निःशक्तजन की सेवा में अपनी जीवन समर्पित करना चाहती हैं। द्दाजी भी चाहते थे कि वह घर जाकर गृर्हस्थ जीवन व्यतीत करे लेकिन वह उस मंदिर में ही रहना श्रेयस्कर समझती हैं।

शालिनी अपने नाम के अनुरूप गुण भी रखती हैं। अब वह नववधू के परिधान को नकार सौम्य–शालीन आचरण को अधिगृहीत करती हैं। उसके इस बदलाव का लेखिका सूक्ष्म अंकन करती हैं सदा पीठ पर लटकती लम्बी चोटी को जुड़े का रूप दें दिया गया। पिछले एक वर्ष में बैठे–बैठाऐं उसका शरीर गदरा गया था। जब से साड़ी पहनना शुरु किया, उसके ब्लाऊज की लम्बाई की कोशिश उसक पूरा पेट ढकनें की होती थी। इधर उसने एक इंच लम्बाई और बढ़ा दी थी। लंबी गोरी बाँहें भी कोहनी तक ढकी होती। गोल कटे गले से दोनों और पीठ का भाग बहुत कम दिखता। साड़ी हल्के रंग की पहनने लगी थी परन्तु उन तांत की साड़ियों में चार–पाँच छह इंच चौड़ा बॉर्डर होता था, मात्र चार–पाँच साड़िया ही थी उसके पास। आँचल कंधे से बेढंगे नहीं लटकता था। चेहरे पर स्थापित कोई अन्य अंग, अपने आकार एवं आकर्षण में अलग–थलग नहीं दिखता–भौं–नाक–आँखें सब एक दूसरे में समा गये थे। इस तरह लेखिका ने शालिनी का अन्तः एवं बाह्य चित्रण का सामंजस्य बैठाया हैं।

द्दाजी निःशक्तजन संस्था के मुखिया हैं। इन्होंने भी अपना जीवन इसी के प्रति समर्पित किया हुआ हैं। अपाहिज कहकर उपहास उड़ाने वालों के प्रति इनका गुस्सा बढ़ जाता– 'मेरे सामने अपाहिज मत कहो–सारी दुनिया अपाहिज है शर्म करो'। बड़ी द्रुतगति से भागता–चलता हष्ट–पुष्ट व्यक्ति भी अपंग हैं, शर्मा उसकी भावनाएँ तो अपंग हैं न कुंठित है और शारीरिक अपंगता से नैतिक निःशक्तता अथवा सांवेगिक निःशक्तता ज्यादा खतरनाक हैं। यह संस्था मंदिर की तरह पावन है

जहाँ प्रवेश करने के बाद निःशक्त व्यक्ति सशक्त होकर ही बाहर निकलता हैं। इस भूमि में प्रवेश करते ही लूला—लंगड़ा, अंधा—बहरा सभी सबल हो जाते हैं। क्योंकि यह भूमि ही इतनी पवित्र है। द्दाजी ने कृत्रिम पांवों व अन्य अंगों को भी स्वदेशी ढंग से बनवाया है ताकि वे बनावटी न लगे। स्थानीय पदार्थों से लेकर स्थानीय कारीगरों द्वारा बनाए गए पाँव तथा अन्य अंग मात्र स्वदेशियों की आवश्यकता को ध्यान में रखकर ही बनाया गया हैं।

द्दाजी प्रचार—प्रसार से तो दूर ही रहते थे। वे लोगों की निःस्वार्थ भाव से सेवा करते थे। उनका सपना था, उसे द्दाजी जैसे लोगों के जुड़ाव से ही साकार किया जा सकता हैं या अखबारों में उनके इश्तहार भी छपते रहते हैं। ऐसे महापुरुषों—दानियों की कमी नहीं जो शिविर लगा—लगाकर अंधों को मुफ्त में आँखें देते रहते हैं। लेकिन क्या वे उस रोशनी से ही पहचान पाते हैं? वे कभी नहीं पहचानेगें, शर्मा, कभी नहीं। प्राकृतिक पाँवों पर चलकर भी उन तक कौन पहुँच पा रहा हैं। द्दाजी वर्तमान सामाजिक, सरकारी व्यवस्था, आर्थिक विषमता की खिल्ली उड़ाते हंस पड़ें।

द्दाजी दिव्यांग जन के व्यक्तित्व विकास के पक्षपाती थे। वे पुर्नवास के लिए इनकी प्रतिभा क्षमता विकसित करने को ही स्थायी निदान निर्दिष्ट करते हैं— सरकार आज अपंगों की पुनर्स्थापना की बात करती हैं लेकिन पुनर्स्थापित करने का मतलब यह नहीं कि उन्हें सरकारी नौकरी दिला दें। उन्होंने लंदन से आकर और प्रकृति के पर्यंक में फला—फूला सुदूर ग्राम्यांचल संस्था को स्थापित कर द्दाजी ने निःशक्तजनों की सेवा में अपने—आपको समर्पित करके सिद्ध कर दिया कि कलयुग में वे अवतारी पुरुष हैं और संबंद्ध सभी समाजसेवी देवता हैं। उन्हें उनके अविस्मरणीय योगदान के लिए अन्तर्राष्ट्रीय पुरस्कार मिला लेकिन प्रतिक्रिया सहज सामान्य ही रही। उनकी सेवा भाव जग—जाहिर थी लेकिन उनका परिचय अज्ञात होने के कारण कभी—कभी वे रहस्यमय लगते। एक दिग्भ्रमित युवक ने तो एक दिन द्दाजी को विदेशी ढोंगी कहकर अनाब—शनाब बक दिया। पचास लाख की सम्पत्ति लेकर डॉ. अविनाश भारत आये और इस संस्था का निर्माण किया। डॉ. अविनाश की पत्नी उनसे पैसों की माँग कर रही थी वस्तुस्थिति जानने के बाद ऐसी खस्ताहाल संस्था को छोड़कर लंदन वापिस जाने के लिए लड़ रही थी। द्दाजी जी भारतीय मूल के ही थे। परन्तु विदेश में रहते थे वही किसी औरत से शादी की थी।

इस उपन्यास में निःशक्त पात्र की संवेदना को समझकर उसकी समस्या के निदान के लिए संस्था की स्थापना की गई हैं। इसके जीवन के अन्य रूप—रंग भी सजा दिये गये हैं जिससे यह उपन्यास ऊब—उदासी का उदाहरण न बन सकें। एक महिला होने के नाते स्त्री विमर्श का भी रूप दिखाई देता हैं। नारी अस्मिता की पक्षधर कथा लेखिका बहू को बेटी समझने की दृष्टि देती हैं बहू

के पाँव में पायल ना हो तो उसके पांव बेटी के ना दिखें? बहू और बेटी में यही अन्तर हैं। प्रकृति ने यह विशेषता दी हैं कि स्त्री की नजर पुरुषों की प्रवृत्ति को पहचान लेती हैं। चाहे माँ के रूप में हो, बेटी, स्त्री किसी भी रूप में हो उसे पुरुषों को समझने में देर नहीं लगती। स्त्रियों में त्याग और समर्पण की भावना पुरुषों से अधिक होती हैं।

इसी प्रकार 'गौरापंत शिवानी' के उपन्यासों में भी दिव्यांग वर्ग की पीड़ा को उठाया गया हैं। उसके 'लघुउपन्यास' में 'पूतों वाली'। इस उपन्यास की मुख्य पात्र पार्वती हैं जिसके पाँच पुत्र हैं। वह बुर्जुग व अंधी भी हो गई हैं। परन्तु उसका कोई भी बेटा उसकी देखभाल नहीं करता सभी पुत्र शहरों में रहते हैं परन्तु बुजुर्ग माँ–बाप को अपने पास नहीं रखते और न ही उनके पास अपने माँ–बाप से मिलने के लिए समय हैं। पार्वती की "एक आँख में ग्लूकोमा और दूसरी आँख का मोतियाबिन्द पक गया हैं। डॉक्टर कहते हैं ऑपरेशन जल्दी नहीं किया गया तो दोनों आँखें जा सकती हैं। गाँव का हाल तो सभी जानते हैं, अस्पताल हैं पर डॉक्टर नहीं एक बार तुम अच्छे डॉक्टर को दिखा देते तो तसल्ली हो जाती।"[20]

बुढ़ापे के कारण पार्वती अब कमजोर भी हो गई हैं। उसके पति 'शिवसागर मिश्र' उसके साथ हमेशा लड़ाई–झगड़ा करते रहते थे, अक्कड़े ही रहते थे। बेचारी पार्वती रंग रूप से सुन्दर नहीं थी। परन्तु पाँच पुत्रों की माँ अवश्य थी परन्तु वो बेटे किस काम के जिन्होंने जरुरत के समय पल्ला झाड़ लिया।

जब पार्वती अपने पति के साथ इलाज के लिए दिल्ली अपने बेटे–बहू के पास जाती हैं तो वहाँ अपने बहू–बेटे का व्यवहार देखकर उन्हें बहुत दुःख हुआ। ऐसे दब्बू व्यवहार को देखकर पार्वती रात को ही अपने पति को वहाँ से चलने के लिए कहती हैं। वह रात भर सोई नहीं और रोती हुई कहती रही मेरा यहाँ दम घुट रहा हैं, अपने घर चलो। रात भर पत्नी के न सो पाने से 'शिवसागर मिश्र' उसको लेकर बिना किसी को बताये ही वहाँ से निकल दिये। सारी जिन्दगी अक्कड़ने रहने वाले पति ही अब पार्वती की देख–रेख करते हैं। क्योंकि जिन्दगी के अन्तिम पड़ाव में वे दोनों ही एक दूसरे का सहारा हैं। पार्वती के बीमार होने पर शिवसागर उसे बच्चें की तरह गोद में उठाते हैं। सारे कष्ट काटते–काटते जब पार्वती हमेशा के लिए सो जाती हैं तो पूरा मोहल्ला इक्ट्ठा हो जाता हैं। शिवसागर के अच्छे दोस्त ने कहा "बेटों का पता दें दो उन्हें खबर करनी होगी। नहीं! मेघ से गरज पड़े, मेरा कोई बेटा नहीं हैं, निपूति ही रही, उसे निपूती हो जाने दो।"[21] इस लघु उपन्यास के माध्यम से लेखिका ने विघटित मूल्यों पर भी प्रकाश डाला है। जिस औलाद को माँ–बाप इस तरह सहेजकर पाल–पोषकर बड़ा करती हैं, उसी औलाद के पास माँ–बाप

की जरुरत के समय, समय नहीं हैं। उपन्यास में चित्रित हो गया हैं। पार्वती सिर्फ इलाज की कमी से 'अंधी' हो रही परन्तु बेटे कोई खबर नहीं लेते।

इस लघु उपन्यास में लेखिका ने समाज में वृद्धजन के प्रति युवा समाज की लापरवाही या बेरुखी को चित्रित किया हैं और वृद्ध होने के साथ–साथ पार्वती तो आँखों से भी अंधी हो गई थी। परन्तु पाँच बेटों में से किसी को भी इस बात की परवाह नहीं थी। शिवसागर अपने मित्र बदरी से कहते हैं? कि "बचपन में हमने पढ़ा था ना, पाँच पूत रामा बूढ़िया के बचा न एक वही हमारे साथ हो गया।"[22]

'शिवानी' का दूसरा उपन्यास 'कैंजा' में मालदारिन की 'पगली' बेटी हैं जो मानसिक रूप से निःशक्त हैं। उसकी इस निःशक्तता की जिम्मेदार स्वयं उसकी माँ मालदारिन हैं। उसकी माँ मालदारिन पति की मृत्यु के बाद स्वयं बाहर आती–जाती है जिससे उसका चरित्र सही नहीं हैं। वह जंगल में भेड़ चराने जाती हैं और अपनी बेटी को रस्सी से बांध देती हैं। पशुओं की तरह रस्सी से बंधी वह बेचारी लड़की चिल्लाती रहती हैं। उसकी ऐसी हालत देखकर सभी गाँव वाले उसे पगली कहकर बुलाते हैं। जबकि उसकी वास्तविक स्थिति को कोई नहीं समझता है। समझती हैं तो सिर्फ पड़ोस में रहने वाली नन्दी। नन्दी का हृदय पगली का चीत्कार सुनकर पिघल जाता हैं। वह उसे रस्सी से खोलकर अपने घर ले जाती हैं। नन्दी पगली को नहला–धुलाकर बैठाती हैं परन्तु थोड़ी देर बाद ही न जाने पगली कहा गायब हो जाता हैं। उन्हीं के क्षेत्र में एक सुरेश भट्ट नाम का बदमाश रहता हैं उसने न जाने कितनी बहू–बेटियों की इज्जत खराब कर दी हैं। बार–बार पुलिस से छूटकर आ जाता है। अबकी बार उस बदमाश की हवस का शिकार मालदारिन की वह पगली बेटी बनी। "इस बार मालदारिन की पगली का सर्वनाश करके फरार हो गया हैं हरामी अभागी अभी तेरह की भी पूरी नहीं हुई और घाघरी गले से बंधी हैं। आजकल में कभी भी दर्द उठ सकता हैं।"[23] विधवा मालदारिन के कलुषित अतीत ने उसे ग्राम की बिरादरी से बहुत पहले बहिष्कृत कर दिया था। नन्दी पगली की माँ को समझाती हैं, चाची इसे ऐसे न बांधों लाख पगली हो, हैं तो व सुन्दर व जवान लड़की। इतनी जवान लड़की वह हर किसी की गलत नजर पड़ सकती हैं। परन्तु स्वार्थी मालदारिन को कुछ समझ नहीं आता और आज पगली को इस मोड़ पर लाकर खड़ा कर दिया।

अब उसका जननी बनने का समय आया तो पगली ने दर्द के मारे चिल्ला–चिल्लाकर पूरा गाँव इक्ट्ठा कर दिया सभी बेशर्म सुरेश भट्ट को बद्दुआऐं दें रहे थे। नन्दी डॉक्टर थी उसने पगली की डिलीवरी करवाई। पगली को समझा बुझाकर उसी ने काबू किया और किसी की बात वह नहीं मानती थी। अब नन्दी ने पगली की डिलीवरी करके बच्चें को तो बचा लिया परन्तु कम

उम्र की होने के कारण वह पगली को नहीं बचा पाई। परन्तु अब सोचने की बात थी कि बच्चें को पालेगा कौन? यह देखकर चारों तरफ सन्नाटा छा गया। तभी नन्दी हिम्मत दिखाकर आगे बढ़ी और कहा इस बच्चें को पालने की जिम्मेदारी मेरी हैं। नन्दी ने उसका नाम रोहित रखा। नन्दी रोहित को माँ से भी अधिक प्यार देती हैं। जब उसका स्कूल में दाखिला करवाती हैं तो उसके पिता का नाम नहीं लिखवाती। स्कूल के बच्चे उसे चिढ़ाते हैं तुझे अपने पिता का नाम ही नहीं पता? वह घर आकर माँ को कहता हैं– माँ मेरा पिता कौन हैं कहाँ हैं? नन्दी उसे समझा–समझाकर समय निकाल देती हैं। तेरे पिता काम से गये हैं कुछ दिन बाद आयेंगे। परन्तु एक दिन राहुल की जिद्द ने नन्दी को शहर से वापिस अपने गाँव आना पड़ा। वह उसे सुरेश भट्ट से मिलवाने आई थी। गाँव आने पर पता चलता हैं कि वह मृत्यु शय्या पर लेटा हैं पता नहीं मर गया या जिन्दा हैं। कोई उसकी तरफ जाता भी नहीं हैं। नन्दी जैसे ही वहाँ राहुल को लेकर पहुँचती हैं, वह अन्तिम सांस लेता हैं। क्योंकि महेश भट्ट नन्दी से एकतरफा प्यार करता था। उसके प्राण नन्दी को देखने के लिए ही रुके हुये थे।

तभी वहाँ पर मालदारिन आ पहुँचती हैं। वह रोहित को देखकर कहती हैं। हाय! कितना सुन्दर हैं मेरा बेटा बिल्कुल अपनी माँ जैसा। रोहित नन्दी से कहता हैं– "माँ ये कौन हैं? तभी मालदारिन कहती हैं वह तेरी माँ नहीं हैं तू तो 'कैंजा' हैं। रोहित नन्दी से कहता है माँ, 'कैजा' का क्या मतलब होता हैं? तो उसे समझाया कि जिसकी माँ उसके जन्म लेते ही मर जाये उसे कैंजा कहते हैं। यह सुनकर नन्दी का दिल टूट जाता हैं। रोहित, मैं तुम्हें 'कैंजा' नहीं कहूँगी कभी नहीं।"[24]

सशक्त व्यक्ति के द्वारा मजबूर व लाचार निःशक्त लड़की का शोषण हुआ हैं। हमारी यही सोच हैं कि किस तरह से अपना स्वार्थ पूरा किया जा सकता हैं।

'शिवानी' के 'लघु उपन्यास', 'करिएछिमा' में कुष्ठरोग से निःशक्तता का चित्रण हुआ हैं। इस उपन्यास का प्रमुख पात्र 'कोढ़ी साहब' हैं। हीरावती इस उपन्यास की मुख्य नायिका हैं, उसकी सगी बहन पिरमावती हैं। हीरावती अपने बहनोई श्रीधर के साथ अवैध संबंध रखती हैं। इस आरोप में न्याय पंचायत हीरावती को अपना गाँव छोड़नें का आदेश देती हैं। तब हीरावती कोढ़ी साहब की ओड़यार में रहने लगती हैं। जो गाँव की सरहद के बाहर ही हैं। उसकी ओड़ियार के बारे में लेखिका ने लिखा हैं। हीरावती कोढ़ी साहब की गुफा में रहेगी? चारों तरफ से मीठे सेब नाशपति, अखरोट और मिहिल के वृक्षों से आच्छादित् उस लम्बी रेल–टनेल सी बनी अंधकारपूर्ण प्राकृतिक गुफा में बहुत पहले एक विदेशी चित्रकार आकार रहने लगा था। अब ग्रामवासियों के अनुसार वह

गुहा उसी साहब की प्रेत योनि का स्थायी आवास बन गई थी। अपने वीभत्स महारोग को अपनी ग्रीक देवता–सी सुन्दर देह में छिपाए वह विदेशी जब गुफा में रहने आया तो उसके रोग का कोई भी बाह्य चिह्न देखने में नहीं आता था। ग्रामवासी उसे 'पादड़ी साहब' कहकर पुकारते थे। धीरें–धीरें किसी खंदक में छिपे शत्रु की भांति उसके रोग ने उस पर अचानक आक्रमण कर दिया और वह निहत्था जूझ न सका पहले हाथ की अंगुलियाँ गई फिर पलकें और एक ही वर्ष में वह बुरी तरह लड़खड़ाने लगा। कुछ दिन तक वह ठूंठ हाथों से गुहा–भित्ति को अपनी अनूठी कला से विभूषित करता, पर एक दिन विवश तूलिका नीचे गिर पड़ी। साहब फिर भी सहज में पराजय स्वीकार करने को तत्पर नहीं हुआ। जो कलात्मक हाथ तूलिका को धन्य करते थे, उन्होंने कुदाली थाम ली। जलना, रामगढ़ और कुल्लू से सुनहरे सेब, नाशपतियों की पौध मंगवाकर कोढ़ी साहब ने अपने विकृत हाथों से फल और पुष्पों के भावी नंदनवन की सृष्टि की थी। यह ठीक था कि वह स्वयं फल खाने तक जीवित नहीं रहेगा, क्या मीठे कुएँ का पानी पीकर लोग कुआँ खोदने वाले का स्मरण नहीं करेंगे?

अब ज्वर उसकी छाती पर चढ़ बैठा था। एक दिन शायद उसकी मानसिक व्यथा शारीरिक व्यथा से भी असह्य हो उठी। एक ग्वाले के पुत्र को उसने कभी पढ़ाया था। वहीं पावभर दूध नित्य साहब के आले में धरे मग में उड़ेंलकर जाता था। एक दिन वह आया तो मग वहाँ नहीं था। उस ग्वाले के लड़के ने खिड़की से झांककर देखा और चीखकर भाग गया। गुह्य भित्ति की किसी अदृश्य खूंटी से साहब की निर्जीव देह झूल रही थी। फिर किसी का भी उस ओर आने का साहस नहीं हुआ। "अल्मोड़ा के ही दो–तीन मिशनरी आकर उसी के बाग में उसे दफना गये। तब से प्रतिवर्ष सेब और नाशपति के वैभव से गदराए कोढ़ी साहब के बाग का व्यर्थ यौवन अनाघात पुष्प की भांति झर–झरकर मुरझा जाता। लोगों का कहना था कि गुहा की छत से झूला कोढ़ी साहब संध्या होते ही अपने बाग में कूद जाता और बड़ी चौकसी से बाग की रखवाली करता।"[25] हीरावती उसी कोढ़ी साहब की ओड़ियार में रहने के लिए जाती हैं। वह बाग की सब्जी और फल बेचने मार्केट में जाती हैं। उसका यह कार्य गाँव के लिए आकर्षण का विषय रहा, क्योंकि कोई भी गाँव में से कोढ़ी साहब की ओडियार की तरफ नहीं जाता था। हीरावती के द्वारा कुष्ठ रोगियों के सम्पर्क में जाने से केवल वह रोग नहीं हो जाता। कोढ़ ग्रस्त लोगों के बारे में वे जीवित रहने पर समाज उनके साथ प्रताड़ना का व्यवहार करता हैं। लेकिन वह मर जाने पर उनका भूत बनता हैं। ऐसा प्रचार–प्रसार करने का काम करते हैं। यह बात कोढ़ी साहब के माध्यम से स्पष्ट हुई हैं। कोढ़ी साहब के द्वारा बागों में फल के पौधे लगाने के बहाने शिवानी ने कुष्ठ रोगी को निःशक्त बनाकर

किसी पर बोझ नहीं बनाया बल्कि आत्मनिर्भर होकर अर्थाजन कर अपना जीवन समृद्ध, सुखी, सम्पन्न बनाया हैं।

'विषकन्या' लघुउपन्यास में व्याधि ग्रस्त पात्रों का वर्णन हैं। यह उपन्यास भी 'गौरा पंत शिवानी' द्वारा रचित हैं। उपन्यास की मुख्य नायिका कामिनी हैं, वह हवाई सुन्दरी हैं, उसने हवाई यात्रा के दौरान आये अपने अनुभवों को चित्रित किया हैं। जहाँ पर उसे मिरगी के रोगी मिलते हैं। लेखिका ने उसकी यात्रा के बारे में लिखा हैं– "जिन तीन यात्रियों का ध्यान रखने का भार मुझे विशेष रूप से सौंपा गया था, उनमें एक था लखपति बूढ़ा उद्योगपति, जो अपने वातग्रस्त घुटनों को लुओई के चमत्कारी जल में डुबा, रोगमुक्त होने जा रहा था। दूसरी थी असाध्य मिरगी की रोगिणी एक खोजा मुस्लिम महिला, जिसे हर बीस मिनट में मिरगी का दौरा पड़ता कि उसकी काठ बन गई देह को संभालने में मैं स्वयं काठ बन जाती।"[26] इस उपन्यास में मिरगी के रोगी की व्यथा का वर्णन हुआ हैं। शिवानी ने मानसिक निःशक्तजन के बारे में बताया हैं कि उनका सीधा संबंध रोगी के मानसिक स्वास्थ के साथ होता हैं। ऐसे रोगी मानसिक दृष्टि से ठीक, सक्षम न होने के कारण उन्हें अपंग माना जाता हैं।

'किशनुली का ढॉट' उपन्यास की मुख्य पात्र 'किसना' हैं जो पागलपन की शिकार हैं। शिवानी ने अपने उपन्यास में पागलपन का चित्रण करते हुए समस्या को उठाया हैं– "किसना की माँ बहुत पहले ही मर गई थी। एक साल हुआ बाप पेड़ से गिरकर मर गया। अनाथ पगली के उत्पात से परेशान होकर स्वयं गाँव के मुखिया ही उसे एक दिन मोटर में बैठा अल्मोड़ा पहुँचाने गए थे। उसे ऐसे लेकर आये थे जैसे कि बिल्ली को बोरे में बाँध कोई दयालु हितचिंतक उसे किसी हलवाई की दुकान के आगे छोड़ आता हैं। उसे शायद जान बूझकर ही निःसंतान उदार काखी के द्वार पर छोड़ दिया गया था। शास्त्री कक्का को परम् असंतुष्ट कर ही उसे अपने गृह में शरण दी थी।"[27] काखी किसना अर्थात् पगली को अपने घर पनाह देती है। वह उसे अपनी बेटी ही मानती हैं। किसना को पागलपन के दौरे पड़ जाते हैं, वह घर में उत्पात मचा देती हैं। "काखी यत्न से बंधी असंख्य लटियों के तोरण को उसने नोंच–नोंचकर पूरे चेहरे पर बिखेर लिया था। मेरे दिए हुए ब्लाउज की उधड़ी दोनों बांहें, ब्लाउज से बेच्छिन्न कर खिड़की के जंगलों में बांध दी और कांखी की काली छपी साड़ी की नन्हीं–नन्हीं पताकाओं की झालर, पूरे कमरें में लटकी थी। स्टूल पर चढ़कर ही शायद किसना ने दीवार पर लगी कीलों की पताकाऐं फहराई थी क्योंकि स्टूल अपनी तीन विवश टांगे फैलाये कमरे में बीचों–बीच उलटा पड़ा था।"[28] इससे स्पष्ट हो जाता हैं कि किसना पूरी तरह पागल हैं।

वह दिनभर भूख–प्यास भूलकर बाहर घूमती–फिरती रहती हैं। उसे खाने–पीने की सुध भी नहीं हैं। काखी के पति कक्का अपनी पुत्री के समान पगली से भी अवैध संबंध बना लेता हैं। जिससे वह गर्भवती हो जाती हैं। किसना गर्भवती होने के बाद काखी के घर आती हैं तब काखी उसे अपने घर में रख लेती हैं। उसे ये नहीं पता कि पगली किसना पर उसके पति ने अत्याचार किया हैं। लेखिका ने अपंग गर्भवती की समस्या की ओर ध्यान आकृष्ट करते हुए लिखा हैं– "क्या अपनी इस अवस्था के लिए अकेली किसना ही दोषी हैं? जिस हरामजादे–कमीने ने इस असहाय, नाबालिग, उन्मादग्रस्त छोकरी का सर्वनाश किया हैं उसे ढूँढ़कर पकड़ लाए तुम्हारा समाज, तब मैं जानूं। दोष किसी का और दण्ड भोगे कोई, यह कहाँ का न्याय हैं? किशनुली कहीं नहीं जाएगी। मैं पालूंगी उनकी संतान, भले ही तुम्हारी बिरादरी हमारा हुक्का–पानी बंद करे दें।"[29] इस उपन्यास के माध्यम से शिवानी जी ने पागल स्त्री की संतान की परवरिश की समस्या को भी उठाया हैं। किसना एक पुत्र को पैदा करके मर जाती हैं। काखी किसना के बेटे को पालती हैं उसे पढ़ा–लिखाकर कलेक्टर बनाती हैं।

'शिवानी' का लघु उपन्यास 'कृष्णवेणी' की रचना लेखिका ने रोग–व्याधि को केन्द्र में रखकर की है। इस उपन्यास का मुख्य नायक भास्करन हैं। वह तमिल हैं उसके पिता कुष्ठ रोगी हैं। कृष्णवेणी का भास्कर के साथ प्रेम है। वह अपने पिता की इकलौती संतान हैं। कृष्णवेणी के पिता को जब इस बारे में पता चलता है कि भास्कर के पिता कोढ़ ग्रस्त हैं, तब कृष्णवेणी के पिता भास्करन् के साथ अपनी बेटी का विवाह करने से मना कर देते हैं। कृष्णवेणी के पिता को जब पता चलता है तब वे कहते हैं, "उसको कोढ़ हैं, गलित कुष्ठ नोड्यूल वाला होता, तब भी कोई चिंता की बात नहीं थी। भयावह रूप से छूत की पॉजिटिव लैप्रेसी है उसे अंग–अंग में कोढ़ फूटने से ही पता लगा, तब तक वह अपना रोग छिपाता रहा।"[30] आगे चलकर भास्करन् को भी कुष्ठ रोग हो जाता हैं, "उसके दोनों हाथों की अंगुलियाँ झड़कर दो अधुरी मुट्ठियाँ मात्र रह गई है, होंठ विहीन चेहरा वीभत्स बन गया है जैसे कटहल का छिलका। नाक नहीं हैं, पलकहीन अंगारे सी दो आँखें ही बस दप–दप कर जल रही हैं, पूरे चेहरे में।"[31] नायक भास्करन् को कुष्ठ रोग के कारण अपना घर बार छोड़ना पड़ा। लेखिका का उद्देश्य पाठक का मन कुष्ठरोगियों की सहायता के लिए बनाना हैं।

'पाथेय' लघु उपन्यास में पागलपन के रोगियों का वर्णन हुआ हैं। इस उपन्यास की नायिका तिलोत्तमा की सास को रांची के पागलखाने में भर्ती करवाया गया हैं। नायक प्रतुल के दो मामा और उनका पूरा खानदान ही पागल हैं।

'चित्रा मुद्‌गल' का उपन्यास 'आवां' में उपन्यास की मुख्य नायिका 'नमिता पाण्डेय' हैं। उसके पिता 'देवीशंकर पाण्डेय' अचानक लकवाग्रस्त हो जाते हैं जिससे परिवार की देखरेख करने की पूरी जिम्मेदारी नमिता के ऊपर आ जाती है। पाण्डेय जी 'कामघार आघाड़ी' के महासचिव हैं। उपन्यास में श्रमिक आन्दोलन के मंच के रूप में कामघार आघाड़ी संगठन महत्त्वपूर्ण स्थान रखता हैं। इस संगठन के सर्वेसर्वा नेता के रूप में अन्ना साहब स्थापित हैं। जो श्रमिकों के प्रसिद्ध नेता हैं और उनका दाहिना हाथ के रूप में जाने जाते हैं 'देवीशंकर पाण्डेय' आघाड़ी के कार्यकर्ता की एक खास विशेषता हैं वे अपने मजदूर भाईयों के लिए सभी कष्ट सहने को तैयार हैं। विरोधी देवीशंकर पर छूरे से हमला करते हैं और उसके कुछ समय बाद ही लकवा का शिकार हो जाते हैं। उनके शरीर के दाहिने हिस्से को लकवा मार गया। अब वे बिस्तर पर पड़े रहने को मजबूर हैं। घर की जिम्मेदारियों के कारण नमिता को संध्याकालीन कक्षाओं में प्रवेश लेना पड़ता हैं।

अब उसे पिता की भी देखभाल करनी होती हैं। समय पर दवाई देना, खिलाना–पिलाना सब नमिता ही करती हैं। देवीशंकर जी को दोपहर के समय बिना जिद्द के दवाई खाए निश्चिंत होकर सोना उन सबके लिए ही नहीं, स्वयं पाण्डे जी के लिए भी अपनी लकवा मारी देह की विवशता को अंतिम रूप से स्वीकार कर लेने का समझौता हैं। न्यूरोफिजिशियन को इस हफ्ते दिखाने के लिए समय लेना आवश्यक है, किन्तु यह समस्या हैं कि 'हिन्दुजा की फीस' फीस के अभाव में आए दिन अस्पताल बदलते रहते हैं। पाण्डे जी के पक्षाघात में पड़ते ही घर में पहले जैसी कोई बात नहीं रही। उनकी स्थिति इतनी खराब हो गई थी कि स्वयं तो करवट भी नहीं ले पाते थे। वे हमेशा दीवार की तरफ ही करवट लेना चाहते थे। फिर बाद में नमिता को समझ आया कि बाबूजी हमेशा दीवार की तरफ ही करवट क्यों लेना चाहते हैं? ताकि वो उधर मुँह छुपाकर रो सकें। बोल तो पाते नहीं थे बायाँ हाथ ठीक हैं तो उसी हाथ से स्लेट पर अपने मन की बात लिख देते हैं। उनको खाना भी खिलाना पड़ता हैं। उनकी ऐसी स्थिति है, उनको दाल–चावल खिलाया तो मुँह भी पोंछना पड़ता हैं। नमिता घण्टे भर उनकी देह को साफ करती हैं उनकी बगलों में पाउडर लगाती हैं, जांघों की सालें निकालती हैं, वे सिर्फ बेबसी के आँसू बहाते रहते हैं। पाण्डेय जी सिर्फ शरीर से निःशक्त हैं मन से नहीं, नमिता जब नौकरी की बात करती है तो वे कहते हैं कि तुम अपना निर्णय लेने में समर्थ हो, मुझे इस बात की खुशी हैं कि तुमने पहली बार अपने विषय में स्वतंत्र निर्णय लिया हैं। तुम्हारा विवेक जागृत है, उसे सोने मत दो। मैं तुम्हें कभी नहीं पूछूँगा कि तुम वहाँ नौकरी क्यों नहीं करना चाहती? निश्चिन्त होकर सो जाओ....नये भोंर की प्रतीक्षा में जिसे सूर्य नहीं स्वयं आदमी गढ़ता हैं।

उनके घर की आर्थिक स्थिति इतनी खराब हो गई हैं कि उन्हें अस्पताल में जाने के लिए अस्पताल की फीस के बारे में सोचना पड़ता है। नमिता ट्रस्ट के माध्यम से पाण्डेय जी के निःशुल्क इलाज की कोशिश करती हैं। ताकि 'बॉम्बे हॉस्पिटल' में उनका अच्छा इलाज हो सकें। घर में इतना सब कुछ होने पर भी नमिता की माँ को पति की कोई परवाह नहीं हैं।

देवीशंकर अपनी बेटियों को आत्मनिर्भर होने की सीख देते हैं। जहाँ एक ओर समाज में लड़कियों को गर्भ में ही मारा जा रहा हैं वही निःशक्त पाण्डेय जी अपनी बेटियों की आत्मनिर्भर होने की सीख देते हैं। नमिता की शादी के लिए रिश्ते आते हैं, लड़के की तस्वीर देखकर देवीशंकर स्लेट पर लिख देते हैं कि तुम पहले आत्मनिर्भर बनों। ब्याह शादी तो हो जाएंगे। नमिता भी अपने परिवार के संरक्षण के बारे में सोचती हैं कि मेरे बाद मेरे परिवार का क्या होग? अन्ना साहब मुझे नहीं लगता कि मैं अधिक दिन जीवित रह सकूंगा, बच्चें और पत्नी की भविष्य की चिंता खाए जाती हैं। देवीशंकर अपने ये विचार अन्ना साहब को बताते हैं। वे कहते हैं शेष फण्ड का और ग्रेच्यूटी की रकम जितनी जल्दी प्राप्त हो जाए। नमी कि माँ के नाम यूनिट ट्रस्ट या जीवन बीमा निगम की पेंशन योजना में निवेश करवा दें। तब इस घर के जीवन–यापन का कोई मामूली आधार बन जाये बीमारी ने तो उनको पहले ही खोखला कर रखा था। अब परिवार की चिंता और भी सताने लगी। अपने ही रिश्तेदार जब पाण्डे जी निःशक्त होते हैं तो उनको आर्थिक मदद करनी पड़ेगी, इसलिए कहते हैं–फैक्टरी में जबरदस्त घाटा हुआ हैं। आयकर विभाग वाले घर आ गये। उनके परिवार को मजबूरी में बेटी के लिए फ्लैट बेचना पड़ता हैं।

नमिता जब खंडाला जाती हैं, तब पाण्डेजी की तबीयत बिगड़ जाती हैं, तब उन्होंने अपनी बेटी और साहब को बुलाने को कहा, नमिता की माँ ने स्लेट को नहीं पढ़ा। वे बेहोश हो जाते हैं। तुरन्त उन्हें असपताल ले जाना पड़ता हैं। निःशक्तों के साथ अस्पताल में वार्डबॉय भी बुरा व्यवहार करते हैं। वार्ड बॉय स्ट्रेचर को ठेल नहीं रहे, बेगन से धड़धड़ाते धकियाते हैं। नमिता हमेशा अपने पिता के बालों में उंगलियाँ फेरती थी तो उसके पिताजी आँखें मूंद लेते थे।

देवीशंकर की मौत आई थी। अन्ना साहब कहते हैं, देवीशंकर अपनी मौत मर रहा हैं। भाग्यशाली हैं। अफसोस की मैं अपनी मौत नहीं मर पाऊँगा। नमिता की माँ को अपने पति की मौत के गम की अपेक्षा बहन की बेटी–दामाद की आव–भगत की ज्यादा चिंता हैं, 'मत उलझिए छोड़ दीजिए आंटी'। पति के बिछोह की पीड़ा से ज्यादा जिसे बेटी दामाद के आवभगत की पड़ी हो, क्या करे उसके लिए औरों से ज्यादा बाबूजी की चिंता की होती तो शायद वो आज जिंदा होते। नमिता कहती हैं पाण्डेय जी बेटी–बेटा को समान मानते थे इसलिए नमिता पर उन्हें गर्व हैं, जब वे जिंदा

थे तब कहते थे, मेरी बेटी समर्थ हैं, वही मेरा क्रिया कर्म करेगी। 'मरने पर तू ही मेरा क्रिया–कर्म करना। तू मेरी समर्थ बेटी हैं। दस बेटों के बराबर।' इसी कारण जब पंडित कहते हैं क्रियाकर्म बेटा करेगा तो नमिता कहती हैं, "क्रियाकर्म मैं करूंगी पंडित जी, मुखाग्नि भी मैं ही दूंगी मैं इनकी बड़ी बेटी हूँ, छुन्नू बच्चा है। बच्चे के हाथ से क्रियाकर्म करवाना उचित नहीं।"[32]

पाण्डेय जी के अन्दर आत्मस्वाभिमान कूट–कूटकर भरा हुआ था। बेटी नमिता भी पिता के कदमों पर ही चलती हैं। जब पाण्डेय जी के दोस्त अन्ना साहब नमिता की माँ को अपने फ्लैट की चाबी दें जाते हैं तो बेटी नमिता अपने आत्म–स्वाभिमान के आक्रोश में अपनी माँ से कहती हैं, "हम उनके घर में नहीं रह सकते, क्यों उनके घर में मगरमच्छ लटके हैं? लटके भी हुये तो क्या हमारे पास रहने के लिए अपना घर हैं– बाबूजी का बनाया हुआ हैं मगर हम अपना घर किराये पर उठाकर सुख चैन की बंसी बजा सकते हैं तो बजाने में परहेज कैसा। परहेज बहुत बड़ा है हम जीवन भर अन्ना साहब की कृपा तले दबकर नहीं जी सकते। जीवन भर तेरे बाप ने उनकी दुम सहलाई रोक लेती, दुम जरुर सहलाई होगी मगर कभी भिखारी नहीं बनें।"[33]

नमिता के पास केवल लकवे से ग्रस्त पिता के स्नेह और सहानुभूति का ही संबल हैं। नमिता अपने निःशक्त पिता का सम्मान करती हैं। देवीशंकर कहते हैं, जिस व्यक्ति में आक्रोश नहीं, वह अनीति से लड़ नहीं सकता, पाण्डेय के पास संघर्ष से लड़ने की ताकत भी हैं।

'समकालीन उपन्यासों में प्रसिद्ध उपन्यास' 'कोई बात नहीं', 'अलका सरावगी' द्वारा रचित हैं। इस उपन्यास का निःशक्त पात्र 'शशांक' हैं। वह एक सत्रह साल का लड़का हैं। जिसके बोलने में हकलापन और चलने में भी परेशानी हैं। स्कूल में सभी बच्चें उसका मजाक बनाते हैं परन्तु उसकी माँ उसे हार नहीं मानने देती जीवन के हर मोड़ पर उसके साथ खड़ी होती हैं। शशांक असामान्य लड़का हैं जो कलकत्ता के नामी स्कूल 'सेंट जॉसेफ' में पढ़ता हैं। जो कि क्रिश्चयन स्कूलों में से एक हैं। स्कूल में उसका सहपाठी आर्थर मजाक उड़ाता हैं और वही उसका एक मात्र दोस्त है। इसलिए मजाक उड़ाने पर भी वह उसका साथ नहीं छोड़ता। आर्थर के बारे में शशांक सोचता हैं– "काश, तुम्हें कोई अंदाजा होता कि तुम बिना मतलब मुझे कितना सता रहे हो।"[34] जब शशांक का मिशनरी स्कूल में दाखिला हो जाता हैं तो लोग अचम्भित होते हैं। वे सोचते हैं कि चलने, बोलने के साथ उसका दिमाक भी अर्द्धविकसित होगा। जब उसकी माँ मोंटेसरी स्कूल में दाखिला करवाने गई तो वहाँ प्रिसिंपल 'मिसेजशाह' ने यह कहकर मना कर दिया कि दूसरे बच्चों के माता–पिता आपत्ति कर देंगे। उसकी माँ सोच रही है कि इन लोगों की सोच तो ऐसी हैं जैसे शशांक को कोई छूत की बीमारी हों।

लेखिका का उद्देश्य भी समाज की सोच को ऊपर उठाने का हैं। क्योंकि एक निःशक्तजन से ज्यादा ये लोग अपनी दिव्यांग मानसिकता के कारण निःशक्त होते हैं। वे लोग दिव्यांग को स्वीकारने की बजाय उसे घृणा की दृष्टि से देखते हैं। इसमें उस मजबूर व असहाय दिव्यांग जन का क्या दोष हैं जो भगवान ने उसे दर–दर की ठोकरें खाने को मजबूर किया हैं। हम जानते हैं कि जब परिवार में बुजुर्ग होते हैं तो बच्चें ज्यादातर समय अपने दादा–दादी के साथ व्यक्त करते हैं। वही इस उपन्यास का पात्र शशांक के साथ हैं वह सबसे ज्यादा समय अपनी दादी के साथ गुजारता हैं। दादी उसे पुराने जमाने व स्वयं के भोगे गए रिवाजों व रूढ़ियों की कहानियाँ सुनाती रहती हैं। शशांक उन कहानियों को बहुत ध्यान से तथा रूचि लेकर सुनता हैं।

शशांक हर शनिवार 'विक्टोरिया–मेमोरियल' के पार्क में जतीनदा से मिलता हैं। जतीनदा उसे अपने दोस्त जे.जे की कहानी सुनाता हैं जिसका पिता 'जैकसन जैसी' पागल खाने में मौत की कगार पर हैं। शशांक जिस फ्लैट में रहता हैं। उसका लिफ्ट वाला पाण्डेय जी भी पाँव घसीटकर चलता हैं। शशांक की समस्या कुछ इस तरह की बताई जाती हैं– 'सेरेब्रल पैलसी' मेरी खास प्रॉबलम को एथिटोयड़ कहते हैं जिसमें बैलेंस की संतुलन की समस्या रहती हैं। चलते–चलते झटका लग जाता है, अचानक चलना गड़बड़ा जाता हैं। पैदा होते समय डॉक्टर ने ऑपरेशन करने में देरी की, यही इसकी वजह है 'एनोक्सिया' हुआ था उस समय दिमाक में ऑक्सीजन की कमी हो गई। चलना भी छह साल में शुरु किया। यह शशांक के जीवन की कहानी हैं जिनकी वजह से वह अपंगता का शिकार हुआ।

अचानक शशांक की जिंदगी में तुफान आ जाता हैं जिससे उसका जीवन छिन्न–भिन्न हो जाता हैं। अब वह न तो चलता और न ही बोलता। बिस्तर पर पड़ा रहता हैं। अपने विचार लिखने के लिए उसकी माँ उसके पास 'वर्डबोर्ड' लगा देती है जिससे वह आसानी से अपने दिमाक में आई हुई बात को अन्य लोगों तक पहुँचा सकें। काफी दिनों तक ऐसे ही चलता रहा। घर का कोई भी सदस्य उसे असामान्य नहीं मानता, बल्कि सभी उसे ढ़ेर सारा प्यार व खुशियाँ देते हैं। अब उसकी स्थिति में कुछ सुधार आने लगता हैं वह धीरें–धीरें उठने बैठनें लगता हैं। अब उसकी माँ उसे स्कूल जाने के लिए प्रोत्साहित करती हैं। उसका दोस्त अमित भी इस काम में उसका सहयोग करता हैं। अमित शशांक को समझाता हैं कि तुम्हें स्कूल जाना चाहिए। क्योंकि तुम्हारा बहुत नुकसान हो रहा है, स्कूल न जाने की वजह से। उसकी माँ अब शशांक के लिए व्हील चेयर खरीदकर ले आती हैं शशांक मना करता है। परन्तु उसकी माँ उसे समझाती है कि उसमें कोई बुराई नहीं हैं तुम स्कूल जाओगे, पढोंगे, लेक्चर सुनोंगे और ठीक होते जाओंगे। धीरें–धीरें शशांक की स्थिति में कुछ सुधार होता है। सब सामान्य होने पर घर में अमृत के समान सुख देने वाली

कथा करवायी जाती हैं। जो शशांक के जीवन में आये कष्टों को दूर करती है। यह कथा शशांक के लिए संजीवनी का काम करती हैं।

अब शशांक सारे काम स्वयं कर लेता हैं। नहाना, खाना–पीना, कपड़े पहनना आदि। वह दीवार व फर्नीचर को पकड़कर धीरे–धीरे चल भी लेता हैं। पूरे तीन साल के बाद उसकी शारीरिक अक्षमता में कुछ सुधार हुआ। उसके माँ–बाप और शशांक अपने आपसे वहीं बीती बातें याद करके गुस्सा करते हैं। शशांक धीरे से मुस्करा कर कहता हैं। 'कोई बात नहीं' शशांक का पूरा जीवन चारों तरफ से किस्से कहानियों से भरा हुआ हैं। एक तरफ उसकी मौसी, जिसकी कहानियों का अन्त और प्रारम्भ उसकी समझ में नहीं आता। दूसरी दादी की कहानियाँ जो बार–बार उन्हीं शब्दों और मुहावरों में दोहराई जाती हैं। जिनका एक भी शब्द अपनी जगह नहीं बदलता। उसका पार्क वाला दोस्त जतीनदा की कहानियाँ हिंसा और आंतक से भरे जीवन से जुड़ी होती हैं।

इस प्रकार इन कहानी किस्सों के अतिरिक्त स्वयं शशांक का जीवन एक कहानी हैं। वह निःशक्तता का दंश झेलता हैं। स्कूल में अपने सहपाठियों के मजाक का पात्र बनता हैं, स्कूल की प्रिंसीपल द्वारा असामान्य कहकर एडमिशन न करना। समाज के द्वारा उपेक्षित होना ये उसके जीवन का संघर्ष हैं।

इस प्रकार समकालीन उपन्यासों में निःशक्तजन की पीड़ा को व्यक्त किया गया हैं। मानव के दिव्यांग बनने के कारण तो अनेक रहे हैं। युद्ध, दुर्घटना, प्रभावशाली एंटीबायोटिक औषधियों के सेवन के कारण मनुष्य दिव्यांग बन गया हैं। जिसके कारण वह मानसिक और शारीरिक स्तर पर टूट गया। दिव्यांगता के कारण उसे सामाजिक दृष्टि से नीच घोषित किया गया हैं। मानव को अपंगता के कारण आर्थिक दृष्टि से दूसरों पर आश्रित रहना पड़ा। उसका जीवन पराजित बन गया। समाज के संवेदनशील, भावुक, सहृदयशील और सामाजिक उत्तरदायित्व का ध्यान और मान रखकर साहित्य सृजन करने वाले साहित्यकार अपने साहित्य के द्वारा दिव्यांगता संबंधी लोगों की व्यथा, वेदना और उनकी समस्याएँ अंकित करने का प्रयास करते हैं।

(4) निःशक्त अनुशीलन की विशिष्ट लेखिका

हिन्दी साहित्य लेखन में स्त्री लेखकों का योगदान भी पुरुषों के समान रहा हैं। क्योंकि प्राचीन समय से देख रहे हैं कि नारी किसी भी कदम पर पीछे नहीं हटी हैं। भक्तिकाल की प्रसिद्ध कवयित्री मीराबाई को हिन्दी साहित्य में प्रथम कवयित्री माना जाता हैं। उसके बाद यह क्रम लगातार चल रहा हैं–आधुनिक काल में बहुत सारी प्रसिद्ध लेखिका हुई। महादेवी वर्मा, सुभद्रा कुमारी चौहान आदि। इन लेखिकाओं ने पुरुषों के समान प्रसिद्धि प्राप्त की हैं। समकालीन साहित्य

में तो नारी लेखिकाओं की बाढ़–सी आ गयी। आज हम देख रहें हैं कि नारी हर कदम पर पुरुष को पीछे छोड़ रही हैं।

इन्हीं नारी लेखिकाओं ने निःशक्तजन अनुशीलन में अपनी कला को दिखाया हैं। सूक्ष्मता से अध्ययन करने पर पता चलता हैं कि लेखिकाओं की मूल दृष्टि नारी पर ही केन्द्रित हैं। इन्होंने नारी पीड़ा, संघर्षशील नारी की कहानी, नौकरी पेशा नारी की समस्याऐं, नारी के भटके कदम की त्रासदी, प्रेमाश्रित रोमांस चेतना, यौन भावना, पारिवारिक जीवन, दाम्पत्य संबंध, सामाजिक समस्याऐं और उनके मूल में नारी का उभरता अस्तित्व आदि उनका प्रेरणास्रोत रहा हैं। विविध व्यवसायों में कार्यरत पुरुषों को उपन्यासों में चित्रित करने के प्रयास हुए हैं। इनमें भी नौकरी पेशा व्यक्तियों की मनः स्थितियों को उनके आचरण को अधिक विस्तार मिला हैं। अधिकांश पुरुष नौकरी पेशा हैं जबकि व्यवसायी, व्यापारी या अन्य क्षेत्रों में लगे हुए पुरुषों का चित्रण विस्तार से नहीं हुआ हैं। नारियाँ परिवार में ही दुनिया देख सकी हैं, उससे बाहर यदि निकली भी हैं तो नौकरी पेशा स्त्री के रूप में ही। नौकरी का क्षेत्र भी प्रायः स्कूल, कॉलेजों तक ही परिसीमित हैं, यही कारण है कि नौकरी करने वाले पुरुषों का ही अधिक चित्रण हुआ हैं। परन्तु समकालीन साहित्य में दिव्यांग जन की समस्या के प्रति लेखिकाओं का ध्यान अधिक हैं।

महिला उपन्यासकारों की उपलब्धियों को प्रभाकर माचवे ने इन शब्दों में व्यक्त किया हैं– "देवियों ने इस क्षेत्र में जो उच्चांक प्राप्त किये हैं, उससे यह सिद्ध हो गया हैं कि उपन्यास अब देवियों के बारे में, देवियों के लिए, देवियों द्वारा लिखी जाने वाली विद्या हैं।"[35]

'मृदुला सिन्हा' ने 'ज्यों मेंहदी को रंग' उपन्यास की रचना करके निःशक्तजन अनुशीलन को प्राथमिकता दी हैं। उन्होंने अपने बेटे के साथ भोगे गये यथार्थ का चित्रण करने के लिए 'शालिनी' को 'परिमल' की जगह पात्र बनाया हैं। शालिनी के माध्यम से लेखिका ने एक दिव्यांग पात्र की पीड़ा का चित्रण किया हैं। इस उपन्यास में लेखिका ने शालिनी को परिवार में सभी की चहेती दर्शाया हैं। परन्तु जब वह पैर से निःशक्त हो जाती हैं तो उसके परिवार वालों का व्यवहार परिवर्तन भी दर्शाया हैं। परन्तु शालिनी भी अपने परिवार की उपेक्षा को देखकर अपने–आपको संस्था के प्रति समर्पित कर देती हैं। वह संस्था के प्रधान डॉ. अविनाश के साथ मिलकर संस्था में आने वाले दिव्यांग जनों की सेवा में अपना जीवन बलिदान करने की प्रतिष्ठा लें लेती हैं।

दूसरी लेखिका 'चित्रामुद्गल' का उपन्यास 'आवां' का निःशक्त पात्र 'देवीशंकर पाण्डेय' हैं। उनके शरीर का दायां हिस्सा अचानक लकवा ग्रस्त हो जाता हैं। अब परिवार की सारी जिम्मेदारी उसकी बड़ी बेटी नमिता सम्भालती हैं। वह अपने पिता की देखरेख भी स्वयं अपने हाथों से करती

हैं। परिवार की आर्थिक स्थिति के लिए वह नौकरी भी करती हैं। उसका पिता शरीर से निःशक्त हैं परन्तु अपनी बेटियों को आत्मनिर्भर होने की सीख देते हैं। जहाँ समाज बेटियों को गर्भ में ही मार रहा है वही निःशक्त पाण्डेय जी बेटी को आत्मनिर्भरता का पाठ पढ़ाते हैं। पिता का यही आत्मस्वाभिमान नमिता के अन्दर कूट–कूटकर भरा हुआ हैं। वह पिता की मृत्यु पर सभी रस्म–रिवाज स्वयं पूरी करती हैं। जब पण्डित जी क्रियाकर्म के लिए कहते हैं। तो वह कहती हैं– "क्रियाकर्म मैं करूंगी पण्डित जी मैं उनकी बड़ी बेटी हूँ, मुखाग्नि भी मैं ही दूंगी छुन्नू बच्चा हैं। बच्चे के हाथ से क्रियाकर्म करवाना उचित नहीं।"[36]

यहाँ नमिता एक सशक्त बेटी होने का प्रमाण देती हैं।

'अलका सरावगी' का उपन्यास 'कोई बात नहीं' का शशांक को चलने और बोलने में समस्या हैं। इसी कारण उसे स्कूलों में दाखिला नहीं मिलता। धीरें–धीरें उसका चलना–बोलना भी बन्द हो जाता हैं। उसकी माँ उसे हार नहीं मानने देती उसे वर्ड बोर्ड लाकर देती हैं। जिससे वह अपनी बात कह सकें। घर में अमृत के समान करवायी गयी कथा उसके जीवन में खुशहाली ले आती हैं। अब वह दीवार व फर्नीचर के सहारे चलता हैं अपनो को देखकर हँस देता हैं 'कोई बात नहीं'।

'गौरापंत शिवानी' के लघु उपन्यास में कुछ उपन्यास हैं जिनमें दिव्यांग पात्रों का चित्रण हैं। 'पूतों वाली' की 'पार्वती' की एक आँख में मोतियाबिन्द दूसरी में ग्लूकोमा हैं। वह पाँच पुत्रों की माँ हैं परन्तु कोई अपनी माँ की खबर नहीं लेता। आँखों का समय पर इलाज न होने के कारण वह अंधी हो जाती हैं इस उपन्यास में हमारी युवा पीढ़ी की लापरवाही झलकती हैं।

शिवानी का दूसरा उपन्यास 'कैंजा' में मालदारिन की पगली बेटी का शोषण एक बदमाश सुरेश भट्ट द्वारा चित्रित हुआ हैं। सुरेश भट्ट के दुष्कर्म के कारण पगली बिन ब्याही माँ बन जाती हैं और स्वयं कम उम्र होने के कारण मौत का ग्रास बन जाती हैं। जिस बच्चें की माँ उसके जन्म के समय मर जाये तो उस बच्चें को पहाड़ी भाषा में कैंजा कहते हैं। इसलिए पगली की माँ मालदारिन पगली के बेटे को कैंजा कहती हैं।

'शिवानी' जी का उपन्यास 'करिएछिमा' का 'पादड़ी साहब' कुष्ठरोगी हैं। ग्रामवासियों का कहना हैं कि बहुत पहले ये विदेशी चित्रकार गाँव के बाहर ओडियार में आकर रहने लगे थे। उस समय उसके रोग का बाह्य निशान नहीं था। परन्तु उसके अन्दर के रोग ने जब अचानक उस पर आक्रमण किया तो धीरे–धीरे पूरे शरीर पर कब्जा कर लिया। पहले हाथ की अंगुलियाँ गई फिर पलकें और एक ही वर्ष में वह बुरी तरह लड़खड़ाने लग गया। कुछ दिन ठूँठ हाथों से गुहा–भित्ति

को अपनी अनूठी कला से विभूषित करता, पर एक दिन विवश तूलिका नीचे गिर पड़ी। अब उन्होंने कुदाली हाथ में थाम ली और विदेश से पौधे मंगवाकर सेब, नाशपति का बाड़ लगा दिया। वह सोचता था कि कुएँ का पानी पीकर लोग खोदने वाले का स्मरण जरुर करेंगे। लेखिका के 'विषकन्या' उपन्यास की नायिका कामिनी हैं। जो हवाई यात्रा का वर्णन करती हैं। यात्रा के दौरान मिरगी के रोगी व कुष्ठरोगियों से मिलती हैं और उन्हीं का चित्रण करती हैं। 'कृष्णवेणी' उपन्यास में कृष्णवेणी और भास्कर का प्रेम प्रसंग हैं। भास्कर का पिता कुष्ठरोगी हैं। जिसका पता कृष्णवेणी के पिता को चलता हैं तो वह शादी के लिए मना कर देता हैं। कुछ दिन बाद भास्कर भी कुष्ठरोगी हो जाता हैं। भास्कर के "हाथों की अंगुलियाँ झड़कर दो अधूरी मुट्ठियाँ मात्र रह गई हैं, होंठ विहीन चेहरा वीभत्स बन गया हैं, जैसे कटहल का छिलका नाक नहीं, पलकहीन अंगारें सी दो आँखें ही बस दप–दप कर जल रही हैं, पूरे चेहरे में।"[37]

शिवानी जी का लघु उपन्यास 'किशनुली का ढॉट' में मुख्य पात्र किसना हैं। जो अनाथ है। वह मानसिक रूप से निःशक्त है। गाँव के लोग परेशान होकर बोरे में बंद करके निःसंतान काखी के द्वार पर छोड़ देते हैं। काखी उसे प्यार से पालती हैं। परन्तु काखी का पति उसे अपनी हवस का शिकार बना लेता हैं। वह एक लड़के को जन्म देकर मर जाती हैं। काखी किसना के बेटे को पढ़ा–लिखाकर कलेक्टर बनाती हैं।

उपन्यासों के अतिरिक्त कहानियों में भी दिव्यांग लेखन की विशिष्ट लेखिका हैं–

ममता कालिया ने अपनी कहानियों में समाज की हर समस्या का चित्रण किया हैं। उनका कहानी संग्रह 'सीट नंबर छह' की कहानी 'आजादी' की पात्र वृद्ध महिला हैं। जो पैरों से निःशक्त हैं परन्तु उसके परिवार में कोई भी उसकी तरफ ध्यान नहीं देता। उसकी पोती मुन्नी ही उससे बतियाती हैं बाकि किसी को उसकी निःशक्तता व दर्द का दुःख नहीं हैं। उनकी इसी संग्रह की 'उपलब्धि' की पात्र गूँगी–बहरी शहनाज हैं। 'चेहल्लुम' के रोज में एक दम्पती का इकलौता बेटा बिछुड़ जाता हैं। तो वही निःशक्त लड़की उसको ढूँढ़ने में मदद करती हैं। एक और कहानी इसी संग्रह की 'फर्क नहीं'। इस कहानी की मुख्य नायिका के घर में एक किरायेदारनी रहती है। जिसके पैरों व पिण्डिलियों पर सफेद दाग हैं। नायिका की माँ इसे छुतहा रोग मानती हैं और उसे उसके पास बैठने–उठने नहीं देती। यहाँ पर समाज का उपेक्षा भाव एकदम स्पष्ट हुआ हैं।

ममता कालिया का कहानी संग्रह 'निर्मोही' के अन्तर्गत 'मुन्नी' कहानी की पात्र मुन्नी को न जाने कितनी जानलेवा बीमारी हैं। इसकी वजह उसकी दादी का अंधविश्वास हैं वह उसे एक भी टीके पोलियों के नहीं लगने देती। वह पैरों को घसीटकर चलती है, हमेशा खाँसती रहती हैं। इसी

प्रकार इनकी 'काके दी हट्टी' के अन्तर्गत 'बीमारी' की नायिका अभिधा आँखों की समस्या से परेशान हैं जब वह डॉक्टर के पास इलाज के लिए जाती हैं तो डॉक्टर उसकी आँखों में सुई चुभों देती हैं जिससे वह बिना इलाज करवाये ही डरकर भाग जाती हैं।

'उषा प्रियवंदा' की 'टूटे हुए' कहानी की पात्र तंत्री एक निःशक्त पुत्र की माँ हैं। वह दूसरे पुत्र के लालच में दूसरे पुरुष से संबंध बना लेती हैं। परन्तु बेटे की लालसा अधूरी रह जाती हैं अब वह टूटी हुई लगती हैं।

'गौरा पंत शिवानी' का कहानी संग्रह 'सौत' की पात्र नीरा पति के द्वारा धोखा खाकर मानसिक संतुलन खो देती हैं। डॉक्टर को दिखाया तो वह कहता हैं, "दिमाक का मर्ज हैं, किसी दिमाक के डॉक्टर को दिखाइए। ह्रदय पर कोई गहरा आघात लगा हैं।"[38]

इसी संग्रह की दूसरी कहानी 'मेरा भाई' का पात्र 'सुब्य्या' हैं। जो रंग का काला, एक आँख भैंगी, माथे के बीच आँख का निशान। इसी विकृत शरीर के कारण वह उपेक्षित हैं। 'दंड' कहानी का पात्र गूंगा–बहरा बदलू हैं। उसका मालिक (डॉक्टर) अपनी परेशानी के कारण घर छोड़कर निकल जाता हैं। जिसका पत्र गूंगे बदलू के हाथ में थमा जाता हैं। गूँगा बदलू कुछ नहीं बता सकता सिर्फ बेबसी के आँसू बहाता हैं। शिवानी का दूसरा कहानी संग्रह 'मेरी प्रिय कहानियाँ' में शपथ कहानी का पात्र आँखों से अंधा हैं परन्तु उसकी बेटी के ससुराल वाले उसके पास एक दिन भी उसकी बेटी को नहीं रहने देते। इसी संग्रह की कहानी 'पुष्पहार' में 'दुर्गी' का पति 'सूबेदार' पैर से दिव्यांग हैं। उसकी पत्नी उसकी इसी कमजोरी का फायदा उठाकर गैर मर्दों से संबंध बनाती हैं। जिसके कारण सूबेदार उसे रंगे हाथों पकड़ लेता हैं परन्तु कुछ नहीं कर पाता सिर्फ बेबसी के आँसू बहाता रहता हैं। 'श्रीमति रेखा पालेश्वर' की कहानी 'विकलांग बेटा–बेटी का खोना'। इस कहानी में लेखिका ने दो पात्रों का चित्रण किया है। रघुवीर और अंजुला दोनों बहन–भाई जन्म से निःशक्त हैं। माँ–बाप सभी डॉक्टरों से इलाज करवाते हैं परन्तु कोई लाभ नहीं मिलता। फिर 22 वर्ष की उम्र पाकर रघुवीर और 22 वर्ष में ही अंजुला मौत का ग्रास बन जाते हैं। माँ–बाप आज भी नहीं भुला पाये हैं क्योंकि माँ–बाप के लिए बच्चें कभी बोझ नहीं होते।

'गौरापंत शिवानी' की कहानी 'अपराजिता' की 'चन्द्रा' सशक्त के लिए प्रेरणा बनी हैं। निःशक्त होने के कारण डॉक्टर की पढ़ाई नहीं कर पाती परन्तु उसकी माँ ने हौंसला नहीं टूटने दिया और फिजिक्स में डॉक्टरेट की उपाधि दिलाई। लेखिका ने चन्द्रा की प्रेरणा को सशक्त तक पहुँचाने के लिए कुछ पंक्तियाँ हैं–

"तन विकलांग है तो मन को फौलाद बनाना है।
दृढ़ आत्मविश्वास से स्वयं को आगे बढ़ाना है।
तन की कमियों से घबरा मायूस न होना कभी बृजेश।
मायूसी का काम अवसाद उपजना है।"[39]

'सिम्मी हर्षिता' की कहानी 'अनिमंत्रित' पात्र 'मनु' जन्म से मानसिक रूप से निःशक्त हैं। वह शरीर से विकसित हो जाता हैं परन्तु उसके दिमाक का विकास न होने के कारण परिवार के लिए समस्या बना रहता हैं। एक दिन माँ की अनुपस्थिति में उसका मैल उसकी बड़ी बहन साफ करती हैं। जिससे उसको बहुत गुस्सा आता हैं और उससे घृणा करती हुई बुरा–भला कहती हैं। इसी प्रकार 'डॉ. चन्द्रवती नागेश्वर' की कहानी अपाहिज बिमला बुलन्दियों के शिखर पर'। इस कहानी की नायिका बिमला पैरों से निःशक्त हैं। गरीब परिवार से हैं लेखिका की प्रेरणा से उसके माता–पिता उसे पढ़ा लिखा देते हैं जिससे उसे नौकरी मिल जाती हैं और निःशक्त बच्चों के लिए विद्यालय खोलती हैं। उसकी फोटों अखबार में देखकर लेखिका सोचती है जिस छात्रा की जिंदगी को संवारने में आंतरिक जुड़ाव था वह सार्थक हो गया।

इसी प्रकार 'अंजना सिंह ठाकुर' की कहानी 'एक थी शकुन' की पात्र शकुन पैरों से निःशक्त हैं। परन्तु अपनी भाभी की प्रेरणा से वह हीन भावना से उभरती हैं और उसकी भाभी परिवार को समझाकर निःशक्त 'गोपाल' से शादी करवा देती हैं। जिससे गोपाल और शकुन दोनों खुश हैं।

कहानियों की तरह लघुकथाओं में भी कुछ विशिष्ट लेखिकाएँ हैं जिन्होंने निःशक्त पात्रों की समस्या का चित्रण किया हैं। डॉ. आशा पुष्प' की 'हक' लघुकथा का पात्र पैरों से निःशक्त हैं वह ट्रेन के डिब्बे में झाडू लगाकर पैसे माँगता हैं तो कुछ यात्री नहीं देते तब वह कहता हैं कि उसके हक के पैसे माँग रहा हैं। लेखिका की दूसरी लघुकथा 'जिजीविषा' का अंधा पात्र हैं। जो रेलवे स्टेशन पर मूँगफली बेचता हैं। लेखिका अपनी जिज्ञासा को शांत करने के लिए उससे मूँगफली खरीदती हैं और जानती हैं कि अंधा होकर भी वह कैसे मूँगफली तोलता हैं और पैसों का हिसाब करता हैं। इसी प्रकार दूसरी लघुकथाकार 'शाल्मली दुबे' की लघुकथा 'झिलमिल' की पात्र झिलमिल एक पैर से निःशक्त हैं। उसके साथी उसका मजाक उड़ाते हैं। उसकी दोस्त संजना उसका साथ देती हैं। संजना की माँ उसे गाना सिखाती हैं। जिससे प्रतियोगिता में वह प्रथम पुरस्कार भी प्राप्त करती हैं। यह देखकर उसके साथी ईर्ष्याभाव भूलकर उसके दोस्त बन जाते हैं।

'सीमा मल्होत्रा' की लघुकथा 'ऐसा भी होता हैं' की निःशक्त आरती हैं। एक दिन वह अपनी दोस्त निशा को अपने तिपहिया वाहन से उसके घर छोड़ देती हैं। जिससे निशा में हीनभावना आती हैं। अगले दिन वह उसके साथ जाने से मना कर देती है। परन्तु जब आरती अपनी कार ले आती हैं तो निशा उसे घर छोड़ने की कहती हैं। तब आरती कहती हैं वह अभी घर नहीं जा रही। तब निशा को बुरा लगता हैं वह कहती हैं कोई अपनी दोस्त को ऐसे भी कह सकता हैं।

संस्मरण विद्या की विशिष्ट लेखिका 'महादेवी वर्मा' के संस्मरण 'गूंगिया' की पात्र गूंगी हैं। वह गूंगी होने का कष्ट झेलती हैं। पति के द्वारा छोड़ दी जाती हैं। अब वह पीहर में रहती हैं अपने पति व बहन के लड़के 'हुलासी' को माँ से ज्यादा प्यार देकर पालती हैं। परन्तु वहीं हुलासी उसे बिना बताये घर छोड़कर चला जाता हैं। उसकी याद में वह तड़पती रहती हैं। उसके नाम का पत्र पाकर ही अपने प्राण त्यागती हैं। इसी प्रकार लेखिका का दूसरा संस्मरण 'अंधा अलोपी' का पात्र अलोपी लेखिका के घर नौकर का काम करने आता हैं। तब लेखिका सोचती हैं यह कैसे काम करेगा। परन्तु जब वह अपने काम को समय पर व नियम से करता हैं। तो लेखिका उसके दृढ़ विश्वास व कठोर परिश्रम को लाम करती है। जब उसके काम का समय होता था चाहे आंधी आये या बारिश अलोपी रुकता नहीं था।

इन विद्याओं के बाद आत्मकथा में भी विशिष्ट लेखिकाओं की रचना हैं–

निःशक्तजन पर आधारित 'हेलन केलर' की आत्मकथा हैं जो अंधी, गूँगी, बहरी लड़की हैं। इस आत्मकथा में हेलन केलर ने अपने अपंग हो जाने पर जीवन संघर्ष का वर्णन किया। जब हेलन 19 माह की थी तब पेट और दिमाक में गहरा आघात लगा और उसकी बोलने, सुनने तथा देखने की शक्ति चली गई। इस दुर्घटना के बाद उसमें हीन भावना पैदा हो गई, वह हर चीज को तोड़–फोड़ करके नष्ट करने लगी। अचानक उसमें ऐसा बदलाव आया की उसने अपनी जरुरतों को पूरा करने के लिए 60 प्रकार के संकेत विकसित कर लिये। उसकी माँ ने उसकी समस्याओं को समझने के लिए काफी पुस्तकों का अध्ययन किया। उन्होंने उसे वैज्ञानिक अलैक्जेण्डर ग्राहमबेल को दिखाया जिससे वह काफी प्रभावित हुई। छह वर्ष की आयु में उसका सम्पर्क सालीवान से हुआ।

सालीवान के सम्पर्क में आने के दो सप्ताह बाद ही उसके व्यवहार में अचानक ही परिवर्तन आने लगा। सालीवान के प्यार भरे व्यवहार ने उसमें बहुत सारे बदलाव कर दिये उसने हर चीज को स्पर्श करवाकर उसके बारे में जानकारी दी। समय के साथ–साथ उसने लगभग 3000 शब्द सीख लिये 1 जुलाई 1887 में मैंने अपनी माँ को पहला पत्र लिखा कि उसे 'परकिंस संस्थान' में

एक दिलचस्प बालिका के रूप में स्थान प्राप्त हैं। अब उसका विकास तेजगति से होने लगा जिसका श्रेय सालीवान को हैं। सलीवान यह नहीं चाहती थी कि उसकी परिश्रम और हेलन की प्रतिभा अनावश्यक रूप से किसी के प्रचार का माध्यम बने। सलीवान में एक माँ की ममता थी इसी कारण वह निःशक्त बच्चों की देखभाल में ज्यादा दिलचस्पी लेती थी। हेलन ने एक कहानी लिखी थी जिसे अनाग्नोस ने, 'दि मैण्टर' नामक स्कूल की 'एलम्नी एसोशियन' की पत्रिका में छापा। स्कूल की ईर्ष्या रखने वाली शिक्षिकाओं ने, उसकी प्रतिभा और उसके कारण सलीवान को मिलने वाले सम्मान से चिढ़ने लगी थी। उन्होंने यह आरोप लगाया की यह कहानी 1870 ई. में छप चुकी हैं और हेलन ने उसी को दोहरा दिया। लेकिन सालीवान ने सफाई दी कि 1870 में छपी कहानी न तो मैंने स्वयं पढ़ी और न हेलन ने। अब सालीवान और हेलन दोनों परकिंस छोड़कर जाने की तैयार हो गई, तो अनाग्नोस उन दोनों के खिलाफ हो गया और उसने उन पर झूठे आरोप लगाने शुरु कर दिये।

हेलन बचपन से ही हठी रही हैं, अब उसके मन में आगे बढ़ने की लालसा जग चुकी थी। 1894 में ग्राह्मबेल के कारण न्यूयार्क आ गई, यहाँ पर वह बधिरों को भाषा सिखाने वाले स्कूल 'राइट हुमासन' में पढ़ना चाहती थी। लेकिन आर्थिक कठिनाइयों के कारण वह ऐसा नहीं कर पाई। अब यह साबित हो गया था कि हेलन और सालीवान दोनों एक–दूसरे के लिए बनी हैं। सन् 1900 ई. में 'रेडक्लिक कॉलेज' में प्रवेश लिया और एक सामान्य छात्रा की तरह पूरा कोर्स किया। उसने स्नातक तक की उपाधि प्राप्त कर ली। सिर्फ अन्धेपन के कारण वह साइंस और गणित विषय को नहीं पढ़ पाई। इसी बीच लेखिका ने लेखन में प्रसिद्धि प्राप्त कर ली। अब मुझे अपनी आत्मकथा लिखने की सलाह दी गई। इसमें बहुत सारी परेशानी आई किन्तु सफल हो गई। उसकी आत्मकथा 'स्टोरी ऑफ माइलाइफ' सन् 1902 में न सिर्फ छपी बल्कि प्रसिद्धि प्राप्त की। मेरी इस आत्मकथा ने अनेक चर्चाओं को जन्म दिया। किसी ने सालीवान को सराहा तो किसी ने लेखिका की सराहना की, एक नेत्रहीन, श्रवणहीन, बालिका का इतना आगे बढ़ना। प्रशंसा का विषय रहा पुस्तक खूब बिक रही थी अब उससे लेखिका को आमदनी होने लगी।

उपर्युक्त कार्यों के साथ लेखन कार्य भी लगातार चल रहा था। मेरी आत्मकथा 'मिडस्ट्रीम' तैयार हुई, मैंने अपनी टीचर एनी की जीवनी हनी से तैयार करवायी, जिसमें एनी ने अपने प्रारम्भिक जीवन की कठिनाइयाँ व्यक्त की हैं। लेखिका की प्रसिद्धि आसमान को छू रही थी। इन सबके कारण उस समय के वैज्ञानिक ने मेरी असाधारण प्रतिभा की जाँच की और मेरी सूँघने, स्पर्श करने और स्वाद चखने की क्षमता का गहराई से अध्ययन किया। लम्बे अध्ययन के बाद 'फ्रेडरिक टिनले' वैज्ञानिक ने कहा उपर्युक्त मामलों में मेरी क्षमता एक सामान्य व्यक्ति के समान ही हैं। मेरी जीवन

की हमसफर प्यारी टीचर एनी चल बसी। मुझे उसके निधन पर बहुत दुःख हुआ। इसी दौरान अमेरिका में नेत्रहीनों के हक की लड़ाई शुरु हुई और सरकार पर दबाव डाला कि वह नेत्रहीनों के पढ़ने की व्यवस्था करें और उनके ऊपर होने वाले खर्च को वहन करें। लेखिका के प्रयास स्वरूप 1935 में सामाजिक सुरक्षा कानून के दसवें अध्याय में नेत्रहीनों के लिए आर्थिक सहायता का प्रावधान भी शामिल किया गया। जब मैं रोम में थी, तब 1946 में मुझे पता चला कि मेरा घर जल गया। मुझे इस बात का अपार दुःख हुआ कि अनेक अप्रकाशित पाण्डुलिपियाँ, जिसमें मेरी टीचर एनी की जीवन गाथा भी शामिल थी। नेत्रहीनों के निवेदन पर मैं जापान गयी। हिरोशिमा और नागासाकी में हुए महाविनाश को देख कर ही पूरा समझ गयी एटमी शक्ति के दुरुपयोग के कारण असंख्य निःशक्त बच्चें पैदा हुये। घायलों व निःशक्तों के दर्द को समझते हुए मैंने परमाणु बमों के खतरे के खिलाफ संघर्ष करने और परमाणु शक्ति के रचनात्मक इस्तेमाल करने के लिए अभियान चलाया। इसी प्रयास में वह चीन व भारत जाना चाहती थी। परन्तु उसकी सचिव पॉली थामसन को दिल का दौरा पड़ने के कारण नहीं जा सकी। इसी बीच मेरे काफी दोस्त भी बने जिनमें से नैंसी हेमिल्टन ने मेरे जीवन वृत पर आधारित एक 'डॉक्यूमेण्टरी' फिल्म 'दा अनकांकर्ड' बनायी। इस फिल्म का नाम बदलकर 'हेलन कीलर इन हर स्टोरी' कर दिया।

1961 में पहली बार दिल का दौरा पड़ा और बाहर आना–जाना बन्द हो गया। 1964 में जब मुझे अमेरिकी राष्ट्रपति ने सर्वोच्च सम्मान देने की घोषणा की तो स्वास्थ ठीक न होने के कारण मैं नहीं जा सकी। इस आयोजन पर मैंने अपने भतीजे व भतीजी को भेजा। जब मैं तत्कालीन प्रधानमंत्री नेहरू के निमंत्रण पर भारत यात्रा के लिए गई तो सामूहिक बैण्ड पर धुन बजायी गई, तो मैं नृत्य करने लगी। तब पं. जी ने पूछा हेलन तुम देख नहीं सकती, तो तुम्हें कैसे मालूम हुआ कि राष्ट्रीय धुन बज रही हैं। मैंने कहा ध्वनि की तरंगों को पहचान गई। मेरी भारत यात्रा के दौरान जो धन इक्ट्ठा हुआ उससे भारत में मेरे नाम की (हेलन केलर) ट्रस्ट की स्थापना हुई।

मेरी प्रमुख कृतियाँ निम्न हैं–

1. दी स्टोरी ऑफ माई लाइफ सन् 1902
2. आप्टीजिम सन् 1903
3. दि वर्ल्ड आई लीव इन, सन् 1906
4. सांग ऑफ दि स्टोन वाल सन् 1910

5. आउट ऑफ दि डार्क, सन् 1913
6. माई रिलीजन, 1927
7. मिडस्ट्रीम 1929
8. हेलन केलर्स जनरल सन् 1938 और
9. लैट अस हैव फेथ, सन् 1940

हेलन केलर 'केवल तीन दिन' में कहती हैं कि मैं अपने आँखों वाले मित्रों से पूछती हूँ वे क्या–क्या देखते हैं? उन्होंने जवाब दिया कुछ खास नहीं। मैं अपने–आपसे सवाल करती हूँ कि कैसे सम्भव हैं जब घण्टों सैर पर जाने के बाद भी कुछ नहीं देखा? मैं देख नहीं सकती पर स्पर्श कर सकती हूँ और यदि मैं स्पर्श मात्र से इतना सारा सुख पा लेती हूँ तो दृष्टि कितना अधिक सौन्दर्य देती। वह कल्पना करती हैं कि यदि उसे जीवन में तीन दिन के लिए आँखों की रोशनी मिल जाये तो वह क्या–क्या देखना पसन्द करेगी।

पहला दिन बहुत व्यस्त होगा। मैं अपने तमाम मित्रों को पास बुला लूँगी और उनके चेहरे को देर तक निहारूँगी दोपहर में जंगल में सैर के लिए निकल जाऊँगी और प्रकृति के सौन्दर्य को अपनी आँखों में भर लूंगी। रंगीन सूर्यास्त को देखने के लिए मैं भगवान स्तुति करुंगी।

दूसरे दिन में उषा के आगमन के साथ उठ बैठूँगी और उस रोमांचकारी चमत्कार को देखूंगी जो रात को दिन में बदल देता हैं। इस दिन दुनिया के अतीत और वर्तमान की एक झलक पाने में खर्च करुंगी। मैं मनुष्य की प्रगति यात्रा की झांकी देखना चाहूंगी। मेरा अगला पड़ाव होगा 'म्यूजियम आर्ट' मैं प्राचीन मिस्र के देवी–देवताओं की मूर्तियों को अपने हाथों के माध्यम से जानती हूँ। मैंने यूनान के पार्थ नान की चित्रललरियों की आकृतियों को छूकर देखा हैं और मैंने आक्रमण करते हुए एथेंसवासी वीरों की लयबद्ध सुन्दरता को अनुभव किया हैं। इस तरह दूसरे दिन में मैं कला के माध्यम से मानव के हृदय की थाह को पाने की कोशिश करुंगी। दूसरे दिन की सांझ मैं किसी नाट्यशाला में या सिनेमाघर में बिताऊँगी। हांलाकि मैं लय के आनन्द से परिचित हूँ। कि वह लयात्मक गति संसार के सबसे सुहावने दृश्यों में होगी।

तीसरा दिन मैं रोजमर्रा के जीवन की दुनिया में बिताऊँगी। पहले मैं भीड़–भाड़ भरे नुक्कड़ पर खड़ी होकर बस यों हि लोगों को देखती रहूँगी, उनके चेहरे के हाव–भाव से उनके जीवन को कुछ–कुछ समझ पाने की कोशिश करुँगी। जब मेरी दृष्टि का अंतिम दिन समाप्त होगा। शायद बहुत से गंभीर कार्य हैं, जिनमें मुझे ये बचे हुए चंद घण्टे गुजारने चाहिए। मध्यरात्रि में शाश्वत् रात्रि मुझे फिर से आकर घेर लेगी निश्चय ही इन दिनों में छोटे–छोटे पसंद का सब कुछ देख सकूं।

अंधकार फिर मुझ पर उतर आयेगा। इसी कारण मैं, जो अंधी हूँ, आँख वालों को एक सुझाव दें सकती हूँ अपनी आँखों का ऐसा उपयोग करे की जैसे कल आप अंधे हो जाने वाले हो और यही तरीका अपनी अन्य इन्द्रियों के लिए भी अपनाया जा सकता हैं।

दूसरी लेखिका की आत्मकथा 'रेखा कारड़ा की कहानी उन्हीं की जुबानी' "मैं कुमारी रेखा नंदलाल कारड़ा दोनों पैरों से अपंग होने के साथ–साथ दृष्टिहीन हूँ यानि अत्यन्त अल्पदृष्टिवान हूँ। मैं आज अपनी सेवाऐं शासकीय मालव कन्या उ.मा. विद्यालय, इन्दौर में संगीत शिक्षिका के रूप में दें रही हूँ।"[40]

लेखिका अपनी जिन्दगी में भोगे गये कष्टों व संघर्षों का चित्रण कर रही हैं। वह कहती हैं कि उसको वह दिन अच्छे से याद हैं कि उसकी निःशक्तता के कारण एक नहीं अनगिनत स्कूल वालों ने दाखिला देने से मना कर दिया था। एक जगह तो ऐसा सुनने को मिला कि हमारा स्कूल क्या, इसे कोई भी स्कूल स्वीकार नहीं करेगा। यह सुनते–सुनते मैंने भी निश्चय कर लिया पढ़ाई करने का और संघर्षों से जूझती हुई एम.कॉम और वो भी बी–न्यूज के साथ ही हो गया। याने दो डिग्रियाँ वो भी सारी गतिविधियों के साथ–साथ चाहे फिर परीक्षा के दिन ही प्रतियोगिता कार्यक्रम क्यों न हो मैंने समायोजन कर यानि पेपर जल्दी निपटाकर और कार्यक्रम में थोड़ा देर आने की पूर्व सूचना के साथ तालमेल बैठाया। एम.कॉम. के बाद मैंने एम.एम. करने की ठानी और प्रथम स्थान प्राप्त करके पी.एच.डी की तैयारी में हूँ।

पढ़ाई के साथ–साथ शतरंज की राष्ट्रीय स्तर की खिलाड़ी रही हूँ। नाटक, लेखन व नाटक मंचन में भी कई उपलब्धियाँ प्राप्त की। इसके अलावा वाद–विवाद, हारमोनियम वादन, ब्लॉक पेटिंग, कम्प्यूटर एवं टाइपिंग में ज्ञान प्राप्त किया।

नयी दुनिया समाचार पत्र द्वारा अभिनय में पुरस्कार प्राप्त किया। सुर संगम जयपुर द्वारा आयोजित अखिल भारतीय संगीत स्पर्धा में रजत कप प्राप्त। अनेकों स्थानीय व राष्ट्रीय संस्थाओं द्वारा आयोजित गायन स्पर्धाओं में पुरस्कार अर्जित एवं सम्मानित। वर्ष 1987 में आल इंडिया गायन कलाकार, खेल शतरंज की राष्ट्रीय खिलाड़ी एवं विभिन्न पत्रिकाओं में सफल लेखन। साथ ही कई विभूतियों ने मुझे सम्मानित भी किया पद्मश्री मुश्ताक अली खां द्वारा, रामेश्वर पटेल द्वारा, विकलांग दर्शन समाचार द्वारा, अन्नू कपूर व दुर्गा जसराज द्वारा, श्रीमति सुकन्या द्वारा, श्री एस.के. मतलानी द्वारा, इन्दौर कलेक्टर द्वारा, राष्ट्रपति पुरस्कार प्राप्त श्रीमति आशा कोटिया द्वारा, श्रीमति रश्मि रामानी द्वारा पूर्व कांग्रेस अध्यक्ष श्री कृपाशंकर शुक्ला व अश्विन जोशी द्वारा। पद्मश्री पुकरी मेनन द्वारा, पद्मश्री बाबू लाल बाहेती द्वारा सम्मानित।

हालांकि अभी मेरा स्वास्थ कुछ बिगड़नें लगा हैं। मगर मेरा मानना हैं कि वह इंसान, इंसान नहीं जो परिस्थितियों से हार जाये। चाहे जितने संकंटों के पहाड़ खड़े हों यदि आप संघर्ष के लिए तैयार हैं तो दुनिया की कोई भी ताकत आपकी राह की रुकावट नहीं बन सकती।

निष्कर्ष

हिन्दी साहित्य में उपन्यास का क्षेत्र बहुत ही विस्तृत हैं। संस्कृत का प्रसिद्ध साहित्यकार 'बाणभट्ट' का 'कादम्बरी' उपन्यास विश्व का प्रथम उपन्यास माना जाता हैं। जबकि हिन्दी साहित्य का प्रथम उपन्यास 'परीक्षा गुरु' को माना जाता हैं। जिसमें दिल्ली के एक सेठ के पुत्र की कहानी हैं। इस उपन्यास के रचनाकार श्रीनिवासदास हैं।

जैसा कि हम जानते हैं कि हिन्दी साहित्य में उपन्यास का सृजन पश्चिमी देशों को दिया जाता हैं। हिन्दी के साहित्यकारों ने उन्हीं के अनुवादों से उपन्यास लेखन की प्रेरणा ली। हिन्दी गद्य में इस विधा का सृजन प्रेमचन्द पूर्व युग से लेकर समकालीन उपन्यास तक अनेक परिवर्तनों के साथ चलता रहा हैं शुरुआत में तो उपन्यास का लेखन मनोरंजन के लिए गया था। इस काल में जासूसी, तिलस्मी, ऐन्द्रजालिक, ऐय्यारी उपन्यासों की रचना हुई। फिर समय व समाज के परिवर्तन के साथ–साथ बदलाव आने लगा। इन उपन्यासों के बाद सामाजिक, ऐतिहासिक, आंचलिक, यथार्थवादी चित्रण होने लगा। परन्तु ये सब मनुष्य की भीतरी भावना को स्पष्ट करने में असफल रहे। कुछ मनोवैज्ञानिक उपन्यासकारों ने इस क्षेत्र में प्रयास भी किया है। वर्तमान युग में व्यक्ति की निजी समस्या को केन्द्र में रखकर उपन्यास लेखन जारी हैं। वर्तमान साहित्य में विमर्श के द्वारा समाज में फैले अंधविश्वास व पुरानी परम्पराओं से छुटकारा दिलाने का प्रयास हो रहा हैं। ये विमर्श गद्य साहित्य की सभी विद्याओं में हो रहें हैं। स्त्री की समस्या, दलित आदि की समस्या के समाधान के बाद दिव्यांग जन की समस्या को भी कम करने के प्रयास हो रहे हैं।

पुरानी मान्यताओं व परम्पराओं के माध्यम से दिव्यांग जन को उसके पूर्व जन्म के बुरे कर्मों का फल माना जाता हैं। स्वयं एक निःशक्त व्यक्ति के दिमाक में भी यह बात बैठा दी जाती हैं कि इस समस्या को तो उसे भोगना ही है, इसलिए वह इसे कम करने का प्रयास भी नहीं करता। गद्य की प्रसिद्ध विद्या उपन्यास में ऐसे अनेक लेखक व उनके उपन्यास हैं जिनमें निःशक्तजन की पीड़ा को व्यक्त किया गया हैं। प्रसिद्ध कथा सम्राट् 'मुंशी प्रेमचन्द' का उपन्यास 'रंगभूमि' का पात्र सूरदास अंधा हैं। वह भीख माँगकर गुजारा करता हैं। परन्तु अपने स्वाभिमान को कम नहीं होने देता। दूसरा उपन्यासकार 'हजारी प्रसाद द्विवेदीजी' के उपन्यास 'अनामदास का पोथा' में 'रैक्वऋषि' निःशक्त हैं वह हमेशा अपनी पीठ को खुजलाता रहता हैं। 'गौरा पंत शिवानी' के लघु उपन्यासों में

भी दिव्यांग पात्रों का चित्रण हैं। 'मृदुला सिन्हा' का उपन्यास 'ज्यों मेंहदी को रंग' उपन्यास ने निःशक्तजन अनुशीलन की नींव का काम किया हैं। उन्होंने अपने बेटे की पीड़ा के अनुभव को सार्थक शब्दों में उकेरा हैं। बेटे परिमल की निःशक्तता ने ही उन्हें उपन्यास लिखने के लिए मजबूर किया हैं। परिमल की जगह 'शालिनी' के चरित्र को आरोपित करके उपन्यास का सृजन किया। 'अलका सरावगी' का उपन्यास 'कोई बात नहीं' का निःशक्त पात्र 'शशांक' के जीवन में आये हर मोड़ का चित्रण किया हैं। चलने और बोलने में शशांक को समस्या थी। परन्तु अचानक ऐसा तूफान उसकी जिन्दगी में आता हैं कि अब तो वह उठ भी नहीं पाता। परन्तु समय पाकर धीरे–धीरे शशांक दीवार व फर्नीचर को पकड़कर चलने लगता हैं। अब वह अपने माता–पिता की तरफ देखकर मुस्करा देता हैं और कहता हैं 'कोई बात नहीं'। इसी प्रकार निःशक्त अनुशील की विशिष्ट लेखिकाओं ने अपना कर्त्तव्य निःशक्त जन के लिए निभाया हैं। उन्होंने अपनी रचनाओं के माध्यम से दिव्यांग जन की समस्या का चित्रण किया है।

≈≈≈≈

सन्दर्भ सूची

1. प्रेमचन्द रचनावली–7, डॉ. रामविलास शर्मा, पृ.291
2. प्रेमचन्द कुछ विचार, पृ.92
3. प्रेमचन्द का साहित्य उद्देश्य, पृ.2
4. महिला उपन्यासकार : मूल्यचेतना, डॉ. शकुन्तला शर्मा, पृ.177
5. रंगभूमि मुंशी प्रेमचन्द, पृ.9
6. वही, पृ.11
7. वही, पृ.91
8. वही, पृ.160
9. वही, पृ.13
10. वही, पृ.53
11. हजारी प्रसाद द्विवेदी, अनामदास का पोथा, पृ.53
12. वही, पृ.56
13. वही, पृ.211
14. कथा–साहित्य में विकलांग विमर्श, डॉ. विनय कुमार पठक, पृ. 241
15. श्रीलाल शुक्ल, रागदरबारी, पृ.312
16. वही, पृ.260
17. उषा प्रियवंदा, पचपन खम्बे लाल दीवारे, पृ.51
18. अमृतलाल नागर, खजन–नयन, पृ.48
19. वही, पृ.49
20. गौरापंत शिवानी, लघु उपन्यास, पृ.9
21. वही, पृ. 34
22. वही, पृ.32
23. वही, पृ.56
24. वही, पृ.78
25. गौरापंत शिवानी करिएछिमा, पृ. 55–56
26. वही, विषकन्या, पृ.31
27. वही, किशनुली का ढ़ॉट, पृ.22
28. वही, पृ.24

29. वही, पृ.32
30. गौरापंत शिवानी, कृष्ण वेणी, पृ. 31
31. वही, पृ.38
32. चित्रामुद्गल आवां पृ. 399
33. वही, पृ.249
34. अलका सरावगी, कोई बात नहीं, पृ.15
35. महिला उपन्यासकार : मूल्य चेतना, डॉ. शकुन्तला शर्मा, पृ.177
36. चित्रा मुद्गल, आवां, पृ. 399
37. गौरापंत शिवानी, कृष्णवेणी, पृ.38
38. गौरापंत शिवानी, अपराजिता, पृ.102
39. कथासाहित्य में विकलांग विमर्श, डॉ. विनय कुमार पाठक, पृ.213
40. विकलांग विमर्श, डॉ. विनय कुमार पाठक, पृ.158

चतुर्थ अध्याय
हिन्दी लघुकथाओं में निःशक्त केन्द्रित अनुशीलन

(1) लघुकथा अर्थ और अवधारणा

(2) समकालीन हिन्दी लघुकथा और निःशक्तजन अनुशीलन

(3) समकालीन हिन्दी लघुकथा में वर्णित समस्याएँ

(अ) सामाजिक समस्याएँ

(ब) राजनैतिक समस्याएँ

(स) आर्थिक समस्याएँ

(द) पारिवारिक समस्याएँ

निष्कर्ष

चतुर्थ – अध्याय

हिन्दी लघुकथाओं में निःशक्त केन्द्रित अनुशीलन

हिन्दी साहित्य, साहित्यकारों की लगातार साधना का फल हैं। साहित्य–लेखन ह्दय की दवात और मस्तिष्क की लेखनी से होता हैं। दवात से अभिप्राय संवेदनशीलता और लेखनी का अर्थ बुद्धि की कला से हैं। जिस लेखन में संवेदना और बुद्धि का प्रयोग नहीं होता, उसे श्रेष्ठ रचना नहीं कह सकते। लघुकथा भी साहित्य की एक विद्या हैं और आकार में लघु होने के कारण उसे कम शब्दों में ही अपना निष्कर्ष देना होता है, अतः अधिक संवेदनशील और परिपक्व होना उसकी आवश्यकता हैं। यह लघुकथा समाज से जुड़ी हर समस्या व उसकी सच्चाई से अवगत कराती हैं। समाज में फैली विसंगति की तरफ ध्यान खींचकर जागृति की अपेक्षा करती है। इसमें कल्पना होते हुए भी यथार्थ नजर आता हैं।

साहित्य की एक विद्या के रूप में लघुकथा ने अपनी उपस्थिति दर्ज करवा ली हैं। भाषा और शैली की दृष्टि से इतनी सुदृढ़ है कि यह सिर्फ लघुकथा होने का प्रमाण देती हैं। "साहित्यिक प्रतिमान में गुंथी लघुतम आकार की वह संवेदनशील गद्य रचना, जिसमें काव्य का बिंब तथा कथा का शिल्प हो और वह पाठक के मन को छू जाए, लघुकथा हैं।"[1]

लघु कथा को समझने के लिए बिहारी का दोहा सटीक जान पड़ता है जो निम्न है–

सतसैया के दोहरे, ज्यों नाविक के तीर।
देखन में छोटे लागत, घाव करें गंभीर।।

लघुकथा पंचतंत्र और हितोपदेश के उपदेश पुराणों के अध्यात्मिक संदेश, मनोरंजन के माध्यम से समसामयिकता पर प्रकाश डालती हैं। लघुकथा कल्पना पर अधिक जोर न देकर यथार्थ को चित्रित करती हैं। इसका अर्थ यह नहीं कि कल्पना पर प्रतिबन्ध है, कल्पना वहीं तक ग्रहण की जाती है जहाँ तक यथार्थ को स्पर्श कर सकें। लघुकथाकार इतिहास और पुराण के प्राचीन कथ्य को वर्तमान के सामंजस्य में रखकर इस तरह प्रस्तुत करता है कि कथा सजीव प्राणी की तरह चमक उठें। इसके अन्दर सत्य व यथार्थ को सिद्ध करके सहानुभूति और स्वानुभूति को संसार के अनुभव के रूप में प्रसिद्ध करना लघुकथा की विशेषता हैं। यह लघुकथा वास्तविकता को ऐसे प्रस्तुत करती हैं। जिसमें परिवार और समाज की मानसिक, आर्थिक, राजनैतिक व सांस्कृतिक

परिस्थितियाँ पृष्ठभूमि के रूप में प्रतिस्थापित हो जाती हैं। "वैयक्तिकता से विलग और स्थूल विवरण से अलग लघुकथा समाज–सागर से लघु किन्तु मूल्यवान मोती निकालने और उसकी चमक से सबको चमत्कृत करने की शक्ति–क्षमता रखती हैं।"[2]

सरल, सहज, सुगम और सुबोध भाषा स्वभाव के कारण कथन को स्पष्ट और कठिन तथ्य को भी सरल बनाकर परिवेशगत परिस्थितियों के अनुसार भाषा को ग्राम व नगर से जोड़ती हैं। मुहावरों व लोकोक्तियों के योग से भाषा को और भी रोचक बनाती हैं। अपने लघु आकार के कारण समग्र कथासार को समेटकर मुख्य अर्थ पर ध्यान केन्द्रित करती हैं।

आधुनिक काल में हिन्दी गद्य में सभी विधाओं का जन्म हो चुका था। जन्म लेते ही सारी विधाऐं अपनी–अपनी दौड़ में लग गई थी। किसी विधा ने तो जन्म लेते ही विशाल रूप धारण कर लिया और किसी ने थोड़े समय के बाद पाठकों में रोचकता प्रदान की। इसी क्रम में बीसवीं शताब्दी के छठवें और सातवें दशक में हिन्दी लघुकथाओं का विमर्श प्रारम्भ हुआ। जबकि इसके बीज तो बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ से ही देखें जा रहे थे। इसके आकार–प्रकार की दृष्टि से छोटी और बड़ी कहानियाँ कहकर कहानी के अन्तर्गत ही इसे स्वीकार किया जाता रहा। इधर बीसवीं शताब्दी के अंतिम दशकों और इक्कीसवीं सदी की दस्तक के साथ हिन्दी की लघुकथाओं का मूल्यांकन होना शुरु हुआ। लघुकथाओं में निःशक्तता का बोध, निःशक्त अनुशीलन का नव्य विवेचन कहा जा सकता हैं। इस दिशा में स्थापित साहित्यकारों की लेखनी अपेक्षाकृत कम प्रयुक्त हुई हैं। लेकिन नए लघुकथाकार इस दिशा में कुछ नया लिख रहे हैं। लेखिका अनुपमा ने 'दर्द की दवा' शीषर्क से लघुकथा में यह निर्दिष्ट कर दिया है कि ओंकारनाथ निःशक्त कोटे से चतुर्थ श्रेणी के सरकारी कर्मचारी बन गए। उनके मन में गरीबों के प्रति सेवा का भाव प्रारंभ से ही रहा है। लघुकथाओं की सबसे बड़ी इनकी सामाजिक उपयोगिता हैं।

ये कथाएँ आकार में लघु होने के कारण पाठक की रोचकता का विषय बनी हैं। ये महाकाव्य के समान लम्बी चौड़ी न होकर, छोटे आकार में अपने पूरे अर्थ को प्रकट कर देती हैं।

(1) लघुकथा : अर्थ और अवधारणा

प्राचीनकाल में लघुकथा अत्यन्त जनप्रिय विद्या रही है, परन्तु वर्तमान में यही लघुकथा एक अत्यन्त सशक्त एवं लोकप्रिय माध्यम बनकर मानवजीवन का मार्गदर्शन कर रही हैं। यह किसी छोटी घटना या जीवन के छोटे भाग को लेकर बिना भूमिका के ही पाठक के अन्तकरण को स्पर्श कर जाती हैं। इसकी अपनी विशेषता है कि, यह जहाँ भी पहुँच जाती है उसे ही अपना बना लेती

हैं। यह पाठक के मन में बेझिझक पहुंचकर अपने भावों में डुबो लेती हैं। इसी लोकप्रियता के कारण सभी युगों में समान गति से बढ़ती चली आ रही है।

लघुकथा के अर्थ हेतु हमें लघुकथा संज्ञा को लघु तथा कथा दो शब्दों में विभक्त करके इसके शाब्दिक अर्थ ढूंढने होंगे। लघु का अभिप्रायः छोटा, सूक्ष्म, संक्षिप्त, क्षुद्र, अल्प अथवा निम्न से हैं। प्रसंगगत लघु का अर्थ छोटा का पर्याय मानना चाहिए। कथा 'कथ' धातु से उत्पन्न है, जिसका अर्थ है, जो कहा गया। क्योंकि कथा सदैव भूतकाल को दर्शाती है, इसलिए कथा का अर्थ यही लिया जाना चाहिए। अर्थात् जो कथ्य कम से कम शब्दों में, किन्तु पैनापन लिए हुए चित्रित है, वही लघुकथा की श्रेणी में आता हैं। वह सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक आदि परिस्थितियों को जितनी सहजता से मुखकर कर पाएगी, वही लघुकथा समर्थ कही जाएगी। लघुकथा शब्द 'लघु+कथा' दो शब्दों से मिलकर बना है। 'लघु' शब्द एक विशेषण के रूप में जुड़ा है लेकिन यह दो पदों से समन्वित एक संज्ञा शब्द के रूप में स्थित है। यह अपने नाम के अनुसार कहानी या कथा का लघु आकार है। यह साहित्य में गागर में सागर भरने का कार्य करती हैं।

यह महाकाव्य की तरह विशाल नहीं होती परन्तु अपने छोटे से आकार में सारे संसार को समेट लेती हैं। आधुनिककाल में इसकी लोकप्रियता बढ़ी हैं। साठ के दशक के बाद चर्चित और विकसित लघुकथा इतने कम समय में लोकप्रियता की मंजिल को प्राप्त कर चुकी हैं। प्राचीन व नवीन आंचलिक व सार्वदेशिक होने के कारण विषय के अनुरूप प्रतीकात्मकता, पत्राकार, व्यांग्यात्मक, फैंटसी आदि शैली को भी ग्रहण करती हैं। श्लीलता लघुकथा की सुन्दरता होती है, अगर अश्लीलता कथानक की माँग है, तो वह इतनी ढ़की होनी चाहिए कि पाठक मन को काम–पीड़ा न पहुँचा सकें। मानव व इसके अलावा कथानकों पर रचित लघुकथाएँ मानवपेक्षी ही होती हैं। उनके बिम्ब और प्रतीक मानवीय जीवन के इर्द–गिर्द घूमते हैं। उन्हीं में पाठक उसके द्वारा दिए जा रहे जीवन का प्रतिबिम्ब देखता हैं।

बदलते परिवेश और परिस्थिति के अनुरूप आकार बदलना सृजन की नियति होती हैं। साहित्य समाज का दर्पण है और उक्त दोनों ही कारक उस आइनें के बिम्ब बनते हैं, जिनमें समाज के दर्शन होते हैं। स्वतंत्रता के पहले की लघुकथाओं के कथानक साहित्य की अन्य विधाओं की तरह राष्ट्र के प्रति समर्पण, पराधीनता तथा साम्राज्यवाद के प्रति घृणा, स्वदेश प्रेम और स्वाधीनता के लिए मर–मिटने की भावना से प्रेरित होते थे।

आजादी के बाद स्वतंत्र देश के समाज में ऐश–आराम की ललक ने जन्म लिया जिससे भ्रष्टाचार, स्वार्थपरता, कुटिलता, लालफीताशाही पुलिस ज्यादती और गुण्डागर्दी ने अपने फन उठा

लिए। स्पष्ट दिखाई दें रहा है कि राजनीति में जिस तरह अपराधीकरण बढ़ा है और नेताओं का चरित्र उभरकर सामने आया है, उसने साहित्यकारों के अन्तर्मन को भी चोट पहुँचायी है फिर लघुकथा आहत होने से कैसे बच सकती थी? राजनीति के कपट को चित्रित करती और अन्य निम्नताओं को दर्शाती हुई लघुकथाऐं सामने आई है, जो चेतना सापेक्ष हैं।

साहित्य की सभी विद्या पाठक के मन को काबू में करने का प्रयास करती हैं। जिससे पाठक की उसमें रूचि बढ़े, वही लघुकथा इस कार्य में अधिक सफलता अर्जित करती है क्योंकि वह आकार में लघु होने के कारण रोचकता को अधिक बना देती हैं। वर्तमान में समय की मारा–मारी है, इसलिए लघुकथा थोड़े समय में अपने माध्यम से संदेश समाज तक पहुँचा देती हैं। बड़े–बड़े उपन्यास व कहानी पढ़ने के बजाय लघु आकार वाली रचना पाठक को अधिक आकर्षित करती हैं। यही कारण है कि लघुकथा के माध्यम से दिया गया संदेश अधिक प्रभावी होता है। समाज में फैल रही कुसंगतियों से अवगत कराने के लिए लघुकथा से आसान तरीका नजर नहीं आता हैं। हर समस्या को इसके माध्यम से दर्शाकर समाज में इसके प्रभाव हम देख सकते हैं। समाज की समस्या को हर आदमी तक पहुँचाकर उस समस्या से अवगत कराया जाता हैं। जिसमें देश का नागरिक उसे दूर करने के लिए आवाज उठाये। वर्तमान में लघुकथा के माध्यम से दिव्यांग वर्ग की समस्या को उठाया जा रहा हैं। जो बहुत ही भयंकर समस्या हैं।

हर इंसान भगवान के बनाये हुए है परन्तु फिर भी मनुष्य अपने–आप पर गर्व करने में बाज नहीं आता। यही समस्या दिव्यांग व्यक्ति के साथ है कि समाज उसे नीची दृष्टि से देखता हैं। वैज्ञानिक युग मशीन का है जिसमें हर कार्य मशीनों से होता है और उस मशीनों में न जाने कितनी जिन्दगी बरबाद हो जाती हैं। कोई तो मृत्यु तक प्राप्त हो जाता है, कोई अंगहीन हो जाता हैं। बिमारियाँ भी इतनी भयंकर है कि पता चलता है उससे पहले वह मनुष्य का जीवन चौपट कर देती हैं। ज्यादातर निःशक्त होने की यही वजह है तो फिर भी अंगहीन मनुष्य के प्रति सहानुभूति न होकर उसी को अपराध की दृष्टि से देखा जाता हैं। साहित्य की लघुकथा भी इस समस्या के प्रति अपना दायित्व अदा कर रही है। लघुकथा के माध्यम से इस समस्या को हर मनुष्य तक भेज कर इसे जड़ से खत्म करना हैं। ताकि कोई दिव्यांग व्यक्ति अपने को हीन न समझे और देश की प्रगति में अपना योगदान दें सकें।

(2) समकालीन हिन्दी लघुकथा और निःशक्तजन अनुशीलन

लघुकथा हिन्दी गद्य के कथा–कुल की उतनी ही पुरानी विद्या है जितना अन्य विधाएँ समय व परिस्थितियों के अनुसार रूप बदलता रहा हैं। प्राचीनकाल से अब तक विभिन्न भाषाएँ व शैलियों

में लघुकथाएँ लिखी जा रही हैं। किसी घटना या बात को सीमित शब्दों में सहजभाव से समझा पाने में सफल रचना लघुकथा हैं।

समकालीन लघुकथा मूलरूप से इससे अलग रखकर परिभाषित नहीं हो सकती, समकालीन लघुकथा का ये बीज सूत्र हैं। कथानक के आधार पर अवश्य हम इन्हें पूर्ववर्ती एवं समकालीन लघुकथा की श्रेणी में रख सकते है। पूर्ववर्ती कथाओं में कथानक काल्पनिक होते थे एवं बोधात्मक उद्देश्य होता था। जबकि समकालीन लघुकथा में समसामयिक घटना का प्रस्तुतीकरण, चिन्तनशील अन्त साथ रखता हैं। वैसे देखा जाए तो कथा साहित्य भारत में लगभग एक साथ ही उन्नीसवीं शताब्दी के छठे दशक में शुरु हुआ लेकिन इसकी नींव आठवें दशक में दृढ़ हो गयी थी। 'भारतेन्दु युग' से ही गद्य साहित्य का काल माना गया हैं। इस गद्य से ही गद्य की अन्य विद्याओं के साथ–साथ हिन्दी लघुकथा लिखी, जबकि वे व्यंग्य पुट लिये हुए थी।

हर रचना, घटनाक्रम और समय चक्र के अनुरूप ही रची जाती है, जब लघुकथा भी संवरकर सातवें दशक में पहुँची तो काफी बदलाव आने लगा। उस समय देश गुलामी की मानसिकता से निकलकर स्वतंत्र महसूस करने लगा था। इस आजादी ने आमजन को अपने आप में आजाद जीव बने रहने की महत्त्वता बताई, जिससे स्वतंत्र मनुष्य के दिमाक में दोगले विचार पनपने लगें। मानसिकता बदलने लगी, सोच त्यागमयी भावना से परे स्वार्थ व भोगवादी हो गई। जिससे एक नया वातावरण बनता गया भाई–भतीजावाद, स्वार्थी नेतृत्व, ईर्ष्यालुपन, दोहरा चरित्र जैसे नये संस्कारों ने जन्म लें लिया। इस बदले माहौल, विसंगति भरे संस्कार व घटना क्रमों के प्रस्तुतीकरण में समकालीन लघुकथा का जन्म हुआ।

इसी बदलाव में समाज के बदले दृष्टिकोण को दिखाया गया हैं। साहित्य में समाज की हर समस्या पर नजर रखी जाती हैं। यही नजर आज हमारे साहित्य की दिव्यांग जन पर है। जो सदियों से परिवार व समाज के ताने सुनते आ रहा है। साहित्य की हर विद्या सभी समस्याओं को केन्द्र बिन्दु बनाती हैं। इसी परम्परा के अनुसार हिन्दी साहित्य में कहानी, उपन्यास के बाद लघुकथा भी निःशक्तजन की समस्या को चित्रित कर रही हैं। समकालीन लघुकथाओं में इन लोगों का यथार्थ चित्रण हो रहा हैं। समकालीन लघुकथाओं में सर्वप्रथम दिव्यांग वर्ग पर केन्द्रित डॉ. अमरनाथ चौधरी 'अब्ज' के सम्पादकत्व में प्रकाशित उनत्तालिस लघुकथाओं का संकलन सन् 2008 में प्रकाश में आया, जिसमें स्वयं अमरनाथ जी की सात लघुकथाएँ संकलित थी। इस दिशा में दूसरा प्रयास सन् 2012 में 'राजकुमार निजात' के एकल संग्रह 'उमंग', 'उड़ान और परिन्दे' में देखने को मिला जिसमें प्रथम बीस लघुकथाएँ निःशक्तजन पर केन्द्रित हैं। इन लघुकथाओं पर स्वयं

'राजकुमार निजात' अपने लेखकीय में लिखते हैं, इस संग्रह की एक लघुकथा 'तांडव' शीर्षक से है जिसमें निःशक्तजन अपने हक के लिए अपनी मांगों के समर्थन में और स्वयं के लिए न्याय हेतु प्रदर्शन किया। उनके साहस के सामने लेखक स्वयं को अपाहिज मानने लगा। उन्होंने अपने लघुकथा संग्रह में बीस लघुकथाएँ दिव्यांग वर्ग पर ही की हैं। 'तांडव' लघुकथा का पात्र हाथों के बल नृत्य करते हुए सचमुच ही प्रचण्ड हो उठा। लेखक उनके हौंसलों को प्रणाम करता हैं। यही कहते हैं कि यदि कोई व्यक्ति जीवन में कुछ करना चाहता हैं। तो वह अपने दृढ़ निश्चय व इच्छाशक्ति के द्वारा कर सकता हैं। जिनकों जिन्दगी पशु की तरह ढ़ोनी है वो सकलांग होकर भी कुछ नहीं करते।

इस दिशा में नए लघुकथाकार लेखन कार्य कर रहे हैं। हिन्दी साहित्य में लघुकथाकारों ने निःशक्तजन को याचक और असहाय नहीं दर्शाया हैं। वे उनके हौंसलों की तारीफ करते हैं।

समकालीन लघुकथाओं में चित्रित निःशक्तजन निम्न लघुकथाओं के माध्यम से प्रस्तुत है– प्रसिद्ध लघुकथाकार 'रत्नकुमार सांभरिया' ने अपनी पुस्तक 'प्रतिनिधि लघुकथा शतक' में दिव्यांग जन को केन्द्र में रखकर निम्न लघुकथाओं की रचना की है– 'आटे की पुड़िया' लघुकथा में एक मजदूरिन का वर्णन हैं। जिसका पति पैर से अपंग हैं। उम्र से जवान एक मजदूरिन जिसका डेढ़ साल का बेटा कुपोषण का शिकार हैं। भूख के मारे बच्चा माँ के स्तन काटता हैं। माँ स्वयं भूखी हैं। दूध कहाँ से उतरे? मजदूरिन के पेट में भूख है। उसके बच्चें के पेट में भूख हैं। चार महीने पहले दीवार तोड़ते समय पाँव तुड़ा बैठे उसके पति को भूख हैं। भूख बड़ी दुनिया छोटी। उसके पास मात्र पाँच रूपये हैं, वह आटा खरीदे या......? कमाने वाला स्वयं अपाहिज हो गया है, परिवार का पेट कौन पाले, वह पाँच रुपये का आटा लेने दुकान पर जाती हैं। दुकानदार उसे धमकी देता है– "पाँच रूपये का क्या आटा आयेगा? थोड़ा सा आटा पुड़िया में लेकर वह अपनी झोंपड़ी की ओर चली जाती है"।[3]

पात्रता

पात्रता लघुकथा एक ऐसे निःशक्त पात्रों की है जिसके कपड़े चिथड़े–चिथड़े हो रखे है। पूरे शरीर पर मैल की परत जमी हुई है। बायाँ हाथ पोलियों से सूखा हुआ है। दायें पैर में गहरा घाव है। वह सर्दी के मारे हिल रहा था, जैसे हवा में पत्ता हिल रहा हो। उसके होंठ तनिक तिरछे थे। मानों दिनभर भीख मांगते उनका बिसूरना ठहर गया हो। उसने बस स्टैण्ड पर बैठे युवक की ओर दायाँ हाथ फैलाकर कहा हैं।

बाबूजी भूखा हूँ, दो दिन से, चाय पी लूंगा, सिर्फ एक रूपया दें दो।

भिखारी को देखकर वह यात्री दयार्द्र हो गया, उसने रूपये देने के लिए जेब में हाथ डाला था, एक बाल भिखारिन उसके सामने और खड़ी हुई थी। उसके दोनों हाथ कटे हुये थे, एक आँख भी नहीं थी और बदन पर नाम मात्र के कपड़े थे। वह गलें में डिब्बा लटकाकर उसी में भीख मांगती थी।

भिखारिन के सामने उस युवक को पहले वाले भिखारी की पात्रता कमजोर दिखाई दी। उसके गले में लटके डिब्बें में एक रूपया वह डालने ही वाला था कि सामने एक और भिखारी उसकी ओर बढ़ता दिखाई दिया। उसने घुटनों तक कटे हुए अपने दोनों पांवों में चमड़े के बन्ध पहने हुए थे। दायाँ हाथ टूटी टहनी की तरह लटक रहा था और बाऐं हाथ का अगूँठा कटा हुआ था। वह एक हाथ से घिसटता–घिसटता उसके पैरों में आकर बैठ गया था। उसकी याचना आँखों की राह उसके जूतों पर गिर रही थी, टप–टप–टप। उसकी दीनता देख युवक की संवेदनाएँ तिल–मिला उठी।

उसकी और फैलें भिखारी के हाथ में वह रूपया रखने ही वाला था कि आहट हुई। एक भिखारी अपने बूढ़े और सूखे हाथों से भिखारिन को खींचता हुआ उसके पास आकर खड़ा हो गया था। फटी सी नेकर और पेबन्द लगी बनियान में वह सर्दी से जूझ रहा था। उसने बैठकी छोड़ दी थी और उसकी ओर हाथ फैलाकर गिड़गिड़ाने लगा था– 'बाबूजी हम दोनों ने जाने कब खाना खाया था, पैसे दें दो चाय पी लेगें।' वह उसे बिल्कुल भी पसीजता नजर नहीं आया, तो उसने भिखारिन के मुँह से पल्लू हटा दिया था। कोढ़ से उसका चेहरा गल रहा था, होंठ लटककर नीचे आ गये थे और आँखों ने देखना बंद कर दिया था। भिखारिन को देखकर वह जितना घिनाया था, उससे कहीं ज्यादा उसका अन्तर्मन आहत हो गया था। उसने एक बार फिर उन चारों भिखारियों की ओर दिखा। हाथ के रूपये जेब में वापस पटकते हुए वह सोचने लगा, पात्रता की वरीयता में इनसे भी दीन–हीन आ जाये और ये लोग उस बेचारे का हक मार लें जाऐगें।

'रत्न कुमार सांभरियाँ' ने अपनी लघुकथाओं में अंगहीन पात्रों का चित्रण किया हैं। उनकी एक और लघुकथा 'पुण्य' हैं। इस लघुकथा में पाँच साल का बच्चा तुतलाकर बोलता हैं। उसकी माँ उसके लिए दूध लाती है उसमें चींटियाँ होती है। वह तीरी–तीरी कहता है। पिता दूध में चींटियाँ देखकर माँ को डाँटता हैं। उसे दूध को बाहर नाली में फैंकने के लिए भेजता हैं तभी एक अंधी भिखारिन आती दिखाई देती हैं। उसका पिता उसे दूध देकर 'पुण्य' करना चाहता हैं। इनकी दूसरी लघुकथा 'बांझ' में 'राममेख' की पत्नी वन्नू को बच्चें नहीं हुए तो राममेख वह बच्चें के लिए दूसरी

शादी करता है। उससे राममेख पिता बन जाता हैं। अब वह वन्नू को ताने सुनाता हैं। "वन्नू हो गया न तुम्हारा वहम् दूर कि मेरे आदमी में कमी हैं। अगर मैं तेरी बातों पर रहता, कैसे चलती मेरी वंशबेल?"[4] अब वन्नू का जीना हराम कर देता हैं। वह खाने की थाली को छोड़कर साड़ी का पल्लू मुँह में ठूँसकर रोती रहती हैं। अपने मन ही मन में कहती है काश! वह भी उसकी नई पत्नी की तरह उसके दोस्तों से होती तो यह दिन नहीं देखना पड़ता।

डॉ. सतीश दुबे की लघुकथा 'एक और गांधारी' में मुख्य नायक आँखों से निःशक्त हैं। इस लघुकथा में पत्नी अपने पति के अंधा होने पर घर में मनमानी करती है। जिससे उसका पति कहता भी है कि मैं देख रहा हूँ तुम कितनी मनमानी करती हो। पति–पत्नी दोनों का झगड़ा होता रहता हैं। 'प्रताप सिंह सोढ़ी' की रचना 'वसीयत' रामकुवार घोटड़ द्वारा रचित 'भारतीय हिन्दी लघुकथाऐं' में संकलित हैं। घर के बाहर स्ट्रीट के शहरवासियों की भीड़ बढ़ती जा रही थी। लोगों के समझ में नहीं आ रहा था, सात्विक जीवन जीने वाली सेल्वा ने आत्महत्या क्यों की? कारण जो भी रहे हो पर यह जघन्य कार्य करने से पूर्व उसने युवावस्था की दहलीज पर खड़ी अपनी जन्मांध–बेटी के भविष्य का ख्याल तो रखना था, देखों बेचारी विलाप करते हुए अपनी अंधी–आँखों से कैसे आँसू बहाएँ जा रही हैं।

जितने मुँह उतनी बातें माहौल में, तहकीकात के लिए आई पुलिस के डण्डों और जूतों की आवाज से एकदम जिज्ञासा भरी मुर्दनी छा गई। रिश्तेदारों और परिचितों से बयान के बाद हुई खोजबीन में पुलिस को सेल्वा की ही हस्तलिपि में एक पत्र मिला जिसमें लिखा था– बहुत इच्छा थी कि, मेरी बेटी की आँखों में ज्योति आ जाए ताकि वह संसार देख सके मैंने अपनी क्षमता से अधिक इस हेतु प्रयास भी किये किन्तु विशेषज्ञों का कहना रहा कि दान में प्राप्त–इंसानी आँखों के प्रत्यारोपण से ही दृष्टि संभव है। इस कोशिश में असफल रहने पर, अपनी आँखों की वसीयत बेटी इल्वा के नाम कर मैं अपना जीवन प्रभु को सौंप रही हूँ।

'कंधे पर बैठा आदमी', 'डॉ. सुरेन्द्र मंथन' की लघुकथा 'रामकुवार घोटड़' की भारतीय हिन्दी लघुकथाएँ में संकलित हैं। जिसमें लंगड़ा भिखारी हैं। दुर्घटना में उसकी एक टांग जाती रही। हाथ में भिक्षा पात्र लेकर वह दिनभर सड़क किनारे बैठा, राहगीरों से दया की भीख माँगता रहता। एक दिन उसने सड़क के दूसरे किनारे एक अंधे को भीख माँगते देखा। अंधे के गले में गजब का जादू था। एक दिन लंगड़े ने अंधे के सम्मुख प्रस्ताव रखा, हम यहाँ दिनभर निठ्ठले बैठे रहते हैं। न तुम ही आ–जा पाते हो, न मैं। ऐसा करते हैं, मैं तुम्हारे कंधे पर चढ़कर तुम्हें रास्ता दिखाता जाऊँगा। घूम–फिर कर हम ज्यादा कमा लेंगे।

अंधे ने स्वीकृति सूचक सिर हिला दिया। सहानुभूति और प्रतिमा के संगम ने लोगों का बहाव उनकी और खींच दिया। कुछ ही दिनों में लंगड़ा मलाई–रबड़ी खाकर मोटा–ताजा हो गया। अंधे के गालों की हड्डियाँ उभर आयी लंगड़े का बोझा ढ़ोते–ढ़ोते उसके गाने का अभ्यास भी छूट गया था। एक दिन पसीने से बेहाल अंधे ने पूछा 'भाई इतने दिनों का साथ हुआ। अपना नाम बताओ?'

'इण्डिया'। लंगड़े ने कहा 'और तुम्हारा'?

'भारत'।

इस लघुकथा के माध्यम से हमारे देश की स्वार्थी भावना झलकती हैं।

धर्मपाल साहिब की लघुकथा 'पहचान' में एक बुजुर्ग पात्र जो मानसिक रूप से निःशक्त होने के कारण घर से निकल जाता हैं। बहू–बेटा अपनी परेशानी से पीछा छुटा मानकर खुश हो जाते हैं। एक दिन किसी भद्रपुरुष को वे पार्क में बेहोश पड़े मिलते हैं। जेब में रखे पते पर उसके घर पहुँचाता हैं। तो बहू–बेटा उसे अपनाने से इन्कार कर देते हैं कहते हैं हमने तो इसे आज पहली बार देखा हैं। लेकिन भद्रपुरुष कहता है जेब में पता तो यही था। तब तक बहू टोमी को खोल देती है और वह भौंक–भौंक कर उन पर टूट पड़ता हैं। वे किसी तरह अपनी जान बचाते हैं फिर वह रिक्शा में पड़े अपने मालिक के पैर चाटता रहता हैं। यह देखकर वर्तमान युवा–पीढ़ी की अपने के प्रति लापरवाही झलकती हैं। कि एक कुत्ता भी अपने स्वामी के प्रति वफादारी दिखाता हैं परन्तु स्वयं के बेटे–बहू उसे भूल जाते हैं।

'डॉ. आशा पुष्प' की लघुकथा 'जिजीविषा' रत्नकुमार सांभरिया के लघुकथाशतक में संकलित हैं। इसमें लेखिका एक आँखों देखी कहानी को बयां करती हैं। "पिंक सिटी से लौटते हुए डिब्बे में अचानक मेरे सामने मूँगफली वाला खड़ा हुआ और जोर–जोर से आवाजें लगाने लगा। पर आश्चर्य! वह नितान्त अंधा था। मेरी उत्सुकता जगी, वह कैसे थैले से मूँगफली, तौल पाता हैं? न खरीदना चाहते हुए भी मैंने अपनी जिज्ञासा समाधान के लिए उससे मूँगफली खरीदी। मेरी खुशी का ठिकाना न रहा जब उसने एक खाली डिब्बे से नापकर मूँगफली तौल दी। मेरे पूछने पर बताया कि विभिन्न बताया कि नाप के डिब्बे है उसके पास। जिनसे वह सही तौलकर मूँगफली दें सकता हैं। टटोलकर सिक्के पहचान कर मूँगफली की कीमत लेता हैं। इसी तरह बचे सिक्के वापस देता, विनम्रता से यात्रियों को सलाम बजाता और आगे बढ़ चला वह। उसकी महकती मुस्कराहट मानों मुझसे कह गई, जीने के अपने–अपने आयाम होते हैं बहन जी, जीने की चाह तो हो।"[5]

डॉ. आशा पुष्प' 'हक' लघुकथा में एक निःशक्त पात्र ट्रेन में झाडू से सफाई करता हैं। वह पैरों से लाचार हैं। पूरे डिब्बे की सफाई करने पर वह यात्रियों से अपनी मेहनत मजदूरी माँगता हैं। दो–चार लोगों ने पैसे दिये, कुछ लोगों ने पैसे नहीं दिये तो बोला साहब यह मेरा अधिकार हैं। मैंने इतना कीचड़ साफ किया हैं। एक यात्री कहता है, अबे चल फुट। तो वह कहता है मेरी मेहनत की कमाई माँग रहा हूँ। एक कहता है तुमने क्या हमसे पूछकर साफ किया था। वह भी जोश में कहता है गाड़ी तेरे बाप की नहीं है इसमें गंदगी फैलाने का तुम्हें कोई हक नहीं हैं। अगली बेंच पर बैठा एक व्यक्ति ने कहा, "क्यों नहीं दोगें उसकी मजदूरी? क्यों नहीं दोगें उसकी मजदूरी?"[6] फिर सभी उसके पक्ष में बोलते हैं। उस दिव्यांग पात्र के लिए लोगों की यह आवाज रक्षा कवच बन जाती हैं।

डॉ. अमरनाथ चौधरी 'अब्ज' की लघुकथा 'स्वाभिमान' में जो पात्र है उसके दोनों पैर कटे हुए। निजी संस्थान में वह नौकरी करता है इसलिए मालिक उसे धौंस देता है कि हमने नौकरी पर रखा हैं। वह निःशक्त भी स्वाभिमानी है। उलटा उसे सुनाता हैं। मैं सशक्तों से ज्यादा कार्य करता हूँ। उनके दो साल के कार्य पर मेरा छह महीनें का कार्य भारी हैं। चौबीसों घंटे सेवा देता हूँ। पैरों से निःशक्त हूँ, दिमाक से नहीं। श्रम बेचता हूँ, स्वाभिमान नहीं। इस लघुकथा से स्पष्ट होता हैं। कि निजी संस्थाओं में आम जनता का कितना शोषण होता है और दिव्यांग को भी मसलने से नहीं चूकतें।

इस लघुकथा में ये स्पष्ट हुआ है कि–एक तो निजी संस्थाओं में किस प्रकार निःशक्तजनों का शोषण होता है और उन्हें उनके अंगहीन होने का एहसास करवाकर प्रताड़ित भी किया जाता हैं। दूसरी बात ये है कि अंगहीन व्यक्ति अपनी अपंगता के बावजूद भी अपने कार्यों में दक्ष होते हैं, वे अपने आत्म सम्मान को बनाये रखने के लिए कठोर परिश्रम भी करते हैं।

लघुकथा 'स्वाभिमान', 'डॉ. सतीशराज पुष्पकरण' की है, जिसमें एक दिव्यांग खीरा बेचने वाले के स्वाभिमान को चित्रित किया गया हैं। यहाँ खीरा बेचने वाले का संवाद दृष्टिगत है– "मुझे सहानुभूति का नहीं, श्रम और ईमान का पैसा चाहिए। खीरा खराब निकला, यह जिम्मेदारी मेरी है, दुबारा पैसा नहीं लूँगा।"[7] यहीं इस लघुकथा में दर्शाया गया है कि जिसके पास इच्छा शक्ति एवम् आत्मबल तथा विश्वास है, वह सफल होता ही हैं।

इसी प्रकार 'साहसिक कदम', 'डॉ. मिथिलेश कुमारी मिश्र' की लघुकथा में नायिका कथा–नायक से, उसके अंधे होने के बावजूद शादी करने हेतु तैयार हो जाती है, कारण वह विद्वान हैं। इस लघुकथा में नायिका का संवाद हैं– "मुझे विश्वास है कि मैं उनके साथ सुखी रहूंगी। मैं उनकी आंखों की रोशनी बनूंगी।"[8]

इसी प्रकार 'डॉ. रामकुवार घोटड़' की लघुकथा 'अपंग मसीहा' में नायक स्वयं पैरों से अपाहिज है परन्तु एक बच्चें को बस के कुचले जाने से बचा लेता हैं। यहाँ एक अपंग व्यक्ति का त्याग स्पष्ट रूप से दिखाई दें रहा है जो अपने प्राणों की परवाह किये बिना उस बच्चें के प्राण बचा लेता हैं। 'पुष्पलता कश्यप' की लघुकथा 'अंधे का स्वाभिमान' में सड़क पार करने में एक अंधा, सहारा देने वाले का सहारा लेने से इन्कार करते हुए कहता है, "धन्यवाद! मुझे हमदर्दी नहीं, स्वाभिमान से जीवन जीने हेतु सामाजिक स्वीकृति चाहिए।"[9]

'अपाहिज' लघुकथा 'प्रद्युम्न भल्ला' की है जिसमें कथा का पात्र टांगों से लाचार है, उसे एक व्यक्ति पचास रूपये देकर उसके प्रति अपनी सहानुभूति जताना चाहता हैं, किन्तु नायक इसके उत्तर में कहता है– "बाबू जी! कुदरत ने तो केवल मेरी टांगे छीनी हैं। लेकिन आप तो मेरे हाथ भी काट रहे हैं।"[10] 'शैलेशदत्त मिश्र' की लघुकथा 'आरक्षण' में निःशक्तजनों को दिए गए आरक्षण में व्याप्त भ्रष्टाचार की पोल बहुत ही सुन्दर ढंग से खोल देती हैं। इस लघुकथा का पात्र गणेश पैरों से अपाहिज होने पर भी तथा शैक्षणिक प्रमाण–पत्र होने के बावजूद सकलांगों को नौकरी मिल जाती है। परन्तु सिफारिश एवम् घूस न देने के कारण इस दिव्यांग जन को नौकरी नहीं मिल पाती, जिससे उसकी माँ कोसती हैं। तो वह अपनी माँ को कहता है, माँ! तुम तो सरकार पर बेकार ही नाराज हो रही हों। सरकार निःशक्तों को प्राथमिकता तो देती हैं। हाँ! ये बात अलग है कि प्राथमिकता शारीरिक दिव्यांग को नहीं, केवल नैतिक निःशक्तों को मिल रही है। यहाँ पर देश की भ्रष्ट राजनीति का उल्लेख हुआ हैं। हमारे देश में रिश्वतखोरी की बीमारी अजगर की तरह मुँह फैलाये बैठी हैं। जो कम होने का नाम नहीं ले रही हैं।

'राजेन्द्र मोहन त्रिवेदी', 'बंधु' की लघुकथा 'स्वाभिमान' में दो पात्र निःशक्त है– एक अंधा और दूसरा लंगड़ा हैं। अंधा मूँगफली बेचकर गुजारा करता है तो लंगड़ा भीख माँगकर। अंधा लंगड़े से कहता है, तुम भीख माँग रहे हों ? तुम में जरा भी स्वाभिमान बाकी नहीं हैं। भगवान ने तुम्हें आँखें दी है, तुम तो बहुत कुछ अच्छा कर सकते हो जब लंगड़ा उससे जानना चाहता है कि कैसे? इस पर अंधा उत्तर देता है, "यदि तुम्हारी आत्मा कहे तो मेरे धंधे में भागीदारी बन जाओ। हम दोनों मिलकर कई चीजें बेचा करेंगे।"[11] लंगड़ा भीख माँगना छोड़कर अंधे के धंधे में ईमानदारी से शामिल हो जाता हैं।

माधव नागदा की लघुकथा 'विकलांग' में पैरों से निःशक्त भिखारी दुकान में बैठें सेठ से भीख माँगने जाता हैं। सेठ कहता है भीख माँगने की बजाय कोई काम क्यों नहीं करते। भिखारी अपने आपको अपमानित महसूस करता हुआ कहता है, "सेठातू भाग्यशाली है। पहले जन्म में तूने

अच्छे कर्म किये हैं, खोटे करम तो मेरे हैं। जन्म लेते ही भगवान ने एक टाँग न ली होती तो मैं भी आज तेरी तरह कुर्सी पर बैठा होता।"[12]

सेठ ने उसके लिए गुल्लक से पैसें निकाल कर रख दिये। परन्तु जैसे ही वह पैसे लेने आगे बढ़ा तो अचानक उसने अपना हाथ वापिस खींच लिया। उसने देखा कि कुर्सी पर राज करने वाले की दोनों टाँगें घूटनों तक गायब थी। यह देखकर वह शर्मिंदा हो गया। उसके अन्दर अब आत्म विश्वास पैदा हो गया।

प्रसिद्ध लघुकथाकार मद्युकांत की लघुकथा नामक पुस्तक 'हौंसला' में कुछ लघुकथाएँ निःशक्तजन पर केन्द्रित हैं। उन्होंने शारीरिक रूप से दिव्यांग जीवन जीने वाले व्यक्ति के संघर्ष, जिजीविषा व सकारात्मक सोच को बढ़ावा दिया हैं। उन्होंने समाज में निःशक्त मानसिकता वाले उन लोगों की भावनाओं को भी वाणी दी हैं ? जो शारीरिक रूप से दिव्यांग लोगों को कम समझते हैं और उनके प्रति उपेक्षा या घृणा का भाव रखते हैं। इसी प्रकार उन्होंने अपनी 'हौंसला' पुस्तक में कुछ लघुकथाओं में दिव्यांग जन से रूबरू करवाया हैं। 'निःशक्त की जीत' लघुकथा में कबड्डी की खिलाड़ी कमला अपना एक हाथ गंवाने के बाद भी अपनी मजबूत पकड़ से किसी को आगे नहीं आने देती हैं। पत्रकार की बात का उत्तर देते हुए वह कहती है, "हार और जीत शरीर से नहीं, हौंसले से होती हैं।"[13] 'सूरदास' लघुकथा शारीरिक रूप से विवश व्यक्तियों के प्रति एहसास जगाने वाली रचना है। दोनों आंखें बांधकर खेलता हुआ राहुल चबूतरे से गिर जाता है तो माँ के द्वारा पूछने पर वह कहता है, "मैंने तो थोड़ी देर के लिए आँखें बांधी थी तो ये हाल हो गया और वह हमारा पड़ोसी सूरदास........उसका जीवन कैसे चलता होगा?"[14] ऐसा ही एहसास 'बदलाव' लघुकथा में उभारा गया हैं। कल्लू दादा बच्चों को पकड़, उन्हें अपंग करवाकर भीख मंगवाता है, किन्तु जब उसका अपना बच्चा अपंग पैदा होता है तो उसकी सोच बदल जाती है– मुझे मेरे पाप की सजा मिल गई है। कब से मैं अपने बच्चों के लिए तरस रहा था। भगवान ने दिया तो भी अपंग......। कल से कोई बच्चा भीख नहीं माँगेगा, छोड़ दो सबको।

'समर्थ' लघुकथा का पात्र उदय नई सोच के उदय की जरुरत का एहसास कराता हैं। अपंग होकर भी वह सामान्य श्रेणी से ही नियुक्त होना चाहता है, क्योंकि उसमें ऐसी सामर्थ्य है। अधिकारी के पूछने पर उदय कहता है, सर, मेरा तो काम चल जाएगा। इस निःशक्त आरक्षित सीट का लाभ मेरे किसी भाई को मिल जाए तो ज्यादा अच्छा रहेगा। 'उपकार' लघुकथा बताती है कि जिसे समाज अपंग कहता है, वह संकट में दूसरों के काम आता हैं? जिस माधों को भीख माँगने के कारण एक औरत भला–बुरा कहती है, वही माधों उसके पोते को भीड़ के रेले में दबने से बचाता

है, लेकिन स्वयं उसमें दब जाता हैं। अब वही औरत कहती है– भिखारी तो हम है, वह तो हमारा भगवान हैं। मैं ही अंधी हो गयी उसको पहचान न सकीं। अब वह स्वयं पश्चात्ताप कर रही हैं। हम सकलांग होकर भी दिव्यांग हैं।

'तालियां' लघुकथा में अपंग व्यक्ति का साहस और समाज की शबाशी–दोनों का संयोग हो जाए तो अपंगता दूर भी हो सकती हैं। इस लघुकथा में नृत्यांगना कामनी एक पांव से नृत्य करके भी प्रथम स्थान प्राप्त करती हैं। इसके बाद लोगों की तालियों से उसमें इतना उत्साह व उमंग जागती है कि उसका दूसरा पांव भी जमीन पर जमने लगता हैं। 'सहयोग' लघुकथा समाज को स्पष्ट संदेश देती हैं कि यदि एक अपंग व्यक्ति अपनी अपगंता को नजरअदांज कर समाज के काम आता है तो समाज को भी उनके हित के बारे में सोचना चाहिए। 'राजी' नामक औरत की डिलीवरी के दौरान उसकी चौदह वर्षीया निःशक्त लड़की मजदूरी–कानून को धता बताकर डॉ. अंजना के घर पर काम संभालती है। डॉ. अंजना भी उसे अपनी पढ़ाई चालू करने की शर्त रख देती हैं। 'अनहोनी' लघुकथा समाज द्वारा दिव्यांग लोग ही नहीं, अपंग रिश्तेदारों के प्रति भी संवेदनशीलता रखने वाली मानसिकता पर प्रहार करती हैं। भाई की मृत्यु के बाद दयाशंकर उसकी अनाथ–अपंग लड़की धीरा को घर लें आता हैं। उसकी पत्नी रीना को धीरा की ओर से हर समय अनहोनी ही आशंका बनी रहती है, किन्तु अपंग धीरा ही चोरों को रोकते हुए अपनी जान पर खेलकर भी उसके गहने आदि चोरी होने से बचा लेती है, हालांकि बिखरा सामान देखकर रीना को धीरा पर ही चोरी का संदेह हुआ था।

'टुंडा छोकरा' लघुकथा भी इसी मानसिकता को उजागर करती हैं। एक भीख माँगने वाला अपाहिज छोकरा ही एक मेमसाहब का पर्स गिर जाने पर वापिस कर देता है, जिसे वह जेब कतरा समझ रही थी। लेखक अंत में उस अपंग लड़के का स्वाभिमान दिखाकर मानों मेमसाहब जैसे लोगों की मानसिकता पर चोट करता है, इनाम देने के लिए जैसे ही उसने एक नोट निकाला, परन्तु वह छोकरा गायब हो गया था।

'बैसाखियों' लघुकथा में निर्मल का दोस्त निकेतन पांवों से लाचार हैं। उसकी बैसाखियाँ बड़ा शोर करती हैं। इसलिए एक दिन निर्मल पुरानी बैसाखियों के बदले चुपके से नई बैसाखियाँ रख देता हैं। 'नेत्रदान' लघुकथा में पापा के नेत्रदान करने की इच्छा को माँ की विह्वलता देखकर बेटी पूरी नहीं कर पाती, जिसका उसे बहुत अफसोस होता है। वह माँ को पत्र लिखती है, "पाप को बचाना तो हमारे हाथ में नहीं था, परन्तु उनकी आँखों को जिंदा रख सकते थे।"[15] हर क्षेत्र में गलत कार्य होते हैं, उसी प्रकार निःशक्त लोग भी भीख के नाम पर धंधा करते हैं, इसे 'भिखारी'

नाम की लघुकथा में दर्शाया गया हैं। दो रोटी माँगते हुए भिखारी के लिए दिन में कई लोग ढाबे वाले को बीस–बीस रूपये देते हैं, पर भिखारी उनमें से पाँच–पाँच रूपये ढ़ाबे वाले को देकर शेष राशि शाम को लेकर, शराब और मीट में उड़ाता हैं।

'प्रमोद शर्मा' की लघुकथा 'मन के जीते जीत' यह लघुकथा बहुत ही सहज, सरल एवं हृदयग्राही है। यह आत्मकथा नहीं है, न ही आत्मकथा शैली में लिखी गई हैं। परन्तु लगती है आत्मकथा जैसे ही– गोकुल, एक अच्छा तैराक है किन्तु दुर्घटना में उसका एक पैर मगर निगल जाता हैं। वह अपंग हो जाता हैं। अब वह लाठी के सहारे चलता हैं। वह पढ़ा–लिखा है, समझदार है, स्वाभिमानी है किन्तु जब भी वह नौकरी के लिए जाता है, तब लोग उसे अपाहिज कोटे में नौकरी देना चाहते हैं। किन्तु वह स्वीकार नहीं करता। अचानक एक ऐसा प्रसंग आता है कि नदी में डूबते हुए एक बच्चें को, गोकुल बचा लेता हैं। बच्चें के पिता उसे पुरस्कार स्वरूप दो सौ रूपये देते हैं, जिसे गोकुल मंदिर में चढ़ा देता हैं। कुछ दिनों बाद उसे जल आधारित पर्यटन–स्थल पर तट रक्षक की नौकरी मिल जाती हैं। जब वह मुख्यालय पहुँचकर अपने अधिकारी से मिलता है तब वह दंग रह जाता हैं। यह तो वही सज्जन है, जिनके बच्चें को गोकुल ने डूबने से बचाया था। वे पर्यटन विभाग के सचिव थे। उन्होंने गोकुल से कहा– "देखो! मैंने तुम्हारे बारे में सब कुछ जान लिया हैं। तुम अपनी योग्यता के बल पर नौकरी चाहते थे न! तुम्हें यह नौकरी तुम्हारी तैराकी की योग्यता के कारण मिल रही है। तुम इसे स्वीकार करो।"[16]

रवि श्रीवास्तव की दूसरी 'लघुकथा', 'ट्रायसिकल' है जो विश्व के सबसे बड़े गणतंत्र के मंत्रियों की पोल खोल रही है। स्थानीय मंत्री ने व्यक्तिगत रूचि लेकर सत्ताईस जरुरतमंदों को ट्रायसिकल बाँटने का कार्य सम्पन्न किया। पार्टी का प्रचार–प्रसार हुआ। वोटों की राजनीति को ध्यान में रखा गया। आम चुनाव में अभी एक वर्ष बाकी है लेकिन समय जाते क्या देर लगती हैं। लोक लुभावन कार्यों की शुरुआत हुई।

जरुरतमंदों की वर्षों से लम्बित इच्छा पूरी हुई। मुरझाए चेहरों पर खुशियों की लहरें दिखी। वे ट्रायसिकल को छू–छूकर देख रहें थे। सपना साकार हो रहा था। ट्रायसिकल के साथ अभी तीन माह ठीक से नहीं बीत पाए। बिगड़ने की खबर आने लगी, किसी का रिम टेढ़ा हुआ, किसी की सीट परेशान करने लगी, चेन का गिरना आम बात हो गई, फ्रिविल साथ छोड़ने लगा। ब्रेक जवाब देने लगे। दुनिया की सारी मुसीबतें ट्रायसिकल पर सवार।

मंत्री जी स्वयं निःशक्त है। उन्होंने इस वर्ग को मिलने वाली अनेक सुविधाओं को प्राप्त किया था। जब अपने हाथों देने का समय आया तो घटिया सायकिल खरीदी। बिरादरी के साथ

छल करने में शर्म नहीं आई। कमीशन खोरी में धन कमाया। आक्रोशित जनमत मंत्री जी के बंगले को घेरकर खड़ा हैं नारे लगाते हुए मंत्री से इस्तीफे की माँग कर रहे हैं। रवि श्रीवास्तव में जनता को जागते रहने और अन्याय के विरोध में खड़े होने का जो मंत्र दिया है, देश को आज उसकी सबसे ज्यादा जरुरत हैं।

लघुकथा 'कोंदी' 12 जुलाई 2010 को देशबंधु के 'मड़ई' में प्रकाशित इस लघुकथा की नायिका गूंगी हैं। वह अपनी बेटी का परिचय सरगम से करवाती है और उसकी बेटी प्रसिद्ध गायिका बन जाती हैं। लेखिका ने भारत सरकार का सर्वशिक्षा अभियान का एक विज्ञापन देखा था, जिसमें माँ अपनी बेटी को किताब खोलकर देती है और कहती है– 'पढ़ो' बच्ची किताब देखकर कहती है– माँ! तुमने तो पुस्तक उल्टी रख दी हैं। माँ डबड़बायी आँखों से बच्ची को सचेत करती हुई कहती है– 'इसलिए तुमसे कहती हूँ कि 'पढ़ो' ताकि तुम अपनी बेटी के सामने पुस्तक सीधी रख सकों।

बेटी को सम्मान मिलने पर माँ की प्रसन्नता और बहुत बड़ी खुशी को पाने पर असहज हो जाने की स्वाभाविकता को कथाकार ने खूब निभाया है 'कोंदी' बहुत लोगों की प्रेरणा बनेगी, ऐसा लेखिका का विश्वास हैं।

'दानेश्वर शर्मा' की लघुकथा दैनिक भास्कर लघुकथा 9.1.94 में प्रकाशित हैं। जिसमें लघुकथाकार ने दो पात्रों का वर्णन किया हैं। एक वह है जो अपने–आपको तीर्थ यात्री कहता है, वह निःशक्त नहीं है, किन्तु याचना करता हुआ दिखाई देता हैं। दूसरा पात्र निःशक्त हैं। वह अपनी सुविधा को ताक में रखकर दूसरों पर अपना सब कुछ त्याग करता हैं। ऐसे पात्र 'त्याग के साथ उपभोग करना चाहिए' के आदर्श के साथ अपना जीवन जीते हैं। यह कथा इसी आदर्श को चित्रित करती है– जिसका शीर्षक– 'वह लड़का अपाहिज था या तीर्थ यात्री' नई–दिल्ली में संसद भवन के करीब 'गुरुद्वारा रकाब गंजरोड' तथा 'ताल–कटोरा रोड़ के संगम पर एक मंदिर हैं। लेखक उन दिनों रकाबगंज रोड स्थित एक बंगले में ठहरा हुआ था। मंगलवार के दिन मंदिर गया। हनुमान जी के दर्शन तथा प्रसाद प्राप्त करने के बाद, बाहर निकला तो फुटपाथ में लगी एक पान की दुकान पर नजर गई। दुकानदार की एक साइड में तीर्थ यात्री तथा दूसरी ओर एक अपंग लड़का चौदह–पन्द्रह वर्ष का बैठा था। लड़के का नाम त्रिलोकीनाथ मिश्रा। वह उत्तरप्रदेश का रहने वाला था।

त्रिलोकीनाथ ने उत्साहित होकर बताया कि वह राष्ट्रपति से भेंट करके लौट रहा हैं। महामहिम ने उसे जूता मोजा तथा कुछ नगद राशि प्रदान की और 250 रु. मासिक प्राप्त होने का

आश्वासन दिया है। अब निःशक्त लड़का राष्ट्रपति की प्रशंसा कर रहा था। कुछ समय पर बातों का विषय बदली हुआ और तीर्थयात्री ने, पान वाले को, अपनी पिछली यात्रा का विवरण और अगली यात्रा का लक्ष्य बताते हुए उससे कुछ पैसे माँगे। पान वाले ने अपनी समस्या बताई परन्तु वह तीर्थयात्री बार–बार उस पर दबाव बना रहा था। उनकी बात सुन रहे अपंग लड़के ने उस अपरिचित तीर्थ यात्री से कहा यदि आपको पैसों की बहुत ज्यादा जरुरत है, तो मेरे पास पूरी राशि ले लीजिए। मैं उन लोगों की बातें सुन रहा था। उनकी बात सुनकर लगा कि तीर्थ यात्री को तीर्थ करना बहुत आवश्यक हैं। लेखक ने अपंग लड़के से पूछा यदि तुम पैसें इनको दें दोगें तो तुम खाना कहाँ से खाओगें/रहोगें कहाँ?।

अपाहिज लड़के ने कहा– "ईश्वर मुझे और दें देगा, अभी तो ठहरने के लिए जगह ढूँढ रहा हूँ। भगवान उसकी भी व्यवस्था कर देगा। इन्हें पैसे दें दूँगा तो गुरुद्वारे के लंगर में भोजन कर लूँगा।"[17] अपने निवास स्थान पर पहुँचकर लेखक ने सोचा 'वह लड़का अपाहिज था या तीर्थ यात्री।'

'रवि श्रीवास्तव' की लघु कथा 'अक्षर पर्व', 'अप्रैल 2010' में प्रकाशित 'नई पीढ़ी' जिसमें दो लड़कियाँ, बैसाखी के सहारे ट्रेन में किसी तरह चढ़ तो जाती है किन्तु उन्हें बैठने की जगह नहीं मिल पाती। यात्रीगण जगह देने का, बिठाने का नाटक तो करते है परन्तु बिठाता कोई नहीं है। इतने में एक छोटी बच्ची, अपनी जगह से खड़ी हो जाती है और कहती है– 'दीदी'! आप लोग इधर आ जाइये। इधर बहुत जगह है और इन्हें बिठा देती हैं। 'नई पीढ़ी' की समझदारी अच्छी लगी। यह एक आइना है, जिसमें हम सब अपनी सूरत देख सकते हैं कि हम कहाँ खड़े हैं और कहाँ खड़ा होना चाहिए।

लघुकथाकार 'संजीव तिवारी' की लघुकथा 'थप्पड़' एक ऐसे लड़के की है जो पोलियों से पीड़ित है। वह बचपन से हमेशा चाहता था कि मैं भी प्रकाश की तरह दौड़ूं, पतंग उड़ाऊँ, साइकिल चलाऊँ और क्रिकेट खेलूं, पर यह संभव नहीं था क्योंकि वह पैरों से निःशक्त था। बिना सहारे वह खड़ा भी नहीं हो सकता था। उसके माँ–बाप उसकी दशा से बेहद परेशान थे और रोते रहते थे, जब वह दूसरे बच्चों के साथ खेलने की जिद्द करता और अपनी विवशता पर रोने लगता तो उसकी माँ उसका धैर्य बंधाती और अपने दोनों हाथों से पकड़कर उझे कुछ कदम चलाती थी, तब उसे बहुत खुशी होती थी। वह सपने देखता था कि काश! वह भी और बच्चों की तरह दौड़ता, उछलकूद करता। प्रकाश उसे परेशान करता रहता था मारकर भाग जाता था। परन्तु भाग्यवश वह कभी प्रकाश को पकड़ नहीं पाया। बचपन के सपने धीरें–धीरें पूरे होते नजर आने लगे। आठवीं

कक्षा तक तो माँ उसे स्कूल में पहुँचाती और फिर हाई स्कूल में उसे तीन पहिए वाली साईकिल मिल गई। उसमें कुछ आशा जगी। प्रकाश अभी भी उसे नीचा दिखाने में पीछे नहीं हटा, किन्तु अब वह हार नहीं मानता था।

उसने बी.कॉम. किया और फिर सी.ए. करने लगा। उसकी मेहनत के साथ–साथ भगवान ने भी उसका साथ दिया और प्रथम अटैप्ट में ही सी.ए. पास कर लिया। प्रकाश अभी तक भी उसकी हंसी उड़ाता रहा परन्तु वह चुप–चाप सब सहन करता रहा। अब उसने अपना ऑफिस खोलकर काम–धंधा शुरु कर दिया। कारोबार दिन दुगुना–रात चार गुना बढ़ने लगा, अब कार भी खरीद ली और आराम से रहने लगा। एक दिन जब वह अपने घर लौट रहा था, उसने सब्जी लेने के लिए खिड़की खोली तो उसे प्रकाश नजर आया परन्तु आज उसने उसे चिढ़ाया नहीं बल्कि नजरे चुराकर भाग गया, जैसे उसे किसी ने थप्पड़ मार दिया हो। संजीव तिवारी का उद्देश्य समाज के ऐसे लोगों से परिचित कराना है जो प्रकाश जैसे हैं। प्रकाश का किसी निःशक्त पात्र को चिढाना और मारना इतना महंगा पड़ गया कि वह एक अपंग से हार गया। यदि उसे अपने निःशक्त सहपाठी से सहानुभूति होती तो प्रकाश की जिन्दगी भी कुछ और ही होती, इसलिए हर मानव का यह कर्त्तव्य है कि वह कभी किसी का उपहास न उड़ाये, किसी की मजबूरी का लाभ न उठाये।

'अंधा' 'संजीव तिवारी' की एक और लघुकथा है जिसमें एक घमण्डी लड़की की कहानी है जिसके पिता बड़े अफसर है और बड़े शहर से छोटे शहर 'राजिम' में तबादले के बाद आते हैं। लड़की चाहती थी कि हर बच्चा उसको तवज्जा दें और ऐसा होता भी था। परन्तु स्कूल का एक लड़का उसकी तरफ नहीं देखता था। उसे यह पसन्द नहीं था वह उसके पास जाकर विचित्र हरकत करती थी। वह तेजी से साइकिल चलाकर उसके करीब ले जाती और वह लड़का हड़बड़ाकर गिर जाता है, पर फिर भी वह उसे नहीं देखता। वह उसे अंधा कहकर मुंह बनाती हुई चली जाती हैं। लड़की का मन पढ़ाई में नहीं लगता था। स्कूल में बारहवीं पास करने के बाद बी.ए. किया और फिर हिन्दी में एम.ए. करती हैं। फिर एक पोस्ट–मास्टर से शादी हो जाती है।

शादी की रिसेप्शन में मेहमानों के साथ एक सुन्दर युवक भी आता हैं। सब लोग उसकी ओर देखते हैं वह स्टेज से टकरा जाता है, फिर कोई व्यक्ति सहारा देकर उसे स्टेज पर छोड़ता हैं। सभी लोग उसकी मेहमानबाजी में लग जाते हैं। वह उस लड़की के पति का बॉस हैं। वह छत्तीसगढ़ डाक परिमण्डल का प्रमुख हैं। जब वह उसे अपनी पत्नी से मिलवाता है तो लड़की को पता लगता है कि यह 'राजिम' का वहीं लड़का हैं। जिसे वह अंधा कहकर चिढ़ाती थी। अब उसे अपने अपराध का बोध हो रहा है कि वह सचमुच ही अंधा है। अपने व्यवहार पर गुस्सा आता है

परन्तु क्या बीता हुआ कल वापिस आ सकता हैं। नेत्र–विहीन होते हुए भी अपने विभाग का प्रमुख बनना, इस बात का गवाह है कि प्रतिभा अंगों में नहीं व्यक्ति के दिमाक व सोच में होती हैं। जिसके प्रति लड़की इतनी दुर्भावना रखती थी और वह मुस्कराता हुआ उन्हें आशीर्वाद दें रहा था।

'शाल्मली दुबे' की लघुकथा 'झिलमिल' की पात्र झिलमिल पैरों से निःशक्त है उसके सहपाठी उसका मजाक उड़ाते है जिससे उसके मन में हीन भावना पैदा हो जाती है। उसकी दोस्त संजना उसका मनोबल बढ़ाती हैं। वह अपनी माँ से झिलमिल को मिलवाती हैं। संजना की माँ अच्छा गाती है तो वह झिलमिल को भी गाना सीखा देती हैं। एक प्रतियोगिता में वह झिलमिल व संजना का नाम दें देती हैं। जब वे दोनों लड़कियाँ गाना गाती है तो झिलमिल प्रथम व संजना दूसरा स्थना प्राप्त करती हैं। अब उनको पुरस्कार मिलता है इस समय उनके सहपाठी भी वही मौजूद थे जो ईर्ष्या का भाव भूलकर अब उनके दोस्त बन जाते हैं।

'सीमा मल्होत्रा' की लघुकथा 'ऐसा भी होता है कथाकार' एक निःशक्त लड़की की हैं। वह पैरों से अपंग है, उसके पास तिपहिया वाहन है, वह उसमें बैठकर अपने ऑफिस आती हैं। जब वह अपनी दोस्त निशा को अपने तिपहिये वाहन से उसके घर छोड़ देती हैं। अगले दिन निशा ने स्वयं आरती के साथ जाने से मना कर दिया। उसकी सहेलियों के पूछने पर निशा ने कहा– "नहीं यार! लोग ऐसे घूर रहे थे, जैसे मैं भी...................मुझे तो शर्म आ रही थी। मैं तो उसके साथ कभी नहीं जा सकती। मैंने तो आरती को बोल दिया है.....।"[18] छह महीने बाद जब आरती कार खरीद लेती है तो वह कार से ऑफिस आने–जाने लगती हैं। तब आरती से निशा कहती है, "यदि तुम घर जा रही हो तो मुझे भी ड्रॉप कर देना।"[19] अब आरती जवाब देती है कि वह घर नहीं जा रही। इस पर निशा को बहुत गुस्सा आया, आज किसी ने उसे लिप्त भी नहीं दी थी। अब उसे बहुत बुरा लगा और कहने लगी अपने दोस्त से भी भला कोई ऐसे कहता हैं।

'अंधा और लंगड़ा'। बाल भारती (भाग–1) लघुकथा में दो पात्र हैं दोनों ही दिव्यांग हैं। जिसमें एक अंधा और एक लंगड़ा हैं। बंशी अंधा है और गंगाराम लंगड़ा हैं। दोनों अपनी समस्या का समाधान कर लेते हैं। यह लघुकथा सकलांगों को सीख देती है कि मिल–जुलकर काम करने से हर समस्या का समाधान हो जाता हैं। अंधा और लंगड़ा दोनों मेले में जाना चाहते थे परन्तु जाये कैसे एक तो लंगड़ा है जो चल नहीं सकता और दूसरा अंधा है जो देख नहीं सकता। दोनों ने अपनी समस्या का समाधान स्वयं ढूँढ लिया। लंगड़ा अंधे के कंधे पर बैठ गया और उसे रास्ता बताते हुए दोनों मेले में पहुँच जाते हैं। इस लघुकथा से यह भी साबित हो जाता है कि मनुष्य अपनी समस्या से बहुत बड़ा हैं।

'नारी का मूल्य' लघुकथा 'ओमप्रकाश शर्मा' की है जो 'शोध प्रभांजलि' के दिसम्बर–जनवरी 2010 में प्रकाशित हुआ था। इसमें एक पहाड़ी महिला की कहानी है, जो लकड़ी बीनने जंगल में जाती है, जहाँ पर पहाड़ी से फिसल कर खाई में गिरने से उसकी हड्डी, पसली सब टूट गई। इलाज के लिए घर के लोग डॉक्टर के पास जाते समय। रास्ते में चाय के लिए रुकते है, वहाँ पर सभी लोग मिलकर चर्चा करते हैं। एक कहता है कितना खर्चा आएगा? दूसरा कहता है–इतनी ज्यादा जख्मी है, बीस–तीस हजार तो लग ही जाएंगे। इस पर जिन्दगी अगर बच भी जाती है तो लूली–लंगड़ी बनी रहेगी। सारी जिन्दगी केवल बैठी–बैठी खाएगी। तीसरा कहता है इतने में तो नई शादी कर लो, नई आएगी तो कम से कम घर के कार्यों से तो मुक्ति मिलेगी। इतनी चर्चा करने के बाद वे वापिस लौटने लगते, अपने घर।

यह कहानी नारी के मूल्य को व्यक्त करती है, हमारा समाज आज भी नारी को भोग की वस्तु ही समझता हैं। जब तक वह परिवार के लिए त्याग की मूर्ति बनी रहती हैं। जब तक सब ठीक है और जैसे ही उसकी सेवा का मौका आता है तो वही परिवार उससे मुंह फेर लेता हैं।

'डॉ. शकुन्तला शर्मा' ने अपनी दो छत्तीसगढ़ी लघुकथाओं में निःशक्त पात्रों का चित्रण किया हैं। पहली लघुकथा के प्रमुख पात्र किशुन जन्म से पैर से निःशक्त और उसका पिता बढ़ई का काम करता हैं। माँ पड़ोस के घरों में बर्तन मांजकर घर का खर्च चलाते हैं और बेटे किशुन को पढ़ाते हैं परन्तु जब किशुन रेलवे की परीक्षा में नकल करता हुआ पकड़ा जाता है और उसे जेल हो जाती हैं। तब किशुन की माँ सोचती है कि यदि वह बचपन में ही किशुन को चिट बनाने के समय पर थप्पड़ लगाकर दण्डित कर देती तो आज यह समस्या नहीं होती। माता–पिता के लिए इससे बड़ी विडम्बना क्या हो सकती है कि उसके पुत्र के किये कारनामों की वजह से उन्हें नीची गर्दन करनी पड़ती हैं। इसे छत्तीसगढ़ी हाना में, 'खीराचोंट, जोंघरी चोर, तेखर पाछू सेंघफोर कहा जाता हैं।

लेखिका की दूसरी लघुकथा में 'नशाखोरी' का वर्णन करते हुए समाज की बरबादी को दर्शाया है–रंजीत के दारू पीने की आदत से उसकी पत्नी इतनी परेशान हो जाती है कि वह उसका घर–बार छोड़ बच्चों के साथ अपने मायके चली जाती हैं। अब रंजीत के सामने समस्या आती है कि 'अंधी माँ' और कैंसर से पीड़ित पिता के लिए खाना कौन बनाये। काम वाली बाई के भाव सुनकर वह आसमान से जमीन पर आ जाता हैं। माँ के पानी गरम करने की फरमाइश और चाय बनाते समय चाय के उफनकर गिर जाने से रही–सही कसर पूरी हो जाती हैं। तुरन्त ससुराल जाकर सास–ससुर के पैर पकड़कर माफी माँगकर सुधा को वापस लाता हैं।

'विश्वम्भर प्रसाद चन्द्रा' की लघुकथा 'पुरुष तंत्र' भी नारी को भोग की वस्तु समझने वाले निःशक्त मानसिक वाले पुरुष की है। एक गूंगी लड़की की जीवन पीड़ा इस लघुकथा में हैं। उसकी शादी के लिए बहुत सारे लड़के उसे देखने आते हैं और वापिस चले जाते हैं क्योंकि वह गूंगी हैं परन्तु एक लड़का आता है जो उससे शादी के लिए तैयार हो जाता हैं। तो सभी लोग आश्चर्य से उस युवक से पूछते हैं कि वह उससे शादी के लिए क्यों तैयार हो गया जबकि उसे पता है कि वह गूंगी हैं। तो युवक ने जवाब दिया कि वह ऐसी ही पत्नी चाहता है जो उसके सामने जबान न चलाये वह अपने पुरुष होने का पूरा अधिकार जमा सकें। अर्थात् मेरा जो पुरुषार्थ रूपी दम्भ है वह चूर नहीं हो पाएगा। वह सदैव मेरे सामने चुप रहेगी। बस इसलिए ही उस गूंगी लड़की से शादी करना चाहता हैं। अब वह गूंगी जिन्दगी भर तिरस्कृत होती रहेगी। यह उसके जीवन के लिए भयानक वेदनापूर्ण स्थिति होगी। जिसको उसे हर हाल में सहना पड़ेगा।

'विश्वम्भर प्रसाद चन्द्रा' की दूसरी लघुकथा 'नया अंदाज' में बुजुर्ग पति–पत्नी की कहानी है जो दोनों 'गठिया' से ग्रस्त हैं। अब उनकी देखभाल करने वाला कोई नहीं हैं। ऐसी परिस्थिति में पति कहता है, मैं किसी जवान औरत से शादी कर लेता हूँ। हम दोनों की देखभाल तो कर ही लेगी। ऐसा सुनकर पत्नी कहती है, मेरी बात का जवाब दो कि पुरुष ज्यादा सक्षम होता है या स्त्री? पति ने झट से जवाब दिया, आसान बात है पुरुष ज्यादा सक्षम होता हैं। तो पत्नी ने कहा फिर तो मुझे शादी कर लेनी चाहिए। वह हम दोनों की देखभाल कर लेगा। यह सुनकर पति मौन हो जाता हैं। इस लघुकथा में भी नारी की अवहेलना ही कि गई हैं। हम देखते भी है कि समाज में एक औरत के बिना घर अंधकारमय हो जाता है। परन्तु एक मर्द के बिना औरत गृहस्थी को अच्छे से चला लेती हैं। 'अरुण यादव' द्वारा लिखित 'परफेक्शनिस्ट बाबू' लघुकथा का पात्र शेखर को शादी के सात साल बात भी कोई संतान नहीं होती तो वह बहुत परेशान रहता हैं। तभी अचानक उसे पता चलता है कि उसकी पत्नी संध्या पेट से है उसकी खुशी का ठिकाना नहीं रहता। समय पर बच्चा पैदा हो जाता हैं। परन्तु जब उसे पता चलता है कि उसका एक पैर छोटा है तो वह बहुत दुखी होता है और अपनी पत्नी से उस बच्चें को फैंकने और त्याग करने की बात करता हैं। परन्तु पत्नी समझाती है कि अब तक तो हम निःसंतान थे अब बच्चा तो हो गया। ईश्वर ने इन्हें संतान का सुख तो दिया।

एक दिन शेखर बाबू अपना पसंदीदा चैनल डिस्कवरी देख रहा था। जिस पर प्रसिद्ध वैज्ञानिक स्टीफन्स हॉकिन्स की जीवनी प्रसारित हो रही थी। वह जो पूर्ण रूप से निःशक्त था। आज उसका नाम दुनिया भर में चमक रहा हैं। उसका शरीर निःशक्त है परन्तु तेज दिमाक के

कारण चमकता सितारा हैं। ये देखकर शेखर बाबू आत्मग्लानि से भर जाते हैं और अपने बच्चें को गले से लगा लेते हैं।

डॉ. विनय कुमार पाठक की लघुकथा 'निर्भया' की कथा है जो एक हेडमास्टर की बेटी है परन्तु पैर से दिव्यांग हैं। उसकी नृत्य कला में रूचि हैं। उसकी माँ उसे नृत्य सिखाने के लिए नाट्य गुरु के पास भेजती हैं। तभी शहर का एक रईस बदमाश उसे अपनी हवस का शिकार बना लेता हैं। इससे उसकी मानसिक स्थिति बिगड़ जाती हैं। बाद में वह उनके खिलाफ लड़ती है और उस बदमाश तथा उसके साथियों को सजा दिलाती हैं। बाद में उसके नृत्य गुरु अपने बेटे से उसका विवाह करवा देते हैं। इस तरह एक संघर्षपूर्ण जीवन से सहज रूप में वह जीत हासिल कर लेती हैं।

लेखिका अनुपम की लघुकथा 'दर्द की दवा' में ओंकारनाथ नाम का निःशक्त पात्र अपंग वाले कोटे से चतुर्थ श्रेणी के सरकारी कर्मचारी बन गए। उसके मन में गरीबों के प्रति सेवा का भाव जगा। इसलिए सेवानिवृति के बाद भी वे तीन–चार मील तक पैदल चलकर उपयोग करने के बाद बची हुई दवाओं का संग्रहण करते और उसे गरीबों की सेवा के लिए संकल्प करके जीवन सदुपयोग कर रहे हैं। 'डॉ. विनय कुमार पाठक' की लघुकथा 'एक पैर से तैयार' में सीताराम अग्रवाल एक पैर दुर्घटना में गवाँ देने के बाद भी सामान्य लोगों से तेज चलकर अपने रोजमर्रा के कार्य कर लेता हैं। 'श्रीमति अरुन्धती कुलकर्णी' द्वारा रचित 'निःशक्तता को पछाड़ने वाला योगेन्द्र' मंद बुद्धि वाला बालक योगेन्द्र श्रीवास्तव को विद्यालय से विलग कर दिया लेकिन वह ओलम्पिक वर्ल्ड गेम से न केवल स्वर्ण पदक प्राप्त करता है बल्कि मेकेनिक की ट्रेनिंग लेकर 'गरुणापावर प्राइवेट लि. कोरबा से डीजल में मेकेनिक बनकर सेवा देनें लगा।

'ज्योत्सना सिंह' की लघुकथा 'हृदय की आँख' दैनिक भास्कर 'अहा! जिन्दगी' का अंक 27 मई 2018 में चमेली और सुखिया पति–पत्नी हैं। चमेली एक पैर से अपंग और बांझ भी हैं। दोनों पति–पत्नी खाना–खाने बैठते हैं। तब चर्चा करते हैं पति कहता है तू अम्मा का कितना ख्याल रखती है। तेरे हृदय में कभी इनके किये के घाव न रिसते?

'सच कहूँ तो बहुत रिसता हैं। सूना घर आँगन काट खाने को दौड़ता हैं।' फिर तू बिना कहे किए इनकी इतनी सेवा कैसे कर लेती हैं? पाँच बरस हो गए लकवा खाए अम्मा को पर मैंने तेरे मुँह से उफ न सुनी।' उसका पति कहता है तू बाँझ न थी, वो इस अम्मा के ही करम थे इन्होंने ही सीढ़ियों से तुम्हें धकियाया था। तभी तुम्हारा गर्भ गिरा था और लंगड़ी भी हो गई। वह पति को समझाती है तुम करम की कह रहे हो, हृदय की आँखों से देखों ये करम की गति ही तो

हमका खट–खाएं न करने देते। वह मानती है कर्मों का लेखा–जोखा भगवान धरती पर ही पूरा करते हैं।

दैनिक भास्कर 'रसरंग' 8 दिसम्बर 2013 में प्रकाशित लघुकथा 'कर्मवीर राम' जो 'चन्द्र प्रकाश डाले' द्वारा लिखित हैं। कर्मवीर राम जिसमें एक निःशक्त व्यक्ति जिसका एक हाथ कोहनी के नीचे से पूरा गायब था और व डेढ़ हाथों से बड़े युक्ति के साथ ठेला से सीमेंट की बोरियाँ उठाकर अन्दर डाल रहा था, तभी एक हट्टा–कट्ठा नवयुवक शनि महाराज के नाम पर भिक्षुक बनकर किसी के सामने हाथ फैला रहा था। सामने वाले व्यक्ति ने शनि महाराज को इशारे से सीमेन्ट की बोरियाँ ढ़ोते अपंग व्यक्ति को दिखाया। शनि महाराज की आँखें शर्म से पानी–पानी हो गई और शर्मिंदगी के साथ गर्दन झुकाकर बिना कुछ माँगे ही चुपचाप वहाँ से चला जाता हैं। निःशक्त व्यक्ति को परिश्रम करते देख उसका हृदय परिवर्तन होता है और अब शनि महाराज भी सीमेंट की बोरियाँ ढ़ोने का कार्य करने लगता हैं। तो क्या हम ऐसी अपंगता को अपंगता कहेंगे? कभी नहीं! जो एक सकलांग को रास्ता दिखाकर उसे कर्मवीर राम बनाता है और निःशक्तता को वरदान साबित करता हैं।

'फरवरी 2009 साहित्य अमृत पत्रिका अंक में' के.पी. सक्सेना 'दूसरे' में 'पात्रता' लघुकथा में हाथ से निःशक्त एक नौजवान लड़का हैं। जो जिला अस्पताल में अपंगता का प्रमाण–पत्र दिये जाने के अन्तिम दिन जाता हैं। बहुत भीड़–भाड़ के बीच उसका नाम पुकरा गया। डॉक्टर ने फार्म देखकर बगैर सिर उठा कहा, 'दिखाओ'?

नौजवान अपने दाहिने हाथ को टेबल पर रखता है– डॉक्टर हाथ के अपंगता प्रमाण के लिए कहता है– 'सिर्फ 25% अपंगता का केस है, इसमें तुम्हें कोई सरकारी छूट नहीं मिलेगी।' डॉक्टर बोला।

वह लड़का कुछ पढ़ा–लिखा था बोला साहब कुछ कर सकते हो तो करो। दिव्यांग कोटे में चपरासी ही मिल जाये....वह आगे बोल न सका। डॉक्टर को तरस तो आ रहा था परन्तु वह मजबूर था क्योंकि सरकारी नियम बिल्कुल साफ हैं। अगूँठा कटा हो तो 40% और प्रत्येक अँगुली का 10–10 प्रतिशत पूरा पंजा गायब हो तो 100 प्रतिशत, अपंग होने का मापदण्ड हैं। अब तुम्हारी सिर्फ ढाई अँगुली कटी है तो 25 प्रतिशत ही हुआ न। जबकि वास्तविक निःशक्तता की पात्रता के लिए कम से कम 40 प्रतिशत अपंगता होनी चाहिए। इतना कहकर डॉक्टर ने अगले मरीज को बुलाया। अचानक शोर सुनाई दिया डॉक्टर ने कहा? क्या हुआ चपरासी ने कहा सर किसी ने मशीन में अपना अंगूठा काट लिया।

यहाँ पर निःशक्तजन के दर्द को न समझकर सिर्फ कानून को समझा जा रहा हैं। जब किसी आदमी के अंग में कोई विकारता हैं तो उसे अवश्य ही अपंगता का आरक्षण मिलना चाहिए। जिससे वह अपनी योग्यता के अनुसार नौकरी पाकर स्वाभिमान से जीवन जी सकें।

'सांझी एक्सप्रेस' से ली गई लघुकथा 'मुस्कराहटें', 'रतनचंद रत्नेश' द्वारा रचित हैं इस लघुकथा में एक व्यक्ति जिसका दायाँ हाथ लकवे से बेकार हो गया था। अब वह बस स्टैण्ड पर भीख माँगकर अपना गुजारा चलाता हैं। एक दिन भिक्षा माँगते समय उसकी मुलाकात ऐसे व्यक्ति से होती है जो उसे जीने की राह दिखा जाता हैं। जब वह उससे भिक्षा माँगता है तो वह उसे स्वस्थ देखकर कुछ काम धंधा करने की सलाह देता है तब वह दिव्यांग व्यक्ति अपना लकवाग्रस्त हाथ आगे करके दिखाता हैं। फिर वह सकलांग व्यक्ति उसे कोशिश करने की सलाह देता हुआ पाँच रूपये भिक्षा में देता हैं। वह अपंग व्यक्ति उसकी बात पर विचार करके कोशिश करता हैं। वह यह बात भूल जाता है कि वह निःशक्त है और मन लगाकर बस स्टैण्ड पर केले का ठेला लगाता हैं। एक दिन ऐसे ही उस महान व्यक्ति से भेंट होती है जिसने सलाह दी थी। कुछ देर बाद दोनों एक–दूसरे को पहचान लेते हैं। फिर दोनों एक साथ मुस्कराते हैं। यह मुस्कराहट एक सज्जन व्यक्ति ने जिन्दगी से हारे व्यक्ति के चेहरे पर लायी थी।

'महावीर प्रसाद जैन' की लघुकथा 'हाथ वाले' पत्रिका अंक–2 में एक निःशक्त व्यक्ति है जो ईमानदार है और दूसरा पूर्ण स्वस्थ जो बेइमान हैं। अपंग व्यक्ति हाथों से अपाहिज है जो किताबों की दुकान लगाये बैठा हैं। एक व्यक्ति किताब लेने के बहाने किताबों को उलट–पलट करता है, जब दुकानदार और ग्राहकों में व्यस्त हो जाता हैं। तो वह मौका पाकर बिना पैसे दिये पुस्तक लेकर भाग जाता है। खड़े ग्राहकों में से एक व्यक्ति कहता है, वह बिना पैसे दिये पुस्तक ले गया। दुकानदार कहता है मुझे मालूम हैं। तो वह व्यक्ति आश्चर्य से पूछता है तो रोका क्यों नहीं। उसने बड़ा सुन्दर जवाब दिया कि "बाबू जी चोरी हाथ वाले ही तो करते हैं।"[20]

यह लघुकथा सकलांग को संदेश देती है कि हाथ–पैर सब है तो उनका गलत उपयोग मत करो। चोरी जैसा घिनौना कार्य तो कभी नहीं।

'गूंगी और गंगाराम' लघुकथा कृति वार्षिक 2006 में प्रकाशित हुई। यह कथा एक गूंगी स्त्री की है। जिसमें उसकी विवशता एवम् पीड़ा का वर्णन हैं। गूंगी का नाम गौरी था जिसकी माँ उसे जन्म देते ही स्वर्ग सिधार गई थी। पड़ोस में जमींदार का लड़का उसे अपनी हवस का शिकार बना लेता हैं। बाप शर्म के मारे आत्महत्या कर लेता है और वह बिन ब्याही माँ बन जाती है। माँ तो अपनी ममता को नहीं मिटा सकती। अब वह बिन बाप के बेटे गंगाराम के साथ हैं। इस लघुकथा

में समाज की निःशक्त मानसिकता को दिखाया हैं। यह वही समाज है जिसके आदमी एक मजबूर अंगहीन मनुष्य को भी नहीं देखते हैं। ऐसी सकलांगता किस काम की जो सिर्फ किसी को दुःख व दर्द ही दें। ऐसे सकलांग से तो एक निःशक्त बेहतर है जो किसी का दिल तो नहीं दुखाते।

'दुआ' लघुकथा 14 जुलाई 2013 में दैनिक भास्कर में प्रकाशित जिसके लेखक 'एल्सबर्ग' हैं। दुआ लघुकथा के माध्यम से अंधा होने की पीड़ा को व्यक्त किया गया हैं। इसमें दृष्टिहीन एक नन्हीं लड़की कैथरीन है जो सिर्फ स्पर्श करके ही हर चीज को पहचान पाती हैं। वह स्पर्श से ही अच्छे बुरे इंसान को भी पहचान लेती हैं। एक बार वह बीमार हो जाती है, जिसके कारण उसकी माँ उसे डॉक्टर के पास ले जाती हैं। जिससे उसकी डॉक्टर से दोस्ती हो जाती हैं। डॉक्टर उसको एक गुडिया भेंट करता हैं। जिसको पाकर वह बहुत खुश होती हैं। वह उसकी हर चीज आँख, नाक, कान, बाल आदि पर हाथ फेरती हैं। जब वह आँखों पर हाथ फेरती है। तो वह भगवान से दुआ करती है कि भगवान उसकी आँखें कभी मत छिनना क्योंकि आँखों के बिना अंधेरा उससे बेहतर कौन जानता होगा। बिना आँखों के दिन–रात बराबर केवल अंधेरा ही अंधेरा रहता हैं। वह अपनी पीड़ा को व्यक्त करती है क्योंकि समस्या जिसके ऊपर बीतती है उससे अधिक कौन समझता।

'डॉ. चन्द्रावती नागेश्वर' की लघुकथा 'अरुणिमा' में यह चित्रित किया है कि बचपन में सड़क दुर्घटना की शिकार होकर एक पैर से लाचार अरुणिमा ने अपने सपने को साकार करने के लिए बुलन्द हौंसलों के साथ 21 मई 2013 को एवरेस्ट शिखर पर कदम रख लिया। डॉ. विनय कुमार पाठक की लघुकथा शीर्षक 'अपाहिज से छल' में यह प्रेषित किया है कि दुनिया में ऐसे छल प्रपंच रखने वालों की कमी नहीं है, जो अपने खून से भी छल करने में बाज नहीं आते पिता की वृद्धावस्था और उसकी निःशक्तता को निरखकर पहले वसीयतनामा लिखाया जाता है फिर भावनात्मक छल प्रपंच के जरिये अपाहिज अग्रज से भावनात्मक छल का षडयंत्र किया जाता हैं। आज लोगों में अपंगजनों के प्रति भी लोग ह्रदयहीन है वहीं अनेक ऐसे उदाहरण है जिससे आभास होता है कि निःशक्त को सहयोग देने के लिए उनका परिवार और परिवेश पूरी तरह मददगार साबित होता हैं।

लघुकथाओं के विवेचन के अन्नतर यह कहा जा सकता है कि निःशक्तता के प्रति सहिष्णु होकर मानवता का मान रखा जा सकता है। निःशक्तजनों में जो जोश और जज़्बा कायम है उसे उत्प्रेरित करने का कार्य न केवल माता–पिता व अभिभावकों का है वरन् उस पूरे समाज का है जो निःशक्तजनों के जीवन को सफल और सार्थक सिद्ध करने के लिए कृत संकल्पित हैं।

'रवि प्रकाश एक प्रखर व्यक्तित्व' रवि प्रकाश एक बहुत ही तीव्र बुद्धि बालक था। उसका लक्ष्य आई.ए.एस. बनना था परन्तु आठवीं तक की परीक्षा पास करने के बाद आँखों की रोशनी चले जाने से उसके सामने समस्या खड़ी हो गई। कुशाग्र बुद्धि होते हुए भी गणित व साइंस जैसे विषयों को छोड़कर आर्ट्स से पढ़ाई करनी पड़ी। पिता और भाई के सहयोग से रवि ने आई.ए.एस. की परीक्षा विशेष योग्यता के साथ पास की जो कि किसी सशक्त के लिए भी बहुत कठिन कार्य हैं। परीक्षा पास होने के पश्चात् भी पांच साल तक पोस्टिंग नहीं मिली अन्ततः लम्बी कानूनी लड़ाई के बाद रायपुर में पहली पोस्टिंग हुई। रवि प्रकाश ने अपने नाम को सार्थक करते हुए आंतरिक शक्ति को संजोकर, अंधत्व को प्रकाश का आधार बनाकर इस कठिन कार्य को कर दिखाया। यह साबित करके दिखाया कि इच्छा अगर दृढ़ हो तो कुछ भी मुश्किल नहीं हैं। 'हाथ पाँव से लाचार पर मानूँगा नहीं हार' लघुकथा छत्तीसगढ़ के 'तरुण' द्वारा लिखित 'इसका पात्र गोविन्द अठारह वर्ष तक सामान्य जीवन जीने के बाद धीरें–धीरें पैरों से लाचार हो गया। यहाँ तक कि व्हील चेयर की नौबत आ गई। दो वर्ष तक डॉक्टर के पास इलाज चलने के बाद भी कोई फायदा नहीं हुआ। डॉक्टरों ने मायोपैथी बीमारी बताई जो ठीक नहीं हो सकती थी। परन्तु उसने हार नहीं मानी कपड़े का व्यापार शुरु किया परन्तु उसमें उसे घाटा हुआ, दो बार असफल होने के बाद शहर और व्यवसाय दोनों छोड़कर कोरबा आ गए। कोरबा आकर कूरियर का काम आरम्भ किया और उसकी मेहनत रंग लाई। आज वे सफल व्यवसायियों में गिने जाते हैं। आज उनके ढ़ेर सारे दोस्त है, पत्नी है, परिवार हैं। सप्ताहांत में परिवार के साथ मौज मस्ती करता है। जीवन का पूरा आनन्द लेता हैं। उन्होंने जिन्दगी से हार नहीं मानी अपने हौंसलें को बनाए रखा। अब इनका उद्‌देश्य है निःशक्तजन और वृद्धों की सेवा के लिए आश्रम बनवाना।

दैनिक भास्कर में प्रकाशित 'इच्छाशक्ति ने अपंग को बनाया धावक' लघुकथा में मनुष्य की दृढ़ इच्छाशक्ति को व्यक्त किया गया हैं। इसमें एक अपंग लड़की, जो कक्षा में अपने अध्यापक से 'खेल' के बारे में जानना चाहती हैं। परन्तु अध्यापक उसका मजाक उड़ाते हुए कहता है, "क्या करोगी खेल और खिलाड़ियों के विषय में जानकर पहले अपने पैरों को तो देखो तुम तो ठीक से चल भी नहीं सकती।"[21] तब उसने बैसाखी का सहारे लेते हुए कहा– "आज मैं अपाहिज हूँ चल नहीं सकती किन्तु सर! याद रखिये यदि मन में पक्का इरादा हो तो कुछ भी असंभव नहीं।"[22] उसकी यह बात सुनकर बच्चें और अध्यापक सभी हँस पड़ें। फिर 1960 के ओलम्पिक में उसने दौड़कर तीन गोल्ड मेडल हासिल किये। अपंग लड़की के हौंसलें को पूरी दुनिया ने सलाम किया।

'पोलियो' 'गिरिराज शरण' में मणिका नाम की पात्र एक टॉंग से पोलियों ग्रस्त लड़की हैं। उसकी अपंगता के कारण मनीष की माँ उसे पसन्द नहीं करती और उसकी शादी टूट जाती हैं।

उसे जीवन में ऐसी ही मुसीबतों का सामना करना पड़ता हैं। उसकी जिन्दगी के विषय में सोचते हुए उनके एक शुभचिन्तक के मुँह से निकल पड़ता हैं। "मणिका, तुम्हें अभी कई समझौते करने पड़ेंगें। अब भी कई बार बहुत कुछ खोना पड़ेगा।"[23] वही साबित भी हो जाता है उसकी शादी एक लड़के से होती है जो इंपोटेंट है जिसके कारण उसे पर पुरुष गमन भी करना पड़ता हैं। यहीं एक निःशक्तजन की जिन्दगी हैं। वह न चाहते हुए भी उसे सब कुछ करना पड़ जाता हैं।

'परकटा परिंदा', 'गिरिराजशरण' द्वारा लिखित जिसमें विभु नाम का पात्र एक लड़का हैं। जो सड़क हादसे में अपने दोनों पैर गवां देता हैं। गलती तो किसी और की भुगतना पड़ें किसी और को। अब विभु दूसरों पर आश्रित हो गया, सारे सपनों पर पानी फिर गया। फिर भी हिम्मत नहीं हारता उसकी बहन उसका सहयोग करती हैं। वह बाहर बच्चों को खेलता देखता है और अपनी बहन से कहता है कि बाहर कितनी खुशी हैं। दीदी, मैं चल नहीं सकता, दौड़ भी नहीं सकता। दीदी, "तुम मुझे उस भीड़ भरे बाजार में रखों, जहाँ लोगों को मैं उनके पैरों से चलता देख सकूँ।"[24] इस लघुकथा में एक मासूम बच्चें की पीड़ा व्यक्त हुई हैं।

लघुकथाओं के विवेचन के अनन्तर यह कहा जा सकता है कि निःशक्तजन के प्रति सहिष्णु होकर मानवता को बचाया जा सकता हैं। दिव्यांग लोंगों में जो जोश और जज़्बा है उसे उत्प्रेरित करने का कार्य सिर्फ परिवार का ही नहीं बल्कि पूरे समाज का है जो अपंग लोगों के जीवन को सफल और सार्थक सिद्ध करवाये। हिन्दी लघुकथाकार समाज के उज्ज्वल और अंधकारमय दोनों पक्षों को निरुपक्ष रूप से सामने रखकर निःशक्त अनुशीलन के वृत को पूर्ण करने के प्रयास किये हैं। लघुकथाकारों ने निःशक्तजन के संदर्भ में जो कुछ देखा परखा और अनुभव किया है उसी घटना या प्रसंग को चित्रित किया हैं।

तात्पर्य यह है कि हिन्दी–लघुकथा में निःशक्तता को केन्द्र में रखकर पर्याप्त कार्य हुआ हैं। ऐसा नहीं है, मात्र इतने ही कथाकारों ने निःशक्तजन की मानसिकता को छोड़ कर्म–पथ पर आगे बढ़ने का काम किया हैं। उन्होंने न केवल अपने को बल्कि समाज को भी नया मोड़ दिया हैं आज आवयकता इस बात की है कि हम दिव्यांग जन के सामर्थ्य को जगाएँ और उन्हें देश के हित के लिए कार्यों में लगाये।

(3) समकालीन हिन्दी लघुकथा में वर्णित समस्याएँ

भारत में शारीरिक रूप से निःशक्तजन राजनीतिक और सामाजिक दोनों दृष्टियों से उपेक्षित रहे हैं। इसका परिणाम यह है कि सन् 1947 से 2001 तक तो निःशक्तजन को सामान्य नागरिक के समान समझने की आवश्यकता नहीं समझी जाती थी। भारत सरकार के आंकड़ों के मुताबिक

हमारे देश में दो करोड़ दिव्यांग हैं। जबकि अन्य गणनाओं के अनुसार कम से कम पांच करोड़ हैं। परन्तु देश की कुल सरकारी, गैर–सरकारी नौकरियों का एक प्रतिशत भी अपंग लोगों को नहीं दिया गया।

आठवें दशक में जब देश की राजनीतिक–सामाजिक–आर्थिक परिस्थितियों में फेर बदल दिखाई दें रहा था। उसी समय से हिन्दी लघुकथा–साहित्य ने अपनी गति को तीव्रता प्रदान की। नवें दशक में हिन्दी लघुकथा के विषय और शिल्प–दोनों दृष्टियों से विविधता दिखाई दी। आज हिन्दी लघुकथा ने बहुत बड़े पड़ाव को पार करके अपनी उपस्थिति दर्ज करा दी हैं। हर रचना को प्रसिद्ध बनने के लिए उसे अपने समय को साथ लेकर चलना चाहिए।

'डॉ. विनय कुमार पाठक' अपनी आँखों देखी कहानी को व्यक्त करता है, जो पीड़ा उन्होंने अपने लोगों में देखी हैं। सबसे पहले वे अपने पूज्य गुरु श्री 'के.के. भट्ट' की घटना का जिक्र करते हैं। जब वे उनसे प्रथम बार मिले ये तो उनकी पत्नी अच्छे से स्वस्थ थी। अचानक उन्हें लकवा लग गया, शहर के बड़े–बड़े अस्पतालों में उनका इलाज चला परन्तु पूर्ण रूप से स्वस्थ नहीं हो पाई और आज भी वे एक हाथ से कमजोर ही हैं। अब अपने बीते पलों को याद करती हैं। इसी वजह से कई बार डिप्रेशन का शिकार हो चुकी हैं। इसका प्रभाव घर के अन्य सदस्यों पर भी पड़ा हैं। वे भी अचानक खड़ी हुई इस समस्या से मानसिक रूप से परेशान हैं। कहने का अर्थ यही है कि सहज रूप से चलती हुई जिन्दगी में अचानक आने वाली त्रासदीपूर्ण रूप से परिवार को झकझोंर देती हैं।

परन्तु साथ ही समाज का उपेक्षापूर्ण बर्ताव निःशक्तजन के लिए और ज्यादा समस्याएँ पैदा हो जाती हैं। एक तो अचानक या जन्म से किसी अंग में विकार होना और ऊपर से लोगों के छींटाकशी व तानों से परेशानी बढ़ती हैं। लघुकथाओं के माध्यम से निःशक्त के प्रति हर क्षेत्र का व्यवहार दिखाया गया है जैसे–सामाजिक, आर्थिक, पारिवारिक, राजनीतिक आदि।

(अ) सामाजिक समस्याएँ

अपंगता मनुष्य के लिए बहुत बड़ी समस्या है, यह मनुष्य को न तो अच्छे से जीनें देती और न ही मरने देती। जिन्दगी भर तड़पाने के अलावा कुछ नहीं बचता। प्रकृति ने निःशक्तता का दोष जिस किसी को दिया, वह सभी उससे सिर्फ वजह ही पूछते रहते हैं। कोई इसे भगवान की नाइंसाफी कहता और कोई पिछले जन्मों का फल मानता हैं। लेकिन उनके दर्द को समझ पाना बहुत ही मुश्किल हैं। कोई लम्बी बीमारी या कोई भयंकर दुर्घटना के कारण इस कष्ट को भोगता हैं। इनके कष्ट को देखकर हम सिर्फ बेचारा बोलकर पीछा छूटा लेते हैं लेकिन ये कभी नहीं सोचते

की हम भी अपना एक पैर बांधकर या आँखों पर पट्टी बाँधकर कुछ समय के लिए रहकर देखें शायद कुछ अनुभव तो जरुर मिल जायेगा। इतना कष्ट सहने वाले लोगों के लिए हमारा समाज बहुत ही निर्दयी हैं।

भारतीय समाज निःशक्तजनों के प्रति बड़ा कठोर रहा है। अंधा, लंगड़ा, बहरा, पगला ये सभी शब्द व्यक्ति स्थिति नहीं बल्कि उपेक्षा का भाव दिखाते हैं। इसलिए अगर हमारे घर परिवार में कोई अपंग व्यक्ति है तो हम उसे समाज की नजरों से बचाकर रखना चाहते हैं। क्योंकि हमारी ये सोच होती है कि इनको देखकर हमारी भी उपेक्षा होगी इसलिए इन्हें छिपाकर रखना ही उचित समझते हैं। अभी भी समाज की नजर में दिव्यांगता जैविक या जन्मजात विकृति से ज्यादा कुछ भी नहीं, महज एक रोग, एक अभिशाप है, जबकि यह एक रोग व अभिशाप नहीं, एक स्थिति हैं। इस समस्या को पुरुष तो फिर भी झेल लेता है परन्तु औरत के लिए यह और भी भयानक रूप लें लेती हैं। अब इनको आगे लाने का समय आ गया हैं। सरकार के साथ समाज भी इनको साथ दें तो देश उन्नति के पथ पर दौडेंगा। इन बच्चों के प्रोत्साहन के लिए स्कूल, कॉलेजों का भी कर्त्तव्य होगा कि स्कूल—कॉलेज या व्यक्ति किसी बच्चें के प्रवेश के दौरान कोई कम्पीटिशन फीस नहीं लेगा। किसी भी उच्च शिक्षण संस्थाओं में प्रवेश प्राप्त प्रत्येक निःशक्त पात्र को समुचित, आवश्क तथा उपयुक्त लैंगिक सहायता कोर्स को पूरा करने के लिए ऐसे प्रवेश तथा अतिरिक्त पाठ्यक्रम तथा सहायक पाठ्यक्रम गतिविधियों में संस्थान का प्रतिनिधित्व करने का अवसर प्राप्त हो।

अपंगता वर्तमान समाज में अपना एक अहम् परिचय एवम् भूमिका दोनों से चिन्हित हो रही है और इनकी संख्या भी कुल आबादी में लगभग 8 से 10 प्रतिशत होने जा रही हैं। इससे स्पष्ट है कि यह समाज के लिए चिंता व चिंतन दोनों का विषय बन गया है। इनका उद्देश्य यह होना चाहिए कि—

1. निःशक्तजन के प्रति सकारात्मक सोच व सहानुभूति पैदा करना।
2. अपंगता से ग्रसित व्यक्ति का संरक्षण एवं पुनर्वास करने हेतु सामाजिक वातावरण बनाना।
3. दिव्यांग होने के कारणों का पता लगाकर उनके निदान के उपाय ढूँढना।
4. निःशक्तजन प्रतिभा को प्रोत्साहन एवं उनकी कार्य क्षमता के सदुपयोग हेतु शासन, प्रशासन को कार्य योजना तैयार करने हेतु सुझाव प्रस्तुत करना।

प्रोत्साहन ऐसा बल है, जो व्यक्ति को मानसिक रूप से इस तरह सक्षम बनाता है, जिससे मन की शक्ति संजोकर आत्मिक रूप से सबल बना सकें। परिश्रम, साहस व हिम्मत और लगन से किसी कार्य को करने से अवश्य ही सफलता प्राप्त हो सकती हैं।

उपर्युक्त मानसिकता ही हमारे समाज की बनानी हैं। यही समस्या समकालीन हिन्दी लघुकथाओं में वर्णित हुई। कि आज समाज एक दिव्यांग व्यक्ति को कितनी नीच व घृणा की दृष्टि से देखता हैं। प्रसिद्ध लघुकथाकारों ने समाज की इसी निःशक्त सोच को अपनी कुछ लघुकथाओं के माध्यम से उभारा है जो निम्न है– 'मधुकांत' की हौंसला पुस्तक में 'सहयोग' लघुकथा समाज को संदेश देती है कि एक निःशक्तजन जब अपनी निःशक्तता को नजर अंदाज करके समाज के काम आता है तो समाज को भी उसके बारे में कुछ सोचना चाहिए। 'टुंडा छोकरा' 'मधुकांत' की लघुकथा में एक भीख माँगने वाला अपाहिज लड़का है जो मेमसाहब का पर्स गिर जाने पर दौड़कर उसके पीछे जाता है और उसका पर्स लौटाता हैं। थोड़ी देर पहले ही वह मेमसाहब उस लड़के को जेबकतरा समझ रहीं थी। लेखक ने भी उस मेमसाहब को अपने शब्दों से तमाचा जड़ दिया, जैसे ही मेमसाहब पर्स से इनाम के लिए 'टुंडा छोकरा' के लिए एक नोट निकालती हैं। फिर घूमकर देखती है तो लड़का गायब मिलता हैं। यहाँ पर वह स्वयं पानी–पानी हो जाती है और समाज के लिए सबक भी लेती हैं।

'शाल्मली दुबे' की लघुकथा 'झिलमिल' में झिलमिल एक पैर से अपंग है उसके सहपाठी उसका मजाक उड़ाते हैं। उसकी सहेली संजना उसका हर समय सहयोग करती हैं। उसकी प्रेरणा से वह गायन प्रतियोगिता में प्रथम पुरस्कार भी प्राप्त कर लेती हैं। उसके सहपाठी अब उसके सामने आँखें झुकाकर उसके दोस्त बन जाते हैं। 'सीमा मल्होत्रा' की लघुकथा 'ऐसा भी होता है' यह एक दिव्यांग लड़की की लघुकथा हैं। जिसमें वह तिपहिया वाहन से अपने ऑफिस आती–जाती है, एक दिन उसकी सहेली निशा उसके साथ जाती है तो उसे बहुत ग्लानि महसूस हुई जैसे निःशक्त होना कोई छूत का रोग हो। अगले दिन स्वयं निशा ने उसके साथ जाने से मना कर दिया। कुछ दिन बाद आरती चार पहियें वाली कार खरीद लेती हैं और उसी से ऑफिस आने–जाने लगी, अब निशा ने आरती से कहा वह उसके साथ चलेंगी तू मुझे ड्रॉप करके चली जाना। आरती ने कहा–वह अभी नहीं जा रही। इस पर निशा को बहुत गुस्सा आया कि अपनी सहेली को कोई ऐसे भी बोलता हैं। कुछ दिन पहले उसने उसकी अपंगता को संकीर्णता की दृष्टि से देखकर उसे मना किया था, वो वह भूल गई–आज आरती का जवाब उसे खटक रहा है जैसे को तैसा।

'विश्वम्भर प्रसाद चन्द्रा' की लघुकथा 'पुरुषतंत्र' में भी समाज की हीन भावना से दृष्टिगत करवाया गया हैं। यहाँ एक गूँगी लड़की की लघुकथा हैं। जिसमें उसकी शादी के लिए बहुत सारे लड़के उसे पसंद करने आते हैं परन्तु गूँगी होने की वजह से सभी वापिस चले जाते हैं। फिर एक लड़का आता है जो उससे शादी के लिए तैयार हो जाता हैं। तो सभी उससे वजह पूछते है तो लड़का कहता है– उसे ऐसी ही पत्नी चाहिए जो उसके सामने बोल न सकें, उसके सामने अपना

मुँह न खोल सकें। अर्थात् मेरा जो पुरुषार्थ रूपी दम्भ है वह चूर नहीं हो पायेगा। अब वह गूंगी जिन्दगी भर तिरस्कृत रहेगी। यह उसके जीवन के लिए भयानक वेदनापूर्ण स्थिति होगी। जिसको उसे हर हाल में सहना पड़ेगा।

'गूँगी और गंगाराम' लघुकथा कृति वार्षिक 2006 में प्रकाशित हुई। एक गूँगी लड़की की लघुकथा हैं। जिसकी माँ उसे जन्म देते ही मर जाती हैं। पिता के साये में पल रही बेटी पर किसी रईस जमींदार के बेटे की नजर पड़ीं और उस अपनी हवस का शिकार बना लिया। अब उसका पिता शर्म के मारे आत्महत्या कर लेता हैं। अब गूंगी बिन ब्याही ही माँ बन जाती हैं। माँ की ममता को नहीं दबा पाई अपने बेटे गंगाराम के साथ रह रही। इसमें समाज की गंदी मानसिकता को दिखाया हैं। यह वही समाज है जहाँ एक मजबूर अंगहीन मनुष्य का उपयोग भी अपने स्वार्थ के लिये ही करते हैं। बेजुबान, अंगहीन, बेबस व्यक्ति पर अपने अत्याचार करते समय जरा भी उनका कलेजा नहीं पसीजता।

'रत्नकुमार सांभरिया' की लघुकथा 'बांझ' में राममेख को अपनी पहली पत्नी से कोई संतान नहीं होती तो वह दूसरी शादी कर लेता है उस दूसरी पत्नी से उसे एक बेटा पैदा होता है। जिससे वह बहुत खुश हैं। अपनी पहली पत्नी 'वन्नू' को ताने सुनाता हैं। वह कहता है, "वन्नू हो गया न तुम्हारा वहम् दूर कि मेरे आदमी में कमी हैं। अगर मैं तेरी बातों पर यकीन करता तो, कैसे चलती मेरी वंशबेल?"[25] वह उसे ताने सुनाता रहता है कि देख तूने पाँच साल में कोई बच्चा नहीं दिया और मेरी नयी पत्नी ने एक साल में ही मुझे बाप बना दिया। अब मेरी हर जगह इज्जत हैं। ऐसे उसे कड़वे शब्दों से परेशान करता रहता हैं।

'महावीर प्रसाद जैन' की लघुकथा 'हाथवाले' पत्रिका अंक–2 में एक निःशक्त व्यक्ति जो ईमानदार है और दूसरा व्यक्ति जो बेइमान हैं। अपंग व्यक्ति पुस्तकों की एक दुकान लगता है। एक सशक्त व्यक्ति आता है और दो–चार किताबों के पेज उल्टा–पलटी करके देखता रहता हैं। तब तक और ग्राहक एक साथ आ जाते हैं। वह पहले वाला व्यक्ति आँख बचाकर एक किताब लेकर गायब हो जाता हैं। थोड़ी ही देर बाद उनमें खड़ा एक ग्राहक कहता है भाई साहब वो व्यक्ति बिना पैसे दिये ही पुस्तक लेकर भाग गया। तो दुकान वाला वह निःशक्त व्यक्ति कहता है मुझे पता हैं। तो वहाँ ग्राहकों को बहुत ही आश्चर्य होता हैं। तो वे कहते हैं कि जब तम्हें पता था तो तुमने उसको रोका क्यों नहीं। वह कहता है कि हाथ वाले ही तो चोरी कर सकते हैं।

अर्थात् निःशक्तजन हर कार्य करने के लिए सक्षम नहीं होता। कुछ गलत काम भी उसे मजबूरीवश करने पड़ जाते हैं। परन्तु सकलांग होकर भी चोरी जैसा घिनौना कार्य करता है, तो

उससे बेशर्म आदमी कौन हो सकता हैं। जबकि वह अपंग व्यक्ति को घृणा की दृष्टि से देखता हैं। यही हमारा वर्तमान समाज हैं।

'दैनिक भास्कर' में प्रकाशित लघुकथा 'इच्छाशक्ति ने अपंग को बनाया धावक' इस लघुकथा में एक लड़की है जो एक पैर से अपंग हैं। उसके सहपाठी उसका मजाक बनाते रहते हैं। एक दिन वह अपने अध्यापक से खेल के बारे में पूछना चाहती है, तो उसका अध्यापक उपेक्षापूर्ण भाव से कहता है, "क्या करोगी खिलाड़ियों और खेल के बारे में जानकर पहले अपने पैरों को तो देखो तुम तो ठीक से चल भी नहीं सकती।"[26] तब उसने बैसाखी का सहारा लेते हुए कहा, "आज मैं अपाहिज हूँ किन्तु चल नहीं सकती सर! याद रखिये यदि मन में पक्का इरादा हो तो कुछ भी असंभव नहीं है।"[27] उसकी यह बात सुनकर अध्यापक और सभी बच्चें एक साथ हंस पड़े। फिर 1960 के ओलम्पिक में दो स्वर्ण पदक जीतकर उसने निःशक्तता को मात दी।

यह समस्या निःशक्तजन को सबसे ज्यादा परेशान करती है कि समाज उसका साथ न देकर उसका उपहास उड़ातें हैं। समाज उसने अपनाकर घृणा का भाव रखता हैं। जो एक उन्नत देश के विकास में बाधा उत्पन्न करता हैं।

(ब) राजनैतिक समस्याएँ

सरकार हमेशा से ही समाज के हर वर्ग को आगे लाने और सुधारने के लिए प्रयत्नशील रहती है, परन्तु हमारे देश में भ्रष्ट नेताओं और अफसरों का राज हमेशा से ही चलता आया हैं। इन्हीं भ्रष्ट नेताओं व गद्दारों के कारण ही हमारे भारतवर्ष को गुलामी का मुँह देखना पड़ा था। आज जनतंत्र है फिर भी नेताओं की ओट लेने वाले अफसरों की वजह से सरकारी नीतियाँ दब जाती हैं। जिसका पूरा दोष इन भ्रष्ट नेताओं का होता है परन्तु दोष दिया तो सरकार को ही जाता है। जब सरकार कोई नीतियाँ बनाती है तो वह अपने लिए नहीं बनाती वह जरुरतमंदों के हित में ही बनाती हैं। सरकार ने शुरु से ही निःशक्तजनों के लिए कई कार्यक्रम चला रखें हैं। जो समाज के असहयोग व भ्रष्ट नेता और अफसरों की वजह से सफल नहीं हो सकें। दिव्यांग वर्ग के लिए सरकार का रवैया सकारात्मक रहा हैं। वर्तमान में प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने इन्हें दिव्यांग नाम सम्मानपूर्वक दिया हैं। जिससे इनके अन्दर हीनभावना न जन्में। अपंग व्यक्ति (समान अवसर, अधिकारों की रक्षा और पूर्ण सहभागिता) 'अधिनियम 1995' को लागू करना, 'दिव्यांगों के लिए राष्ट्रीय नीति 2006 का निर्माण तथा संयुक्त राष्ट्र संघ की निःशक्तों के लिए अधिकार सभा का घोषणा–पत्र हस्ताक्षर (2007 में) इस प्रकार के प्रयास इन लोगों के हित के लिए हमारी सरकार कर रही हैं।

आज का व्यक्ति शारीरिक व मानसिक रूप से अपंग नहीं है, अपितु 'शरद जोशी' द्वारा रचित 'अंधों का हाथी' एक ऐसा व्यंग्य नाटक है, जिसमें राजनीतिक दृष्टि से व्यक्ति की मानसिक निःशक्तता को चित्रित करता हैं। राजनेता अंधों के प्रतीक बन गए हैं। वे अपने मतलब के लिए भोली–भाली जनता को मूर्ख बनाते हैं। जनता को झूठे आश्वासन देकर नेता की गद्दी पा जाते हैं। यहीं सब कुछ आज की प्रवंचक एवं कुटिल राजनीति में हो रहा है, जिसका देशकाल की दृष्टि से यथार्थ बिम्ब प्रस्तुत करने के उद्देश्य में नाटककार को पूर्ण सफलता मिली हैं। आजकल के नेता राजनीति में धृतराष्ट्र बन बैठें हैं, साहित्यकार साहित्य में इनकी अपंगता को सामने लाकर जनता की आन्तरिक दृष्टि को जागृत कर रहें हैं। विकासशील देशों में निःशक्त व्यक्तियों की स्थिति, राष्ट्रीय स्तर पर चौतरफा विकास से घनिष्ठ रूप से जुड़ी हुई हैं। उनकी समस्या का निदान तीव्र आर्थिक और सामाजिक विकास के लिए पर्याप्त अंतर्राष्ट्रीय स्थितियों के निर्माण पर निर्भर करता हैं। अतः विश्व कार्य–योजना के कार्यान्वयन के लिए अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था की स्थापना प्रत्यक्ष रूप में सुसंगत हैं।

हमारे देश में रोजगारों में अपंग लोगों का प्रतिशत गिरता जा रहा हैं। सर्वे के अनुसार, 1981 में जब अन्तर्राष्ट्रीय दिव्यांग वर्ष बनाया गया था तो उस वर्ष 12,500 निःशक्तजनों को रोजगार दिया गया था। उसके बाद 1995 में मात्र 3,700 लोगों को ही रोजगार दिया जा सका। 1995 के बाद आंकड़ें इस देश की सरकार के पास उपलब्ध नहीं हैं। निःशक्तजनों की आबादी कुल आबादी के अनुरूप ही बढ़ती चली जा रही हैं। रोजगार केन्द्रों पर दिव्यांग जन की बेरोजगारी वाली लाइन बढ़ती जा रही हैं। 1994 में 3,40,000 दिव्यांग व्यक्ति रोजगार केन्द्र में पंजीकृत हुए। 1995 में इनमें 13,00,000 की वृद्धि और हो गई, दूसरी और 1994 के मुकाबलें 1995 में दिव्यांग जन को दी जाने वाली नौकरियों की संख्या में 700 की कमी हुई। इस सर्वे में भारत के सार्वजनिक क्षेत्र की, निजी क्षेत्र की और बहुराष्ट्रीय कुल मिलाकर 100 प्रसिद्ध कंपनियों की ओर से रोजगार संबंधी प्रश्नावली के जरिए जानकारी दी गई थी। दिव्यांग जन कानून में इस बात का प्रावधान है कि निजी क्षेत्र में पाँच प्रतिशत या अधिक रोजगार देने वालों को प्रोत्साहन दिया जाएगा, पर अभी तक ऐसी कोई योजना नहीं बनाई गई हैं। इस समय निजी क्षेत्र के नियोक्ताओं में दिव्यांग कर्मचारी रखने के लिए कोई टैक्स छूट या सुविधा नहीं मिलती हैं।

मनुष्य व समाज हमेशा से स्वार्थी ही रहा हैं। वह बदले की आस में ही कुछ देता है, किसी को तब देता है, जब उसे लगता है कि यदि न दिया गया तो व्यक्ति छीन लेगा। आज देश में संगठित क्षेत्र में मजदूरी असंगठित क्षेत्र से बहुत ज्यादा है और असंगठित क्षेत्र में न सिर्फ जमकर काम लिया जाता है, वरन् हर प्रकार का शोषण भी किया जाता हैं। यही स्थिति दिव्यांग जन की है

सरकार उसे नाममात्र की सरकारी नौकरियों में छूट देती है और उस छूट का फायदा भी उन लोगों तक नहीं पहुँच पाता। हमारे भ्रष्ट नेता उसे उन तक पहुँचने ही नहीं देते। ऐसी कुछ लघुकथाएँ हैं। जिसमें राजनीति खोरों की असलियत दिखाई देती हैं।

'शैलेशदत्त मिश्र' की लघुकथा 'आरक्षण' में निःशक्तजनों के दिए गए आरक्षण में व्याप्त राजनेताओं का भ्रष्टाचार की पोल बहुत ही सुन्दर ढ़ंग से खोली गयी हैं। इस लघुकथा का पात्र गणेश पैरों से लाचार है उसके पास इस बात का प्रमाण पत्र होने पर भी नौकरी नहीं मिलती। सकलांग व्यक्ति को नौकरी मिल जाती है जबकि उसके समान शैक्षिक योग्यता रखने वाला निःशक्त गणेश को नौकरी नहीं मिल पाती। नौकरी तो मिल सकती थी परन्तु उससे पहले उसे राजनेताओं की सिफारिश करवा के घूस देनी पड़ती। दिव्यांग होकर भी गणेश को नौकरी नहीं मिल पाती तो उसकी माँ कोसती हैं। वह तो अपनी माँ को कहता है, "माँ! तुम तो बेकार ही सरकार पर नाराज हो रही हों। सरकार निःशक्तों को प्राथमिकता तो देती पर हाँ! ये बात अलग है कि प्राथमिकता शारीरिक निःशक्त को नहीं मिल पाती क्योंकि उसके पास राजनीति की पावर नहीं हैं।"[28] देश की भ्रष्ट राजनीति का वर्णन खुलकर दिखाया गया है। हमारे देश में रिश्वतखोरी के कारण न जाने कितने अनुभवी लोग घर बैठें रह जाते हैं और घूसखोरी के कारण नालायक व्यक्ति राज करने लगता हैं। यहीं बीमारी हमारे युवा वर्ग को खाये जा रही हैं। दिन–प्रतिदित बढ़ती जा रही हैं रुकने का नाम ही नहीं लें रही हैं।

इसी प्रकार 'डॉ. अमरनाथ चौधरी अब्ज' की लघुकथा 'स्वाभाविक' का सहज ही अवलोकन किया गया है– जिसमें एक निःशक्तपात्र जिसके दोनों पैर कटे हुये हैं। वह निजी संस्था में नौकरी करता हैं। उसका मालिक रोब जमाता है तो वह भी जवाब देता है कि नौकरी पर रखा है तो कोई एहसान नहीं किया, हराम का नहीं खाता चौबीसों घंटों सेवा देता हूँ और वो भी सभी कार्य समय पर, दूसरों की तरह हो–हल्ला भी नहीं करता। पैरों से दिव्यांग हूँ, दिमाक से नहीं मेरे छह माह का कार्य दूसरे के छह वर्षों के कार्यों पर भारी हैं जिसे आप स्वीकारते हैं लेकिन मैं आगे पीछे नहीं फिरता। यहाँ पर निःशक्त व्यक्ति को कमजोर समझकर संस्था का मालिक एहसान दिखाता हैं। तो इस पात्र ने भी उसको अच्छी सुनाई हैं। निःशक्त को कमजोर व हीन समझकर उस पर शासन करना व्यक्ति के खून में जमा कीड़ा हैं। वह उसका हौंसला नहीं बढ़ाता बल्कि उसको कम पैसे देकर ज्यादा काम लेना चाहता है और लेते भी हैं। क्योंकि ये लोग सोचते हैं कि दर–दर की ठोकरें खाने से अच्छा है पेट के लिए जो मिल जाये उसी में संतुष्ट हो जाऐं।

'समर्थ' लघुकथा का पात्र उदय नई सोच के उदय की जरुरत का एहसास कराता हैं। अपंग होकर भी वह सामान्य श्रेणी से ही नियुक्त होना चाहता है, क्योंकि उसमें ऐसी सामर्थ्य हैं। अधिकारी के पूछने पर उदय कहता है सर–मेरा तो काम चल जाएगा। इस निःशक्त आरक्षित सीट का लाभ मेरे किसी भाई को मिल जाए तो ज्यादा अच्छा रहेगा।

राजस्थान पत्रिका 8 अप्रैल के 2015 के अंक प्रकाशित 'निःशक्त छात्रों की उच्च शिक्षा एक कॉलेज के भरोसे' निःशक्तजन–पढ़ लिखकर कुछ बनने की तमन्ना रखने वाले निःशक्त बच्चों के भविष्य की भी ठौर नहीं हैं। प्रदेश में मूक बधिर एवम् दृष्टिबाधित् बच्चों के लिए उच्च शिक्षा के शिक्षण व्यवस्था का हाल स्कूल शिक्षा से भी बदतर है। बाहरवीं कक्षा पास करने के बाद कॉलेज में पढ़ने का सपना देखने वाले मूक बधिर व दृष्टिबाधित बच्चों के लिए कॉलेज शिक्षा दूर की कौड़ी साबित हो रही हैं। सूचना का अधिकार कानून में मिली जानकारी के अनुसार विशिष्ट श्रेणी के बच्चों के लिए राजस्थान राज्य में एक मात्र सरकारी कॉलेज जयपुर के पोद्दार मूक बधिर स्कूल के भवन में ही संचालित हैं। ऐसे में बाहरवीं के बाद सैंकड़ों दिव्यांग छात्र कॉलेज शिक्षा प्राप्त नहीं कर पातें। सूत्रों की माने तो राज्यभर के संचालित चार उच्च माध्यमिक विद्यालय से करीब 200 तथा सामान्य बच्चों के साथ पढ़ने वाले सैकड़ों बच्चें उत्तीर्ण होते हैं लेकिन कॉलेज नहीं होने के कारण इन बच्चों को उच्च शिक्षा नहीं मिल पाती।

विशेष शिक्षक भी नहीं–जयपुर शहर के पोद्दार स्कूल परिसर में संचालित कॉलेज 2015 की साल में शुरु तो कर दिया गया लेकिन यहाँ विशेष शिक्षकों के पद तक स्वीकृत नहीं किए गए। इस राजकीय महाविद्यालय में विषय व्याख्याता तथा साइन लैंग्वेज इंटरप्रिंटर तक नहीं हैं। ऐसे में विद्यार्थियों को प्रतियोगी परीक्षाओं की तैयारी करने में भी दिक्कत आती है प्रतियोगी छात्रों को प्राइवेट इंस्टीट्यूट में इंटरप्रिंटर से अध्ययन करना पड़ता है जो कि महंगा पड़ता हैं।

आवास भी नहीं–जयपुर स्थित महाविद्यालय में हॉस्टल का इंतजाम नहीं होने के कारण छात्रों को किराये के मकान में रहना पड़ता हैं। मूक बधिर होने के कारण दैनिक दिनचर्या के दौरान संवाद करने में भी परेशानी होती हैं। इन बच्चों के कॉलेजों में आने जाने के लिए भी परिवहन के साधनों का इंतजाम नहीं हैं। ऐसे में विद्यार्थियों को आम यात्रियों के साथ यात्रा करनी पड़ती हैं। छात्रों का कहना है कि कई बार यात्रा के दौरान अपनी बात समझाने में भी परेशानी होती हैं।

जयपुर के अलावा राजस्थान राज्य के किसी भी जिले में मूक बधिर बच्चों के अध्ययन के लिए महाविद्यालय नहीं हैं। ऐसे में इन जिलों के बच्चें उच्च शिक्षा प्राप्त नहीं कर पातें। बारहवीं की शिक्षा के बाद कॉलेज शिक्षा करके अच्छी नौकरी का सपना देखने वाले विशेष श्रेणी के युवाओं का

करियर भी अधर में हैं। ऐसे में सामान्य कॉलेजों में दाखिला नहीं मिलता और सरकारी कॉलेज मात्र एक हैं। निःशक्तजन पर आमजनता का ध्यान केन्द्रित हो, इनकी समस्याओं को समझें, इसका प्रचार–प्रसार करने का सक्षम माध्यम साहित्य ही हैं।

इस साहित्य के माध्यम से ही हम इस समस्या पर पूरे विश्व का ध्यान केन्द्रित करवा सकते हैं। इनके विकास के मार्ग में बनने वाली बाधा को दूर करना होगा। राजनीतिक समस्या सामान्य नागरिकों को सबसे अधिक परेशान करती हैं। ज्यादा गरीब आदमी और भी गरीब होता जा रहा है और अमीर अधिक अमीर बनता जा रहा हैं। इन दोनों के बीच का नागरिक सबसे ज्यादा मार खाता हैं। क्योंकि आज की राजनीति सिर्फ अमीर लोगों से ही हाथ मिलाती हैं बाकि दोनों वर्गों की तरफ ध्यान ही नहीं देता। अब बात आती है निःशक्तजन की समस्या की तो उनके लिए समाज में बाकि तो सारी समस्याएँ बनी ही रहती है परन्तु राजनैतिक मामले भी उनको मोहलत नहीं देतें। उनके लपेटे में सभी जा आते हैं।

(स) आर्थिक समस्याएँ

मनुष्य के लिए विज्ञान ने जहाँ सुविधाएँ दी है, वहीं दूसरी ओर उनका सुख चैन भी छीन लिया हैं। जहाँ मशीनें हैं वहाँ दुर्घटना भी अनिवार्य रूप से होती हैं। जल और थल पर तेज गति दौड़ने वाले वाहन, आकाश में उड़ते वायुयान पूर्ण सावधानी के पश्चात् भी दुर्घटनाग्रस्त हो जाते हैं। इसी प्रकार घर, विद्यालय, प्रयोगशाला, खेल के मैदान, उद्योग धन्धे या अन्य कार्य स्थलों पर व्यस्त कोई प्राणी कब, कहाँ और किस रूप में निःशक्त हो जाएगा कुछ भी कहा नहीं जा सकता। इसी प्रकार प्राकृतिक प्रकोप, बाढ़, अकाल, भूंकप, भूस्खलन, अग्नि, तूफान अपने पीछे मृत और निःशक्तजन को छोड़ जाते हैं। अतः अपंग होने के पीछे कोई भी कारण खोजना उचित नहीं। इन सब विपत्तियों से छुटकारा हर अपंग नहीं पा सकता। क्योंकि हमारे देश में अमीर और गरीब के बीच की खाई बहुत गहरी हैं। ये दुर्घटना होने पर अच्छे परिवार वाले तो अच्छे डॉक्टरों से अपना सफल इलाज करवा लेते हैं। परन्तु गरीब व सामान्य वर्ग का व्यक्ति इलाज न करा पाने के कारण या तो मौत का शिकार हो जाता है या फिर जिन्दगी भर चारपाई पर पड़ें रहने को मजबूर हो जाता हैं। इस स्थिति में घर की आर्थिक स्थिति भी बिगड़ जाती हैं। क्योंकि जब परिवार में एक कमाने वाला हो वहीं अपंगता का शिकार हो जाता है तो परिवार में बाल बच्चें भूखे मरने को मजबूर हो जाते हैं।

भारत जैसे विशाल देश में अर्थाभाव एवम् अज्ञानता के कारण भी निःशक्तता बढ़ी हैं। अधिकांश परिवारों को आधे पेट और कुछ लोगों द्वारा अत्याधिक भोजन, सस्ती और सड़ी–गली

खाद्य वस्तुओं का सेवन, बीमारी की अवस्था में आर्थिक विपन्नता के कारण चिकित्सा न होना, गंदी और सीलन–युक्त कोठरियों में निवास, भाग्य का दोष, झाड़–फूँक, अधिक संतान आदि प्रायः हर प्रकार की निःशक्तता का कारण बनी हैं। भारत सरकार इस वर्ग को सामान्य दौड़ मे ंलाने के लिए प्रयास कर रही हैं। भारतीय संविधान के अनुसार, निःशक्तजनों की आवश्यकताओं की पूर्ति करने की जिम्मेदारी राज्य सरकारों की है, फिर भी केन्द्र सरकार इस क्षेत्र में महत्त्वूपर्ण भूमिका निभाती हैं। केन्द्रीय कल्याण मंत्रालय सरकार के विभिन्न विभागों, मंत्रालयों और गैर–सरकारी संगठनों के साथ विचार–विमर्श करके निःशक्तों के कल्याण के लिए जरुरी उपाय–योजना करने के लिए प्रयत्नशील हैं। स्वास्थ्य और परिवार कल्याण, शिक्षा विभाग, महिला एवं बाल विकास विभाग, श्रम मंत्रालय, कार्मिक और प्रशिक्षण विभाग द्वारा इनके साथ घनिष्ठ संबंध रखा जाता है तथा उनके शिक्षण–प्रशिक्षण एवं पुनर्वास की दिशा में ठोस कदम उठाए जाने की दिशा में प्रयासरत हैं।

राष्ट्रीय निःशक्त आर्थिक विकास महामण्डल–निःशक्तों के आर्थिक उन्नति के लिए और स्वयं रोजगार के लिए निःशक्त आर्थिक विकास महामण्डल द्वारा यह योजना संचालित होती हैं। इस योजना का मुख्यालय फरीदाबाद में स्थित है। ग्रामों की आर्थिक निःशक्तता–देश के गतिशील विकास के संबंध में हमेशा आर्थिक नीतियों के नियम बनाए जाते हैं। गाँवों में अच्छा अध्यापक, डॉक्टर, अनुसंधानकर्ता, बुद्धिजीवी रहने के लिए तैयार नहीं हैं। पढ़े–लिखें युवक गाँव छोड़कर शहरों में कच्ची बस्तियों में रहते हैं, स्वच्छता और चिकित्सा की दृष्टि से पीड़ित होते हैं। जनसंख्या में दब जाते हैं। गांवों में बाहरवीं पंचवर्षीय योजनाओं के बावजूद भी आर्थिक प्रगति और नीतियों का निर्धारण नहीं हो सकां। आवश्यक सुविधाएँ और सेवाएँ नहीं पहुँच सकीं। वर्तमान आर्थिक सुधार की नीति प्रतिकूल हैं। कृषि नीति में कीमतों की दृष्टि से बहुत बड़ा फासला हैं। चीनी, खाद्य तेल का उत्पादन कम हो गया हैं। जिसमें गाँवों तक जिंस नहीं पहुँचते। महँगाई के कारण गाँवों के किसान और ग्रामस्थ किसी भी प्रतियोगिता का सामना नहीं कर पा रहे हैं। शहरों में करोड़ों रूपये उद्योगों पर खर्च होते हैं, परन्तु ग्रामों को आर्थिक संरक्षण नहीं हैं। देश के विकास के ढांचे को मजबूत करना है तो ग्रामों की आर्थिक पीड़ा दूर करनी होगी।

गाँवों में कृषि के साथ मुर्गीपालन, मछली, पशुपालन आदि व्यवसाय चलते हैं तो इन्हें प्रशासन और गाड़ियों का खर्चा देना चाहिए। देश के विकास की दृष्टि से इन व्यवसायों पर दृष्टि केन्द्रित करनी चाहिए। ग्रामों की असफलताओं को कम करना चाहिए। विकास की धाराओं को ग्रामों की तरफ मोड़ना चाहिए। ऋण और उपज की विक्रय में सहकारी ढांचे में परिवर्तन करना चाहिए। किसानों को व्यापारियों के चंगुल से बचाना चाहिए। आर्थिक असफलताओं की कमी पूरी करने से ही देश की विकास धारा बढ़ेगी।

निःशक्तता अभिशाप नहीं है। अपंग व्यक्ति समाज पर बोझा नहीं हैं। वे भी आत्मनिर्भर होकर समाज के विकास में योगदान दें सकते हैं। उनकी योग्यता व प्रतिभा को उभारने के लिए उन्हें अवसर मिलना चाहिए। कई गरीब व आर्थिक तंगी से परेशान निःशक्तजन अपनी अपंगता को अभिशाप मानता हैं। ये सोचते हैं कि वे किसी के लायक नहीं है, परन्तु अगर निश्चय दृढ़ हो तो परिश्रम साधना के बल पर ये दिव्यांग भी आत्मनिर्भर तथा साक्षर हो सकते हैं और समाज के एक प्रेरणा स्तम्भ बन सकते हैं।

कुछ लघुकथाएँ जिनमें निःशक्तजन की आर्थिक स्थिति का चित्रण हुआ है– 'डॉ. आशा पुष्प' की लघुकथा 'जिजीविषा' में वह अपनी आँखों से देखती है कि एक बुजुर्ग व्यक्ति मूँगफली बेच रहा हैं। वह जोर–जोर से आवाज दें रहा हैं। वह बिल्कुल अंधा हैं। कथा लेखिका की कुछ जानने की जिज्ञासा हुई उसने उससे कुछ मूँगफली खरीदी। वह यह देखना चाहती थी कि वह अंधा होने पर भी कैसे सही तौल करेगा? उसके सामने उसने वह भी करके दिखा दिया। अब वह जानना चाहती थीं कि वह खुल्लें पैसों को कैसे गिन पाता होगा? किन्तु अब उसे आश्चर्य हो रहा है कि बिना आँखों के भी उसने ये सब काम इतनी सफाई से किये की आँखों वाले भी देखते रह जाए। ये सब उसे आर्थिक कमजोरी के कारण करना पड़ रहा था। वरना वह भी अपने घर आराम से चारपाई पर होता। कुछ खाने के लिए तो कुछ तो करना ही पड़ेगा। यह सब वह अंधा आदमी कर रहा हैं।

'एक और लघुकथा डॉ. सतीशराज पुष्पकरण', 'स्वाभिमान' में एक निःशक्त व्यक्ति अपना पेट भरने के लिए खीरा बेचता हैं। यहाँ पर उसका स्वाभिमान चित्रित हुआ है कि वह ग्राहक से कहता है साहब मुझे सहानुभूति नहीं स्वाभिमान का पैसा चाहिए। यदि एक भी खीरा खराब निकले तो वापिस लें आना एक पैसा न लूँगा।

'गूंगी और गंगाराम' लघुकथा कृति वार्षिक 2006 में प्रकाशित हुई। इस कथा में नायिका गूंगी है जिसकी माँ उसे जन्म देते ही गुजर जाती है धीरें–धीरें वह जवान हो जाती हैं और वह अपने पिता के साथ रहती हैं। एक रईस का आवारा लड़का उस पर नजर रखता हैं। मौका पाते ही वह उसे अपनी हवस का शिकार बना लेता हैं। उसका गरीब पिता उसके खिलाफ कानूनी कार्रवाई नहीं करता क्योंकि वह डरता है कि वह अमीर हैं। उसके खिलाफ यदि वह केस करता है तो उसे मरवा भी सकता हैं। यह सोचकर वह स्वयं आत्महत्या कर लेता हैं। अपनी बेटी के बारे में भी कुछ नहीं सोचता। अब गूंगी के गर्भ में उस दुष्ट का बच्चा पल रहा हैं। समय पर बच्चा भी पैदा हो जाता है। माँ की ममता के कारण वह उसका त्याग नहीं करती बल्कि उसके साथ ही

रहती है। अब गूंगी और गंगाराम साथ–साथ रहते हैं। इस लघुकथा में समाज की आर्थिक स्थिति अच्छे से ऊभरकर आई हैं। गरीब होने के कारण गूँगी दुष्कर्म का शिकार हो जाती हैं। दुष्कर्म करने वाले को पता है कि वह गरीब व निःशक्त है, उसके खिलाफ कोई बोलने वाला तक नहीं हैं।

'नारी का मूल्य' लघुकथा 'ओमप्रकाश शर्मा' की है 'जो शोध प्रभांजलि' के दिसम्बर–जनवरी 2010 में प्रकाशित हुआ थी। इसमें एक पहाड़ी महिला है जो जंगल में लकड़ी बीननें जाती हैं। जहाँ पर पहाड़ी से फिसले पर उसकी पसली की सारी हड्डियाँ टूट जाती हैं। इलाज के लिए घर वाले उसे डॉक्टर के पास ले जाते हैं। रास्ते में रुककर वो एक स्थान पर चाय पीते हैं। चाय पीते समय वो आपस में चर्चा करते हैं। एक कहता है कितना खर्चा आएगा? दूसरा कहता है बीस–तीस हजार का खर्चा तो आ ही जायेगा क्योंकि जख्म गहरा हैं। इस पर अगर जिंदगी बच भी जाएगी तो सारी जिन्दगी चारपाई में बैठकर ही खायेगी। एक कहता है इतने में तो दूसरी पत्नी ही आ जाएगी। इस लघुकथा में यह दिखाया गया है कि पैसें की कीमत आदमी से ज्यादा हैं। यही कारण है कि हमारे देश में बहुत सारे अपंग लोग आर्थिक स्थिति के कारण परेशानी उठाते हैं। क्योंकि आर्थिक स्थिति ठीक न होने के कारण अच्छा इलाज नहीं करवा सकतें।

'अंधा' लघुकथा 'संजीव तिवारी' में एक लड़की अपने पिता के नौकरी में तबादला होने के कारण 'राजिम' में आती हैं। वह इतनी घमण्डी लड़की है कि वह अपने अलावा किसी को कुछ नहीं समझती। वह सभी को अपनी और आकृष्ट करना चाहती हैं। यदि उसकी तरफ कोई नहीं देखता तो वह चिढ़ जाती। एक अंधा लड़का उसके साथ ही पढ़ता है। वह उसकी तरफ नहीं देखता तो उसे बहुत गुस्सा आता हैं। वह उसके पास आकर अचानक साइकिल की घण्टी बजा देती है। जिससे वह अंधा हड़बड़ाकर गिर जाता हैं। वह गुस्से में चिल्लाती है कि अंधा कहीं का देख नहीं सकता। धीरें–धीरें पढ़ाई में पीछे रह जाती हैं। आटर्स में पढ़ाई करती है। अब उसकी शादी 'रायपुर में पोस्ट मास्टर' से होती है। जब उनकी शादी की रिसेप्शन पार्टी होती हैं। तो उसमें सभी लोग आते हैं। अचानक एक सुन्दर सा यवुक आता हैं। सभी लोग उसकी आवभगत मे ंलग जाते हैं। तो वह लड़की उसे देखकर आश्चर्य से देखती है, ऐसा कौन व्यक्ति है जिसकी आवभगत में सब व्यस्त हो गये। वह देखकर उसे पहचान लेती है और कहती है यह वही लड़का है जिसे वह परेशान करती थी। अंधा भी कहा–आज उसे पता लगा कि वह सचमुच ही अंधा हैं। वह आज आत्मग्लानि से भर गई थी। पैसें के घमण्ड में वह जिसे परेशान करती थी वही अंधा आदमी आज उनको आशीर्वाद दें रहा हैं।

'रत्नकुमार सांभरिया' 'प्रतिनिधि लघुकथाशतक' में 'आटे की पुड़िया' लघुकथा में एक मजदूरिन हैं। जिसका पति दिहाड़ी मजदूरी करते समय चोट लगने से पैर से अपंग हो जाता हैं। अब कमाने वाला घर में बैठने को विवश है तो खाना कहाँ से आये। उम्र से जवान मजदूरिन का डेढ़ साल का बेटा कुपोषण का शिकार हैं। भूख के मारे बच्चा माँ के स्तन काटता हैं। माँ स्वयं भूखी है दूध कहाँ से उतरे। मजदूरिन के पेट में भूख है, उसका बेटा भूखा है और घर में चारपाई पर पड़ा पति के पेट में भी भूख हैं। भूख बड़ी दुनियाँ छोटी उसके पास मात्र पाँच रुपये है, वह आटा खरीदे या.........? कमाने वाला स्वयं अपाहिज हैं। "वह पाँच रूपये का आटा लेने दुकान पर जाती है। दुकानदार उसे धमकी देता है—पाँच रुपये का क्या आटा आयेगा? थोडा सा आटा पुड़िया में लेकर वह अपनी झोंपड़ी की ओर चली जाती है।"[29]

(द) पारिवारिक समस्याएँ

मनुष्य के जीवन में परिवार की अहम् भूमिका होती हैं। परिवार बच्चें की प्रथम पाठशाला व उसकी माँ उसकी प्रथम गुरु होती हैं। परिवार के सदस्य सभी एक साथ—मिल—जुलकर रहते हैं और एक—दूसरे के सुख—दुख में भी काम आते हैं। जब परिवार के किसी सदस्य को कोई समस्या या दुर्घटना घट जाती है तो परिवार के सदस्य सब संभाल लेते हैं। दुर्घटना से ग्रसित मनुष्य में भी जीने की आशा जाग उठती हैं। परन्तु जब परिवार के सदस्य उसके बुरे समय में उसका साथ नहीं देते तो वह इंसान हीन भावना का शिकार हो जाता हैं। आज भी हमारे देश में अशिक्षा की कमी नहीं हैं। अनपढ़ होने के कारण लोगों में गरीबी, बेकारी, भूखमरी, कुपोषण के कारण शारीरिक एवं मानसिक दिव्यांग का जन्म होता हैं। किन्तु शारीरिक और मानसिक निःशक्तता के जन्म का यही प्रमुख कारण है। ऐसा ही नहीं है कि इसके साथ ही इन निःशक्तों का जन्म एक प्रमुख कारण है— भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति की श्रेष्ठ परम्पराओं को भुला देना।

शारीरिक एवं मानसिक निःशक्त का जन्म जिस माता—पिता के द्वारा होता है, वे भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति की श्रेष्ठ परम्पराओं का सही ढंग से पालन नहीं करने के कारण ऐसे बच्चों का जन्म होता हैं। पुरुष को चाहिए कि जब स्त्री व्रत में हो या महत्त्वपूर्ण तिथि हो, तब गृहस्थ धर्म का आचरण न करें जैसे—अमावस्या, पूर्णिमा, एकादशी, शिवरात्रि, दीपावली, होली ऐसे पर्वो पर स्त्री—पुरुष गृहस्थी का आचरण न करें। ऐसे पर्वों में और व्रत में गृहस्थ आचरण करने से ही दिव्यांग बच्चों का जन्म होगा। इसी प्रकार प्रतिदिन सुबह सूर्योदय एवं सूर्यास्त तथा दोपहर 12 बजे के आस—पास भी माता—पिता को ऐसा आचरण नहीं करना चाहिए। इस समय यदि ऐसा कार्य किया जाता है तो निश्चित ही निःशक्त बच्चें का जन्म होगा, क्योंकि सूर्यास्त एवं दोपहर 12 बजे के

आसपास का यह समय ध्यान, पूजा, अर्चना का होता है। इस समय किया गया गलत आचरण का परिणाम भी गलत होता है अर्थात् दिव्यांग बच्चें पैदा होंगे।

इसी प्रकार हमारे भारतीय समाज में गर्भवती स्त्री को सूर्यग्रहण, चंद्रग्रहण के समय उसे विशेष सावधानी बरतने की सलाह दी जाती है। कुछ गर्भवती स्त्री इसका पालन नहीं करती, परिणाम स्वरूप निःशक्त बच्चें को ही जन्म देती हैं। आज विज्ञान भी इन सब कारणों को मानने लगा हैं।

निःशक्तता का कारण कुछ भी हों, किन्तु उसका परिणाम सबसे पहले परिवार को ही भुगतना पड़ता हैं। फिर उसके बाद समाज में आता हैं। निःशक्त चाहे शारीरिक हो या मानसिक जिस परिवार में होता है उसे ही पता चलता हैं। पूरा परिवार कभी भी, सुख, शांति के वातावरण में नहीं रह पाता है परिवार के प्रत्येक सदस्य को उस निःशक्तजन की चिंता बनी रहती है और पूरा परिवार तथा वह स्वयं अंगहीन सदस्य भी जीवन भर इस दुःख व चिंता से ऊबर नहीं पाता। निःशक्त व्यक्ति, परिवार, समाज और देश सभी इस समस्या से जूझते हैं।

कुछ नियम हैं जो जिनको अपनाने से इस समस्या से बचा जा सकता है।

1. सर्वप्रथम हमें अपने भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति के अनुरूप गृहस्थ धर्म का आचरण करना चाहिए। संयम का सहारा लेना चाहिए ताकि निःशक्त बच्चों का जन्म ही न हो तथा स्वयं अपंग व्यक्ति व परिवार, समाज, देश को उस त्रासदी से जूझना पड़ें।
2. निःशक्त व्यक्ति का शारीरिक और मानसिक रूप से हौंसला और हिम्मत बढ़ाना चाहिए।
3. सम्पूर्ण परिवार में एक जैसा वातावरण हो सके तो बनाना चाहिए, जिससे दिव्यांग व्यक्ति को अपने निःशक्त होने का अहसास न हों।
4. शारीरिक निःशक्त व्यक्ति की शिक्षा की अच्छी व्यवस्था करनी चाहिए, यदि वह हाथ–पैर से दिव्यांग है तो वह आराम से पढ़–लिख सकता हैं।

समकालीन हिन्दी लघुकथाओं में कुछ लघुकथा इस प्रकार की है जो निःशक्तजन अपनों के द्वारा ही तिरस्कृत होते हैं।

'अरुण यादव' द्वारा लिखित लघुकथा 'परफेक्निशट बाबू' में शेखर बाबू इस लघुकथा का मुख्य पात्र है। उसकी शादी को सात साल हो गए परन्तु अब तक उनको कोई संतान नहीं हैं। वह बहुत परेशान रहता हैं। फिर उसे अचानक ही पता चलता है कि उसकी पत्नी माँ बनने वाली है तो वह काफी खुश होता हैं। जब बच्चें का पैदा होने का समय आता है तो वह पैदा तो नार्मल डिलिवरी से होता है परन्तु डॉक्टर शेखर बाबू को धैर्य बंधाते हैं। कि दुःख के साथ कहना पड़ रहा

है कि बच्चा अपंग पैदा हुआ हैं। वह अपनी पत्नी को उस बच्चें को त्यागने के लिए कहता हैं। परन्तु एक माँ ऐसा नहीं कर सकती क्योंकि जो माँ अपनी कोख में जिसे नौ महीने रखती हैं। वह उसे चील और कौवों के लिए ऐसे ही नहीं फेंक सकती। वह उसे समझाती है कि हम अब तक तो निःसंतान थे परन्तु भगवान ने अब हमें संतान तो दी। हमें भगवान का दिया हुआ फल ऐसे ही नहीं फेंकना चाहिए। शेखर बाबू उस बच्चें को बिल्कुल प्यार नहीं करता परन्तु एक दिन वह अपना पसंदीदा चैनल डिस्कवरी देख रहा था। तो उस समय प्रसिद्ध वैज्ञानिक 'स्टीफन्स हॉकिंस' की जीवनी चल रही थी। जब एक निःशक्त आदमी दुनिया में इतना नाम कमा सकता है। तो मेरा बच्चा क्यों नहीं? वह दौड़कर अपने बच्चें को गले लगा लेता हैं।

इस प्रकार निःशक्त व्यक्ति को अपने परिवार में प्यार मिलना बहुत जरुरी हैं। यदि उसके परिवार में ही उसकी अवहेलना हो तो उसमें हीन भावना आ जाती हैं।

आज आवश्यकता है कि समाज में दिव्यांग के प्रति सम्यक् सहानुभूति, सद्भाव और सहयोग की भावना उत्पन्न करना तथा उन्हें दिव्यागों के लिए उपयुक्त कार्य बताकर उनको यथेष्ठ आर्थिक एवम् अन्य सहयोग प्रदान करने की। साहित्य के क्षेत्र में ऐसे कवि और कहानीकारों की कमी नहीं हैं, जो निःशक्तों के प्रति संवेदनशील है और उनके लिए समाज में जागरुकता उत्पन्न करने के प्रयास में संलग्न है। यही विश्वास है कि जैसे–जैसे अपंगों के प्रति सहज भाव और व्यवहार व्यापक होते जाऐंगे। इसी प्रकार एक और लघुकथा जिसमें अपने ही बुजुर्ग पिता को उसके बहू–बेटे घर से निकाल देते हैं। इतना ही नहीं वह मानसिक रूप से निःशक्त भी है और जब वह पार्क में गिरा हुआ मिलता है तो कोई उसे उसके घर पहुँचाने आता हैं तो उसके बेटे और बहू उसे पहचानने से मना कर देते हैं।

रामकुवार घोटड़ की भारतीय हिन्दी लघुकथाएँ में 'धर्मपाल साहिब' की लघुकथा 'पहचान' हैं। जिसमें पार्क में बेहोश पड़े अमर बाबू पर किसी भले मानुष को तरस आ गया। कीचड़ से सने पैर! बढ़े हुए पैर! खिचड़ी बाल! मैले–कुचले पुराने कपड़ों की जेब में एक पुराना–सा कागज जिस पर उसके घर का पता था। उसी के आधार पर वह भद्र पुरुष अमर बाबू को रिक्शे पर लाद, पूछता–पछाता शहर के पॉश इलाके की एक अलीशान कोठी के सामने पहुँच गया। गेट के पास बंधा टोमी उन्हें देखकर भौंकने लगा। पोर्च में खड़ी ए.सी. कार की और बढ़ते कोठी के युवा मालिक के पाँव उन्हें देखकर गेट की ओर मुड गये कौन हैं? कहती हुई सजी–फबी मालकिन भी पीछे–पीछे आ गई। महीनों लापता। 'अलजाइमर्स' यादाश्त भूल चुकें, रोग के शिकार घर के बुर्जुग को अचानक इस अवस्था में देखकर जैसे वे सकते में आ गये।............बीमारी से छुटकारा मिल

चुका हैं। की सोच का दर्पण मानों एक झटके में चूर–चूर हो गया। फिर भी चेहरे पर अनभिज्ञता के भाव लाते हुए पति–पत्नी ने भद्रपुरुष पर प्रश्नों की बौछार कर दीं।

"कौन हैं ? ये किसे उठा लाये हो यहाँ? हम तो इसे पहचानते नहीं?

कभी देखा नहीं इधर आपको शायद गलतफहमी हुई हैं।

लेकिन इनकी जेब में से निकले पुर्जे पर तो यही पता लिखा हैं। आप खुद देख लो। आगन्तुक ने अपनी बात पर जोर डालते हुए कागज को आगे बढ़ाया।"[30]

लेकिन उसे वहाँ से हटते न देख मालकिन ने नजर बचाकर चुपके से टोमी को खोल दिया। वह जोर–जोर से भौंकता हुआ उन पर टूट पड़ा। रिक्शा वाला और भद्र पुरुष ने तो जैसे–तैसे जान बचा ली। अब वह सीधा अमर बाबू पर कूद गया और उनके मिट्टी से सने पैरों को चाट–चाटकर साफ कर दिया।

यहाँ मानवता पूरी तरह लज्जित हो गई है, एक जानवर भी जिसका दाना खाता है उसके प्रति अपनी वफादारी निभाता हैं। परन्तु आज का स्वार्थी मनुष्य जिस–माँ बाप को ही घर से निकाल देता हैं। उसे तो भगवान भी माफ नहीं करेगा।

'रामकुमवार घोटड़' की लघुकथा 'भारतीय हिन्दी लघुकथाएँ' में 'प्रताप सिंह सोढ़ी' की लघुकथा 'वसीयत' में एक औरत अपनी अन्धी बेटी का इलाज कराते–कराते इतनी थक जाती हैं। कि उसे खुद को ही आत्महत्या करनी पड़ती हैं। इस लघुकथा में सेल्वा नाम की औरत है–घर के बाहर स्ट्रीटवासियों की भीड़ बढ़ती जा रही थी। लोगों के समझ में नहीं आ रहा था, सात्विक जीवन जीने वाली सेल्वा ने आत्महत्या क्यों की ? कारण जो भी रहा हो पर अब सवाल यह था कि नौजवान अंधी बेटी की देखभाल कौन करेगा ? उसकी बेटी अंधी आँखों से आँसू बहाये जा रही थी। जितने मुँह उतनी बात माहौल में तहकीकात के लिए आई पुलिस के डण्डों और जूतों की आवाज से एकदम जिज्ञासा भरी मुर्देनी छा गई। रिश्तेदारों और परिचितों के बयान के बाद हुई खोजबीन में पुलिस को उसका हस्तलिखित पत्र मिलता हैं। "जिसमें उसने अपनी मजबूरी को व्यक्त किया है–मेरी बेटी की आँखों की ज्योति आ जाए। मैंने बहुत कोशिश की वह दुनिया को देख सकें। सभी प्रयास असफल होने पर, अपनी आँखों की वसीयत बेटी इल्वा के नाम कर मैं अपना जीवन प्रभु को सौंप रही हूँ।"[31]

मोहल्लें की औरतें छींटाकशी करती हुई कहती है– यह जघन्य कार्य करने से पूर्व उसने युवावस्था की दहलीज पर खड़ी बेटी के भविष्य का तो ख्याल किया होता। जबकि उसने अपनी बेटी को नेत्र देने के लिए ही आत्महत्या की थी।

निष्कर्ष

प्राचीनकाल से लेकर आज तक हिन्दी लघुकथा साहित्य में अहम् भूमिका निभा रही हैं। लघुकथा का अर्थ ही लघुकहानी अर्थात् अपने मर्म को बहुत थोड़े शब्दों में व्यक्त करना। लघुकथा की यही विशेषता है कि यह बिना भूमिका बनाये ही अपने अर्थ को सीधे–सीधे व्यक्त कर देती हैं। लघु आकार के कारण वर्तमान समय में पाठक की रोचक विधा भी बन गयी हैं। ये पाठक को अपने–आप में डुबों लेती हैं। लघुकथा हिन्दी साहित्य में 'गागर में सागर' भरने का कार्य करती हैं। साठ के दशक के बाद चर्चित और विकसित लघुकथा इतने कम समय में लोकप्रियता की मंजिल को प्राप्त कर चुकी हैं। शलीलता लघुकथा की सुन्दरता होती है और यदि अश्लीलता कथानक की माँग है, तो वह इतनी ढ़की होनी चाहिए कि पाठक के मन को काम–पीड़ा न पहुँचा सकें। मानव व इसके अलावा कथानकों पर रचित लघुकथाएँ मानवाक्षेपी होती हैं।

स्वतंत्रता के बाद देश के समाज में ऐश–आराम की ललक उठी, इसी ऐश–आराम ने भ्रष्टाचार, गुण्डागर्दी, चोरी, डकैती जैसे अत्याचारों को जन्म दिया। राजनीति में बढ़ा अपराधीपन को लघुकथा भी भांप गई थी और राजनीति के कपट को लघुकथा ने सापेक्ष चित्रित किया हैं। साहित्य की सभी विधाओं में पाठक के मन को काबू में करने का प्रयास किया जाता हैं। जिससे पाठक की उसमें रुचि बढ़े, वही लघुकथा इस कार्य में अधिक सफलता अर्जित करती है। क्योंकि वह आकार में लघु होने के कारण रोचकता को बढ़ा देती हैं। समाज में फैल रही कुसंगतियों से अवगत कराने के लिए लघुकथा से आसान तरीका नजर नहीं आता। समाज की समस्या को हर आदमी तक पहुँचाकर उस समस्या से अवगत कराना व समाधान ढूँढना, साहित्य की विधा का काम हैं।

इसी बदलाव में समाज के बदलते परिवेश को दिखाया गया हैं। साहित्य समाज के हर वर्ग पर नजर रखता है, यही वह समाज के दिव्यांग वर्ग पर रख रहा हैं। जो प्राचीन समय से समाज व परिवार की घृणा का शिकार होता आया हैं। साहित्य की हर विद्या समाज की समस्या को केन्द्र बिन्दु बनाती हैं। इसी पथ पर कहानी, उपन्यास के बाद लघुकथा ने निःशक्तजन को केन्द्र में रखा। हिन्दी लघुकथा में निःशक्त पात्रों को लेकर उनकी समस्या से परिचित करवाया हैं। एक अपंग व्यक्ति सामान्य मनुष्य से कितना लाचार होता हैं। फिर भी हमारी आत्मा पसीजती नहीं बल्कि मौके का फायदा उठाने में लग जाती हैं। एक मजबूर और लाचार आदमी की आत्मा दुखाना इंसानियत

नहीं हैं। हमने कई लघुकथाओं में ऐसा देखा हैं। कि एक निःशक्तजन का हौंसला बढ़ाने की बजाय उसका मजाक बनाया जाता हैं। जबकि हमने यह भी देखा है कि बहुत सारे निःशक्त व्यक्तियों ने सशक्त को धूल चटा दी हैं। क्योंकि जिसके अन्दर दृढ़ निश्चय व लक्ष्य प्राप्ति की जिज्ञासा हो वह कभी हार नहीं सकता। हमने लघुकथा के माध्यम से अपंग व्यक्ति की समस्याओं को अलग–अलग बिन्दुओं पर देखा है जैसे–राजनीतिक समस्या–जिसमें राजनेताओं के भ्रष्टाचार के दर्शन होते हैं। कई लोग बहुत मेहनत करने पर भी लक्ष्य प्राप्त नहीं कर पाते क्योंकि हमारे भ्रष्ट नेता पैसों के बल पर कामयाब को पीछे धकेल कर नालायक को गद्दी सौंप देता हैं।

पारिवारिक समस्या – में निःशक्तजन से परिवार वाले भी कई बार इतने परेशान हो जाते हैं कि वे उनसे पीछा छुटाना चाहते हैं। इसी प्रकार आर्थिक समस्या सभी की मूल जड़ है और निःशक्तजन भी कमाने से लाचार होकर भीख माँगने को मजबूर हो जाता हैं।

अतः लघुकथा में भी निःशक्तजन की पीड़ा को समझकर उसके प्रति सहानुभूति का भाव व्यक्त किया गया हैं। हम जानते हैं कि एक दिव्यांग जन को सिर्फ धैर्य और सहानुभूति की जरुरत होती है और यही उसे सही समय पर मिल जाये तो ये लोग देश का नाम रोशन कर सकते हैं।

≈≈≈≈

संदर्भ सूची

1. प्रतिनिधि लघुकथाशतक, रतनकुमार सांभरिया पृ. 11
2. करगा, शकुन्तला शर्मा पृ. 7
3. प्रतिनिधि लघुकथा, रतनकुमार सांभरिया पृ. 28
4. ″ ″ ″ पृ. 85
5. भारतीय हिन्दी लघुकथाएँ, डॉ. रामकुवार घोटड़, पृ. 184
6. ″ ″ ″
7. विकलांग विमर्श का वैश्विक परिदृश्य, डॉ. सुरेश माहेश्वरी पृ. 452
8. ″ ″ ″ ″
9. ″ ″ ″ पृ. 453
10. ″ ″ ″ ″
11. ″ ″ ″ पृ. 457
12. विकलांग विमर्श का वैश्विक परिदृश्य डॉ. सुरेश माहेश्वरी पृ. 453
13. ″ ″ ″ ″ पृ. 457
14. ″ ″ ″
15. ″ ″ ″ पृ. 459
16. ″ ″ ″ पृ. 480
17. कथा साहित्य में विकलांग विमर्श, डॉ. विनय कुमार पाठक पृ. 88–89
18. ″ ″ ″ ″
19. रतन कुमार सांभरिया, प्रतिनिधि लघु कथाऐं, पृ. 93
20. विकलांग विमर्श का वैश्विक परिदृश्य, डॉ. सुरेश माहेश्वरी पृ. 477
21. ″ ″ ″ पृ. 479
22. रतन कुमार सांभरिया, प्रतिनिधि लघुकथा शतक, पृ. 480
23. रामकुवार घोटड़, भारतीय हिन्दी लघुकथाएँ पृ. 102
24. ″ ″ ″
25. कथा साहित्य में विकलांग – विमर्श, डॉ. विनय कुमार पाठक पृ. 93
26. विकलांग विमर्श का वैश्विक परिदृश्य, डॉ. सुरेश माहेश्वरी पृ. 479
27. ″ ″ ″ पृ. 480
28. वही, पृ. 452
29. प्रतिनिधि लघुकथा शतक, रत्नकमार सांभरिया, पृ. 28
30. भारतीय हिन्दी लघुकथाएँ, रामकुवार घोटड़, पृ. 128
31. वही, पृ. 128

पांचवाँ अध्याय
निःशक्त केन्द्रित अनुशीलन और साहित्यिक संवेदना

(1) समकालीन उपलब्ध उपन्यासों में संवेदनशील पात्र

(2) समकालीन उपलब्ध कहानियों में संवेदनशील पात्रों की चारित्रिक विशेषताएँ

(3) उपलब्ध अन्य विद्याओं में निःशक्त पात्र

(अ) लघुकथा

(ब) आत्मकथा

(स) संस्मरणात्मक रेखाचित्र

(द) मुहावरों में अभिव्यक्त संवेदनाएँ

(य) लोकोक्तियों में अभिव्यक्त संवेदनाएँ

(र) दैनिक समाचार पत्र व पत्रिकाओं में चित्रित निःशक्तजन

पांचवाँ – अध्याय

निःशक्त केन्द्रित अनुशीलन और साहित्यिक संवेदना

हिन्दी साहित्य में वैदिक युग से ही निःशक्तजन के प्रति संवेदना प्रकट की गई हैं। तो फिर आज का मशीनी व विज्ञान युग कैसे पीछे हट सकता हैं? आज निःशक्तजन की समस्या भयंकर रूप धारण कर रही हैं। क्योंकि समाज के सभी प्राणी स्वार्थी हो गये। सरकार इस क्षेत्र में प्रयास जरुर कर रही हैं। परन्तु यह प्रयास उस निःशक्तजन तक पूर्ण रूप से नहीं पहुँच रहा हैं।

हिन्दी साहित्य में जब दलित–विमर्श, नारी–विमर्श, जनजातीय विमर्श आदि पर अनुशीलन चल रहा था। तब निःशक्तजन–अनुशीलन का भी एक महत्त्वपूर्ण पहलू बन जाना स्वाभाविक ही हैं। साहित्य के माध्यम से निःशक्तजनों के प्रति सगे–संबंधियों और रिश्तेदारों को उन्हें न समझ पाने के कारण निःशक्तजन के मन में जगी कुण्ठा को प्रस्तुत करता हैं। उनका जन्म परिवार के किस सदस्य को किस रूप में प्रभावित करता हैं, ये बात और हैं यहाँ तक कि पंगु माता–पिता तक उससे सद्व्यवहार और सहानुभूति नहीं रखते। एक निःशक्त बच्चा जन्म लेते ही सबके क्रोध एवं घृणा का पात्र हैं। "उसके जन्म पर किसी शिक्षित युवक ने समाचार पत्रों में यूं छापा–विश्वकर्मा का यह जीवन्त उपहास हैं, उनके कारखाने में जो कुछ टूटी–फूटी, टेढ़ी–मेढ़ी, खदरी विकृत चीजें होंगी, उन सबकों जोड़कर उन्होंने एक मूर्ति बना दी। किसी ने उसे अष्टावक्र का दूसरा अवतार कहा, किसी ने सांप, किसी ने मेंढक तो किसी ने मर्कट कहा। लोगों से ऐसी बातें सुनकर माता को भी कुछ नहीं सूझा, लगी वह भी कोसने–यह मरा भी नहीं। जिया क्यों? बड़ा होकर बाप का सहारा बन नहीं सकता। गले का ग्रह बन जाएगा।"[1]

इस तरह उपेक्षा पाता हुआ अपंग मनुष्य दुर्व्यहार पाते–पाते, मार खाते–खाते उसका हृदय पत्थर बन गया। जिसके कारण वह अब चीत्कार नहीं करता। उसका संवेदनशील हृदय दर–दर की ठोकरें खाता हैं। अब वह मनुष्य जाति से थक चुका हैं और जीव–जन्तुओं से प्यार करने लगा हैं। एक कानी कुतिया और लंगड़ी बिल्ली को वह घर ले आता हैं। जिनकी सेवा–सुश्रुषा करता हैं। तथा वे इस निःशक्त परिवार के सदस्य बन जाते हैं। एक बार दशहरे की पूजा के आयोजन में कानी कुतिया द्वारा पूजन सामग्री को झूठा कर देनें के कारण उसकी अच्छी पिटाई हुई और घर से भी निकाल दिया गया। परन्तु छोटी भाभी के कारण उसे वापस ले आया गया पर उस पर अधिक निगरानी कर दी गई। घर के पिछवाड़े में एक खुली कोठरी में वह अपने कुत्ते, बिल्ली के साथ रहेगा,

घर में उसका प्रवेश बन्द कर दिया गया। एक बार वर्षा ऋतु की भोंर में घर से बाहर निकला तो पास के आम के पेड़ के निकट तालाब में देखता हैं कुछ चीजें एक ओर पानी में बह रही हैं। कौवें, काँव–काँव कर रहे हैं। ध्यान देने पर पता चला कि छोटी चिड़िया बही जा रही हैं तथा जल का बहाव तेज होता जा रहा हैं। उसे बचाने के लिए कूद पड़ता हैं, वह पानी में कानी कुत्तिया भी उसके पीछे कूद पड़ी। धीरें–धीरें पानी का बहाव इतना तेज हो गया कि उसे पकड़नें के फेर में स्वयं ने जल समाधी ले ली। मृत शरीर को निकाला गया, अब चिड़िया भी उसके हाथों में हैं तथा उसके वस्त्र का एक कोना मुँह में लिए कानी कुत्तिया संग हैं जो अपने स्वामी के उद्धार की आशाा एवं चाह में प्राण त्याग देती हैं। उस अपंग की मृत्यु पर किसी पर कोई असर नहीं पड़ा। बस एक ही ममतामयी मूर्ति हैं जो अकेले में आँसू बहाती हैं। वह चाहकर भी अपनी संवेदना और सहानुभूति प्रकट नहीं कर पाती क्योंकि घर के अन्य सदस्यों के हाथों में वह भी विवश हैं।

साहित्य लेखकों का भी यही कहना हैं कि ये भी समाज की धारा के ही अंग हैं जो कभी अलग नहीं हो सकते, आवश्यकता हैं कि लोग उन्हें अपने परिवार, समाज व रिश्तों की अहमियत दें। निःशक्त होकर भी वह सबकी सेवा करना चाहता हैं, वह सभी को अपना बनाना चाहता हैं परन्तु लोग उसकी मदद लेना तो दूर की बात, उसकी उपस्थित को भी अपशकुन मानता हैं। ऐसे लोग शारीरिक रूप से असमर्थ हो सकते हैं, निरक्षर हो सकते हैं, परन्तु उनका हृदय बहुत बड़ा होता हैं, वे किसी की जान बचाने के लिए स्वयं के प्राणों की बाजी तक लगा देते हैं।

(1) समकालीन उपलब्ध उपन्यासों में संवेदनशील पात्र

उन्नीसवीं सदी के बाद बीसवीं सदी अनेक साहित्यिक वादों की चिंतन और चिंतकों की शताब्दी रही। फ्रॉयड मार्क्स, गांधी इत्यादि के विचारों ने व्यक्ति, समाज तथा राष्ट्रों में नई चेतना जागृत की जबकि इक्कीसवीं शताब्दी में सामाजिक उत्तरदायित्व तथा कर्त्तव्य बोध से आशांकित लेखक, विद्वान, उपेक्षित वर्ग को केन्द्र में रखकर विमर्श करता हैं। उत्तर आधुनिकता, स्त्री–विमर्श के साथ दलित–विमर्श, आदिवासी व जनजातीय–विमर्श आधुनिक चिंतन के केन्द्रीय कारक हैं। किसान की समस्याएँ भी भारतीय समाज का आइना हैं। आधुनिकता की अंधी दौड़ उसे भी निर्धन से निरीह बनाने में कोई कसर नहीं छोड़ती। किसान चुनावी वादों में दृष्टि गोचर होने के बाद लुप्त हो जाता हैं। हमारे देश में बुजुर्ग और बेसहारा निःशक्तजन को भी आधुनिकता ने हाशियें पर लाकर खड़ा किया हैं। भारतीय निःशक्तजन जनगणना संबंधी आंकड़े 2001 से उपलब्ध होते हैं। एक सर्वे के अनुसार पूरे देश में काफी सारे अपंग लोग हैं।

साहित्यिक कृतियों तथा साहित्यकारों ने संस्कृत से लेकर हिन्दी काव्य एवं गद्य विधाओं में अपंग पात्रों के अनेक चित्रण किए हैं। 'मूक होई वाचाल, पंगु चढ़ई गिरिवर गहन' कहकर गोस्वामी तुलसीदास ने लोकमंगल की कामना तथा मानवता को उच्च शिखर पर स्थापित करने का प्रयास किया हैं। भक्तिकाल में सूरदास के कवित्य शक्ति को श्रेष्ठ सिद्ध मानकर ही साहित्य जगत् में यह दोहा प्रचलित हुआ–

"सूर–सूर तुलसी शशि, उड़गन केशवदासा
अब के कविखद्योत सम, तहं तह करत प्रकाश।।"[2]

या फिर–

सूरा कही अनूठी।

स्वातंत्र्योत्तर प्रसिद्ध उपन्यासकार अमृतलाल नागर ने खंजन–नयन में सूरदास की "जन्मपत्री देखकर ज्योतिषी ने उनके पिता से बहुत पहले ही कह दिया था कि इस बालक का जन्म माता–पिता के लिए दुर्भाग्यपूर्ण हैं। वह भविष्यवाणी जैसे–जैसे फलती गई। वे सूर के प्रति कटु भी होते गए। दुर्भाग्यवाहक होने के कारण कटु और पुत्र–प्रेम तथा उसके गुणों के कारण मृदु भी।"[3]

इसी प्रकार साहित्य में खंजन–नयन नामक उपन्यास में नागर जी ने सूरदास के जीवन का विस्तृत वर्णन किया हैं। साहित्य में उपन्यास सृजन का श्रेय पश्चिमी देशों के उपन्यासों को ही जाता हैं। हिन्दी साहित्यकारों ने उन्हीं से प्रेरणा लेकर उनके देखा देखी में अनेक उपन्यासों का अनुवाद शुरु किया। यही अनुवाद धीरें–धीरें मौलिक रूप में सामने आया। आज साहित्य में मौलिक उपन्यास लेखकों की भरमार हैं। शुरुआती दौर में लेखक का उद्देश्य उपन्यास के माध्यम से मनोरंजन करना था। उस समय में तिलस्मी ऐय्यारी एवम् जासूसी उपन्यास लिखे जाते थे। जिनका कोई आधार नहीं होता था। वे सिर्फ लोगों का मनोरंजन करते थे। परन्तु जैसे ही कथा सम्राट् प्रेमचन्द ने साहित्य में कदम रखा उद्देश्यपूर्ण उपन्यास लिखें जानें लगें। समाज, परिवार व राजनीति का यथार्थ चित्रण होने लगा। प्रेमचन्द युग के बाद का साहित्य आंचलिक, ऐतिहासिक व आधुनिक समय तक आते–आते व्यक्तिगत हो गया। वर्तमान में जो भी नये उपन्यासकार आ रहें हैं वे समाज को परख कर समाज के व्यक्ति की पीड़ा तक पहुँच रहे हैं। वे देख रहें हैं कि भौतिकवादी युग पूर्ण रूप से स्वार्थ पर टिका हुआ हैं। गरीब–असहाय की तरफ कोई नहीं देखता वह लगातार शोषण के चक्रव्यूह में फंसता जा रहा हैं। समाज उसकी मजबूरी का फायदा उठाता हैं। जितना हो सकें उसे दबाते ही रहते हैं ताकि वह ऊपर न उठ सके और उसे अपने अधिकारों का ज्ञान न हो सकें।

प्रसिद्ध साहित्यकार 'सूरदास', खंजन नयन' उपन्यास का संवेदनशील पात्र हैं। महाकवि जन्म से अंधे थे। उनके लिए दिन रात बराबर थे। बचपन से ही बहुत सुन्दर गाते थे। इसलिए पिता ने उसको शिक्षा दिलायी परन्तु पिता के जानें के बाद महाकवि पर संकट छा गया। अब वह अपना गाँव छोड़कर प्रभु शरण में मथुरा आ गया। यहाँ आकर उसने अपना सब कुछ श्याम को समर्पित कर दिया और उसी के वात्सल्य में प्रसिद्ध ग्रंथ सूरसागर की रचना की। सुना जाता हैं कि सूर कंतों के प्रेम जाल में फंसे थे। यह कंतों का प्रेम ही उसे श्याम शरण में समर्पित करवा देता हैं।

इस पूरे उपन्यास में महाकवि का जीवन संघर्ष स्पष्ट हुआ। एक जन्मांध व्यक्ति की पीड़ा को स्पष्ट किया हैं।

मृदुला सिन्हा द्वारा रचित – 'ज्यों मेंहदी को रंग' की संवेदनशील पात्र 'शालिनी' अपनी चंचलता के कारण सभी का मन जीत लेती हैं। परन्तु पैर कट जाने पर धीरें–धीरें करके सभी उसे भूल जाते हैं। उसका पति भी दूसरी शादी कर लेता हैं। इतना बदलाव देखकर वह अन्दर से टूट जाती हैं। अब वह भी अपना जीवन संस्था के प्रति समर्पित कर देती हैं। अब वह एक के प्रति न जी कर अनेक के लिए जीना चाहती हैं। अब वह संस्था में इतनी व्यस्त हो जाती हैं कि समय का पता ही नहीं चलता। लेखिका ने संस्था के मुखिया डॉ. अविनाश व शालिनी को एक होते हुए दिखाया हैं।

लेखिका ने यह उपन्यास लिखकर अपनी आत्मा को शान्त कर लिया क्योंकि अपने बेटे की पीड़ा को लेखनी से उकेर कर स्वयं महसूस कर रही हैं। यह निःशक्तजन पर पूर्ण रूप से प्रथम उपन्यास कहा जाएगा।

'गौरापंत शिवानी' के 'लघु उपन्यासों' में संवेदनशील पात्र–'पूतों वाली' में पार्वती आँखों से निःशक्त हैं। उसकी एक आँख में ग्लूकोमा हैं दूसरी का मोतियाबिन्द पक गया हैं। परन्तु पाँच बेटों में से एक भी उसकी खबर नहीं लेता। यहाँ तक की उसकी अन्तिम यात्रा में भी उसका कोई पुत्र शामिल नहीं होता। शिवसागर मिश्र अपने दोस्त से कहते हैं– "बचपन में हमने पढ़ा था ना, पाँच पूत रामा बुढ़िया के बचा न एक वहीं हमारे साथ हो गया।"[4] इस उपन्यास के माध्यम से अपने माँ–बाप के प्रति लापरवाही स्पष्ट झलकती हैं। इनका दूसरा उपन्यास 'कैंजा' में मालदारिन की पगली बेटी की पीड़ा हैं। बेशर्म सुरेशभट्ट की शिकार 13 साल की माँ बनकर मृत्यु को प्राप्त हो जाती हैं। अब उसके बच्चें को नन्दी माँ से भी ज्यादा प्यार देकर पालती हैं। परन्तु जब उसे कैंजा कह दिया जाता हैं तो नंदी का दिल टूट जाता हैं। वह राहुल से वादा करती हैं। मैं तुम्हें कभी कैंजा नहीं कहूँगी।

'करिएछिमा' में शिवानी ने विदेशी चित्रकार का चित्रण किया हैं। वह कुष्ठ रोगी हैं। ग्रामवासी उसे पादड़ी साहब कहते हैं। उसका रोग उस पर पूरी तरह आक्रमण कर देता हैं। वह अकेला

निहत्था उससे जूझ नहीं सका पहले हाथ की अँगुलियाँ गई फिर पलकें और एक ही वर्ष में वह पूरी तरह लड़खड़ाने लगा कुछ दिन तक वह अपने ठूंठ हाथों से गुहा–भित्ति को अपनी अनूठी कला से विभूषित करता। परन्तु एक दिन विवश तूलिका उसके हाथों से गिर जाती हैं और अब वह कुदाली हाथ में लेकर सेब, नाश्पतियों का बाग लगाता हैं। कुछ दिन बाद वह अपनी गुफा में मृत पाया जाता हैं। कुछ विदेशी आदमी आकर उसे उसी बाग में दफना देते हैं।

'विषकन्या' लघु उपन्यास में व्याधि ग्रस्त पात्रों का चित्रण हुआ हैं। इस उपन्यास की मुख्य नायिका कामिनी हैं। वह हवाई सुन्दरी हैं। उसने अपने हवाई यात्रा के दौरान आए अनुभवों को चित्रित किया हैं। जहाँ पर उसे मिरगी के रोगी मिलते हैं। शिवानी ने उसकी यात्रा के बारे में लिखा हैं, "जिन तीन यात्रियों का ध्यान रखने का भार मुझे विशेष रूप से सौंपा गया था, उनमें एक था लखपति बूढ़ा आदमी, जो अपने वातग्रस्त घुटनों को लुओर्ड के चमत्कारी जल में डूबा, रोगग्रस्त होने जा रहा था। दूसरी थी असाध्य मिरगी की रोगिणी एक खोजा मुस्लिम महिला। जिसे हर बीस मिनट में मिरगी का दौरा पड़ता कि उसकी काठ बन गई देह को संभालने में मैं स्वयं काठ बन जाती।"[5] इस लघुकथा में मिरगी के रोगी की व्यथा का वर्णन हुआ है शिवानी ने मानसिक निःशक्तजन के बारे में बताया है कि उनका सीधा संबंध रोगी के मानसिक स्वास्थ्य के साथ होता हैं। ऐसे रोगी मानसिक दृष्टि से ठीक, सक्षम न होने के कारण उन्हें अपंग माना जाता हैं।

शिवानी के लघु उपन्यास 'किशनुली का ढॉट' की संवेदनशील पात्र किसना हैं जो पागलपन की शिकार हैं। उसकी माँ की मृत्यु हो जाती हैं पिता भी पेड से गिरकर मर जाता हैं। अनाथ पगली के उत्पात से परेशान गाँव के प्रधान मुखिया उसे शहर में 'काखी' के द्वार पर छोड़ देता हैं। काखी निःसंतान हैं वह उसे प्यार से पालती–पोषती हैं। परन्तु उसका पति उसे अपनी हवस का शिकार बनाता हैं। वह बच्चें को पैदा करके मर जाती हैं। काखी उसके बच्चें को पालकर कलक्टर बनाती हैं। 'चित्रा मुद्गल' का आंवा में संवेदनशील पात्र 'देवीशंकर पाण्डेय' हैं। वह अचानक लकवा ग्रस्त हो जाता हैं। उसकी बेटी अपने पिता की सभी जिम्मेदारी संभालती हैं। वह पिता की देखरेख स्वयं करती हैं। नौकरी भी करती हैं। यहाँ तक की वह अपने पिता का क्रियाकर्म भी स्वयं के हाथों करके एक सशक्त बेटी का परिचय देती हैं।

'अलका सरावगी' का उपन्यास 'कोई बात नहीं' का मुख्य पात्र 'शशांक' हैं। उसे चलने व बोलने में परेशानी हैं जिसके कारण उसके सहपाठी उसका मजाक बनाते हैं। उसके अन्दर हीन भावना पैदा होती हैं और वह आर्थर के बारे में सोचता हैं, "काश! तुम्हें कोई अन्दाज होता कि तुम बिना मतलब मुझे कितना सता रहें हो।"[6] इसी कारण स्कूल में उसका दाखिला नहीं होता। उसकी

दिव्यांगता इतनी बढ़ जाती हैं कि अब वह चारपाई से उठ भी नहीं सकता। परन्तु उसकी माँ उसे हार नहीं मानने देती वह तीन पहिये वाली साइकिल पर उसे स्कूल जाने के लिए प्रोत्साहित करती हैं। घर में अमृत के समान होने वाली कथा से उसके जीवन में बदलाव आता हैं और वह दीवार व फर्नीचर को पकड़कर चलने लगता हैं। अपने परिवार वालों को देखकर धीरें से मुस्करा देता हैं। कहता हैं 'कोई बात नहीं'।

(2) समकालीन उपलब्ध कहानियों में संवेदनशील पात्रों की चारित्रिक विशेषताएँ

संवेदनशील पात्रों की श्रेणी भी अन्य सभी विषयों की तरह प्राचीनकाल से ही प्रारम्भ होती हैं। इस श्रेणी में सबसे पहले उन पात्रों का वर्णन करना जरुरी होगा, जिनकी चर्चा महाकाव्यों, पुराणों, भारतीय पुरातन साहित्य, समाज, सिनेमा, विज्ञान, चिकित्सा आदि क्षेत्रों में हुई हैं। महाभारत का धृतराष्ट्र, गांधारी का भाई 'शकुनि', रामायण की मंथरा (जो एक कुबड़ी थी), रामायण का अष्टावक्र जो राजा जनक के दरबार में उपस्थित विद्वानों की सभा में उपेक्षित किए गए तब उन्होंने कहा था—मैं देख रहा हूँ यहाँ अस्थि और चर्म की बनावट के पारखी उपस्थित हैं। ऐसे मुर्खों की सभा में मेरा क्या काम? महाकवि सूरदास, सूफी कवि मलिक मुहम्मद जायसी, हेलन केलर, होमर, जॉन मिल्टन दोस्तों बस्की, बीयरन आदि श्रेष्ठ साहित्यकार, विचारक दार्शनिक थे। वहीं थॉमस अल्वा एड़ीसन, स्टीफन हॉकिंग्स, लुई ब्रेल महान वैज्ञानिक एवं आविष्कारक थे। रवीन्द्र जैन (नेत्रहीन संगीतकार, स्वामी रामभद्राचार्य (जन्मांध) रामभद्राचार्य विकलांग वि.वि. चित्रकूट के संस्थापक कुलपति दृष्टिहीनों के गॉडफादर एस.एम.ए. जिन्ना इण्डियन एसोशियन फॉर दी ब्लाइंड' चेन्नई के संस्थापक। देश के प्रथम दृष्टिहीन फिजियोथैरेपिस्ट 'मध्यप्रदेश वेलफेयर एसोसिएशन फॉर दी ब्लाइंड–1961 के संस्थापक डॉ. मधुकर विश्वनाथ शिरोधानकर, इंदौर के प्रसिद्ध दृष्टिहीन फिजियोथैरेपिस्ट डॉ. चेलान, देश का प्रथम पेराप्लेजिक दिव्यांग महिला एथलीट दीपा मलिक (लकवाग्रस्त) जो अब तक तैराकी बाइकिंग जेवेलिन थ्रो, शाटपुट थ्रो और ब्यूटी कन्टेस्ट में हिस्सा ले चुकी हैं। संसार में ऐसे हजारों पात्र मिलेंगे जो इस ईश्वरीय अभिशाप का दंश झेल रहें हैं, लेकिन उन्होंने अपना हौंसला, आत्मविश्वास कभी भी कम नहीं होने दिया और जिस क्षेत्र में कदम बढ़ाया कामयाब होते चलें गयें, ख्याति प्राप्त करते चले गए। सशक्त के लिए प्रेरणा का स्रोत बनते गए।

इस क्षेत्र की दूसरी विशेषता में हिन्दी साहित्यकारों की रचनाओं को रखा गया हैं जिसमें निःशक्त पात्र को चित्रांकित किया हैं। उसके प्रति संवेदना प्रकट की या फिर संघर्षशील विजयी चरित्र स्थापित करने की भरसक कोशिश की हैं।

जैसे 'ममता कालिया' की कहानी 'राजू' भी ऐसी ही कहानी हैं जिसका पात्र राजू एक आँख से काना हैं। इस कहानी में राजू समाज से पहले अपनों के द्वारा ही उपेक्षित किया जाता हैं। उसकी माँ विधवा हैं, जो भारतीय अंधविश्वासी संस्कृति के कारण वैधव्य का कष्ट झेलती हैं। जब भी कोई शुभ कार्य होता हैं तो वहाँ पर इस विधवा का तो आना अशुभ मानते ही थे साथ उसके एक आँख वाले पुत्र को साथ देखकर लोगों का और माथा ठनकता।

'फणीश्वरनाथ रेणु' की कहानी 'ठेस' का पात्र 'सिरचन' हैं। यह पात्र निःशक्त हैं। इसकी यह विशेषता हैं कि यह तुतलाकर बोलता हैं परन्तु दिल से एकदम साफ हैं। वह तुतलाकर बोलता हैं, यहीं जिह्वा उसकी निःशक्तता का कारण हैं। 'मैत्रेयी पुष्पा' की कहानी 'सहचर' के अनपढ़ बंशी की पत्नी जो ग्रेंग्रैरीन से पैर कट जाने के कारण लंगड़ी हो जाती हैं। वह उसका इलाज करवाता हैं। दूसरे विवाह की बात कहने पर उसे गुस्सा आता हैं। यहीं लेखिका ने चित्रित किया हैं कि निःशक्त हो जाने पर भी वह अपने दाम्पत्य के प्रति दृढ़ निष्ठा दिखाता हैं। पत्नी के प्रति समर्पण और सद्भाव जहाँ निःशक्त के प्रति उपेक्षा के भाव से ऊपर उठाता हैं।

'शशि प्रभा श्रीवास्तव' की कहानी 'साये का सुख' गरीब दम्पती का चित्रण करती हैं। पत्नी–पति की मार खाकर भी अपनी गृहस्थी को चलाती रहती हैं। पति जब अपंग हो जाता हैं। तो उसकी पत्नी उसकी सेवा–दिल–जान से करती हैं। पति–पत्नी के झगड़े में फिसलकर गिर जाने पर सिर में चोट लगनें से पति का दाहिना हिस्सा निःशक्त हो जाता हैं। निःशक्त की ऐसी अवस्था में पति के द्वारा किये गये अत्याचारों को भूलाती हुई पत्नी कहती हैं– "अपाहिज ही सही, मेरा शोहर घर में था और मैं उस घर की मालकिन थी, मेरे सिर पर इज्जत और हिफाजत का साया बना रहा।"[7] यहाँ स्त्री की संवेदना और स्त्री के जीवन में पति की अहमियत का स्पष्ट वर्णन हैं।

राजस्थान के प्रसिद्ध कहानीकार 'रत्नकुमार सांभरिया' की कहानी 'संवाँरवे' एक निःशक्त पात्र जमन वर्मा की हैं जो अन्धा हैं। वह उच्च जाति के लोगों द्वारा सताया जाता हैं। इसी प्रकार प्रसिद्ध लेखिका 'गौरापंत शिवानी' की प्रेरणास्प्रद कहानी 'अपराजिता' हैं। इसकी नायिका चन्द्रा संवेदनशील पात्र हैं। उसका शरीर कमर से नीचे का अचल हैं। परन्तु उसकी माँ उसे हार नहीं मानने देती। उसका सपना तो मेडिकल की पढ़ाई करने का था परन्तु उसकी निःशक्तता के कारण वह नहीं कर पाती। उसकी माँ उसे प्रेरित करती हैं और वह फिजिक्स में 'डॉक्टरेट' की उपाधि प्राप्त करके सशक्त को प्रेरणा देती हैं।

इसी प्रकार सांभरिया की कहानी 'द्वन्द्व' के कंवलराम पर पोलियो के प्रहार ने उसकी दोनों टाँगें छीन ली, किन्तु सरकारी कर्मचारी हैं जिसका अहंकार उसके अन्तर्मन में निहित हैं। अपंगता के

अभिशाप से विवाह के योग की विकल्पहीनता जैसी हालत में उसके फूफा विधवा लड़की का शादी का प्रस्ताव उसके लिए लेकर आता हैं, परन्तु लड़की का पिता उस अपंग कंवलराम को देखते ही भिनभिनानें लगते हैं। "मेरी लड़की में बालविधवा का कुटेज जरुर हैं इसका मतलब यह थोड़े ही हैं कि जो इस निःशक्त के पल्ले उसे बाँध दूँ।"[8] हमारे समाज में विधवा और दिव्यांग दोनों को ही हीन दृष्टि से देखा जाता हैं। दोनों में ही कमी हैं। परन्तु यहाँ कंवलराम का दंभ सक्रिय हो जाता हैं। अब उसे लगने लगा ऋषि अष्टावक्र की देह में तो आठ जगह टेढ़ापन था फिर उसके तो सिर्फ पैर ही, वे इतने ज्ञानी माने जाते थे तो मैं क्यों लालच में आऊँ?

ज्ञानप्रकाश विवेक की कहानी 'अंधासूरज' का संवेदनशील पात्र सूरज हैं। वह अपने ही परिवार में उपेक्षित रहता हैं। जब भी परिवार में मेहमान आते हैं या परिवार बाहर जाता हैं तो उसको कोठरी में बंद कर दिया जाता हैं। उसका परिवार व पिता अपने कर्त्तव्य को भूलकर संवेदनहीन हो जाते हैं। विवेक जी ने दिव्यांग बालकों के प्रति संवेदना प्रकट की हैं। उनकी दूसरी कहानी 'अंधेरे के खिलाफ' के दिव्यांग पात्र अजय की पीड़ा हैं। वह जन्म से अपंग हैं। डॉक्टर उसके माँ–बाप को सलाह देंते हैं कि वे उसे खत्म कर दें वरना उन्हें हमेशा परेशान रहना पड़ेगा। यह सुनकर उसकी माँ चिल्ला उठती हैं, "यह जीवित मांस–पिण्ड नहीं मेरा बेटा हैं....नौ माह तक पेट में रखा हैं, इसे अब यह दिव्यांग पैदा हुआ तो इसकी हत्या कर दूँ?....इसलिए इसे 'फिनिश' कर दूँ कि मैं पढ़ी–लिखी हूँ?....डॉक्टर साहब पढ़ी–लिखी माँ की ममता पत्थर नहीं हो जाती।"[9] यहाँ माँ की ममता अपनी संतान के लिए कितनी संवेदनशील हो सकती हैं स्पष्ट हुआ हैं।

ममता कालिया का कहानी संग्रह 'सीट नंबर छह' की कहानी आजादी में दिव्यांग व वृद्ध महिला हैं जिसकी तरफ उसका परिवार बिल्कुल ध्यान नहीं देता। उसके एक पैर में हमेशा दर्द रहता हैं, एक पैर से वह अपाहिज हैं। जिसका घरेलू उपचार करती हैं परन्तु पूरा परिवार संवेदनाहीन हैं। वह मुन्नी को स्कूल जाते समय कहती हैं थोड़ी सी आजादी लेकर आना। परन्तु जब वह वापिस आती हैं तो दादी को आजादी मिल चुकी होती हैं। इनकी दूसरी कहानी 'बीमारी' 'छुटकारा कहानी संग्रह' में संकलित हैं। इस कहानी की संवेदन शील नायिका भी अपने भाभी–भाई के द्वारा उपेक्षित होती हैं। उसकी भाभी उसकी बीमारी को शंका की दृष्टि से देखती हैं।

इसी प्रकार 'उषा प्रियवंदा' की कहानी 'टूटे हुए' में तंत्री नामक नायिका कहानी की मुख्य पात्र हैं। तंत्री एक निःशक्त पुत्र की माँ हैं जो अस्पताल में हैं। वह भास्कर से दैहिक संबंध बनाती हैं, वह भी सिर्फ पुत्र के लालच में। उसका पहला पति दूसरे बच्वें को जन्म देने में असमर्थ हो गया हैं। भास्कर भी टूटा हुआ दिखता हैं, 'तंत्री' के तंत्र भी सचमुच में टूट गये लगते हैं। भास्कर कहता हैं,

"नहीं तंत्री मैं लज्जित नहीं हूँ पर कभी–कभी व्याकुल अवश्य हो जाता हूँ। तुम्हें प्रोफेसर की तरह सुख–सुविधा नहीं दें पाऊँगा।"[10] तंत्री देह तो पर–पुरुष को सौंप देती हैं, उसे काम सुख मिल जाता हैं परन्तु पुत्र प्राप्ति की इच्छा अधर में लटक जाती हैं। समाज की दृष्टि से उचित नहीं हैं परन्तु पहला पुत्र अपाहिज होने के कारण ऐसा होता हैं।

ममता कालिया की 'सीट नंबर छह' संग्रह की दूसरी कहानी हैं 'दो जरुरी चेहरे' में जिसकी नायिका मिताली पढ़ी लिखी औरत हैं। वह श्याम से प्रेम विवाह करती हैं। मिताली को अपेंडिक्स की शिकायत रहती हैं। जिसकी वजह से पेट में जोरों का दर्द के साथ वह चक्कर खाकर जमीन पर गिर पड़ती हैं। डॉक्टर उसे ऑपरेशन की सलाह देते हैं। एक बाँह पर वही बोझ आया, दूसरी पर एक और बोझ आया, पहली से हल्का बोझ फिर पकड़ फिर कोई नाम। डूबते दिमाक में गिरा देर बाद निकला वापस और आँखों ने देखा, 'दो जरुरी चेहरे'।

'कुलदीप बग्गा' की कहानी 'पोलियो'। इस कहानी में पोलियो ग्रस्त लड़की मणिका हैं जो बहुत ही सुन्दर व शील स्वभाव वाली हैं। परन्तु उसकी चाल को देखकर सभी का मुंह लटक जाता हैं। कहानीकार उसी के शब्दों को व्यक्त करता हैं, कि– "कुछ लोग मेरे साथ सहानुभूति जतलाते हैं, अपने भीतर दिल रखने के प्रमाण देते हैं। मुझे यह घिनौना स्वर 'पिटी' लगता हैं।"[11] मनीष नाम का लड़का उससे प्यार करता हैं, जब लड़का अपनी माँ को मणिका को देखनें के लिए लाता हैं। तब वह उसकी बहुत प्रशंसा करता हैं परन्तु जब उठकर चलती हैं तो उसकी माँ के चेहरे का रंग बदल जाता हैं। अब मणिका को एक जीवनसाथी की जरुरत थी परन्तु घर वाले उसकी शादी की बात भूल गये कि निःशक्त हैं शादी करके क्या करना। अब वह अन्दर ही अन्दर टूटने लगी।

ममता कालिया की 'मुन्नी' कहानी 'निर्मोही' संग्रह में संकलित हैं इस कहानी की संवेदनशील पात्र मुन्नी हैं। उसकी निःशक्तता की वजह उसकी दादी का अंधविश्वास हैं। वह उसको पोलियो के टीके भी नहीं लगने देती। अब मुन्नी को ढ़ेर सारी बिमारियाँ हो गई हैं। पैरों को भी घसीट–घसीट कर चलती हैं। जब उनके घर पोलियो के टीके लगाने वाले आते हैं तो उसकी दादी उसे छिपा देती हैं कहती हैं, "क्या फायदा दो घाव और कर जाएगा मरा पहले ही छोरी का खाँसियों से बुरा हाल हैं।"[12] उसकी यही सोच उसे निःशक्त बना देती है।

'सुरभि बेहरा' की कहानी 'बिखरे ख्वाब' इस कहानी में मुख्य नायक अक्षय व निःशक्त पात्र अक्षय का बेटा हैं। सुप्रभा भी बच्चें पैदा करने में अक्षम हैं। इसलिए उसका पति दूसरी शादी करता हैं। उसे अब लड़का पैदा हो जाता हैं। परन्तु पैदा होते ही पता चल जाता हैं कि वह लड़का सामान्य

नहीं हैं। वह एकदम निःशक्त स्वयं अँगुली तक नहीं हिला सकता। अक्षय इसके लिए स्वयं को जिम्मेदार मानता हैं क्योंकि उसने सुप्रभा को छोड़कर बच्चें के लिए दूसरी शादी की थी।

'गौरापंत शिवानी' की 'मेरी प्रिय कहानियाँ' में 'शपथ' कहानी का संवेदनशील पात्र एक वृद्ध विधुर अंधा व्यक्ति हैं। जिसकी इकलौती बेटी का ससुराल उसके घर से दो गज की दूरी पर हैं परन्तु उसके ससुराल वाले उसे अपने बाप के पास एक रात भी नहीं रुकने देते। अंधे आदमी की पीड़ा भी नहीं समझते। शिवानी के इसी संग्रह में 'चीलगाड़ी' कहानी के कई पात्र निःशक्त हैं। जिसमें मुख्य नायिका के माध्य से चित्रित हैं। उसके ससुराल के परिवार की कहानी हैं। उसमें हैं उसकी दो विधवा जेठानी, एक विधवा ननद। बड़ी जेठानी के बच्चें नहीं हैं। छोटी जेठानी को राक्षसाकृति का दिव्यांग पुत्र जिसे वह हमेशा गोद में टांगे रहती हैं। कभी–कभी आँखों की पुतलियों को लट्टू–सा घुमाता। उसका पति भी यक्ष्मा का रोगी हैं। इस प्रकार दोनों पात्र दिव्यांग हैं। शिवानी के इसी संग्रह में 'पुष्पहार' कहानी का संवेदनशील पात्र सूबेदार हैं। जो एक पैर से निःशक्त हैं वह फौज से तो सही सलामत लौट आता हैं परन्तु घर में पड़ी कील उसे दिव्यांग बना देती हैं। उसकी इसी मजबूरी का फायदा उसकी पत्नी दुर्गी उठाती हैं। वह भेड़ चरानें के बहानें घर से जाती हैं और गैर पुरुषों से संबंध बना लेती हैं। सूबेदार को मालूम हो जाता हैं वह उसे रंगे हाथ पकड़ लेता हैं परन्तु कुछ नहीं कर पाता बेबसी के आँसू बहाता रहता हैं।

शिवानी के इसी संग्रह में 'मेरा भाई' कहानी का पात्र 'सुबय्या' हैं। वह रंग का काला, एक आँख भैंगी, ललाट के बीचों–बीच आँख के आकार का निशान, कभी–कभी ऐसा लगता हैं कि आँख में पुतली ही नहीं। इसी बेढंगें शरीर के कारण उसे उपेक्षा की दृष्टि से देखा जाता हैं। उसे काना, कलुटा, कनुवा आदि हीन नामों से पुकारा जाता हैं। 'शिवानी' का कहानी संग्रह 'अपराजिता' में 'सौत' कहानी की संवेदनशील पात्र 'नीरा' जो पति के विश्वासघात के कारण अपना मानसिक संतुलन खो देती हैं। डॉक्टर कहते हैं "दिमाक का मर्ज हैं, किसी दिमाक के डॉक्टर को दिखाओ। हृदय पर कोई आघात लगा हैं।"[13] इसी प्रकार 'दंड' कहानी का पात्र 'बदलू' एक डॉक्टर का नौकर हैं। बदलू 'गूंगा–बहरा' हैं। डॉक्टर की पत्नी व पुत्र की अचानक मृत्यु हो जाने से डॉक्टर अपना संतुलन खोकर बदलू के हाथ में चिट्ठी लिखकर दें जाता हैं। अब सभी बदलू से पूछते हैं तो वह बेचारा बोल नहीं सकता, बता नहीं सकता सिर्फ बेबसी के आँसू बहाता रहता हैं।

ममता कालिया का कहानी संग्रह 'सीट नम्बर छह' की 'उपलब्धि' कहानी की पात्र 'गूंगी–बहरी' शहनाज हैं। चेहल्लुम के रोज में एक दम्पती का इकलौता पुत्र बबलू उनसे बिछुड़ जाता हैं। वे उसे ढूँढ़–ढूँढ़कर परेशान हो जाते हैं शहनाज यह देखकर समझ जाती हैं और उसकी माँ

प्राची को मोती महल ले जाकर उनके पुत्र से मिलवा देती हैं। अपने पुत्र को पाकर दोनों पति–पत्नी खुशी से कूद पड़ते हैं और शहनाज को धन्यवाद कहते हैं। लेखिका के इसी संग्रह में 'फर्क नहीं' कहानी की नायिका के घर में किरायेदारनी रहती हैं। जिसके पैरों की अँगुलियों और पिण्डलियों पर सफेद दाग हैं। नायिका की माँ उसके पास जाने से मना करती हैं वह इसे छुतहा रोग कहती हैं। निःशक्त के प्रति संवेदनशील न होकर हीन भाव रखना ही हमारे समाज की प्रकृति हैं।

'डॉ. इन्द्र बहादुर' की 'विमल' कहानी का निःशक्त पात्र विमल हैं। जो एक दुर्घटना में अपने परिवार सहित दोनों पैर गंवा देता हैं। वही विमल एक दिन ट्रेन में यात्रा करते समय एक इनामी डकैत को पुलिस के हवाले करवा देता हैं। जब डकैत ट्रेन में यात्रियों को लूट रहा था तब उसने साहस का परिचय दिया और आज पुलिस उसकी पीठ थपथपा रही हैं जिसे देखकर सशक्त शर्म महसूस करते हैं। इसी प्रकार 'श्रीमती रेखा पालेश्वर' की कहानी 'विकलांग बेटा–बेटी को खोना' इसमें लेखिका के दो बच्चें निःशक्त हैं। रघुवीर और अंजुला, माँ–बाप उनको लेकर डॉक्टरों के चक्कर लगाते रहते हैं परन्तु कोई फायदा नहीं होता। जब रघुवीर 22 वर्ष का हुआ तो वह चल बसा इसी प्रकार अंजुला भी अपने भाई की तरह 22वें वर्ष में पैर रखते ही मृत्यु को प्राप्त हो गई। लेखिका के और भी दो बच्चें हैं उनके नाती आदि मिलाकर भरा–पूरा परिवार हैं लेकिन रघुवीर और अंजुला की कमी हमेशा महसूस होती हैं। क्योंकि बच्चें माँ–बाप के लिए कभी बोझ नहीं होते।

'डॉ. विनोद कुमार वर्मा' द्वारा रचित 'मछुआरे की लड़की' में संवेदनशील पात्र 'सरस्वती' मछुआरे की लड़की हैं। नर्मदा की भीषण बाढ़ में वह अपने पिता के साथ मिलकर रात के अंधेरें में लोगों की सहायता करती हैं। इस साहस के लिए गणतंत्र दिवस पर उसे पुरस्कार मिलता हैं। परन्तु जब वह मानसिक संतुलन खोकर एक दिव्यांग का जीवन जीने को मजबूर हैं तो उसकी वीरता को कोई याद नहीं करता। अब उसे खाने–पीने के भी लाले पड़े हुये। यही हमारे समाज की संवेदनहीनता हैं क्योंकि ये समाज स्वार्थी हैं।

'माधुरी मिश्र' की 'मिलन' कहानी की संवेदनशील पात्र 'मीना' (कृष्णा चाची) की शादी बचपन में हो जाती हैं। उसकी सास पति–पत्नी को मिलनें नहीं देती। उसके पति को ये बात सहन नहीं होती वह आत्महत्या कर लेता हैं। जब कृष्णा चाची को पति का मतलब समझ आने लगता हैं तो वह रो–रोकर पागल हो जाती हैं। अब उसे सभी पागल कहते हैं। वह श्मशान से अपने पति की हड्डियाँ बीनकर ले आती हैं और कहती हैं मुझे वहीं जलाना जहाँ मेरे पति को जलाया गया था। वहीं हमारा मिलन होगा और बच्चे होंगे। 'गिरिराजशरण अग्रवाल', 'परकटा परिंदा' का दिव्यांग पात्र 'विभु' दुर्घटना में अपने दोनों पैर गँवा देता हैं। लेकिन उसका मन तो बच्चों वाला ही चंचल हैं। वह अपनी

दीदी से कहता हैं मुझे भीड़ भरे बाजार, बाग में ले चलों। ताकि मैं तितलियों की तरह उड़तें बच्चों को देख सकूँ लोगों को अपनी टाँगों पर चलता देख सकूँ। यहाँ मासूम बालक की पीड़ा पाठक को अधिक संवेदनशील बना देती हैं।

भीष्म साहनी की 'कंण्ठहार' कहानी की संवेदनशील पात्र 'सुषमा' अपने माँ–बाप के द्वारा ही उपेक्षित हैं। उसे एक अंधेरे कमरे में बंद करके रखते हैं वह चिल्लाती रहती हैं। परन्तु कोई ध्यान नहीं देता। उसकी माँ पार्टी में जाने के लिए जो कंठहार पहनती हैं उसे बार–बार आइने में देखती हैं। सोचती हैं यदि कोई पूछेगा तो शान से कहूँगी, पाँच हजार का हैं। उसे बिस्तर पर पड़ी दिव्यांग बेटी से कोई मतलब नहीं हैं। 'तुलसी देवी तिवारी' की कहानी 'शाम के पहले की स्याही' इस कहानी में दो संवेदनशील पात्र हैं, अमिता, नेहा। अमिता को करंट लगने से उसका हाथ कोहनी तक काटना पड़ा। पुत्र की लालसा में अमिता का पति मिसरी दूसरी शादी करता हैं। डॉक्टरों से जाँच करवाने से पता चलता हैं कि उसकी दूसरी पत्नी नेहा माँ नहीं बन सकती। इससे नेहा मानसिक संतुलन खो देती हैं। अब मिसरी की जिन्दगी में दो–दो निःशक्त पत्नी हैं।

'राजेन्द्र कौर' की कहानी 'लुंज के बाबूजी' इस कहानी में एक लाचार पिता का चित्रण हुआ हैं। जिसे कैंसर के कारण अपनी बाँह ही कटवानी पड़ती हैं। स्वयं को अपाहिज समझकर वह चाहता है कि बेटी इंदु को अच्छा–पढ़ा लिखाकर आगे बढ़ाया जाये। यही सोचकर वह स्वयं से बात करता हैं। "सोचा था, इन्दु को खूब पढ़ाऊँगा, परन्तु उसका भविष्य तो अभी से लिखा गया हैं, साफ स्पष्ट हैं.... सामने हैं...वह मेरे दफ्तर में क्लर्क लग जाएगी। वहीं काम–करती–करती शायद किसी से ब्याही जाएगी या शायद....।"[14] यह बाते तब की थी जब बाबूजी को कैंसर नहीं हुआ था। तब उनका व्यवहार अलग था, लेकिन कैंसर हो जाने और बाँह कट जाने से उनका व्यवहार बदल गया। यह बदलाव उन्हें स्वयं के निःशक्त होने पर महसूस कराता हैं। इसे बदलने के लिए परिवार व समाज को आगे आना चाहिए।

सूर्यबाला की कहानी 'फरिश्ते' का संवेदनशील पात्र 'मटरूआ' हैं। जिसको रईस बाबू के बेटे के साथ खेलनें के लिए रखा गया हैं। मटरुआ के पिता को रईस बाबू ने अपनी जगह जेल भेजकर उसकी माँ को घर में आया बना लिया और अब मटरुआ को उसका बेटा पेड़ की पतली टहनी पर चढ़ने की जिद्द करके उसे पैरों से निःशक्त बना देता हैं। इस कहानी में गरीब परिवार का शोषण स्पष्ट झलकता हैं। एक अमीर आदमी गरीब की जिन्दगी को कितनी बेरहमी से बरबाद करता हैं।

'प्रदोष मिश्र', 'आँखें' कहानी का दिव्यांग पात्र एक वैज्ञानिक 'नीरज–रंजन' हैं। जो लैब विस्फोटक में अपनी आँखें गंवा देता हैं। जब वह दान में की गई आँखों का प्रत्यारोपण करवाता हैं।

तो रंजन और उसकी पत्नी एलिजा बहुत खुश होते हैं। परन्तु जब एलिजा को पता चलता हैं कि ये आँखें उसके पूर्व प्रेमी बलात्कारी, दोषी की हैं। तो वह रंजन से घृणा करने लगती हैं। रंजन उसे समझाता भी हैं। शरीर पर कंट्रोल दिमाक का होता हैं और दिमाक मेरा हैं। परन्तु वह नहीं समझ पाती और दोनों को अलग होना पड़ता हैं। इस कहानी में एलिजा सकारात्मक सोचती तो जिन्दगी सफल हो जाती। इसी प्रकार 'सत्यराज' की कहानी 'छोटू' मानसिक रूप से दिव्यांग बच्चें की कहानी। उसका दिमाक पूर्ण रूप से विकसित नहीं होता। एक दिन वह अपने बड़े भाई की अँगुली काट लेता हैं। उसकी वजह से पूरे घर का माहौल अशांत रहता हैं। उनके मुख से जो शब्द निकलते हैं, वह सत्य प्रतीत होते हैं जैसे– "पागल राजू को डॉक्टर! पागल आदमी को जीने का कोई अधिकार नहीं हैं। उसका जीवन तो नरक होता हैं, घर का वातावरण भी सहमा–सहमा रहता हैं।"[15] उसकी मानसिक निःशक्तता सभी के लिए समस्या बनी रहती हैं।

इसी प्रकार किन्नर वर्ग की समस्या भी बहुत ही भयंकर हैं। वैसे तो वह भी साधारण मनुष्य ही होता हैं परन्तु लिंग स्पष्ट न होने के कारण इन्हें भी दिव्यांग वर्ग में ही रखते हैं। ये न तो स्त्री होते और न ही पुरुष। नाटक, नृत्य या फिर भीख माँगना इनका काम हैं। समाज का इतना बड़ा वर्ग समाज की निःशक्त सोच के कारण उपेक्षित हैं। यदि इन लोगों को प्रोत्साहित किया जाए तो ये भी अपनी मेहनत व दिमाक के बल पर कुछ कर सकते हैं। किन्नर वर्ग सिर्फ दूसरों पर निर्भर हैं। समाज में इनके प्रति अंधविश्वास हैं कि यदि ये शाप दें देंगे तो अशुभ हो जाएगा।

(3) उपलब्ध अन्य विधाओं में निःशक्त पात्र

साहित्य की हर विद्या ने निःशक्तजन को केन्द्र में रखकर रचना की हैं। कथा–साहित्य में निःशक्तजन पात्रों पर लेखकों ने जो संवेदना प्रकट की हैं, उसी के कारण आज साहित्य के हर कोने में दिव्यांग जन की समस्या को लेकर रचना हो रही हैं। फिर साहित्य में सबसे बड़ा भाग रखनें वाला उपन्यास हो या फिर कहानियाँ लघुकथा, मुहावरें व लोकोक्ति, संस्मरण या आत्मकथा सभी साहित्यकारों ने दिव्यांग जन को अपनी रचना के माध्यम से प्रकट किया हैं।

निःशक्तजन अनुशीलन की कहानियाँ (भाग–एक) हिन्दी के प्रतिष्ठित और समकालीन कथाकारों का ऐसा दस्तावेज हैं, जो निःशक्तजन को समझने उन्हें सम्मानपूर्वक उनका हक दिलानें और उसकी प्रतिभा क्षमता को ही स्वीकार नहीं करता बल्कि उनकी सम्पूर्ण समस्याओं से साक्षात्कार कराता हैं। संकटों और संघर्षों से जूझती शक्ति के द्वारा उन्हें समाज की मुख्यधारा से जोड़कर मानवतावादी विचार–धारा से भी परिचित कराता हैं। ये विधाएँ प्रायः विभिन्न वर्गों से आती हुई भी, विविधतापूर्ण निःशक्तता का वितान निर्मित करती हैं। सेवा–संकल्पना की संवेदना से पूर्ण ये रचनाएँ

मानवतावादी दृष्टि अपनाने और सभी मनुष्यों में समानता के भाव की आधार–भूमि प्रस्तुत करती हैं। महादेवी जी का संस्मरण 'अलोपी' और 'गुंगिया', अज्ञेय जी की कहानी 'खितीन बाबू' और विष्णु प्रभाकर जी की 'नेत्रहीन' और 'डॉ. इन्द्रबहादुर' द्वारा रचित विमल ,आत्मकथा 'हेलनकेलर' के माध्यम से निःशक्तजन की समस्या को दर्शाया गया हैं, इसी प्रकार डॉ. विनय कुमार पाठक की जीवनी, डॉ. इन्द्र बहादुर ने लिखी। मुहावरों व लोकोक्तियों तथा लघुकथाओं के साथ दैनिक समाचारों के साथ आने वाली खबर, इन लोगों के संघर्ष व अपंगता को पीछें छोड़कर आगे बढ़ती दिखाई जाती हैं। इन लोगों की इस प्रकार कथा–कहानियाँ व दैनिक खबरों के द्वारा सशक्त को प्रेरणा मिलती हैं। ये लोग वास्तव में सशक्त जन के लिए प्रेरणा के स्रोत हैं।

लघुकथा में निःशक्त पात्र को देखते हैं तो अन्य विधाओं की तरह यहाँ भी इनकी कमी नहीं हैं। लघुकथा महाकाव्य की तरह विशाल नहीं होती परन्तु अपने छोटे से आकार में सारे संसार को समेटकर रखती हैं। इसका गुण खण्डकाव्य की तरह लक्ष्य को प्राप्त करने का होता हैं लेकिन एकांगी नहीं। लघुकथा के समान ही अब लोकोक्ति व कहावतों का प्रचलन कब और कैसे हुआ, इसके बारे में निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता, किन्तु पढ़े–लिखें महाज्ञानी से लेकर अनपढ़ तक शहर से गाँव तक हर जाति वर्ग एवं कहावतों का प्रचलन रहा हैं। निश्चित रूप से यह कि भाषा के साथ सटीक अभिव्यक्ति के रूप में इसका प्रचलन बना रहेगा। कहावत और मुहावरों के बीच अंतर को लेकर लोगों में भ्रांतियाँ हैं। इस अन्तर को ठीक से न समझने की वजह से एक को दूसरें वर्ग का मान लिये जाने की भूल हुआ करती हैं। हालांकि कहावतों और मुहावरों में अधिक अन्तर नहीं हैं, फिर भी दोनों में मूलभूत अंतर हैं। कहावतों का संबंध लोकजीवन में घटी किसी घटना से हुआ करता हैं जिसे कालांतर में वैसे ही प्रसंग आने पर उदाहरण के रूप में कहा जाता हैं। कहावत अपने–आप में एक पूर्ण उक्ति हैं, जबकि मुहावरों का उपयोग किसी वाक्य को साथ लेकर ही किया जा सकता हैं लेकिन कालक्रम से कई कहावतें मुहावरों के रूप में तथा मुहावरें कहावतों के रूप में प्रचलित हो गए हैं। कोई भी भाषा मानव अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम होती हैं मानव सभ्यता के विकास के साथ–साथ अभिव्यक्ति के इन माध्यमों का भी विकास होता रहा हैं।

(अ) लघुकथा

लघुकथा दो शब्दों से बना हैं। लघु+कथा 'लघु का अर्थ छोटा' और कथा का 'कहानी' तो लघुकथा का सम्पूर्ण अर्थ छोटी कहानी कह सकते हैं। कहानी या कथा हमेशा भूतकाल को ही दर्शाती हैं अर्थात् जो बीत चुका हैं वही कहानी बन जाता हैं। हम अपने घर परिवार में बीते समय की जो घटना सुनते हैं वही कहानी कहलाती हैं। वह सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक आदि किसी भी

परिस्थिति में हो सकती हैं। लघुकथा मुक्तक काव्य की तरह होती हैं परन्तु इसमें इत्तिवृतात्मकता नहीं। आधुनिककाल में इसकी लोकप्रियता बढ़ी हैं क्योंकि हम देखते हैं कि वर्तमान में हर मनुष्य इतना व्यस्त हैं कि वह लम्बे कहानी वृतान्त नहीं पढ़ सकता। इसी कारण लघुकथा आज के समय में लोकप्रिय विद्या हो गई हैं। यह प्राचीन व नवीन आंचलिक व सर्वदेश सम्पन्न होनें के कारण विषय के अनुरूप प्रतीकात्मकता, पत्राकार, व्यंग्यात्मक, फैंटसी आदि शैली को भी ग्रहण करती हैं। अपने इसी गुण के कारण हिन्दी की लघुकथा अपने लघुकथाकारों में पूरे संसार के दर्शन करा देती हैं। मानव व इसके अलावा कथानकों पर रचित लघुकथाएँ मानवपेक्षी ही होती हैं।

आजादी के बाद स्वतंत्र देश के समाज में ऐश–आराम की जिज्ञासा ने जन्म लिया जिसके कारण भ्रष्टाचार, स्वार्थपरता, कुटिलता, पुलिस ज्यादती और गुण्डागर्दी ने अपने फन उठा लियें। आज लघुकथा, चुटकला, सूक्ति कथन, हितोपदेश, दृष्टांत, मनोरंजन प्रद हास्य, जातक कथा, पंचतंत्र और लोककथा के आवरण को हटाकर केवल लघुकथा सापेक्ष भी हैं। इन्हीं बातों को ध्यान में रखकर हास्य परिहास, अश्लीलता, तिलिस्म से परे मानवीय पीड़ा के लिए लघुकथा की रचना हो रही हैं। लघुकथा से जो अपेक्षा रखी जाती हैं, वह हैं पाठक की संवेदना को समझना। साहित्य की सभी विद्याएँ पाठक के मन को काबू में रखने का प्रयास करती हैं। जिससे पाठक की उसमें रूचि बढ़ें वही लघुकथा इस कार्य में अधिक सफलता अर्जित करती हैं। क्योंकि वह आकार में लघु होने के कारण रोचकता को और अधिक बढ़ा देती हैं। हर विद्या में कोई न कोई समस्या को केन्द्र में रखा गया हैं। क्योंकि साहित्यकार का उद्देश्य यही होता हैं कि वह अपने साहित्य के माध्यम से समाज में फैली हुई समस्या को दूर कर सकें।

इसी उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए लघुकथा में वर्णित संवेदनशील पात्रों का चित्रण निम्न हैं–

'पात्रता' लघुकथा 'रत्नकुमार सांभरिया' की हैं जिसका पात्र ऐसी दीन–हीन परिस्थिति में हैं जिसका वर्णन लेखक ने किया हैं। उसका बायाँ हाथ पोलियों से सूखा हुआ है। दाँये पैर में गहरा घाव हैं। वह सर्दी के मारे कांप रहा था। उसके होंठ भी तिरछे मुड़ें हुये थे। बस स्टैण्ड पर बैठें हुए एक युवक के सामने दायाँ हाथ फैलाकर कहा–बाबूजी भूखा हूँ दो दिन से, चाय पी लूंगा, सिर्फ एक रूपया दें दो भिखारी को देखकर जैसे ही वह यात्री उसे पैसे देंने को हुआ तो एक और भिखारिन आई जिसके दोनों हाथ कटे हुए थे और गले में डिब्बा लटका हुआ था। एक आँख भी नहीं थी और शरीर पर नाम मात्र के कपड़े थे। भिखारिन के सामने पहले वाले भिखारी की पात्रता कमजोर हो गई। जैसे ही वह उसके डिब्बे में सिक्का डालनें वाला था। एक और भिखारी उसकी ओर बढ़ता हुआ नजर आया। जिसके पैर घुटनों तक कटे हुए थे वह एक हाथ से घिसटकर उसके पैरों में आकर बैठ

गया। उसकी याचना "आँखों की राह उसके जूतों पर गिर रही थी। उसकी दीनता से युवक की संवेदनाएँ तिलमिला उठी। जैसे वह उसको रुपया देने वाला था कि एक आहट हुई। एक बूढ़ा भिखारी अपने सूखें हाथों से भिखारिन को खींचता हुआ उसके पास आकर खड़ा हो गया। वह गिड़गिड़ाकर बोला, बाबूजी हम दोनों ने न जानें कब खाना खाया था, पैसे दे दो चाय पी लेंगे।"[16] जब यात्री का दिल पसीजता नहीं दिखा तो भिखारिन के मुँह से पल्लू हटा दिया था। कोढ़ से उसका चेहरा गल रहा था, होंठ भी अब तो लटककर नीचे आ गये थे। फिर यात्री ने एक बार उन चारों भिखारियों को देखा और सोचा यदि पात्रता की वरीयता में इनसे भी दीन–हीन आ जाये तो ये उनका हक मार ले जाऐंगें।

इस लघुकथा में संवेदनशील पात्रों ने स्वयं लेखक को ही इस दुविद्या में डाल दिया हैं कि सहायता किसकी की जाए क्योंकि चारों में हर किसी की अपंगता एक से बढ़कर हैं और यदि इनमें से किसी को भी ज्यादा निःशक्त समझकर यदि मैं इसकी सहायता करता हूँ तो इससे भी दीन अवस्था वाला पात्र और आ सकता हैं। सांभरिया ने लघुकथा में सिर्फ दीन–हीन लोगों के प्रति अधिक ध्यान दिया हैं। उनकी अगली लघुकथा 'पुण्य' जिसमें एक छोटा बच्चा तुतलाकर बोलता हैं। दूध में चींटी होने पर अपनी माँ को 'तीरी–तीरी' कहकर बताता हैं। परन्तु उसका पिता जब उसे फैंकने जाता हैं तो अंधा भिखारी गली में आता दिखता हैं और वह उसे देखकर पुण्य करना चाहता हैं।

'रत्न जी' की लघुकथा 'बांझ' में एक दम्पती की कथा हैं। बांझ होना औरत के लिए निःशक्तजन के समान ही हैं। इस लघुकथा में राममेख नामक युवक व उसकी पत्नी हैं। उसकी पत्नी माँ नहीं बन पाती तो राममेख दूसरी शादी कर लेता हैं। वह पत्नी उसे बाप बना देती हैं। अब राममेख बेटे की खुशी में पहली पत्नी का जीना मुश्किल कर देता हैं। हमेशा तानें देता रहता हैं। उसने अपनी पहली पत्नी वन्नू से कहा "वन्नू हो गया न तुम्हारा वहम् दूर कि मेरे आदमी में कमी हैं। अगर मैं तेरी बातों पर रहता, कैसे चलती मेरी वंशबेल?"[17] पति की ऐसी बातें सुनकर वन्नू अंदर ही अंदर रोती रहती हैं। राममेख फिर वात्सल्यमयी आँखों से बच्चें को निहार कर चूम लेता हैं। उसने वन्नू की पीठ में अपने पाँव का ठेला मारकर कहा, देख तूने पाँच बरस में भी कोई बच्चा नहीं जना, मेरी नई पत्नी को आये सालभर हुआ हैं मैं बाप बन गया हूँ। वन्नू साड़ी के पल्लू को अपने मुँह में ठूँसकर रोती हुई अन्दर की ज्वाला में धधकती, 'अगर मैं भी तुम्हारे दोस्तों से होती तो ना कहते'। बच्चा राममेख के हाथों से फिसलकर बिस्तर पर पड़ता हैं।

'रामकुवार घोटड़' द्वारा रचित 'भारतीय हिन्दी लघुकथाएँ' में संकलित 'प्रताप सिंह सोढी' की लघुकथा 'वसीयत' में एक माँ और बेटी का चित्रण हुआ हैं। सेल्वा नामक युवती की अंधी बेटी के लिए वह हर संभव प्रयास करती हैं कि वह जैसे–तैसे ठीक ही हो जायें परन्तु जब डॉक्टरों ने कहा यदि दान की गई आँखों से प्रत्यारोपण किया जाए तो रोशनी वापिस आ सकती हैं। तो माँ बेटी के लिए यह कदम उठाती हैं। अब शहरवासी गली–मोहल्लें के लोग मन में आये कहते जा रहे हैं, ऐसा–जघन्य कार्य करने से पूर्व उसने युवावस्था की दहलीज पर खड़ी अपनी जन्मांध बेटी के भविष्य का ख्याल तो रखना था, देखों बेचारी विलाप करती हुई अपनी अंधी आँखों से कैसे आँसू बहाये जा रही हैं। पुलिस को सेल्वा ही हस्तलिपि में एक पत्र मिला जिसमें लिखा था, बहुत इच्छा थी कि मेरी बेटी की आँखों की रोशनी आ जाए ताकि वह संसार देख सकें क्षमता से अधिक प्रयास भी किये किन्तु विशेषज्ञों का कहना रहा कि दान में प्राप्त इंसानी आँखों के प्रत्यारोपण से दृष्टि संभव हैं। इस कोशिश में असफल रहने पर, अपनी आँखों की वसीयत बेटी इल्वा के नाम कर मैं अपना जीवन प्रभु को सौंप रही हूँ।

इसी लघुकथा संकलन में 'डॉ. सुरेन्द्र मंथन' की लघुकथा 'कंधे पर बैठा आदमी' में दो पात्र निःशक्त हैं जिनमें एक अंधा व एक लंगड़ा हैं। यहाँ पर लंगड़ा अपनी स्वार्थ पूर्ति अंधे से करता हैं वह दिनभर अंधे के कंधों पर बैठकर भीख माँगता हैं अंधा थक हारकर उससे अलग होना चाहता हैं। जाते–जाते उसका नाम पूछतें हैं तो वह लंगड़ा अपना नाम 'इंडिया' बताता और अंधा 'भारत' बताता हैं। यहाँ पर देश की स्वार्थी राजनीति को दर्शाया गया हैं।

'धर्मपाल साहिब' की लघुकथा 'पहचान' जिसमें पार्क में बेहोश पड़े अमर बाबू पर किसी भले मानुष को तरस आया। यह एक मानसिक रूप से अपंग व्यक्ति की लघुकथा हैं। जिसकी निःशक्तता के कारण उसके बहू–बेटे उसको घर से निकालकर सुख का सांस लेते हैं। इस लघुकथा के माध्यम से लेखक ने युवा पीढ़ी को अपने बुजुर्गों के प्रति उदासीनता को प्रकट किया हैं। जिस तरह इस लघुकथा में अमर बाबू के बहू–बेटे ने अपने ही पिता को अपनाने से इंकार कर दिया। क्योंकि कुछ समय पहले से वह मानसिक बीमारी का शिकार था। जिसके कारण वह घर से निकाल दिया और उन्होंने सोचा कि उस पागल से पीछा छूट गया। परन्तु उन्होंने यह नहीं सोचा कि यह दिन उनमें भी आने वाला हैं। एक तो बुजुर्ग और ऊपर से मानसिक अपंगता का शिकार, फिर भी उनका दिल नहीं पसीजा जिस पिता के कारण वे आज कोठी में ऐश–आराम ले रहें हैं। वह उन्हीं की बदौलत हैं और हम उसे देखकर कह रहे हैं कि इस शख्स को तो हमने देखा ही पहली बार हैं।

'डॉ. आशा पुष्प' की लघुकथा 'जिजीविषा' में वह अपनी आँखों देखी कथा को बयाँ करती हैं। 'पिंक सिटी' से लौटते हुए डिब्बें में अचानक मेरे सामने मूँगफली वाला खड़ा हुआ और जोर–जोर से आवाजें लगानें लगा। पर आश्चर्य! मुझे यह हुआ कि वह एकदम अंधा था। मेरी यह जानने की जिज्ञासा हुई कि वह एकदम अंधा हैं तो फिर वह मूँगफली कैसे नापता होगा और पैसे कैसे गिनता होगा? न खरीदना चाहते हुए भी मेरी इच्छा मूँगफली खरीदनें की हुई। मैंने उससे मूँगफली खरीदी, मेरी खुशी का ठिकाना न रहा जब उसने मूँगफली एक डब्बे से नापकर तोली और टटोल कर पैसे वापिस दिये। मेरे पूछने पर उसने बताया कि मेरे पास भिन्न–भिन्न नाप के डिब्बें हैं जिनसे नापकर मूँगफली तोल देता हूँ। टटोलकर पैसे लेता हूँ और बचे सिक्कें वापिस देता हूँ। यह कहकर वह आगे बढ़ गया। उसकी मुस्कराहट मानों मुझे कह गई, जिन्दगी जीनें के अपने–अपने आयाम होते हैं, जीनें की चाह तो हो। 'डॉ. आशा पुष्प' की दूसरी लघुकथा 'हक' में एक अपाहिज पात्र का वर्णन हुआ हैं। चलती ट्रेन में वह घिसट घिसटकर झाडू लेकर सफाई कर रहा था। कूड़ा–फेंककर उसने यात्रियों के सामने हाथ फैलाकर पैसें माँगना शुरु किया कुछ लोगों के पैसे न देंने पर उसने बड़ें अधिकार से कहा साहब मेरी मजदूरी तो दें दो। इतना कीचड़ साफ किया हैं, अबे चल फुट! एक यात्री ने कहा।

अपंग आदमी ने कहा साहब अपनी मेहनत की कमाई माँग रहा हूँ। कई लोगों ने पैसे ना देनें के लिए आवाजें उठाई तो वह भी अपनी मजबूरी का प्रमाण देता हैं, "ताव मत दिखाओं साहब! खून मेरा भी गरम हैं। सामने वाली सीट पर बैठे यात्री के दांत पीसकर झपटने से पहले ही डिब्बों में न थमने वाला शोर उस अपाहिज किशोर के लिए कवच बन गया, जिससे एक गंभीर स्वर बार–बार गूंजनें लगा–'क्यों नहीं दोगें उसकी मजदूरी, क्यों नहीं दोगें।"[18]

इस लघुकथा का संवेदनशील पात्र पैरों से अपाहिज हैं लेकिन फिर भी वह मेहनत करके ही खाने में नियत रखता हैं। माँगकर नहीं खाता। ट्रेन में झाड़ू निकालकर यात्रियों से इतने पैसे कमा लेता हैं जिससे वह अपने खाने–पीने का काम चला सके। जब कुछ यात्री उसे पैसे नहीं देंते तो वह कहता हैं, मैं अपने हक का पैसा माँग रहा हूँ हराम का नहीं मैंने मेहनत की हैं। यह मेरी मजदूरी हैं जो तुम्हें देनी पड़ेंगी।

डॉ. अमरनाथ चौधरी 'अब्ज' की लघुकथा 'स्वाभाविक' इस लघुकथा का पात्र दोनों पैंरों से अपाहिज हैं। चौधरी जी ने इस लघुकथा के माध्यम से स्पष्ट किया हैं कि एक तो निजी संस्थाओं में किस प्रकार दिव्यांग लोगों का शोषण होता हैं और उन्हें उनके अंगहीन होने का अहसास करवाकर प्रताड़ित भी किया जाता। हम देखते हैं कि अपंग लोग अपनी निःशक्तता के बावजूद भी अपने कार्यों में दक्ष होते हैं, वे अपने आत्मसमान को बनाये रखनें के लिए कठोर परिश्रम भी करते हैं। 'डॉ.

सतीशराज पुष्पकरण' की लघुकथा 'स्वाभिमान' जिसमें एक निःशक्त व्यक्ति खीरा बेचता हैं। उसके स्वाभिमान का चित्रण किया गया हैं। यहाँ खीरा बेचने वाले का संवाद दृष्टिगत हैं। मुझे सहानुभूति का नहीं श्रम और ईमान का पैसा चाहिए। इस लघुकथा का उद्देश्य हैं कि जिसके पास इच्छा शक्ति एवं आत्मबल तथा विश्वास हैं, वह सफल होता ही हैं। इसी प्रकार 'साहसिक कदम', 'डॉ. मिथिलेश कुमारी मिश्र' इस लघुकथा का पात्र अंधा हैं। परन्तु कथा नायिका को यह पता हैं कि वह अंधा हैं परन्तु फिर वह उससे शादी के लिए तैयार हो जाती हैं। नायिका कहती हैं, "मुझे विश्वास है कि मैं उनके साथ सुखी रहूँगी। मैं उनकी आँखों की रोशनी बनूँगीं।"[19]

इस लघुकथा के माध्यम से निःशक्तजन के प्रति नायिका की संवेदना उभर कर आई हैं। हर इंसान की अपनी अलग सोच व समझ होती हैं। हर किसी के देखनें का नजरिया अलग होता हैं। एक ही चीज का अलग–अलग लोग मतलब भी अलग–अलग निकालते हैं। इस लघुकथा की नायिका एक अंधे आदमी की आँखों की रोशनी बनना चाहती हैं। वह उसके साथ रहकर उसकी जिंदगी में रोशनी लाने का काम करेंगी और स्वयं अपनी इच्छा से जीनें की चाह को भी पूरी करेंगी। 'प्रद्युम्न भला' की लघुकथा 'अपाहिज' का पात्र दोनों पैरों से लाचार हैं। जब उसे निःशक्त आरक्षण वाली श्रेणी में नौकरी देने की बात होती हैं। तो वह इसे स्वीकार न करके कहता हैं, "बाबू जी कुदरत ने तो केवल मेरी टाँगे छीनी हैं, लेकिन आप तो मेरे हाथ भी काट रहे हैं।"[20]

'शैलेशदत्त मिश्र' की लघुकथा 'आरक्षण' में एक दिव्यांग जन को दिये जाने वाले आरक्षण में व्याप्त भ्रष्टाचार की पोल बहुत ही सुन्दर ढंग से खोल दी गई। इस लघुकथा का पात्र गणेश पैर से निःशक्त होनें पर भी तथा शैक्षणिक प्रमाण–पत्र होने के बावजूद भी उसे नौकरी नहीं मिल पाती क्योंकि हमारे देश की भ्रष्ट राजनीति सिर्फ घूसखोरों को ही नौकरी देती हैं। एक अपंगजन को भी नहीं देखतें जबकि पता हैं कि यदि उन्हें नौकरी नहीं मिली तो उनको खाने के लाले पड़ जाएगें। अंत में भिक्षावृत्ति का ही सहारा लेना पड़ेगा। ज्यादातर निःशक्तजन भीख माँगकर ही पेट पालते हैं इसमें सरकार की कमी अवश्य हैं क्योंकि उन्हें पूर्ण सुविधा देकर भी नहीं देती। 'राजेन्द्र मोहन त्रिवेदी' की लघुकथा 'स्वाभिमान' में दो निःशक्त पात्र हैं एक अंधा और एक लंगड़ा होनें पर दूसरे के भरोसे न रहकर अपने बल पर ही अपना पेट भरते हैं। एक पात्र अंधा होने पर भी दूसरे लंगड़े को शिक्षा देता हैं कि तुम तो आँखों से देख भी सकते हो तो भीख क्यों माँगते हो इन बातों से लंगड़े पात्र के अन्दर भी स्वाभिमान पैदा हो जाता हैं और वह भीख माँगना छोड़कर अंधे के काम में हिस्सेदार बन जाता हैं। 'माधव नागदा' की लघुकथा 'विकलांग' में दिव्यांग पात्र पैर से लंगड़ा हैं, वह भीख माँगकर अपना पेट भरता हैं। वह दुकान पर बैठें सेठ से भीख माँगने जाता हैं। तो सेठ उसको कहता हैं, हट्टा–कट्टा हैं, कोई काम क्यों नहीं करता, जो इस तरह भीख माँगता चलता हैं।

भिखारी स्वयं को अपमानित महसूस करते हुए कहता हैं, "सेठ तू भाग्यशाली हैं। पहले जन्म में तूने अच्छे करम किए हैं, खोटे करम तो मेरे हैं। जनम लेते ही भगवान ने एक टाँग ले ली, यदि टाँग न ली होती तो मैं भी आज तेरी तरह कुर्सी पर बैठा राज करता।"[21]

सेठ भिखारी से बहस करके मुँह नहीं लगना चाहता था उसने गुल्लक में भीख के लिए सिक्कें ढूँढ़े। भिखारी आगे बढ़ा यह ले लो भिखारी हाथ फैलाकर नजदीक गया, परन्तु अचानक हाथ पीछे खींच लिया, मानों सामने सिक्कें की बजाय जलता हुआ कोई अंगारा हो। कुर्सी पर बैठकर राज करने वाले की दोनों टाँगे घुटनों तक गायब थी।

यहाँ एक संवेदनशील पात्र दूसरे के लिए सबक बन गया। भीख माँगने वाला अपाहिज कुर्सी पर बैठे अपाहिज की लाचारी देखकर आत्मग्लानि से भर गया। जब वह यह देखता हैं कि वह जिसके सामने हाथ फैला रहा हैं वह स्वयं एक निःशक्तजन हैं तो उसमें भी आत्मविश्वास पैदा होता हैं कि जब वह इतना काम कर सकता हैं तो मैं क्यों नहीं कर सकता?

इसी प्रकार प्रसिद्ध लघुकथाकार 'मधुकांत' की 'लघुकथा नामक पुस्तक' 'हौंसला' में कुछ लघुकथाएँ निःशक्तजन पर केन्द्रित हैं। उन्होंने शारीरिक रूप से दिव्यांग जीवन–जीने वाले व्यक्ति के संघर्ष, जिजीविषा व सकारात्मक सोच को बढ़ावा दिया हैं। उन्होंने समाज में निःशक्त मानसिकता वाले उन लोगों की भावनाओं को भी वाणी दी हैं, जो शारीरिक रूप से दिव्यांग लोगों को कम समझते हैं और उनके प्रति उपेक्षा या घृणा का भाव रखतें हैं। इसी प्रकार 'हौंसला' पुस्तक में दिव्यांग से रूबरू करवाया हैं। 'विकलांग की जीत' लघुकथा में कबड्डी की खिलाड़ी कमला अपना एक हाथ गंवाने के बाद भी पकड़ में किसी को आगे नहीं आने देती हैं। पत्रकार की बात का जवाब देते हुए कहती हैं, "हार और जीत शरीर से नहीं, हौंसलों से होती हैं।"[22]

ऐसा ही एहसास 'बदलाव' लघुकथा में उभारा गया हैं। कल्लू दादा बच्चों को पकड़, उन्हें निःशक्त करवाकर भीख मँगवाता हैं, किन्तु जब उसका अपना बच्चा अपंग पैदा होता हैं तो उसकी सोच बदल जाती हैं मुझे मेरे पापों की सजा मिल गई हैं। कब से मैं अपने बच्चों के लिए तरस रहा था। भगवान ने दिया तो भी निःशक्त...। कल कोई बच्चा भीख नहीं माँगेगा। छोड़ दों सबको। 'समर्थ' लघुकथा का पात्र 'उदय' नई सोच के उदय की जरुरत का अहसास कराता हैं। अपंग होकर भी वह सामान्य श्रेणी से ही नियुक्त होना चाहता हैं, क्योंकि उसमें ऐसी सामर्थ्य हैं। अधिकारी के पूछने पर उदय कहता हैं, सर मेरा तो काम चल जाएगा। इस निःशक्त आरक्षित सीट का लाभ मेरे किसी भाई को मिल जाए तो ज्यादा अच्छा रहेंगा। 'उपकार' लघुकथा बताती हैं कि जिसे समाज अपंग कहता हैं, वह संकट में दूसरों के काम आता हैं? जिस माधों को भीख माँगने के कारण एक औरत बुरा भला

कहती हैं, वहीं माधों उसके पोते को भीड़ के रेले में दबने से बचाता हैं, लेकिन स्वयं उसमें दब जाता हैं। अब वहीं औरत कहती हैं– भिखारी तो हम हैं, वह तो हमारा भगवान हैं। मैं ही अंधी हो गई, उसको पहचान न सकी।" अब वह स्वयं पश्चात्ताप कर रही हैं। हम सकलांग होकर भी दिव्यांग हैं।

किसी भी आदमी को उसके पहनावा व रहन–सहन से उसके भावों को नहीं आँकना चाहिए क्योंकि भगवान पता नहीं कौनसे रूप में हमारी परीक्षा लेने के लिए आ जाए।

'तालियां' लघुकथा में अपंग व्यक्ति का साहस और समाज की शाबाशी दोनों का संयोग हो जाए तो दिव्यांगता दूर भी हो सकती हैं। इस लघुकथा में नृत्यांगना कामिनी एक पांव से नृत्य करके भी प्रथम स्थान प्राप्त करती हैं। इसके बाद लोगों की तालियों से उसमें इतना उत्साह व उमंग जागती हैं कि उसका दूसरा पांव भी जमीन पर जमनें लगता हैं। 'सहयोग' लघुकथा समाज को स्पष्ट संदेश देती हैं कि यदि एक निःशक्त व्यक्ति अपनी निःशक्तता को नजरअंदाज कर समाज के काम आता हैं तो समाज को भी उनके हित के बारे में सोचना चाहिए। 'राजी नामक' औरत की डिलीवरी के दौरान उसकी चौदह वर्षीया निःशक्त लड़की मजदूरी–कानून को द्यता बताकर डॉ. अंजना के घर पर काम संभालती हैं। डॉ. अंजना भी उसे अपनी पढ़ाई चालू करने की शर्त रख देती हैं। 'अनहोनी' लघुकथा समाज द्वारा दिव्यांग लोग ही नहीं, अपंग रिश्तेदारों के प्रति भी संवेदनशीलता रखने वाली मानसिकता पर प्रहार करती हैं। भाई की मृत्यु के बाद दयाशंकर उसकी अनाथ–अपंग लड़की धीरा को घर लें आता हैं। उसकी पत्नी रीना को धीरा की ओर से हर समय अनहोनी की आशंका बनी रहती हैं। किन्तु अपंग धीरा ही चोरों को रोकते हुए अपनी जान पर खेलकर भी उसके गहने आदि चोरी होने से बचा लेती हैं हालांकि बिखरा हुआ समान देखकर रीना को धीरा पर ही चोरी का संदेह हुआ था।

इस तरह हर निःशक्तजन भिखारी नहीं होता उसकी भी अपनी कुछ मर्यादाऐं होती हैं। भीख माँगना भी सबके बस की बात नहीं हैं। कई लोग तो ऐसे होते हैं जो न चाहते हुए भी उनको भीख माँगना पड़ता हैं।

'टुण्डा छोकरा' लघुकथा भी इसी मानसिकता को उजागर करती हैं। एक भीख माँगने वाला दिव्यांग छोकरा ही एक मेमसाहब का पर्स गिर जाने पर वापिस लौटानें जाता हैं। जिसे देखने में वह जेबकतरा लग रहा था। लेखिका अंत में उस अपंग लड़के का स्वाभिमान दिखाकर मानों मेमसाहब जैसे लोगों की मानसिकता पर चोट करती हैं। इनाम देने के लिए जैसे ही मेमसाहब ने अपने पर्स से एक नोट निकाला, परन्तु व छोकरा गायब हो गया था। यहाँ पर निःशक्त लोगों को हीन समझने वाले घमण्डी लोगों पर प्रहार हुआ हैं।

'बैसाखियों' लघुकथा में निर्मल का दोस्त निकेतन पैरों से लाचार हैं। उसकी बैसाखियाँ बड़ा शोर करती हैं। इसलिए एक दिन निर्मल पुरानी बैसाखियों के बदलें चुपके से नई बैसाखियाँ रख देता हैं। 'नेत्रदान' लघुकथा में पापा के नेत्रदान करने की इच्छा को मां की विह्वलता देखकर बेटी पूरी नहीं कर पाती, जिसका उसे बहुत अफसोस होता हैं। वह माँ को पत्र लिखती हैं। 'पापा को बचाना तो हमारे हाथ में नहीं था, परन्तु उनकी आँखों को जिंदा रख सकते थे।'

'भिखारी' नामक लघुकथा में दिखाया गया हैं कि निःशक्त लोग भी भीख माँगकर धंधा करते हैं। सभी लोग बराबर नहीं होते परन्तु कुछेक लोग जरुर इसका गलत उपयोग करते हैं। दो रोटी माँगते हुए भिखारी के लिए दिन में कई लोग ढाबे वाले को बीस–बीस रुपये देंते हैं, पर भिखारी उनमें से पाँच–पाँच रुपये ढ़ाबे वाले को देकर शेष राशि शाम को शराब व मीट में उड़ाता देता हैं। ऐसे लोगों की वजह से निःशक्तों के प्रति उभरी हुई संवेदना भी खत्म हो जाती हैं।

'प्रमोद शर्मा' की लघुकथा 'मन के जीते–जीत' लघुकथा का पात्र गोकुल तैराकी में अपना पैर गवांकर भी नदी में डूबते बच्चें को बच्चा लेता हैं। उसके अन्दर इतना स्वाभिमान है कि अपाहिज कोटे में नौकरी लेनें से मना कर देता हैं। बाद में उसे तैराकी की योग्यता के कारण नौकरी मिलती हैं।

'रवि श्रीवास्तव' की दूसरी लघुकथा 'ट्रयसिकल' हैं जो विश्व के सबसे बड़े गणतंत्र की पोल खोल रहा है। इस लघुकथा में दिव्यांग जन ने ही अपने वर्ग से साथ छल किया हैं। स्वयं इस समस्या से जूझनें के बाद भी जब उसके हाथ में इस वर्ग के प्रति कुछ भला करने का मौका आता हैं तो वह सरकार से मिले हुए रूपयों को खा जाता हैं। स्वयं भी इतना भ्रष्ट हो जाता हैं, इसी कारण श्रीवास्तव जी ने जनता को जागते रहने और अन्याय के विरोध में खड़े होनें का जो मंत्र दिया हैं, देश को उसकी सबसे ज्यादा जरुरत हैं। 'कोंदी लघुकथा' 12 जुलाई 2010 को 'देशबंधु' के 'मडई' में प्रकाशित इस लघुकथा की पात्र गूंगी हैं वह अपनी बेटी का परिचय सरगम से करवाती हैं। उसकी बेटी प्रसिद्ध गायिका बन जाती हैं। लेखिका ने 'सर्वशिक्षा अभियान' का एक विज्ञापन देखा था, जिसमें माँ अपनी बेटी को किताब खोलकर देती हैं और कहती हैं 'पढ़ों' बच्ची किताब देखकर कहती हैं– माँ तूने तो पुस्तक ही उल्टी रख दी है, माँ डबडबायी आँखों से बच्ची को सचेत करती हुई कहती हैं– इसलिए तुमसे कहती हूँ कि पढ़ों ताकि तुम अपनी बेटी के सामने पुस्तक सीधी रख सकों।" बेटी को सम्मान मिलने पर माँ को प्रसन्नता और बहुत बड़ी खुशी को पाने पर असहज हो जाने की स्वाभाविकता को कथाकार ने खूब निभाया हैं, 'कोंदी' बहुत लोगों की प्रेरणा बनेगी, ऐसा लेखिका का विश्वास हैं। इस लघुकथा में लेखिका स्वयं निःशक्त होने पर भी बेटी के भविष्य का ध्यान रखती हैं।

अपनी बेटी को प्रेरणा देती हैं कि पढ़ लिखकर आगें बढ़ों जिससे तुम और लोगों की प्रेरणा का भी पात्र बन सकों कि एक निःशक्तजन जब अपनी बेटी को आगे बढ़ा सकता हैं तो एक सशक्त क्यों नहीं? यही प्रेरणा दुनिया को देनी हैं।

'शाल्मली दुबे' की लघुकथा 'झिलमिल' हैं। 'झिलमिल' पैर से अपंग पात्र हैं। यह इस लघुकथा की मुख्य पात्र हैं स्कूल में इसके दोस्त इसे लंगड़ी कहकर चिढ़ातें रहते हैं। जिससे उसमें हीन भावना आ जाती हैं उसकी सहेली संजना उसका साथ देती हैं और झिलमिल को अपनी माँ से मिलाती हैं, उसकी माँ अच्छा गाती हैं जिसके कारण वह झिलमिल और संजना को भी गाना सिखा देती हैं। जब प्रतियोगिता होती हैं। तो वह अपनी दोस्त संजना के साथ वहाँ पहुँचती हैं। जब वे दोनों गाना गाती हैं तो दोनों को प्रथम व द्वितीय पुरस्कार मिलता हैं, अब जो दोस्त उसे चिढ़ातें थे वे उसके दोस्त बन जाते हैं। वे उसकी सहेली संजना की वजह से जिन्दगी में आये बदलाव से खुश हैं। 'दानेश्वर शर्मा' की लघुकथा 'दैनिक भास्कर' 9–1–94 में प्रकाशित हुई। जिसमें लघुकथाकार ने दो पात्रों का वर्णन किया हैं। एक तो वह हैं जो अपने–आपको तीर्थ यात्री कहता हैं, वह निःशक्त नहीं हैं, किन्तु याचना करता हुआ दिखाई देता हैं। दूसरा पात्र निःशक्त हैं वह अपनी सुविधा को ताक में रखकर दूसरों पर अपना सब कुछ त्याग करता हैं। ऐसे पात्र–त्याग के साथ उपयोग करना चाहिए के आदर्श के साथ अपना जीवन जीते हैं। यह कथा इसी आदर्श को दर्शाती हैं। इसका शीर्षक 'वह लड़का निःशक्त था या तीर्थ यात्री'।

'रवि श्रीवास्तव' की लघुकथा 'अक्षर पर्व' अप्रैल 2010 में प्रकाशित 'नई पीढ़ी' जिसमें दो लड़कियाँ बैसाखी के सहारे ट्रेन में किसी तरह चढ़ तो जाती हैं, किन्तु उन्हें बैठनें की जगह नहीं मिल पाती। यात्री गण जगह देनें का नाटक तो करते हैं परन्तु बिठाता कोई नहीं। इतने में एक छोटी बच्ची, अपनी जगह से खड़ी हो जाती हैं और कहती हैं, 'दीदी'। आप लोग इधर आ जाइये। इधर बहुत जगह हैं उन्हें बिठा देती हैं। यहाँ 'नई पीढ़ी' की समझदारी अच्छी लगी। यह एक आइना हैं, जिसमें हम सब अपनी सूरत देख सकते हैं कि हम कहाँ खड़े हैं और कहाँ खड़ा होना चाहिए। लघुकथाकार 'संजीव तिवारी' की लघुकथा 'थप्पड़' एक ऐसे लड़के की हैं जो पोलियों से पीड़ित हैं। वह बचपन से ही चाहता था कि और बच्चों की तरह वह भी दौंड़े, पतंग उड़ाऐं, साइकिल चलाऊँ और क्रिकेट खेलूँ, पर यह संभव नहीं था। क्योंकि वह पैरों से निःशक्त था। बिना सहारे वह खड़ा भी नहीं हो सकता था। उसके माँ–बाप उसकी इस दशा से बेहद परेशान थे और रोते रहते थे, जब वह दूसरें बच्चों के साथ खेलने की जिद्द करता और अपनी विवशता पर रोने लगता तो उसकी माँ उसको धैर्य बंधाती और अपने हाथों से पकड़कर उसे चलाती। तब वह बहुत खुश होता। वह सपने

देखता था कि काश! वह भी और बच्चों की तरह दौड़ता, उछल–कूद करता। प्रकाश उसे परेशान करता रहता था। वह उसको मारकर भाग जाता था परन्तु मजबूरीवश वह उसे पकड़ नहीं पाता था।

समय के साथ सब कुछ बदलता हैं। आठवीं कक्षा तक तो माँ उसे स्कूल में छोड़ती और फिर जब वह हाईस्कूल में आया तो उसे तीन पहिये वाली साइकिल मिल गई थी। उसमें आशा की किरण जागी। प्रकाश अभी भी उसे नीचा दिखाने में पीछें नहीं हटा, किन्तु अब वह हार नहीं मानता था। उसने बी.कॉम किया फिर सी.ए.। उसकी मेहनत के साथ–साथ भगवान ने भी उसका साथ दिया और प्रथम अटैम्प में ही उसने सी.ए. पास कर लिया। अब वह अच्छी कार में बैठकर नौकरी के लिए आता–जाता हैं परन्तु जो प्रकाश उसकी खिल्ली उड़ाता था वह मेहनत–मजदूरी करके अपना पेट पाल रहा था। जब उसे कहीं प्रकाश मिल भी जाता तो प्रकाश ऐसे नजरें बचाकर भागता। जैसे किसी ने उसको थप्पड़ मार दिया हो।

तिवारी जी ने समाज के ऐसे लोगों से परिचित करवाया हैं जो प्रकाश जैसे हैं जो निःशक्तजन के प्रति सहानुभूति न रखकर हीन दृष्टि से उसका उपहास उड़ाते हैं।

तिवारी जी की एक और लघुकथा 'अंधा' जिसका निःशक्त पात्र आँखों से अंधा हैं। मुख्य नायिका एक घमण्डी लड़की हैं। जिसके पिता बड़े अफसर हैं जिसका तबादला बड़े शहर से छोटे शहर 'राजिम' में हो गया। उसकी लड़की इतनी घमण्डी हैं कि वह चाहती हैं स्कूल का हर बच्चा बस उसे ही देखें। जब कोई उसकी तरफ नहीं देखता तो विचित्र हरकत करती हैं। जब एक लड़का उसे नहीं देखता तो वह उसे पसन्द नहीं करती, वह उसके पास जाकर साइकिल की घण्टी बजाती हैं। तो वह लड़का हड़बड़ा गिर जाता हैं। लड़की आक्रोश में बोलती हैं देख नहीं सकते 'अंधे'।

परन्तु अब उस लड़की की शादी हो जाती हैं। जब उनकी शादी की रिसेप्शन पार्टी होती हैं तो उसके पति के बॉस के आने पर सभी उसके स्वागत में लग जाते हैं। परन्तु लड़की यह देखकर हैरान रह जाती हैं कि यह तो वहीं लड़का हैं जिसको उसने अंधा कहा था, वह सच में अंधा हैं परन्तु छत्तीसगढ़ परिमंडल का प्रमुख हैं। आज उसे अपने आप पर गुस्सा आ रहा हैं, जिसके प्रति वह लड़की हीनभावना रखती थी वह ही आज उस नवदम्पती को दीर्घायु का आशीर्वाद दें रहा हैं। 'ऐसा भी होता हैं' 'सीमा मल्होत्रा' की लघुकथा एक निःशक्त लड़की की हैं। जिसके पैरों के कारण वह निःशक्त हैं। उसके पास तिपहिया वाहन हैं, वह उसमें बैठकर अपने ऑफिस आती हैं। वह अपनी दोस्त निशा को अपने तिपहिया वाहन से उसके घर छोड़ देती हैं। परन्तु हीनभावना के कारण उसकी दोस्त निशा अगले दिन स्वयं ही उसके साथ जाने की मना कर देती हैं। परन्तु कुछ दिन बाद आरती अपनी कार खरीद लेती हैं, जिसके कारण अब वह अपनी कार से ही ऑफिस जाती आती हैं।

एक दिन निशा ने आरती से कहा कि वह उसे जाते समय घर तक छोंड़ दे तो आरती ने यह कहकर मना कर दिया की वह अभी नहीं जा रही हैं। यह सुनकर निशा दंग रह गई। वह सोचती हैं ऐसा भी होता हैं।

'अंधा और लंगड़ा' बाल भारती (भाग–1) इस लघुकथा के दो पात्र हैं दोनों ही निःशक्त हैं, जिसमें एक अंधा और एक लंगड़ा हैं। 'बंशी अंधा' हैं और 'गंगाराम लंगड़ा' हैं। दोनों अपनी समस्या का समाधान स्वयं ही ढूँढ लेते हैं। उनको मेला देखनें की इच्छा होती हैं, परन्तु जाए कैसे एक लंगड़ा, जो चल नहीं सकता, दूसरा अंधा जो देख नहीं सकता। दोनों ने समाधान खोजा लंगड़ा अंधे के कंधे पर बैठ गया और अंधे को रास्ता दिखाता रहा। इस प्रकार दोनों मेला घूमकर आ गये। यह लघुकथा प्रेरणा का स्रोत भी हैं कि एकता में ही बल होता हैं दोनों ने मिलकर यह काम कर लिया परन्तु अलग–अलग रहते तो दोनों में कोई भी यह काम नहीं कर सकता था।

'सांझी एक्सप्रेस' से ली गई लघुकथा 'मुस्कराहटें', 'रतनचंदरत्नेश' द्वारा रचित लघुकथा में जिसका दायाँ हाथ लकवे से बेकार हो गया हैं। वह भीख माँगकर पेट भरता हैं परन्तु एक दिन जब वह बस स्टैण्ड पर भीख माँग रहा था तो एक आदमी ने उसे जीने की नई राह दी। जब वह उस यात्री के सामने हाथ फैलाता हैं तो वह उसे कमाकर खाने की सलाह देता हैं। परन्तु वह अपनी निःशक्तता की विवशता बताता हैं तो वह यात्री उसे पाँच रुपये देकर कोशिश करके देखने की सलाह देतें हैं। अब उस अपंग व्यक्ति के मन में यह बात बैठ जाती हैं, अब वह बस स्टैण्ड पर केले का ठेला लगाता हैं और अच्छा कमाता हैं। ऐसे ही फिर एक दिन उस महापुरुष के साथ उसका मिलन हो जाता हैं तो दोनों बस मुस्करा देते हैं। यहाँ पर हर नागरिक का कर्त्तव्य हैं कि वह एक निःशक्त लाचार को जीने की राह दिखाए। 'महावीर प्रसाद जैन' की लघुकथा 'हाथ वाले' पत्रिका अंक–2 में एक निःशक्त व्यक्ति हैं जो ईमानदार हैं और दूसरा पूर्ण स्वस्थ हैं परन्तु वह बेइमान हैं। अपंग व्यक्ति एक किताबों की दुकान लगाकर बैठा हैं तभी एक सशक्त व्यक्ति आता हैं जो किताब को उलटा–पलटी करके देखता हैं। परन्तु जैसे ही वह अपंग व्यक्ति और ग्राहकों के साथ व्यस्त हो जाता हैं वह सशक्त व्यक्ति उस किताब के पैसे बिना ही ले जाता हैं। वहाँ खड़े हुए लोग कहते हैं कि वह आदमी आपकी किताब चुराकर ले गया तो वह निःशक्त दुकानदार कहता हैं कि उसे पता हैं। सब लोग उसकी तरफ हैरानी से देखते हैं कि इसको पता हैं फिर भी इसने उसको रोका नहीं। वह कहता हैं यदि हाथ वाले ही चोरी नहीं करेंगें तो फिर क्या हम जैसे 'एक हाथ वाले'। इस पात्र ने संघर्ष के साथ जीवन जीते हुए अपनी लाचारी को मात दें दी हैं।

'गूंगी और गंगाराम' लघुकथा कृति वार्षिक 2006 में प्रकाशित हुई। यह गौरी नाम की एक 'गूंगी' पात्र हैं जिसकी माँ उसके जन्म के बाद ही मर जाती हैं। पड़ोस में रहने वाला जमींदार का लड़का उसे अपनी हवस का शिकार लेता हैं। गूँगी का पिता शर्म के मारे आत्महत्या कर लेता हैं। अब गूंगी बिन ब्याही माँ बन जाती हैं। माँ तो अपनी ममता को नहीं मिटा सकती, वह उसे भी नहीं छोड़ सकती अब स्वयं गूँगी और बेटे गंगाराम के साथ रहती हैं।

गूंगी तो भगवान ने बनाई हैं परन्तु समाज की निःशक्तता का जिम्मेदार वह समाज स्वयं ही हैं। समाज हर मजबूर आदमी की बेबसी का फायदा उठानें की ताक में रहता हैं।

'डॉ. चन्द्रावती नागेश्वर' की लघुकथा 'अरुणिमा' में अरुणिमा बचपन में सड़क दुर्घटना का शिकार हो जाती हैं। उसे एक पैर गवाँना पड़ा था। सपने को साकार करने के लिए बुलन्द हौंसलों के साथ 21 मई 2013 को एवरेस्ट शिखर पर कदम रख लिया। डॉ. विनय कुमार पाठक की लघुकथा शीर्षक 'अपाहिज से छल' में यह प्रेरित किया हैं कि दुनिया में ऐसे छल प्रपंच रखने वालों की कमी नहीं हैं। जो अपने खून से भी छल करने में बाज नहीं आते पिता की वृद्धावस्था और उसकी निःशक्तता को निरखकर पहले वसीयतनामा लिखाया जाता हैं फिर भावात्मक छल प्रपंच के जरिये अपाहिज अग्रज से भावनात्मक छल का षडयन्त्र किया जाता हैं। आज दिव्यांग जन के प्रति भी लोग ह्रदयहीन हैं वहीं अनेक ऐसे उदाहरण हैं जिससे आभास होता हैं कि दिव्यांग जन को सहयोग देनें के लिए उनका परिवार और परिवेश पूरी तरह मददगार साबित होता हैं।

लघुकथाओं में पात्रों के प्रति संवेदनशीलता के अन्नतर यह कहा जा सकता हैं कि निःशक्तता के प्रति सहिष्णु होकर मानवता का मान रखा जा सकता हैं। दिव्यांग जन में जो सहयोग और जज्बा कायम हैं उसे उत्प्रेरित करने का कार्य केवल माता–पिता व अभिभावकों का ही नहीं हैं वरन् उस पूरे समाज का हैं जो दिव्यांग जन के जीवन को सफल और सार्थक सिद्ध करने के लिए कृत संकल्पित हैं।

रवि प्रकाश 'एक प्रखर व्यक्तित्व' इस लघुकथा का पात्र रवि बहुत तीव्र बुद्धि बालक हैं। उसकी आँखों की रोशनी जाने से उसके सपनों पर पानी फिरने लगा। कुशाग्र बुद्धि होने के कारण उसने आई.ए.एस. की परीक्षा पास की। पोस्टिंग के लिए भी लम्बी कानूनी लड़ाई लड़ी और अन्त में अपने नाम के अनुसार अंधे रवि ने प्रकाश को चमका दिया। 'हाथ–पाँव से लाचार पर हार नहीं मानूगा' लघुकथा छत्तीसगढ़ के 'तरुण' द्वारा लिखित हैं। इसका पात्र गोविन्द अठारह वर्ष तक सामान्य जीवन जीनें के बाद धीरें–धीरें पैरों से लाचार हो गया। अब उसे व्हील चेयर पर रहने की नौबत आ गई। दो वर्ष तक डॉक्टर के पास इलाज चलने के बाद भी फायदा नहीं हुआ। डॉक्टरों ने

मायोपैथी बीमारी बताई जो ठीक नहीं हो सकती थी। परन्तु उसने हार नहीं मानी कपड़े का व्यापार शुरु किया परन्तु उसमें उसको घाटा हुआ, दो बार असफल होने के बाद शहर और व्यवसाय दोनों छोड़कर कोरबा आ गए। कोरबा आकर कूरियर का काम आरम्भ किया और उसकी मेहनत रंग लाई। आज वे सफल व्यवसायियों में गिने जाते हैं। आज उनके ढेर सारे दोस्त हैं, पत्नी हैं, परिवार हैं। सप्ताहांत परिवार के साथ मौज मस्ती करता हैं। जीवन का पूरा आनन्द लेता हैं। उन्होंने जिन्दगी से हार नहीं मानी अपने हौंसलें को बनाए रखा। अब इनका उद्‌देश्य हैं निःशक्तजन और वृद्धों की सेवा के लिए आश्रम बनवाना।

इस प्रकार के व्यक्ति जब हार नहीं मानते तो एक सशक्त आदमी कैसे हार मान लेता हैं। भगवान जब एक अंग छीन लेता हैं तो दूसरे को अधिक सशक्त बना देता हैं। इस मजबूती के कारण वह दुनियाभर से लोहा लेते हुए जिन्दगी की कठिन परिस्थितियों से भी जूझ लेता हैं। यहाँ निःशक्त पात्रों को सिर्फ उनके प्रति संवेदना की जरुरत हैं।

'दैनिक भास्कर' में प्रकाशित 'इच्छाशक्ति ने अपंग को बनाया धावक' लघुकथा में मनुष्य की दृढ़ इच्छाशक्ति को व्यक्त किया गया हैं। इसमें एक अपंग लड़की हैं, जो कक्षा में अपने अध्यापक से 'खेल' के बारे में जानना चाहती हैं। परन्तु अध्यापक उसका मजाक उड़ातें हुए कहता हैं, "क्या करोगी खेल और खिलाड़ियों के विषय में जानकर पहले अपने पैंरों को तो देखों तुम ठीक से चल भी नहीं सकती।"[23] तब उसने बैसाखी का सहारा लेते हुए कहा, "आज मैं अपाहिज हूँ चल नहीं सकती किन्तु सर! याद रखियों यदि मन में पक्का इरादा हो तो कुछ भी असंभव नहीं।"[24] उसकी यह बात सुनकर अध्यापक हँस पड़े। फिर 1960 के ओलम्पिक में उसने दौड़ में तीन गोल्ड मेडल हासिल किये। अपंग लड़की के हौंसलें को पूरी दुनिया ने सलाम किया। इस लघुकथा की संवेदनशील पात्र निःशक्त होने पर भी दृढ़ इच्छा शक्ति ने उसके हौंसलों को आगे बढ़ाया। सारी दुनिया आज उस लड़की के सामने नमस्तक हैं जिसका अध्यापक ने मजाक बनाया था।

इसी प्रकार गिरिराजशरण की 'पोलियों' लघुकथा में मणिका नाम की निःशक्त पात्र हैं जिसकी एक टाँग पोलियों से ग्रस्त हैं। उसकी अपंगता के कारण मनीष की माँ मनीष की शादी के लिए उसे ठुकरा देती हैं। जबकि मनीष उससे प्यार करता हैं। परन्तु अपनी माँ के सामने वह चुप हो जाता हैं। उसे जिन्दगी में ऐसी ही मुसीबतों का सामना करना पड़ता हैं। तभी उनके एक शुभचिंतक के मुँह से निकल पड़ता है कि– "मणिका तुम्हें अभी कई समझौते करने पड़ेंगे। अब भी कई बार बहुत कुछ खोना पड़ेंगा।"[25] वही साबित भी हो जाता हैं उसकी शादी जिस लड़के से होती हैं वह

इंपोटेन्ट हैं जिसके कारण उसे पर पुरुष गमन भी करना पड़ता हैं। यही एक निःशक्तजन की जिन्दगी हैं। वह न चाहते हुए भी उसे सब कुछ करना पड़ जाता हैं।

इसी प्रकार '14 जुलाई 2013' दैनिक भास्कर में प्रकाशित लघुकथा 'दुआ' के लेखक 'एल्सबर्ग' ने दुआ लघुकथा के माध्यम से अंधा होने की पीड़ा को व्यक्त किया गया हैं। इसमें दृष्टिहीन एक नन्हीं लड़की कैथरीन हैं जो सिर्फ स्पर्श करके ही हर चीज को पहचान पाती हैं, जिसके कारण उसकी माँ उसे डॉक्टर के पास इलाज के लिए लें जाती हैं। जिससे उसकी डॉक्टर से दोस्ती हो जाती हैं। डॉक्टर उसको एक गुड़िया भेंट करता हैं। जिसको पाकर वह बहुत खुश होती हैं। तो वह भगवान से दुआ करती हैं कि भगवान उसकी आँखें कभी नहीं छिनें क्योंकि आँखों के बिना अंधेरा उससे बेहतर कौन जानता होगा। बिन आँखों के दिन और रात बराबर, केवल अंधेरा ही अंधेरा रहता हैं। वह अपनी पीड़ा को व्यक्त करती हैं क्योंकि समस्या जिसके ऊपर बीतती हैं वही जानता हैं।

दैनिक भास्कर 'रसरंग' 8 दिसम्बर 2013 में प्रकाशित लघुकथा 'कर्मवीर राम' जो 'चन्द्र प्रकाश डाले' द्वारा लिखित हैं। कर्मवीरराम लघुकथा जिसमें एक निःशक्त व्यक्ति जिसका एक हाथ कोहनी के नीचे से पूरा गायब था और वह डेढ़ हाथों से बड़े युक्ति के साथ हाथ से ठेला में से सीमेंट की बोरियाँ उठाकर अन्दर डाल रहा था। तभी एक हट्टा–कट्टा नवयुवक शनि महाराज के नाम पर भिक्षुक बनकर किसी के सामने हाथ फैला रहा था। सामने वाले व्यक्ति ने शनि महाराज को इशारे से सीमेंट की बोरियाँ ढ़ोते अपंग व्यक्ति को दिखाया। शनि महाराज की आँखें शर्म से पानी–पानी हो गई। निःशक्त व्यक्ति को परिश्रम करते देख उसका हृदय परिवर्तन होता हैं और अब शनि महाराज भी सीमेंट की बोरियाँ ढ़ोने का कार्य करने लगता हैं। तो क्या हम ऐसी अपंगता को अपंगता कहेंगे? कभी नहीं! जो एक सशक्त को भी रास्ता दिखाकर उसे कर्मवीर राम बनाता हैं और निःशक्तता को वरदान साबित करता हैं। 'विश्वम्भर चन्द्रा' की लघुकथा 'नया अंदाज' में बुर्जुग पति–पत्नी की कहानी हैं जो दोनों गठिया से ग्रस्त हैं। अब उनकी देखभाल करने वाला कोई नहीं हैं। ऐसी परिस्थिति में पति कहता हैं मैं किसी जवान औरत से शादी कर लेता हूँ। जो हम दोनों की देखभाल कर लेगी। ऐसा सुनकर पत्नी कहती हैं, मेरी बात का जवाब दो कि पुरुष ज्यादा सक्षम होता हैं या स्त्री? पति ने कहा सीधा सा जवाब हैं पुरुष ज्यादा सक्षम होता हैं। तो पत्नी कहती हैं तो फिर मुझे शादी कर लेनी चाहिए क्योंकि वह हम दोनों की देखभाल अच्छे से कर लेगा। यहाँ पर पति का नया अंदाज 'निःशक्त दम्पती' को कुछ सीख दें जाता हैं।

(ब) आत्मकथा

निःशक्तजन पर आधारित 'हेलन केलर' की आत्मकथा हैं जो अंधी, गूँगी, बहरी लड़की हैं। इस आत्मकथा में हेलन केलर ने अपने अपंग हो जाने और जीवन संघर्ष का वर्णन किया। जब हेलन 19 माह की थी तब पेट और दिमाक में गहरा आघात लगा और उसकी बोलने, सुनने तथा देखनें की शक्ति चली गई। इस दुर्घटना के बाद उसमें हीन भावना पैदा हो गई, वह हर चीज को तोड़–फोड़ करके नष्ट करने लगी। अचानक उसमें ऐसा बदलाव आया कि उसने अपनी जरुरतों को पूरा करने के लिए 60 प्रकार के संकेत विकसित कर लिये। इसकी माँ ने उसकी समस्याओं को समझने के लिए काफी पुस्तकों का अध्ययन किया। उन्होंनें उसे वैज्ञानिक अलैक्जेण्डर ग्राहमबेल को दिखाया जिससे वह काफी प्रभावित हुई। छह वर्ष की आयु में उसका सम्पर्क सालीवान से हुआ।

सालीवान के सम्पर्क में आने के दो सप्ताह बाद ही उसके व्यवहार में अचानक ही परिवर्तन आने लगा। सालीवान के प्यार भरे व्यवहार ने उसमें बहुत सारे बदलाव कर दिये उसने हर चीज को स्पर्श करवाकर उसके बारे में जानकारी दी। समय के साथ–साथ उसने लगभग 3000 शब्द सीख लिये। जुलाई 1887 में मैंने अपनी माँ को पहला पत्र लिखा कि उसे 'परकिंस संस्थान' में एक दिलचस्प बालिका के रूप में स्थान प्राप्त हैं। अब उसका विकास तेज गति से होने लगा जिसका श्रेय सालीवान को हैं। सालीवान यह नहीं चाहती थी कि उसकी परिश्रम और हेलन की प्रतिभा अनावश्यक रूप से किसी के प्रचार का माध्यम बनें। सालीवान में एक माँ की ममता थी इसी कारण वह निःशक्त बच्चों की देखभाल में ज्यादा दिलचस्पी लेती थी। हेलन ने एक कहानी लिखी थी जिसे अनाग्नोस ने 'दि मेण्टर' नामक स्कूल की 'एलम्नी एसोशियन' की पत्रिका में छापा। स्कूल में ईर्ष्या रखने वाली शिक्षिकाओं ने उसकी प्रतिभा और उसके कारण सालीवान को मिलनें वाले सम्मान से चिढ़नें लगी थी। उन्होंनें यह आरोप लगाया कि यह कहानी 1870 ई. में छप चुकी हैं और हेलन ने उसी को दोहरा दिया लेकिन सालीवान ने सफाई दी कि 1870 में छपी कहानी न तो मैंने स्वयं पढ़ी और न हेलन ने। अब सालीवान और हेलन दोनों परकिंस छोड़कर जाने को तैयार हो गई, तो अनाग्नोस उन दोनों के खिलाफ हो गया और उसने उन पर झूठे आरोप लगाने शुरु कर दियें।

हेलन बचपन से ही हठी रही हैं, अब उसके मन में आगे बढ़ने की लालसा जग चुकी थी। 1894 में ग्राह्मबेल के कारण न्यूयार्क आ गई, यहाँ पर वह बधिरों को भाषा सिखाने वाले स्कूल 'राइट हुमासन' में पढ़ना चाहती थी। लेकिन आर्थिक कठिनाइयों के कारण वह ऐसा नहीं कर पाई। अब यह साबित हो गया था कि हेलन और सालीवान दोनों एक–दूसरे के लिए बनी हैं। सन् 1900 ई. में 'रेडकिल्क कॉलेज' में प्रवेश लिया और एक सामान्य छात्रा की तरह पूरा कोर्स किया। उसने स्नातक

तक की उपाधी प्राप्त कर ली। सिर्फ अन्धेपन के कारण वह साइंस और गणित विषय को नहीं पढ़ पाई। इसी बीच लेखिका ने लेखन में प्रसिद्धि प्राप्त कर ली। अब मुझे अपनी आत्मकथा लिखने की सलाह दी गई। इसमें बहुत सारी परेशानी आई किन्तु सफल हो गई। उसकी आत्मकथा 'स्टोरी ऑफ माइलाइफ' सन् 1902 में न सिर्फ छपी बल्कि प्रसिद्धि प्राप्त की। मेरी इस आत्मकथा के अलावा अनेक उपर्युक्त कार्यों के साथ लेखन कार्य भी लगातार चल रहा था। मेरी आत्मकथा 'मिडस्ट्रीम' तैयार हुई, मैंने अपनी टीचर एनी की जीवनी हनी से तैयार करवायी, जिसमें एनी ने उनके प्रारम्भिक जीवन की कठिनाइयाँ व्यक्त की हैं। लेखिका की प्रसिद्धि आसमान को छू रही थी। इन सबके कारण उस समय के वैज्ञानिकों ने मेरी असाधारण प्रतिभा की जाँच की और मेरी सूंघनें, स्पर्श करने और स्वाद चखनें की क्षमता का गहराई से अध्ययन किया। लम्बे अध्ययन के बाद 'फ्रेडरिक टिनले' वैज्ञानिक ने कहा उपर्युक्त मामलों में मेरी क्षमता एक सामान्य व्यक्ति के समान ही हैं। मेरी जीवन की हम सफर प्यारी टीचर एनी चल बसी। मुझे उसके निधन पर बहुत दुःख हुआ। इसी दौरान अमेरिका में नेत्रहीनों के हक की लड़ाई शुरु हुई और सरकार पर दबाव डाला कि वह नेत्रहीनों के पढ़ने की व्यवस्था करें और उनके ऊपर होने वाले खर्च को वहन करें। लेखिका के प्रयासस्वरूप 1935 में सामाजिक सुरक्षा कानून के दसवें अध्याय में नेत्रहीनों के लिए आर्थिक सहायता का प्रावधान भी शामिल किया गया। जब मैं रोम में थी, तब 1946 में मुझे पता चला कि मेरा घर जल गया। मुझे इस बात का अपार दुःख हुआ कि अनेक अप्रकाशित पाण्डुलिपियाँ, जिसमें मेरी टीचर एनी की जीवन गाथा भी शामिल थी। नेत्रहीनों के निवेदन पर मैं जापान गयी। हिरोशिमा और नागासाकी में हुए महाविनाश को देखकर भी पूरा समझ गयी एटमी शक्ति के दुरुपयोग के कारण असंख्य निःशक्त बच्चें पैदा हुये। घायलों व निःशक्तों के दर्द को समझते हुए मैंने परमाणु बमों के खतरे के खिलाफ संघर्ष करने और परमाणु शक्ति के रचनात्मक इस्तेमाल करने के लिए अभियान चलाया। इसी प्रयास में वह चीन व भारत जाना चाहती थी परन्तु उसकी सचिव पॉली थामसन को दिल का दौरा पड़नें के कारण नहीं जा सकी। इसी बीच मेरे काफी दोस्त भी बने जिनमें से नैंसी हैमिल्टन ने मेरे जीवनवृत पर आधारित एक डॉक्यूमेण्टरी फिल्म 'दा अनकांकर्ड' बनायी। इस फिल्म का नाम बदलकर 'हेलन केलर इन हर स्टोरी' कर दिया।

1961 में पहली बार दिल का दौरा पड़ा और बाहर आना–जाना बन्द हो गया। 1964 में जब मुझे अमेरिकी राष्ट्रपति ने सर्वोच्च सम्मान देने की घोषणा की तो स्वास्थ ठीक न होने के कारण मैं नहीं जा सकी। इस आयोजन पर मैंने अपने भतीजे व भतीजी को भेजा। जब मैं तत्कालीन प्रधानमंत्री नेहरू के निमंत्रण पर भारत यात्रा के लिए गई तो सामूहिक बैण्ड पर धुन बजायी गई, तो मैं नृत्य करने लगी। तब पं. जी ने पूछा हेलन तुम देख नहीं सकती, सुन नहीं सकती, तो तुम्हें कैसे मालूम

हुआ कि राष्ट्रीय धुन बज रही हैं। मैंने कहा ध्वनि की तरंगों को पहचान गई। मेरी भारत यात्रा के दौरान जो धन इक्ट्ठा हुआ उससे भारत में मेरे नाम की (हेलन केलर) ट्रस्ट की स्थापना हुई।

मेरी प्रमुख कृतियाँ निम्न हैं–

1. दी स्टोरी ऑफ माई लाइफ सन् 1902
2. आप्टीजिम सन् 1903
3. दी वर्ल्ड आई लीव इन, सन् 1906
4. सांग ऑफ दि स्टोन बाल सन् 1910
5. आउट ऑफ दि डार्क सन् 1913
6. माई रिलीजम, 1927
7. मिडस्ट्रीम, 1929
8. हेलन केलर्स जनरल सन् 1938 और
9. लैट अस हैव फेथ, सन् 1940

हेलन केलर 'केवल तीन दिन' में कहती हैं कि अपने आँखों वाले मित्रों से पूछती हूँ। कि वे क्या–क्या देखते हैं? उन्होंने जवाब दिया कुछ खास नहीं। मैं अपने–आपसे सवाल करती हूँ कि कैसें संभव हैं जब घण्टों सैर पर जाने के बाद भी कुछ नहीं देखा? मैं देख नहीं सकती स्पर्श कर सकती हूँ और यदि मैं स्पर्श मात्र से इतना सारा सुख पा लेती हूँ तो दृष्टि कितना अधिक सौन्दर्य देती। वह कल्पना करती हैं कि यदि उसे जीवन में तीन दिन के लिए आँखों की रोशनी मिल जाये तो वह क्या–क्या देखना पसंद करेगी।

पहला दिन बहुत व्यस्त होगा। मैं अपने तमाम मित्रों को पास बुला लूँगी और उनके चेहरे को देर तक निहारूँगी दोपहर में जंगल में सैर के लिए निकल जाऊंगी और प्रकृति के सौन्दर्य को अपनी आँखों में भर लूँगी। रंगीन सूर्यास्त को देखने के लिए मैं भगवान की स्तुति करुंगी।

दूसरे दिन में उषा के आगमन के साथ उठ बैठूँगी और उस रोमांचकारी चमत्कार को देखूंगी जो रात को दिन में बदल देता हैं। इस दिन को दुनिया के अतीत और वर्तमान की एक झलक पाने में खर्च करूंगी। मैं मनुष्य की प्रगति यात्रा की झांकी देखना चाहूंगी। मेरा अगला पड़ाव होगा 'म्यूजियम आर्ट' मैं प्राचीन मिस्र के देवी–देवताओं की मूर्तियों को अपने हाथों के माध्यम जानती हूँ। मैंने यूनान के पार्थ नान की चित्र लहरियों की आकृतियों को छूकर देखा हैं और मैंने आक्रमण करते हुए एथेंसवासी वीरों की लयबद्ध सुन्दरता को अनुभव किया है।

इस तरह दूसरे दिन में मैं कला के माध्यम से मानव के हृदय की थाह को पाने की कोशिश करुंगी। दूसरे दिन की सांझ मैं किसी नाट्यशाला में या सिनेमाघर में बिताऊँगी। हालांकि मैं लय के आनन्द से परिचित हूँ। कि वह लयात्मक गति संसार के सबसे सुहावने दृश्यों में होगी।

तीसरा दिन मैं रोजमर्रा के जीवन की दुनिया में बिताऊँगी। पहले मैं भीड़–भाड़ भरे नुक्कड़ पर खड़ी होकर बस यों हि लोगों को देखती रहूँगी, उनके चेहरे के हाव–भाव से उनके जीवन को कुछ–कुछ समझ पाने की कोशिश करुँगी। जब मेरी दृष्टि का अंतिम दिन समाप्त होगा। शायद बहुत से गंभीर कार्य हैं, जिनमें मुझे ये बचे हुए चंद घण्टे गुजारने चाहिए। मध्यरात्रि में शाश्वत् रात्रि मुझे फिर से आकर घेर लेगी निश्चय ही इन दिनों में छोटे–छोटे पसंद का सब कुछ देख सकूं। अंधकार फिर मुझ पर उतर आयेगा। इसी कारण मैं, जो अंधी हूँ, आँख वालों को एक सुझाव दें सकती हूँ अपनी आँखों का ऐसा उपयोग करे की जैसे कल आप अंधे हो जाने वाले हो और यही तरीका अपनी अन्य इन्द्रियों के लिए भी अपनाया जा सकता हैं।

'दूसरी लेखिका की आत्मकथा'– 'रेखा कारड़ा की कहानी उन्हीं की जुबानी' "मैं कु. रेखा नंदलाल कारड़ा दोनों पैरों से अपंग होने के साथ–साथ दृष्टिहीन हूँ यानि अत्यन्त अल्प दृष्टिवान हूँ। आज मैं अपनी सेवायें शासकीय मालव कन्या, उ. मा. विद्यालय, इंदौर में संगीत शिक्षिका के रूप में दें रही हूँ।"[26]

लेखिका ने अपने जीवन में निःशक्तता के कारण जो दंश झेला हैं उसे ही अपनी जुबान में व्यक्त कर रही हैं। वह कहती हैं कि वो दिन मुझे अच्छे से याद हैं जब मेरी निःशक्तता के कारण मुझे किसी भी स्कूल में दाखिला नहीं मिल पा रहा था। एक के बाद एक सभी ने मना कर दिया। एक ने तो यहाँ तक कह दिया कि हमारा स्कूल क्या? इस निःशक्त लड़की को तो कोई भी अपने स्कूल में दाखिला नहीं देगा। यह सुनकर मैंने भी पढ़ाई करने की ठान ली और मुसीबतों का सामना करते–करते एम.कॉम और वो भी बी–न्यूज के साथ किया। यानि दो डिग्रियाँ वो भी सारी गतिविधियों के साथ–साथ चाहे फिर परीक्षा के दिन ही प्रतियोगिता कार्यक्रम क्यों न हो मैंने समायोजन करके यानि पेपर जल्दी निपटाकर कार्यक्रम में थोड़ा देर आने की पूर्व सूचना के साथ तालमेल बैठाया। एम. कॉम के बाद मैंनें एम.एम. करने की ठानी और प्रथम स्थान के साथ सफलता पाई, अब पी.एच.डी. की तैयारी में हूँ। पढ़ाई के साथ–साथ व दृष्टिहीनता के बावजूद मैं शतरंज और राष्ट्रीय स्तर की खिलाड़ी रही हूँ। नाटक, लेखन व नाटक मंचन में भी कई उपलब्धियाँ प्राप्त की हैं। इसके अलावा वाद–विवाद प्रतियोगिता, हारमोनियम वादन, ब्लॉक पेंटिंग, कम्प्यूटर एवं टाईपिंग में ज्ञान प्राप्त किया।

नई दुनिया समाचार पत्र द्वारा अभिनय में पुरस्कार प्राप्त। सुर संगम जयपुर द्वारा आयोजित अखिल भारतीय संगीत स्पर्धा में रजत कप प्राप्त। अनेकों स्थानीय व राष्ट्रीय संस्थाओं द्वारा आयोजित गायन स्पर्धाओं में पुरस्कार अर्जित एवं सम्मानित। वर्ष 1987 में ऑल इंडिया रेडियो गायक कलाकर, खेल शतरंज की राष्ट्रीय खिलाड़ी एवं विभिन्न पत्रिकाओं में सफल लेखन। साथ–साथ कईयों ने मुझे सम्मानित भी किया। पद्यश्री मुश्ताक अली खां द्वारा, रामेश्वर पटेल द्वारा, विकलांग दर्शन समाचार द्वारा, अन्नू कपूर व दुर्गा जसराज द्वारा, दूरदर्शन उद्घोषिका श्रीमति सुकन्या द्वारा, श्री एस.के. मतलानी द्वारा, लायंस इंटरनेशनल के निर्देशक श्री मोस्लिम अली खां द्वारा, ड्रीमवर्ल्ड द्वारा, अनुकरणीय सामर्थ्य प्रस्तुत करने हेतु म.प्र. शासन द्वारा, इन्दौर कलेक्टर द्वारा, राष्ट्रपति पुरस्कार प्राप्त श्रीमती आशा कोटिया द्वारा, श्रीमति रश्मि द्वारा, पूर्व कांग्रेस अध्यक्ष श्री कृपाशंकर शुक्ला व अश्विन जोशी द्वारा, नेशनल एसोशिएशन फार द ब्लाइण्ड म.प्र. राज्य शासक द्वारा, शिक्षक दिवस के अवसर पर नगर–निगम इन्दौर द्वारा सुप्रसिद्ध फिल्म एवं जी.टी.वी. संगीतकार श्री रोहित मांजेकर द्वारा पद्यश्री पुकरी मेनन द्वारा, पद्यश्री बाबू लाल बहेती द्वारा सम्मानित।

हांलाकि अभी मेरा स्वास्थ कुछ बिगड़नें लगा हैं। मगर मेरा ये मानना हैं कि वह इंसान, इंसान नहीं जो परिस्थितियों से हार जाये। चाहे जितने संकटों के पहाड़ खड़े हो यदि आप संघर्ष के लिए तैयार हैं और आपके हौंसलें बुलन्द हैं तो दुनिया की कोई ताकत आपकी राह की रुकावट नहीं बन सकती।

(स) संस्मरणात्मक रेखाचित्र

अन्य विधाओं की भाँति संस्मरण में भी दिव्यांग पात्रों के प्रति संवेदनशीलता इनमें प्रकट की गई हैं। इनमें प्रसिद्ध लेखिका 'महादेवी वर्मा' के 'संस्मरण अंधा अलोपी' का संवेदनशील पात्र 'अलोपी' अंधा हैं परन्तु अपने कर्त्तव्य का पक्का हैं। लेखिका के घर पर नौकरी करता हैं। अपने कार्य को वह हमेशा सही समय पर करता हैं। फिर चाहे आंधी आये या तूफान अलोपी रुकता नहीं था। इस संस्मरण के माध्यम से लेखिका ने स्पष्ट किया हैं कि निःशक्त व्यक्ति सशक्त से भी ज्यादा कर्त्तव्यनिष्ठ होते हैं यदि उन्हें थोड़ा–सा आदर व सम्मान मिलें तो।

लेखिका का दूसरा संस्मरण 'गुंगिया' की संवेदनशील पात्र गुंगिया ही हैं। जन्म से गूंगी है और पति के द्वारा छोड़ दी गई। अपनी बहन व पति के बेटे हुलासी को माँ से भी ज्यादा प्यार से पालती हैं। परन्तु जब हुलासी उसे बिना बताये घर से निकल जाता हैं तो वह रो–रोकर बेटे की ममता में बीमार पड़ी रहती हैं। जब उसे हुलासी का पत्र मिलता हैं तभी वह अपने प्राण त्यागती हैं।

(द) मुहावरों में अभिव्यक्त संवेदनाएँ

मुहावरें एवं लोकोक्तियाँ साहित्य व लोक किंवदती के रूप में प्रवाहित होती रही हैं। विश्व में शायद ही कोई भाषा या लोकबोली हो जहाँ प्रचलित कहावतों का बोलबाला न रहा हो। ये लोकजीवन के यथार्थ रूप की परछाई होता हैं। इसी कारण आधुनिक युग में जीवन पद्धति का उद्घाटन करने में पूर्ण सक्षम हैं। अतः मुहावरें एवं लोकोक्ति परम्परागत एवं आधुनिक युग को जोड़नें वाली कड़ी के रूप में काम करता हैं। 'मुहावरा' शब्द मूलतः हिन्दी का नहीं हैं। भाषा शास्त्रियों ने इसे अरबी से आया हुआ माना हैं। डॉ. वासुदेव नंदन प्रसाद ने मुहावरा को परिभाषित करते हुए लिखा हैं कि– "ऐसा वाक्यांश जो सामान्य अर्थ का बोध न कराकर किसी विलक्षण अर्थ की प्रतीति कराये, मुहावरा कहलाता हैं।"[27] उन्होंने इसे स्पष्ट करते हुए आगे लिखा हैं कि अरबी भाषा का 'मुहावर' शब्द हिन्दी में मुहावरा हो गया। उर्दू वाले 'महाबिरा' बोलते हैं। कुछ लोग मुहावरा को 'रोजमर्रा या वाग्धारा' भी कहते हैं। डॉ. सरोजनी रोहतगी ने अपने शोध ग्रंथ अवधी का लोक साहित्य में मुहावरों की चर्चा की हैं। उनका मत भी डॉ. वासुदेव नंदन से मिलता हैं उनके अनुसार "मुहाबिरा शब्द की व्याख्या करना कठिन हैं। यह हिन्दी का अपना शब्द नहीं हैं हिन्दी में मुहाबिरा का मुहावरा रूप हुआ। यह अरबी–भाषा का शब्द हैं जिसके अर्थ–परस्पर बातचीत या स्वालम्बन जवाब करना। अंग्रेजी में इसे 'इडियम' कहा जाता हैं। हिन्दी में इसके लिए आगदीति या रमणीय प्रयोग का व्यवहार किया जाता हैं। यद्यपि इन शब्दों से उसकी पूर्ण अभिव्यक्ति नहीं होती हैं। उर्दू में इसी अर्थ में रोजमर्रा शब्द का प्रयोग होता हैं।"[28] "ऐसा वाक्यांश जो अपना अर्थ छोड़कर किसी विशेष अर्थ को व्यक्त करें, मुहावरा कहलाता हैं।"[29]

कहावतों और मुहावरों का वर्गीकरण करने पर लोक में प्रचलित जातिगत, जाति–विषयक, अंग विशेष में संबंधित तथा पशु–पक्षियों से संबंधित मुहावरों, कहावतों और लोकोक्तियों की प्रचुरता मिलती हैं। उदाहरण स्वरूप कुछ प्रस्तुत हैं।

1. जातिगत मुहावरें–कोल्हू का बैल होना, धोबी का कुत्ता न घर का न घाट का, खाल उतारना, खेत बिगाड़ें सो मना गाँव बिगाड़ें बाम्हना, पंछी में कौबा, जाति में नौवा, बाम्हन, कुकुर, नाऊ, जाति देख गुर्राउ आदि।
2. जाति विषयक व्यवसायगत मुहावरें तथा कहावतें–तेली के घर तेल होने से वह महल नहीं पोतता, जूते सीना, धोबी पछाड़, भीख माँगना, पण्डित होना, रेत से तेल निकालना आदि।
3. पशु–पक्षियों से संबंधित मुहावरें तथा कहावतें–कुत्ते की दुम होना, कुत्ता होना, कुत्ते की मौत मरना, गऊ समान होना, शेर को सवा शेर मिलना आदि।

4. अंग विशेष से संबंधित–आँखों का तारा होना, दिल का टुकड़ा होना, नाक का बल होना, दिल टूटना आदि।

इसी प्रकार निःशक्तजन पर व्यंग्य से लोगों का कहना हैं, 'अंधा क्या चाहे दो आँख'–क्यूँ न चाहे जब धनहीन धन चाहता हैं, संतानहीन संतान चाहता हैं तो अंधा दो आँख और लंगड़ा पाँव जरुर चाहेंगा, ताकि आत्मनिर्भर और सम्मान की जिंदगी गुजार सकें। एक और लोक उक्ति हैं, 'अंधवा खीर खहित पति याही'। केवल खुशबू और देखनें से ही खीर होने का प्रमाण नहीं मिलता। एक समान दिखनें वाली कई चीजें होती हैं। धोखा तो आँखों वाले के साथ भी हो सकता हैं। 'अंधा पढ़े वेद और बहरा सुने' आज के मशीनी युग में हर कठिन काम करना आसान हैं। ब्रेल लिपि की जानकारी रखने वाला नेत्रहीन वेद पढ़ सकता हैं। अब हम यह नहीं कह सकते कि 'बहरे के आगे गाय और अपना मूड पिराय'। अब यह मुहावरा भी अपना रूढ़ अर्थ खो चुका हैं कि 'बहरा खसम घर में फसाद'। भई पति अहंकारी, नशा खोर, ना समझ हो तो घर में फसाद तो होगा ही चाहे वह बहरा न हो। 'कनवा आंखि में काजर आंजे' अर्थ हैं कि भले ही एक आँख वाली हो लेकिन सजने–संवरने और सुन्दर दिखनें की चाह तो सबमें होती हैं। इस प्रकार 'लंगड़ी घोड़ी लाल लगाम' की बात हो या 'खोरी को चूड़ा पहनाने' की बात। 'लंगड़ी घोड़ी को मसूर का दाना खिलाना' अर्थात निःशक्त की विशेष देखभाल करना।

इसी प्रकार जैसे–अंधा पीसे कुत्ता खाय, अंधे की लाठी होना, अंधा क्या चाहे? दो आँखें, अंधा बाँटे रेवड़ी पूछ–पूछकर कर (अपन–अपन को) देय, अंधों में काना राजा, सावन का अंधा होना, लंगड़ा होना, अंधों की फौज जुटाना, बहरा होना, गूंगा होना, लूला होना, गूंगे ही गूड़, अंधा पादे भैरा जोहारे, अंधा–लंगड़ा सदा उपाई, घोड़ा चढ़ के बन्दूक चलाई, सूरदास होना, हाथ कटना, आँख फूटना, नकटा होना आदि।

निःशक्तजन से संबंधित मुहावरों, कहावतों तथा लोकोक्तियों का भी यदि वर्गीकरण किया जाये तो निम्न होगा–

(अ) निःशक्तजन की कुटिलता, चपलता, चतुराई आदि पर आधारित मुहावरें जैसे–अंधा लंगड़ा सदा उपाई, घोड़ा चढ़ के बन्दूक चलाई, अंधा बांटे रेवड़ी–फिर–फिरकर अपने को देय। रामचरित मानस में भी मंथरा प्रकरण में लिखा गया हैं कि–काने खोरे कूबरे........इनकी संख्या अधिक नहीं हैं।

(ब) निःशक्तों के प्रति सम्मानजनक शब्द का प्रयोग–सूरदास होना, दिव्यांग होना आदि। इनकी संख्या सीमित हैं।

(स) निःशक्तता जन्य असमर्थता को आरोपित करके सशक्त को सूचित करने के लिए आम भाषा का अंग बन गया हैं जैसे अंधा होना–किसी बात की अनदेखी करना।

क्यों भाई साहब, अंधे हो क्या?

कमर टूटना–अपूरणी क्षति होना।

दाहिना हाथ होना।

दिव्यांग जन से संबंधित मुहावरों एवं कहावतों के द्वारा इनके प्रति समाज की सकारात्मक भावना को रेखंकित कर सकते हैं। मुहावरों तथा कहावतों में यद्यपि समाज में दिव्यांगों की असहायता के प्रति चेतना तथा सहानुभूति के भाव परिलक्षित होतें हैं। इसके कारण तो हमारे समाज की सोच भी निःशक्त कही जायेगी।

संवेदनाएँ–हमारे जीवन में कथा–कहावतों व मुहावरों का बहुत ही बड़ा महत्त्व हैं। कहावतों व मुहावरों के माध्यम से किसी परिस्थिति को प्रकट किया जा सकता हैं। जब किसी बात को कहने के लिए कहावत का सहारा लिया जाता हैं तो निश्चित ही वह अधिक रोचक व सार्थक बन जाती हैं। इनके माध्यम से थोड़ें शब्दों में बहुत ही महत्त्वपूर्ण बात कही जाती हैं। उचित समय पर मुहावरें व कहावतें हमारे मुँह से अचानक निकल पड़ते हैं और सुनने वाला जरुर प्रभावित होता हैं। इसी प्रकार निम्न कहावतों की कहानियाँ हैं–

अंधी पीसे कुत्ता खाए– दादाजी अपनी पत्नी से कहते हैं तुमने सुना हैं रामलाल जी ने फ्लैट खरीदा हैं।

दादीजी ने पूछा कहा खरीदा?

दादाजी–जीवन विहार में

तभी दादाजी कहावत कहते हुए कह रहे थे अंधी पीसे कुत्ता खाय। तब पास बैठें उसके पोते व पोती ने पूछा दादाजी इसका क्या मतलब हैं–दादाजी कहते हैं ये कहावत हैं गरीब लोग मेहनत मजदूरी करके अपना पेट पाल रहे होते हैं तभी अमीर लोग उनका नाजायज फायदा उठाते हैं।

अंधों में काना राजा – गाँव में सभी लोग इक्ट्ठे बैठें थे तभी डाकिया डाक लेकर आया और उनको पढ़कर सुनाने लगा। एक आदमी ने कहा यही हैं हमारा अंधों में काना राजा, बच्चों ने उतावलेपन से पूछा इसका क्या मतलब हैं–उनके दादाजी ने उनको कहानी सुनाना शुरु किया–एक दिन गाँव में अंधा साधु भिक्षा माँगने आया। परन्तु किसी ने उसे भिक्षा नहीं दी और उसके अंधेपन का मजाक उड़ाया। साधु ने गुस्से में आकर गाँव वालों को शाप दिया कि सब उसकी तरह अंधे हो जाएँ फिर

क्या था, बच्चें–बूढ़े, जवान और महिलाऐं सब अंधे हो गए। उस दिन एक आदमी गाँव से शहर गया हुआ था। वहाँ पर वह दुर्घटना में एक आँख गवां देता हैं। गाँव वाले अंधे हो गये थे। यह खबर–दूर–दूर तक फैंल गई। कुछ दिनों बाद उस गाँव में आस–पास के इलाके से चोर आने लगें और उन अंधे गाँव वालों के घरों से रूपया–पैसा, जेवर आदि चोरी करके लें जाने लगे। बेचारे गाँव वाले परेशान हो गए। एक दिन उन्होंने अपनी पंचायत में इस मुसीबत से छुटकारा पाने के लिए सोच–विचार किया। उन्हें गाँव से बाहर के किसी व्यक्ति पर विश्वास नहीं था। वे चाहते थे कि गाँव का ही कोई आदमी सुरक्षा की जिम्मेदारी लें। अंत में सभी ने मिलकर फैसला लिया जो उनके बीच काना आदमी था, उसे अपना मुखिया बना लिया। उसे गाँव की सुरक्षा का काम सौंप दिया। इस तरह अंधों में काना राजा बन गया।

इसकी शिक्षा निःशक्त के अतिरिक्त हैं कि हमारे अन्दर कुछ गुण जरुर होने चाहिए।

आँख के अंधे नाम नयन सुख – गाँवों में ज्यादातर गुणों के उल्टा विचित्र नाम रख देते हैं। जैसे सेठ लोगों का नाम भिखारीराम, भुक्खन लाल। गरीब लोगों का नाम अमीर चन्द, धन्ना सिंह, करोड़ीमल या हीरा लाल होंगे। इसी तरह ताकतवर और मोटे लोगों का नाम दुर्बल सिंह और सुखचंद होंगे जबकि कमजोर और दुबले–पतले लोगों का नाम भीमसेन, मोटे लाल ऐसे ही अनपढ़ लोगों का नाम विद्यासागर, पढ़ें–लिखें ज्ञानी व्यक्ति का नाम बुद्धुराम। ऐसे ही अंधे का नाम नयनसुख हो सकता हैं।

अंधों का हाथी – 'किसी गाँव में चार अंधे रहते थे उन्होंने गाँव में हाथी आने की खबर सुनी। वे रास्ता पूछते–पूछते हाथी के पास पहुँचे। महावत से बोले, भैया, जरा हाथी को कब्जे में रखना, हम उसे टटोलकर देखेंगें। महावत ने सोचा, इसमें मेरा क्या बिगड़ता हैं, इन अंधे गरीबों का मन रह जाएगा। बोला, खुशी से देखो।' अंधे हर चीज को हाथ से टटोल कर ही देखते हैं। एक ने हाथी के कान पर हाथ डाला। बोला 'हाथी तो सूप की तरह होता हैं'। दूसरे का हाथ उस हाथी के पाँव पर पड़ा। बोला 'नहीं हाथी खंभे सा होता हैं'। तीसरे का हाथ हाथी की सूण्ड पर पड़ा। बोला नहीं–नहीं वह मोटे रस्से जैसा होता हैं। चौथे का हाथ हाथी के पेट पर पड़ा। बोला तुम सब गलत हो हाथी तो एकदम मशक सा होता हैं। चारों अपनी–अपनी बात पर अड़ गए और लगे लड़नें–झगड़नें। हर एक अपनी ही बात कहता रहा दूसरे की नहीं सुनता था। एक समझदार आदमी पास खड़ा सब हरकतें देख रहा था। उसनें अपने मन में लड़ाई का बड़ा अच्छा नतीजा निकाला कि इनकी समझ में आ जाए कि हमने पूरे हाथी को देखा ही नहीं सिर्फ एक अंग देखा तो सारा झगड़ा समाप्त हो जाएगा। इसलिए पूरी बात नहीं समझने पर अंधों का हाथी कहते हैं।

दौलत अंधी होती है – "समरकंद के बादशाह अमीर तैमूरलंग के पास दिल्ली में एक अंधा गवैया आया। बादशाह ने उसका नाम पूछा तो वह बोला मेरा नाम दौलत हैं।"

बादशाह ने कहा, "अरे, कहीं दौलत भी अंधी होती हैं?

उस हाजिर जवाब अंधे ने उत्तर दिया, जहाँपनाह, दौलत अंधी न होती तो लंगड़े के घर क्यों आती?" बादशाह तैमूर के पैर में लंग था। कहा जाता हैं इसी से उसका नाम तैमूर लंग पड़ गया।

आँखों के आगे नाक, सूझे क्या खाक – मध्य युग की बात हैं। पूर्वी भारत के मगध राज्य में गंगा किनारे छोटा सा गाँव था राजोपुर। किसान और मजदूरों के इस गाँव में एक नकटा (जिसकी नाक कटी हो) रहता था। वह दुकानदारी करके अपना जीवन–यापन करता था, लेकिन गाँव के लोग उसे 'नकटा दिखे बुरा हवाल' कहकर चिढ़ाया करते थे। इन बातों से परेशान होकर नकटे ने यह तय किया कि गाँव के कुछ लोगों को अपना जैसा बना देगा, तब लोग उसे नहीं चिढ़ाऐंगें।

नकटे दुकानदार की दुकानदारी अच्छी चल रही थी। जब पास–पड़ोस के लोगों ने उसकी आमदनी के बारे में पूछा तो नकटे ने कहा–मुझे अमावस्या की रात में गंगा किनारे परियाँ दिखाई देती हैं। उन्हीं कि कृपा से मेरे घर में आमदनी होने लगी हैं। यह सुनकर गाँव के लोग उसके पीछे पड़ गये कि हमें भी परियाँ दिखाओं। नकटा बोला–अमावस्या की रात को आ जाओ तो दिखला दूँगा, लेकिन एक रात में सिर्फ चार या पाँच लोगों को ही परियाँ दिखाई देंगी। अमावस्या की अंधेरी रात में गाँव के चार लोग गंगा किनारे नकटे के पास पहुँच गए तभी नकटा गीत गाता हुआ झूम–झूमकर नाचने लगा। उन लोगों ने कहा हमें भी परियाँ दिखाओं। नकटे ने जवाब दिया–देखते नहीं, मैं परियों के साथ नाच रहा हूँ। वहाँ मौजूद चारों ने कहा परियाँ कहाँ हैं? हमें तो दिखाई नहीं देती यह सुनकर नकटा बोला कैसे दिखेगी तुम्हारी आँखों के आगे तो नाक हैं, उसके रहते परियाँ नहीं दिख सकती।

तब चारों ने पूछा तो कैसे दिखेंगी। नकटे ने हँसकर कहा अब देर काहे की, यह चाकू लो और अपनी नाक काट डालो और फिर मजे से परियों के साथ नाच–गाना करो। परियों को देखने के लालच में चारों ने अपनी–अपनी नाक काट ड़ाली लेकिन उन्हें कोई परी दिखाई नहीं दी। नाक कट जाने और खून बहनें से गुस्साऐं वे उसे मारने दौड़ें। तभी नकटे ने समझाया। तुम लोगों की तो नाक कट चुकी हैं। अब गाँव वाले तुम्हें भी नकटा कहकर चिढ़ायेंगें। तभी से चिढ़ाने वाला चक्कर बिल्कुल बंद हो गया। तभी से मजाक वाली कहावत चल पड़ी 'आँखों के नीचे नाक, सूझे क्या खाक'।

अंधे ने राह पूछी, कुएँ में जा गिरी – एक अंधे आदमी ने किसी सज्जन से मार्ग पूछा तो उसने सीधा मार्ग बताया? वह अंधा उस मार्ग पर चल पड़ा। किन्तु आगे जाकर उसने अपनी सूझ के अनुसार राह

बदल ली। जिसके कारण वह कुएँ में गिर गया। अगर अंधा बुद्धिमान होता और उस सज्जन के बताए हुई रास्ते पर चलता तो दुर्घटना न घटती।

जब कोई सज्जन किसी अज्ञानी या अनाधिकारी को उपदेश दें और वह मनुष्य अपने अज्ञान के कारण उससे लाभ के स्थान पर हानि उठाए तो यही कहावत होती।

कूबरे–लात बन गई – किसी धनी व्यक्ति का सेवक कुबड़ा था। वह अपने स्वामी के आदेश के पालन को अपना परम कर्त्तव्य समझता था। अपने स्वामी की प्रसन्नता के लिए वह दुःख सहकर भी मुस्कराता रहता था। परन्तु उसके मालिक का स्वभाव अच्छा नहीं था। वह छोटी–छोटी बात पर अपने सेवक को डाँटता रहता था। एक बार उस सेवक से अपने स्वामी का कोई काम बिगड़ गया तो उसे क्रोध आया। उसने बिना कुछ सोचे समझे आवेश में आकर कुबड़े की पीठ में लात दें मारी। कुबड़ा दर्द के मारे तड़पने लगा और कहराता हुआ सीधा हो गया। उसका जन्म का कूबड़ ठीक हो गया।

जब किसी को हानि पहुँचाने की चेष्टा में उसको लाभ हो जाता हैं तो इस कहावत का प्रयोग करते हैं। इस प्रकार मुहावरों में निःशक्त पात्रों के माध्यम से सशक्त को प्रेरणा दी हैं। कहीं–कहीं निःशक्तजन का शोषण या फिर उसके अंगहीन होने का मजाक उड़ाया गया हैं।

(य) लोकोक्तियों में अभिव्यक्त संवेदनाएँ

लोकोक्ति शब्द दो शब्दों से मिलकर बना हैं, जैसे 'लोक+उक्ति' अर्थात् लोक की बोलचाल वाली भाषा में कोई कथन कहना। किसी भाषा में सुन्दरता व रोचकता लाने के लिए जिस प्रकार अलंकारों का प्रयोग किया जाता हैं। ठीक उसी प्रकार लोकोक्तियों का भी प्रयोग होता हैं। लोकोक्तियों का अपने आप में पूर्ण अर्थ होता हैं अर्थात् पूरा वाक्य, इसे किसी अन्य की आवश्यकता नहीं होती। ये लोक बोलचाल के साथ सत्य भी होती हैं लोकोक्ति के पीछे कोई कहानी या घटना होती हैं। उससे निकली हुई बात जब प्रचलन में आ जाती हैं, तो लोकोक्ति बन जाती हैं। ये समाज के अनुभव से पैदा होती हैं। वे प्राचीन पुस्तकों में भी प्राचीन तथा वैविध्यपूर्ण होती हैं। अंग्रेजी में इसे प्रोवर्ष कहते हैं।

फलेमिंग के अनुसार– "लोकोक्तियों में किसी युग अथवा राष्ट्र का प्रचलित और व्यवहारिक ज्ञान होता हैं।"[30]

इन परिभाषाओं पर विचार करते हैं, तो हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि लोकोक्ति बोलचाल में आने वाले चमत्कारपूर्ण वाक्य होते हैं। इनमें किसी अनुभव या तथ्य की बीती बातें अथवा उपदेश

या फिर नैतिक शिक्षा दी गई होती हैं। इसमें शब्द शक्तियों का सहारा लिया जाता हैं। लक्षणा या व्यंजना के द्वारा वाक्य को सारगर्भित कर दिया जाता हैं। जैसे–'आँख के अन्धें' नामक लोकोक्ति को वाक्य और मुहावरे में, खण्ड वाक्य, वाक्यांश या पद माना जाता हैं। लोकोक्तियों का स्वरूप सामान्यतः अपरिवर्तनीय होता हैं। यदि उसके शब्दों में अन्तर कर दिया जाये तो उसकी प्रकृति बदल जाएगी श्रोता उसके अर्थ को नहीं समझ पायेगें। लोकोक्तियों का प्रयोग प्रायः किसी बात के समर्थन, खण्डन अथवा पुष्टीकरण के लिए किया जाता हैं। जब लेखन कला का आरम्भ नहीं हुआ था, तब भी स्त्री पुरुष अपने तथा अपने पूर्वजों के अनुभवों के आधार पर कहावतों का प्रयोग करते थे, अनेक लोकोक्तियाँ, किसानों, कारीगरों तथा ग्रामीण जनता और अनपढ़ समुदायों के अनुभवों पर आधारित हैं। इसी प्रकार हिन्दी में अनेक लोकोक्तियाँ हैं जो तुलसी, सूर, रहीम और नरोत्तमदास जैसे अनेक कवियों की उक्तियाँ हैं। जो लोक प्रसिद्ध हैं। एक आदर्श कहावत के तीन गुण आवश्यक हैं। 1. संक्षिप्तता 2. सारगर्भिता 3. चटपटापन इनके माध्यम से स्थानीय वस्तु, वातावरण, इतिहास, समाज और स्थान आदि से परिचित हो जाते हैं। ये कहावतें लोकमानस की जुबान पर रहते हैं, मौका पाते ही ये मुँह से अपने आप निकल पड़तें हैं। इन्हें रटने की जरुरत हैं, ये एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में जनश्रुति के माध्यम से ही हस्तांरित होती रहती हैं। मुख्य रूप से लोकोक्तियाँ निम्न प्रकार पायी जाती हैं–

1. जाति संबंधी लोकोक्तियाँ
2. नारी संबंधी लोकोक्तियाँ
3. धर्म संबंधी लोकोक्तियाँ
4. आचार व रीति संबंधी लोकोक्तियाँ
5. व्यक्तित्व संबंधी लोकोक्तियाँ
6. भोज्य पदार्थ संबंधी लोकोक्तियाँ
7. अर्थ व राजनीति संबंधी लोकोक्तियाँ
8. सामान्य लोकोक्तियाँ

निःशक्तजन से संबंधित प्रचलित लोकोक्तियाँ–

खड़ी हिन्दी में दिव्यांग जन से संबंधित लोकोक्तियाँ–

1. अंधा के आगे रोवे अपना दीदा खोवे–अर्थात् अनजान के सामने अपनी समस्या या दुःख प्रकट करना। यहाँ 'अंधा' का अर्थ 'नासमझ' हैं। इस लोकोक्ति का अर्थ हैं कि नासमझ के

आगे अपना दुःख कहने से कोई लाभ नहीं होता किसी समझदार के सामने कहने से कुछ समाधान अवश्य हो सकता हैं।

2. न अंधे को न्योता देंने जाते न दो जने आते–अर्थात् किसी विशेष काम करने के कारण ही कोई समस्या आना, यहाँ अन्धे को न्यौता देंने का अर्थ किसी आपदा को बुलावा देना हैं।
3. आँख के अंधे गाँठ का पूरा – अर्थात् मूर्ख किन्तु धनवान, इस लोकोक्ति में 'आँख का अंधा' का अर्थ 'मूर्ख–व्यक्ति' से 'गाँठ के पूरे का अर्थ धनवान' व्यक्ति से हैं। ऐसा व्यक्ति मूर्ख भी और धनवान भी हो।
4. अंधे के हाथ बटेर लगना–अचानक कोई इच्छित वस्तु मिल जाना।

अंधे और लंगड़े की दोस्ती – कुछ कहावतें हैं जो दोनों को साथ जोड़कर देखती हैं कहावत हैं–अंधे ने चोर पकड़ा। दौड़ियों मिला लंगड़ा। एक स्थिति यह हैं कि न अंधा पकड़ सकता, न लंगड़ा दौड़ सकता। जहाँ किसी से काम करते न बने तो भी उसी काम में लगे रहना। इसी कहावत का दूसरा नाम हैं– अंधों ने गाँव झरा, दौड़ियों बे लंगड़े, अंधों ने गांव लूटा, अब और बहरा चला। यह आधी कहावत हैं। पूरी कहावत 'अंधा गुरु बहरा चेला', 'मांगे गुड़ देवे ढ़ेला'। अंधे गुरु ने गुड़ माँगा तो बहरे चेले ने गुड़ की जगह मिट्‌टी का ढ़ेला दें दिया। न गुरु देखता न शिष्य सुनता, इसी तरह की कहावत 'अंधा गाए, बहरा बजाए'। अंधा गा तो ले, लेकिन उसके साथ संगत में बहरा कैसे बजाय। अपनों के ही पक्षों में निर्णय करने वाले के लिए कहावत हैं– 'अंधा सिपाही, कानी घोड़ी, विधवा ने मिला जोड़ी'।

लोकोक्तियों में चूंकि समग्र समाज के अनुभव रचे बसे होते हैं, दिव्यांग पात्र भी समाज का ही अंग हैं, अतः उनका वर्णन लोकोक्तियों में इनके अलावा भी खूब हुआ हैं। हिन्दी की लोकोक्तियों में निःशक्तजन अनुशीलन की अभिव्यक्ति का साक्षात्कार करने के लिए हिन्दी की कुछ लोकोक्तियाँ निम्न हैं–

1. अंधा क्या जाने बसंत की बहार।
2. अंधी देवियां, लूलें पुजारी।
3. अंधे को सब अंधे ही जान पड़ते हैं।
4. अंधे को अंधा राह दिखाए, दोनों खड्‌डे में गिरे।
5. अपनी फूटी न देखें।
6. आंख फूटी पीर गई।
7. आदमी अपने मतलब का अंधा।

8. इश्क अंधा होता हैं।

9. एक अंधा, एक कोढी राम मिलाई जोड़ी।

10. एक तो अंधे को खिलाओं फिर घर छोड़कर आओ।

11. धन सबको अंधा कर देता हैं।

12. जने–जने का समुआ रखती, वेश्या हो गई बांझ।

13. नकटा जीऐ बुरे हवाल।

14. नाक कटी बला से, दुश्मन की बदशकुनी तो हुई।

15. बांझ क्या जाने प्रसूति की पीड़ा।

16. सूरदास की काली कामरी, चढ़े न दूजो रंग।

17. स्वार्थ व्यक्ति को अंधा बना देता हैं।

18. अंधा बगुला कीचड़ खाए।

19. अंधा राजा, चौपट नगरी।

20. अंधे को अंधा कहना बुरा लगता हैं।

21. अपना ढ़ेंढ़र देखें नहीं, दूसरे की फुल्ली निहारे।

22. अपनी नाक कटे तो कटे, दूसरों का सगुन तो बिगड़ें।

23. अपने पूत को कोई काना नहीं कहता।

24. उगले तो अंधा खाए तो कोढ़ी।

25. गाँठ का पूरा, आँख का अंधा।

26. ज्यों नकटे को आरसी, होत दिखाई क्रोध।

27. नकटा बूचा सबसे ऊँचा।

28. नाक कटा पर घी तो चाटा।

29. हिजड़े के घर बेटा हुआ।

30. अंधा गुरु बेहरा चेला, मांगे हड़ दें बहेड़ा।

31. अंधा चूहा थोथे धान।

32. अंधा भैया, धरम रखवाली।

33. अंधा कहे मैं सरग चढ़ूँ और मुझे कोई न दिखे।

34. अंधा क्या जाने लाल बहार।

इसी प्रकार दिव्यांग लोगों को माध्यम बनाकर समाज में बहुत सी अच्छी और गलत दोनों कहावतें कहीं गई हैं। कई बार तो लोग असक्त लोगों से भी अपना फायदा उठा लेते हैं। उसके

किये गये प्रयासों से स्वयं उसे लाभ न देकर किसी और को भी लाभ मिल जाता हैं जैसे 'अंधी पीसे कुत्ता खाए' ठीक इसके विपरीत जब कोई व्यक्ति किसी ऐसे स्थान पर हो जहां उसे अन्य लोगों का हित करना चाहिए। परन्तु वह स्वार्थ की इच्छा में अपने लोगों को ही लाभ देने लगता हैं। तब यही कहा जाता हैं। 'अंधा बांटे रेवड़ी, आप–आपकों दें' और तब ऐसे में उनसे कुछ कहना, अपना दुखड़ा रोना यही सिद्ध करता हैं कि 'अंधे के आगे रोवे–अपना दीदा खोवे' और जब लोगों की शिकायत होती हैं और पकड़ में आते हैं तब और इन पर कानूनी कार्यवाही होती हैं। तब इसके लिए यही होता हैं कि 'उगले तो अंधा, निगले तो कोढ़ी' वाली परिस्थिति बन जाती हैं।

अतः यह कहना होगा कि सामाजिक परिवेश में दिव्यांगों को आधार बनाकर सामाजिक जीवन में सुधार, उचित आचरण करने तथा समय में समायोचित कार्य करने आदि का संदेश इन कहावतों के द्वारा दिया गया जिससे कि इन लोकोक्तियों से शिक्षा प्राप्त कर समाज में यही आचरण कर सकें। इस प्रकार इन लोकोक्तियों के माध्यम से दिव्यांग चेतना तो उजागर होती ही है साथ ही इनसे मिलने वाली शिक्षा समाज का मार्ग दर्शन भी करती हैं।

(र) दैनिक समाचार पत्र–व पत्रिकाओं में चित्रित निःशक्तजन

निःशक्तजन को लेकर वर्तमान युग बहुत ही सचेत हो रहा हैं, हम देख रहे हैं कि आये दिन इनका नाम हर क्षेत्र में चमक रहा हैं। ये भी अपनी मेहनत में कसर नहीं छोड़तें और अपने लक्ष्य को प्राप्त कर लेते हैं। यदि पढ़ाई के क्षेत्र में देखे या खेल में कहीं भी जाए इनकी उपलब्धि हर जगह दिखाई दें रही हैं। ऐसे ही कुछ निःशक्तजनों का चित्रण करने जा रहे हैं जिन्होंने अपनी अपंगता को मात देकर लक्ष्य की शीर्ष पर पहुँच गए निम्न हैं–

यहाँ वर्णन हो रहा बुरी तरह से अंधी '25 वर्षीय एन.एल. बेमो जेफिन' आईएफएस ऑफिसर बनी। वो देख नहीं सकती तो क्या हुआ, पर उनकी योग्यता से भारतीय विदेश सेवा का आभूषण बनकर रहेगी। चेन्नई के इस खरे सोने की काबिलियत पहचान 'प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी' ने, जिन्होंनें 69 साल पुरानी इस सेवा में अनोखी एंट्री की। बेनो इस सफलता का पूरा श्रेय अपने माता–पिता को देना चाहती हैं। माँ ने उन्हें घंटों किताबें और अखबार पढ़कर सुनाए, ताकि बेटी की तैयारी में कोई कमी न रह जाए। पिता ने वो सॉफ्टवेयर उनके कम्प्यूटर में अपलोड कराया, जिसकी मदद से वे किताबों को स्कैन कर ब्रेल लिपि में पढ़ सकीं। साथ ही साथ बेनो प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी और अपने राज्य तमिलनाडु की मुख्यमंत्री जयललिता से मिलकर इस अवसर के लिए उन्हें थैंक्स कहना चाहती हैं। वह अपने दृढ़ हौंसलें के साथ अपने लक्ष्य पर पहुंच गई।

अगले पात्र हैं 'मूक–बधिर युवराज व मीना' राजस्थान पत्रिका कोटा में छपी इस खबर ने सशक्तों को भी प्रेरणा लेने की सीख दी हैं। दोनों की एक विवाह सम्मेलन में नजरें मिली। इनका इश्क परवान चढ़ा युवराज ने परिजनों को मीना का घर खोजनें की जुगत लगाई। उसके पिता ने बेटे की खातिर युवती का घर खोजकर उनसे बात भी की। मीना की माँ सीमा ने युवराज के पिता उच्छव लाल को मना किया कि दोनों ही मूक–बधिर हैं, ये जीवन कैसे बिताएंगे। तब उच्छव लाल ने कहा कि ये भगवान के ऊपर छोड़ दो, जब मूकबधिर ही बनाया हैं तो जीवन भी अच्छा गुजरेगा। दोनों परिवारों की आर्थिक स्थिति कमजोर होने के कारण परिजन संत कंवरराम धर्मशाला के 'अध्यक्ष गिरधारी पंजवावनी' से मिलं। उन्होंनें पूरी शादी के खर्चे का जिम्मा उठाया। सिंधी समाज ने दोनों की सगाई करवाकर। शादी का ठीक मुर्हूत रखा।

इस प्रकार समाज इस प्रकार के लोगों के साथ यदि ऐसे ही सहयोग करें तो ये हीन भावना का शिकार न होकर अपनी जिंदगी को सामान्य लोगों की तरह जी सकते हैं।

राजस्थान पत्रिका में प्रकाशित–हैदराबाद के 'श्रीकांत' की 'आँखों की रोशनी नहीं होने के कारण, आई.आई.टी. में नहीं लिया एडमिशन, अब 50 करोड़ की कंपनी के सीईओ।'

श्रीकांत के जीवन की कहानी–जब वह पैदा हुए थे, तब पड़ोसियों ने उनके माता–पिता को सलाह दी थी। कि वे अपने बेटे का गला घोंट दें, ताकि उम्र भर की परेशानी और दर्द सहने से छुटकारा मिल जाए। जब वे थोड़ा बड़े हुए उन्हें यह बात पता चली तभी उन्होंने ठान लिया कि अगर दुनिया यह कहती हैं कि वह कुछ नहीं कर सकते तो वह दिखाकर रहेंगे कि वे कुछ भी कर सकते हैं। 23 वर्षीय श्रीकांत बोतला पैदाइशी नेत्रहीन हैं इसके बावजूद अपने विजन और नॉलेज के बल पर उन्होंने 50 करोड़ की कंपनी खड़ी कर डाली हैं। वे 'बोलांट इंडस्ट्री' के सीईओ हैं। 2012 में हैदराबाद में एक टिन की छत के नीचे उन्होंने कंपनी की नींव रखी थी। 'इको फ्रेंडली और डिस्पोजन कंज्यूर' पैकेजिंग सॉल्यूशंस की मैन्यूशंस की मैन्यूफक्चरिंग का काम करने वाली इस कंपनी में अब करीब 150 दिव्यांग जन काम करते हैं।

श्रीकांत अपने स्कूल के दिनों को याद करता हुआ कहता हैं कि उन्हें हमेशा पीछे वाली बेंच पर भेज दिया जाता था। खेलनें की इजाजत नहीं दी जाती थी। दसवीं में टॉप करने के बावजूद उन्हें विज्ञान विषय देने से इंकार कर दिया गया। लेकिन उन्होंने सिस्टम से लड़कर अपना हक पाया और 12वीं कक्षा में विज्ञान विषय से 98 फीसदी अंक प्राप्त किए। इंजीनियर बनने का सपना देखनें वाले श्रीकांत आईआईटी में प्रवेश चाहते थे। लेकिन एंट्रेस के लिए उनका एडमिट कार्ड अस्वीकार

कर दिया गया। कारण वे नहीं जानते थे पर उन्होंने हार नहीं मानी और आज वो दुनिया में नाम कमा चुकें हैं।

24 जून 2018 दैनिक भास्कर में प्रकाशित 'भरतपुर अपना घर आश्रम' में मूक–बधिरों के लिए रोज भगवान को एक पत्र लिखा जाता हैं। संचालक डॉ. बी.एम. भारद्वाज बताते हैं कि खर्चों के लिए न तो वे चंदा माँगते हैं और न ही सरकार से कोई अनुदान लेते हैं। जरुरी सामान और अन्य आवश्यकताओं की एक चिठ्ठी लिखकर नियमित रूप से भगवान श्रीकृष्ण के मंदिर में रख दी जाती हैं। साथ ही जरुरत वाली चीजों की सूची नोटिस बोर्ड पर चस्पा कर दी जाती हैं। श्रद्धालु आते हैं और सूची की कोई भी वस्तु जैसे दाल, आटा, चावल, चीनी, तेल, घी आदि दें जाते हैं। जैसे ही सामान मिलता हैं नोटिस बोर्ड से उस सामान की पर्ची हटा दी जाती हैं। नेपाल सहित देशभर में अपना घर के 23 आश्रम संचालित हैं। लगभग हर शहर, कस्बे में इसके कार्यकर्ताओं की कार्यकारिणी बनी हुई हैं, जो आश्रमों की व्यवस्था संभालती हैं।

डॉ. भारद्वाज बताते हैं कि यहाँ परिवार से बिछड़ें जो लोग रहते हैं वो इशारों से अपने शहर, घर और परिजनों में बताने की कोशिश तो करते हैं, लेकिन केवल इतना ही समझ आता हैं कि उनके घर जाने का साधन रेल अथवा बस हैं। ये लोग कहीं भटक न जाए इसलिए उनके हाथ पर आश्रम का मोबाइल नम्बर लिखवा दिया गया। यह विचार दो ढ़ाई साल पहले आया था, तब एक महिला आश्रम से निकल गई थी और बहुत प्रयास करने के तीन दिन बाद मिली थी। इस प्रकार की सुविधाएँ भी इनके लिए हो रही हैं। ताकि निःशक्तजन का अपमान न हो और भूखा न मरना पड़ें।

दैनिक जागरण 8 जून 2018 को प्रकाशित 'मूक बधिर गीता ने शादी के इच्छुक युवकों की बोलती कर दी बंद', 'इंदौर' में पाकिस्तान से आई मूक–बधिर गीता से शादी का ख्वाब लेकर गुरुवार को इंदौर पहुँचे चार युवकों को इन सवालों का सामना करना पड़ा। तुम्हारा घर कहाँ हैं? कितना बड़ा हैं? घर में कौन–कौन हैं? क्या काम करते हो और कमाते कितना हो? घर में खाना कौन बनाता हैं? वाहन कौनसा हैं? कितना पढ़े–लिखें हो और कौनसा माध्यम में पढ़ाई की हैं? गीता ने सांकेतिक भाषा में सवाल किये। जाते–जाते युवकों ने गीता से पसंद पूछी तो सभी को एक ही जवाब दिया। 'अभी सोचूंगी', विचार करुंगी, फिर बताऊँगी। गीता ने फिलहाल किसी भी युवक से हाँ नहीं कहा।

गीता से शादी करने के लिए इंदौर के बाण गंगा का आंशिक बधिर सचिन पाल, टीकमगढ़ से सरकारी अफसर मूक–बधिर गुरु नामदेव, गुजरात से मूक–बधिर रितेश पटेल व माता–पिता के साथ भोपाल के दिव्यांग राजकुमार स्वर्णकार पहुँचे थे। युवक 10 बजे परदेशी पुरा स्थित समाज कल्याण परिसर पहुँच गए थे, जबकि गीता प्रशासनिक अधिकारी व मूक बधिर संगठन के सदस्यों के

साथ 12:30 बजे पहुँची। उसने वहाँ मौजूद हर उम्मीदवार से वही सवाल किये। बाद में सभी से मिलने के बाद अपनी भाषा में जवाब दिया कि जो उसके लिए बेहतर होगा उसके लिए हाँ कह दूँगी।

यहाँ मूक–बधिर गीता ने दिखा दिया कि निःशक्तजन किसी के ऊपर बोझ नहीं हैं। वे किसी की भोग की वस्तु नहीं हैं। उन्हें भी अपनी जिंदगी में कुछ तो चाहिए।

'राजस्थान पत्रिका' 30 अगस्त 2015 में प्रकाशित 'हौंसलें व जज्बे की राखी' करीब एक दशकपूर्व विद्युत तार हादसे में अपने दोनों हाथ गंवा चुकी सुनीता वर्मा न सिर्फ जीवन जी रही हैं, वरन् अपने ज़ज्बात व हौंसलें को भी ऊँचा उठाए हुए हैं। राखी का पर्व उसे हर बार मनोबल बढ़ाने का संदेश देकर जाता हैं। बारां (राजस्थान) में रक्षाबंधन पर्व के अवसर पर अपने बड़े भाई जुगल किशोर की कलाई पर पैरों से राखी बांधी। भाई और बहन के प्यार को सभी ने सलाम किया। 'दैनिक भास्कर 2 मई 2015', 'बिना हाथों के जन्मी, अब दूसरों में बांट रही, जिंदगी जीने का हुनर' 'तेहरान ईरान' की 52 साल की 'जोहरेह एटेजॉदा साल तानेह' बिना हाथों के जन्मीं थी, लेकिन कुदरत की यह खामी भी उसे आगे बढने से रोंक नहीं पाई। जोहरेह अब जिंदगी जीने का अपना हुनर दुनियाँ में बाँट रही हैं। ऐसे लोगों को जो निःशक्त हैं, उन्हें अपने कामकाज खुद करने की ट्रेनिंग दें रही हैं। जोहरेह की जिंदगी आम लोगों जैसी ही हैं। वह टेबल टेनिस खेलती हैं, कम्प्यूटर ऑपरेट करती हैं और माँ की सेवा भी, सभी काम पैरों से करती हैं। हर शरीर में कोई ना कोई कमी होती ही हैं, लेकिन आत्मबल सर्वोच्चय होता, मजबूत पकड़ हैं तो कोई भी कमी बाधा नहीं बन सकती।

'भास्कर' में प्रकाशित 'विकलांग दोस्त को तीन साल से कंधे पर ले जा रहा स्कूल' चीन में दो किशोरों ने पेश की मिसाल 'चीन में 19 वर्षीय झांग ची की मांसपेशियों में विकृति हैं, जिसके कारण वह न तो सही से चल पाता है, न ही अन्य कोई काम कर सकता हैं। लेकिन 18 वर्षीय दोस्त कोई शू के होते झांग ची' को कभी अपनी इस कमजोरी पर हताशा नहीं हुई। कोई तीन साल से हर रोज झांग को अपने कंधों पर लादकर स्कूल लें जाता हैं, स्कूल में हर क्लास में भी झांग को शेई लें जाता हैं और वापस घर भी लाता हैं। झांग को कोई की दोस्ती पर नाज़ हैं। छोटी उम्र में ही दोनों ने दोस्ती की मिसाल पेश कर दी। दोनों ही दोस्त अपनी क्लास के अव्वल छात्रों में गिने जाते हैं। स्कूल तक आनें–जानें में तो दोनों की जोड़ी अटूट हैं, वहीं पढ़ने में भी दोनों एक–दूसरे का खूब हाथ बंटाते हैं। स्कूल के शिक्षिकों को भी अपने इन दोनों होनहार छात्रों पर गर्व हैं। झांग और कोई

अब अच्छे विश्वविद्यालय में दाखिला लेकर आगे की पढ़ाई करना चाहते हैं और इन दोनों को शिक्षिकों और छात्रों की मदद मिल रही हैं।

8 अप्रैल 2015 राजस्थान पत्रिका में प्रकाशित 'कुदरत के फैसलें को कूची से बदलती गिरिजा' गिरिजा कि जिंदगी का क्रूर फैसला लिख दिया था। लेकिन गजब के आत्मविश्वास से भरपूर गिरिजा ने इसे बदलनें के लिए कूची का सहारा लिया हैं। दरअसल पहली नजर में किसी दो साल की बच्ची लगने वाली गिरिजा 19 साल की हैं। जन्मजात बीमारी के चलते उसके शरीर का विकास नहीं हो पाया हैं। लेटे रहने की मजबूरी के कारण उसने पेंटिंग बनाना शुरु किया अब आलम ये हैं कि वह हर महीने पाँच–छह पेंटिंग्स बेचकर लगभग दस हजार रूपए कमा लेती हैं। परिवार और खुद के खर्चे में हाथ बंटाती हैं। उसकी माँ नंदाबाई कहती हैं कि गिरिजा के पैदा होने के बाद ही डॉक्टरों ने बता दिया था कि वह जिंदगी भर ऐसी ही रहेगी। ये सुनकर हम टूट गये थे। मैं उसकी देखभाल करती हूँ। अलबत्ता पेंटिंग गिरिजा बिना किसी मदद के बनाती हैं। शारीरिक मजबूरी के चलते गिरिजा कभी स्कूल नहीं जा पाई इसका गिरिजा को पछतावा नहीं हैं। गिरिजा कहती हैं कुछ लोग उस पर हंसते हैं। लेकिन फर्क नहीं पड़ता। मेरी हसरत विदेश जाकर कला प्रदर्शन करना हैं।

शरीर के मुकाबले सिर बेहद भारी होने के चलते गिरिजा बैठ नहीं सकती। कॉफी के कप से ज्यादा भारी चीज उठा नहीं सकती। हड्डी ना टूटे इसलिए डॉक्टरों ने हिलने–डुलने से मना किया हैं। सांस लेने में भी दिक्कत रहती हैं।

राजस्थान पत्रिका 13 अप्रैल 2015 में प्रकाशित 'माँ के दर पर बीमार बेटी को छोड़ गए'। चित्तौड़गढ़ (राज.) में मानसिक रूप से बीमार एवं लकवा ग्रस्त एक मासूम को रात में अज्ञात व्यक्ति चित्तौड़ दुर्ग स्थित 'कालिका माता मंदिर' में छोड़ गया। बाद में मंदिर आए श्रद्धालुओं ने बालिका को देख पुलिस को सूचना दी। पुलिस ने अज्ञात के विरुद्ध मामला दर्ज कर बालिका को रात में ही बाल कल्याण समिति के समक्ष पेश किया। रविवार सुबह उसे श्री सांवलियाजी राजकीय सामान्य चिकित्सालय में लाया गया। जांच में सामने आया कि बालिका विमंदित हैं तथा पैर काम नहीं करते। इससे वह सोई रहती हैं। बालिका के हाथ ही काम करते हैं जिससे वह इशारे से अपनी बात समझाती हैं। मेडिकल में सामने आया कि बालिका की उम्र छह से नौ वर्ष के बीच हैं।

कुछ माँ–बाप भी ऐसे होते हैं जिनकी ममता इतनी निर्दयी हो जाती हैं कि वे अपने ही बच्चें के साथ ऐसा पशु जैसा व्यवहार करते हैं। क्या उन माँ–बाप का कलेजा एक बार भी नहीं पिघला?

'राजस्थान पत्रिका' 3 दिसम्बर 2015 'निःशक्त जो बन गए सशक्त' निःशक्तजन यह शब्द सुनते हैं। हमारे जेहन में भले ही असहाय, लाचार और बेचारगी का भाव पैदा होता हो पर खुद निःशक्तजनों ने इस शब्द के मायने पूरी तरह बदल दिए हैं। वे कहने को निःशक्तजन हो पर उन्होंने अपने काम से ऐसा मुकाम हासिल किया हैं, जिससे वे बन गए हैं बेहद खास। वाकई हमारे आस–पास आज ऐसे निःशक्तजनों की कमी नहीं, जिन्होंने अपनी कमजोरी को ताकत बनाया, उस ताकत से इरादे मजबूत किए और फिर भरी हौंसलों की उड़ान एक ऐसी उड़ान, जिसके सफर में लाख बाधाएँ आई, पर मजबूत इरादे उन्हें डिगा नहीं सकें और वे पहुँचे अपनी मंजिल तक। आज स्पॉट लाइट में पेश हैं ऐसे ही कुछ 'आइकन की कहानी, उन्हीं की जुबानी'.....'स्टीफन हॉकिंग्स' आइस्टीन के बाद 21वीं सदी के प्रसिद्ध गणितज्ञ और भौतिक विज्ञानी माने जाते हैं। स्टीफन का बिग बैग और ब्लैक होल का सिद्धान्त विश्वभर में चर्चित रहा। कम्प्यूटर सपोर्टेड मशीन पर रहते हैं।

'सुधा चन्द्रन' केरल में जन्मी 50 वर्षीय सुधा चन्द्रन प्रसिद्ध अभिनेत्री और शास्त्रीय नृत्यांगना हैं। 16 वर्ष की उम्र में दुर्घटनाग्रस्त होने पर डॉक्टर की लापरवाही की वजह से एक पैर काटना पड़ा। पैर में 'जयपुर फुट' लगाकर वह देश की प्रसिद्ध शास्त्रीय नृत्यांगना बनी।

'अरुणिमा सिन्हा' यात्रा के दौरान लुटेरे ने चलती ट्रेन से फेंक दिया, एक पैर गंवाना पड़ा। घटना के दो वर्ष बाद ही वे 'माउन्ट एवरेस्ट' पर चढ़ने वाली पहली दिव्यांग महिला बनी।

दैनिक भास्कर 3 सितम्बर 2018 में प्रकाशित, 11 वर्ष की उम्र में बोन कैंसर हुआ तो एक पैर काटना पड़ा, नेशनल लेवल में सात मेडल जीते, अब वर्ल्ड चैंपियनशिप में उतरेंगें सोनीपत के मोहित। 22 वर्षीय मोहित को 2009 में 11 साल की उम्र में बोन कैंसर हो गया था। बीमारी के चलते उनका एक पैर काटना पड़ा। इनके बावजूद मोहित ने बॉडी बिल्डिंग में करिअर बनाया। नेशनल चैंपियनशिप के तीन गोल्ड, दो सिल्वर और दो ब्रान्ज मेडल जीते। अब उनका अगला टारगेट मिस्टर यूनिवर्स बनना हैं। मोहित बताते हैं कि बीमारी से परिजन काफी परेशान थे। उनके चेहरे पर खुशी लाने के लिए कड़ी मेहनत की और अपने दम पर बॉड़ी बिल्डिंग बना।

'हाथ गंवाए तो पैरों से लिख डाली अपनी किस्मत', 'सताराम देवासी' जोधपुर (राज.) डगर कितनी भी कठिन क्यों न हो, लेकिन मेहनत और लगन से इसे पार किया जा सकता हैं। जोधपुर के कैलावा कलां के स्वामी जी की ढाणी में रहने वाले सताराम देवासी का जीवन ऐसी कठिनाइयों से भरा रहा हैं लेकिन उन्होंने बता दिया हैं कि हौंसलें के पार किया जा सकता हैं। हाल ही में राजस्थान की मुख्यमंत्री वसुन्धरा राजे ने खुद इनके हौंसलें को सलाम किया हैं। सताराम देवासी बताते हैं कि 7 साल की उम्र में कक्षा चतुर्थ में पढ़ रहे थे, अचानक एक दिन एक बिजली के तार छू

लेने से उनके दोनों हाथ जल गए, हादसे के साल भर तक वे कुछ नहीं कर पाए यहीं सोचते रहे कि वे आगे पढ़ पाऐगें या नहीं हालांकि ये हाथ सही हो सकते थे पर परिवार की आर्थिक हालत ऐसी नहीं थी कि वे हाथों का इलाज करा सकें। यह हादसा जीवन भर के लिए अभिशाप बन गया। पर उन्होंने हिम्मत दिखाई और पैरों से लिखने का अभ्यास शुरु किया। शुरुआत में देवासी अपने पैरों से कभी मिट्टी पर तो कभी दीवार पर लिखने की कोशिश करते थे। आकृतियाँ बहुत बड़ी बन जाती थी, लेकिन अभ्यास से सब कुछ संभव हो गया। आज देवासी फर्राटे से हिन्दी और अंग्रेजी अपने पैरों से लिखते हैं।

देवासी बताते हैं कि उनका परिवार पशु पालन और खेती पर निर्भर हैं। बारिश होती हैं तो खेती और पशुपालन से गुजारा हो जाता हैं नहीं तो हालात और भी बदतर होती हैं। उनका एक छोटा भाई और दो छोटी बहनें हैं, लेकिन गरीबी के कारण वे और छोटी बहने ही पढ़ाई कर पार रहे हैं। गरीबी के चलते उन्हें सीए की कोचिंग लेने में भी परेशानी हो रही हैं। उनका सपना सिविल सर्विसेज में जाने का हैं। निःशक्ता और गरीबी के कारण इन्होंने 10वीं 12वीं के साथ बी.कॉम अच्छे अंकों से की और सीए सीपीटी की परीक्षा में 126वीं रैंक हासिल कर नया मुकाम बनाया। 'बदला बेचारगी भरा नजरीया', 'स्मीनू नई दिल्ली' कहती हैं कि राजस्थान की मिट्टी से मेरा पुराना नाता रहा हैं। मैं महारानी गायत्री देवी स्कूल में पढ़ती थी। मैं 11 साल की उम्र में छुट्टियों में स्कूल से दिल्ली वापस आ रही थी। रास्ते में मेरी कार दुर्घटनाग्रस्त हो गई और ठीक समय पर डॉक्टरों का इलाज न मिलने से गंभीर स्पाइनल इंजरी की वजह से मेरे पैरों की चलने–फिरने की क्षमता चली गई। मुझे राजस्थान के अलग–अलग जगहों पर घूमना, जायकेदार खाना, कपड़े और वहाँ का हस्तशिल्प अभी भी बहुत याद आते हैं। आज भी लगता हैं जैसे कल ही जैसलमेर के रेगिस्तान में ऊँट की सवारी करके लौटी हैं।

मैं आज भी जयपुर जाने की हिम्मत नहीं जुटा पाती हूँ, क्योंकि मुझे लगता हैं कि वहाँ गई और मैं वो सब नहीं कर पाई जिनकी मीठी यादे मेरे दिल में हैं, तो मुझे बहुत मायूसी होगी। मैं सोचती हूँ। कि क्या मेरे जैसे और लोग राजस्थान में नहीं होगें? क्या उन्हें भी रोजमर्रा की जिंदगी जीने में ऐसी बाधाओं का सामना नहीं करना पड़ता होगा? अपने पुर्नवास के उपरांत जब मैं भारत वापस आई तो मैंने पाया कि सामाजिक ढांचागत सुविधाओं सुगमता न होना एक बड़ी समस्या हैं। इसके अलावा भी बहुत सारी समस्याएँ हैं। मुझे लोग बेचारगी की दृष्टि से देखते थे तब अच्छा नहीं लगता था। मैंने मायूस होकर पिताजी से कहा कि मैं स्कूल नहीं जाऊँगी पर पिताजी ने जोर देकर मुझसे कहा कि तुम्हें अपनी बहनों की तरह की स्कूल जाना पड़ेगा। चूंकि मैं एक समृद्ध परिवार से

थी और पिताजी ने मेरे लिए स्कूल में रैंप बनवा दिया जिसके चलते मैंने स्कूल की पढ़ाई थोड़ी सहजता से पूरी की।

जब मैं पहले दिन स्कूल पहुंची तो दूसरे बच्चों का मेरी तरफ देखने का नजरिया अलग था। पर शायद बहुत से बच्चें सरल होते हैं इसलिए उन्होंने खेलते–खेलते कब मुझे अपना दोस्त बना लिया मुझे पता ही नहीं लगा। आज जब पीछे मुड़कर देखती हूँ तो लगता हैं कि बच्चें इतने सरल होते हैं कि वे असामान्य लोगों में भी समानता खोज लेते हैं। जिन निःशक्त या सामान्य बच्चों को एक समेकित वातावरण में सामाजिक विविधता के साथ पढ़ने–लिखने और खेलने का मौका नहीं मिलता तो वो अक्सर सम्पूर्ण विकास से महरूम रह जाते हैं। अक्सर यहीं बच्चें बड़े होकर सामाजिक विविधता को नहीं स्वीकार पाते और निःशक्तजनों के प्रति एक उदासीन रवैया रखने को मजबूर हो जाते हैं। इसलिए मैं मानती हूँ कि सभी स्कूलों का बाधा मुक्त होना जरुरी हैं जिससे सभी स्कूलों में समावेशी शिक्षा मिल सके और निःशक्त बच्चों को निःशक्तता आधारित स्पेशल स्कूलों में जाने को बाध्य न किया जाए। स्कूलों व उच्च शिक्षण–प्रशिक्षण संस्थानों को बाधा मुक्त बनाने के साथ–साथ हमें देखना होगा। कि बच्चें कैसे अपने–अपने घरों से निकलकर सुरक्षित स्कूल तक पहुँचे? इसके लिए यातायात एक महत्त्वपूर्ण घटक हैं। क्या सड़क किनारे बाधा मुक्त पैदल यात्री पथ हैं? क्या हमारी परिवहन व्यवस्था उनके लिए सुगम हैं? क्या ट्रैफिक लाइट एक श्रवण निःशक्त व एक दृष्टि बाधित व्यक्ति की आवश्यकताओं को पूरा करती हैं? क्या पैदल यात्री पथ पर स्पर्श संकेतक लगे हैं। जिससे हमारे दृष्टि बाधित साथी भी सबके समान इन आवश्यक सुविधाओं का उपयोग कर सकें। परिवहन के सभी साधन जैसे रेलवे, एयरपोर्ट व एयरप्लेन, बसे टैक्सी, रिक्शा आदि में भी सुगम्यता की कानूनी अनिवार्यताएँ हैं जिन्हें आज हमें उपलब्ध करने की जरुरत हैं।

इस प्रकार समाचार पत्र व पत्रिकाओं में भी हर दिन कोई न कोई खबर दिव्यांग जन पर केन्द्रित हैं। उनके दृढ़ संकल्प व हौंसलें भरे कार्यों से पूरे समाज को अवगत करवाकर उनके प्रति सम्मान पैदा करना हैं। देश के हर कोने में कोई न कोई महान विभूति बैठी हैं जो अपनी अपंगता को भूलकर मिसाल कायम करता हैं। यह उन निःशक्तजनों के लिए प्रेरणा भी बनते हैं। जो अपने अपाहिजपन को स्वीकार करके हाथ में कटोरा लेकर भीख माँगते हैं। भगवान एक अंग छीनता हैं तो दूसरे को उतना ही ताकतवर भी बना देता हैं कि वह अंगहीन की भरपाई कर सकें। ये उन सकलांगों के लिए भी प्रेरणा स्रोत हैं जो पूर्ण रूप से स्वस्थ होने पर भी हाथ पर हाथ रखकर बैठें रहते हैं।

निष्कर्ष

दिव्यांग जन गद्य की सभी विद्याओं में उपस्थित हैं। समाज को जब–जब समस्या का सामना करना पड़ता हैं तभी साहित्य समाज का कवच बनकर उसके सामने खड़ा हो जाता हैं।

इसी कारण साहित्यिक संवेदना दिव्यांग जन के प्रति चित्रित हुई हैं। साहित्य में उपन्यासकारों ने अपने लेखन में इस वर्ग को श्रेष्ठता प्रदान करके उन्हें अपनी रचना का मुख्य बिन्दु बनाया हैं। उनके संघर्ष को दृढ़ विश्वास को भी मिसाल के रूप में चित्रित किया हैं। जैसे रंग भूमि का नायक सूरदास अपने कर्म–धर्म में विश्वास रखता हैं। छल–कपट नहीं करता सच्चा व ईमानदार हैं। खंजन नयन का सूरदास भी जीवन भर संघर्ष से जूझ कर अपनी कठिन इच्छाशक्ति की मिसाल देता हैं। रागदरबारी का लंगड़ और आवां का देवीशंकर पाण्डेय तथा ज्यों मेंहदी को रंग की शालिनी ऐसे पात्र हैं जो हार न मानकर संघर्ष से लड़ते हैं और दूसरों के लिए प्रेरणा बनते हैं।

इसी प्रकार कहानियों में भी संवेदनशील पात्रों की तरफ कहानीकारों का ध्यान गया हैं। अभिशप्त की नायिका पुनिया (पुनिया की होली) बेचारी पुनिया बच्चों को जैसे, तैसे पाल रही हैं। धर्मवीर भारती की, 'गुलकी बन्नों' की पात्र गुलकी अपने कुबड़ापन के कारण जिंदगी भर लोगों के ताने सुनती रहती हैं। बच्चें उसे चिढ़ाते रहते हैं। ममता कालिया की 'सीट नंबर छह' में नायिका निःशक्त हैं। भाई–भाभी की मदद लेना चाहती हैं। परन्तु कोई उसकी मदद नहीं करता, अंधा सूरज का पात्र सूरज, परकटा परिंदा का विभु, आधा हाथ पूरा जीवन का 'मीरिया साइमन', अपराजिता 'चन्द्रा', मिलन 'कृष्णा चाची' आदि संवेदनशील पात्रों का वर्णन हैं।

लघुकथाओं में भी इन पात्रों का खुलकर चित्रण हैं। 'कर्मवीर राम' चन्द्रप्रकाश डाले द्वारा लिखित। दैनिक भास्कर में प्रकाशित 'इच्छाशक्ति', रवि प्रकाश का 'एक प्रखर व्यक्तित्व था' सांझी एक्सप्रेस 'मुस्कराहटें', 'रतनचंदरत्नेश' द्वारा रचित। 'गूंगी–गंगाराम' लघुकथा कृति 2006 में प्रकाशित। डॉ. चन्द्रवती नागेश्वर की लघुकथा की पात्र 'अरुणिमा', विनय कुमार पाठक की लघुकथा 'अपाहिज से छल' इसी प्रकार हेलर केलर की आत्मकथा की पात्र 'हेलन' अपने जन्म से लेकर जीवन संघर्ष तक कथा लिखती हैं। दूसरी संवेदनशील पात्र सुधा चन्द्रन की पात्र सुधा भी दुर्घटना में पैर गंवाकर आज देशभर में प्रसिद्ध नृत्यकार हैं।

महादेवी वर्मा का संस्मरण 'अलोपी' का पात्र 'अंधा अलोपी' जो जीवन संघर्ष करता हैं परन्तु हार नहीं मानता। इसी प्रकार कथा–साहित्य में मुहावरों और लोकोक्तियों की भी अहम् भूमिका होती हैं। साहित्य में इनके द्वारा छोटे से वाक्य में बहुत ही गहनपूर्ण बात कही जा सकती हैं। समाज के लोग भी लोकोक्तियों के द्वारा समय–समय पर उनका उपयोग करते रहते हैं। हर बात के पीछे कोई

न कोई उक्ति अवश्य होती हैं जैसे—अंधा पीसे कुत्ता खाय, इसका साधारण शब्दों में अर्थ हैं किसी निर्बल व्यक्ति का फायदा बड़े लोग उठाते हैं, अंधे आगे रोये—अपना दीदा खोवे—इसका अर्थ हैं किसी अनजान आदमी के सामने अपनी दुःख भरी घटना सुनाना। इसी तरह अंधे—और लंगड़े की दोस्ती जिसका अर्थ हैं। दोनों सामान्य श्रेणी के लोग मिल—जुलकर काम कर लेते हैं।

साहित्य की विद्याओं के अतिरिक्त दैनिक समाचार पत्रों में भी इस प्रकार के पात्रों का चित्रण होता रहता हैं। संपादक इनका वर्णन समाज के सामने इसीलिए करता हैं। ताकि वे इन्हें समाज का हिस्सा समझे। क्योंकि ये लोग कोई अलग समाज व देश के नहीं बल्कि हमारे ही समाज का अंग हैं। हमें उनको साथ लेकर चलना चाहिए।

≈≈≈≈

संदर्भ सूची

1. कथा साहित्य में विकलांग विमर्श, डॉ. विनय कुमार पाठक, पृ. 216
2. विकलांग विमर्श का वैश्विक परिदृश्य, डॉ. सुरेश माहेश्वरी, पृ. 521
3. वही
4. गौरा पंत शिवानी, लघु उपन्यास, पृ. 32
5. वही, विषकन्या, पृ. 31
6. अलका सरावगी, कोई बात नहीं, पृ. 15
7. कथा–साहित्य में विकलांग विमर्श, डॉ. विनय कुमार पाठक, पृ. 129
8. वही, पृ. 131
9. अंधेरे के खिलाफ 'पिताजी चुप रहते हैं' ज्ञान प्रकाश विवेक, पृ. 28
10. टूटे हुए, उषा प्रियंवदा, पृ. 16
11. विकलांग जीवन की कहानियाँ, गिरिराजशरण अग्रवाल, पृ. 12
12. निर्मोही (मुन्नी) ममता कालिया, पृ. 434
13. अपराजिता, गौरा पंत शिवानी, पृ. 102
14. विकलांग जीवन की कहानियाँ, गिरिराज शरण अग्रवाल, पृ. 63
15. वही, पृ. 140
16. रत्नकुमार सांभरिया, लघुकथा शतक, पृ. 85
17. वही, पृ. 93
18. वही, पृ. 184
19. विकलांग विमर्श का वैश्विक परिदृश्य, डॉ. सुरेश माहेश्वरी, पृ. 452
20. वही
21. वही, पृ. 453
22. वही, 457
23. वही, 479
24. वही, 480
25. विकलांग जीवन की कहानियाँ, गिरिराज शरण अग्रवाल, पृ.12
26. विकलांग विमर्श, डॉ. विनय कुमार पाठक, पृ. 158
27. लोकोक्तियों में विकलांग विमर्श, डॉ. विनय कुमार पाठक, पृ. 160
28. अवधि का लोकसाहित्य, डॉ. सरोजनी रोहतगी, पृ. 110
29. व्याकरण प्रबोध, प्रो. विजेन्द्र स्नातक, पृ. 193
30. लोकोक्तियों में विकलांग विमर्श, डॉ. विनय कुमार पाठक, पृ. 8–9

उपसंहार

उपसंहार

"समकालीन कथा साहित्य में निःशक्त केन्द्रित रचनाएँ–एक अनुशीलन" विषय पर पाँच अध्यायों में शोध कार्य पूर्ण करने के पश्चात् इस निष्कर्ष पर पहुँचना और आसान हो गया हैं। कि समकालीन कथा साहित्य में निःशक्तजन अनुशीलन का विशेष स्थान हैं। शोध में निःशक्तजन की समाज व परिवार में स्थिति, शिक्षा रोजगार, संरक्षण पुनर्वास, सांस्कृतिक परिवर्तन को प्रस्तुत किया गया हैं। देश में निवास करने वाले दिव्यांग जन पर हिन्दी में कितना और कौनसा साहित्य सामने आया इसका सर्वेक्षण शोध की प्रमुख उपलब्धि हैं।

ये निःशक्तजन चारों युगों में रहे हैं, प्रत्येक युग में जहाँ भगवान, देवता, राक्षस आदि से संबंधित कथा पुराणों में वर्णित हैं। वहीं युग विशेष में पले–बढ़े तथा अपने विचित्र व आश्चर्यजनक कार्यों से दुनियाभर को अपना कर्त्तव्य बोध कराया हैं। फिर चाहे वे वेद, पुराण, उपनिषद्, शास्त्र तथा कथासाहित्य जो भी हो, ऐसे कई दिव्यांगों के बारे में चर्चा हैं जो अपने अंगों की निःशक्तता की परवाह किये बिना अपने लक्ष्य की प्राप्ति में सफल रहे और इतिहास में उनका नाम अमर हो गया। परन्तु समकालीन समाज निःशक्तजन को उपेक्षित मानता हैं। इसलिए इन लोगों में हीन भावना उत्पन्न हो गई। इन्होंने अनेक पारिवारिक, सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक समस्याओं का सामना किया, शोध में इन सब स्थितियों का सूक्ष्म दृष्टि से विवेचन किया गया हैं।

समाज में सभी प्रकार के लोग रहते हैं, निःशक्त भी और सशक्त भी लेकिन इनके निर्माता तो वही ईश्वर हैं। भगवान बनाते समय इनमें कोई फर्क नहीं करता, फर्क सिर्फ हमारे देखने का हैं। हमने कई बार यह सुना हैं जब भगवान किसी एक अंग को छीनता हैं तो उसकी ताकत दूसरे अंग में दें देता हैं। इस प्रकार विधाता यदि किसी अंग में विकास की कमी करता हैं तो उसकी ताकत दूसरे अंग में देकर सभी को समान बना देता हैं। लेकिन भारतीय समाज की उपेक्षित दृष्टि के कारण ये लोग काफी पिछड़ गये हैं और आज काफी संकट से गुजर रहे हैं। शिक्षा, रोजगार, संरक्षण व पुनर्वास, कार्यक्षमता के सुदपयोग, स्वास्थ्य से जुड़ी समाज में शारीरिक रूप से अक्षम लोगों का कोई अभाव नहीं हैं। भारत में इसका आँकड़ा कुछ इस प्रकार हैं–2002 में राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण के 58वें दौर के अनुसार भारतवर्ष में 208 लाख दिव्यांग व्यक्ति थे। कुछ निःशक्तजन ऐसे भी हैं जो अपनी

अक्षमता से हार न मानकर आधुनिक युग के तौर–तरीकों को अपनाते हुए अपने आपको आगे बढ़ाना चाहता हैं तथा प्रगति के पथ पर चलना चाहता हैं उसे सिर्फ थोड़ा सा हौंसला और सहयोग चाहिए।

दिव्यांग जन को समाज हर जगह उपेक्षित मानता हैं जैसे–शुभ कार्यों पर इनका आना या दर्शन मात्र को अशुभ माना जाता हैं। इन्हीं की श्रेणी में किन्नर वर्ग भी आता हैं जो तीसरे लिंग की वजह से निःशक्त माने जाते हैं। उन लोगों को भी समाज से एकदम अलग रखा गया हैं। उनके लिए भी भिक्षा माँगना या फिर शुभ कार्य की सौगात ही उनका रोजगार होता हैं। अंगहीन व्यक्ति के दर्शन की तरह इनकी बुरी दुआओं को भी समाज अशुभ मानता हैं। अब इन सभी की बहुत सारी समस्याएँ हैं। विभिन्न संवैधानिक प्रावधानों तथा आरक्षण के बाद भी दिव्यांग वर्ग सामाजिक, आर्थिक एवं शैक्षणिक दृष्टि से पिछड़ा ही रह गया। अब इनके लिए ऐसे प्रयास किये जाने चाहिए जो जनसामान्य तक पहुँच सकें, जिससे इनका विकास हो सकें।

प्राचीनकाल में निःशक्तजन के लिए यह अवधारणा थी कि यह अंगहीनता उसके पूर्व कर्मों के पापों का फल हैं। यदि वह इन्हें इस जन्म में भोग लेगा तो उसका अगला जन्म सफल हो जाएगा। यह मान्यता इतनी प्रसिद्ध हो गई कि स्वयं दिव्यांग इस कष्ट को भोगता रहता हैं। वह इसे कम करने का भी प्रयास नहीं करता वह अपने–आपको पूर्वजन्म का दोषी मानने लगता हैं। वह स्वयं को प्रायश्चित्त समझकर कष्ट भोगता रहता हैं। इन सारी समस्याओं का चित्रण निःशक्तजन साहित्य में हो रहा हैं।

समय के साथ–साथ निःशक्तजन कथा साहित्य आगे बढ़ रहा हैं। निःशक्तजन पर लेखक, कहानी, उपन्यास, लघुकथा, रेखाचित्र–संस्मरण, आत्मकथा, मुहावरें व लोकोक्ति आदि विधाओं में लिख रहा हैं। लेखक अपनी रचनाओं में देश की समस्याओं को उजागर कर रहे हैं। निःशक्तजन अनुशीलन से जुड़े उपन्यासों, कहानियों व लघुकथाओं का उद्देश्य इस गतिमान समय में जीते हुए निःशक्तजनों के समग्र पहलुओं को उद्घाटित करना हैं।

डॉ. विनय कुमार पाठक, डॉ. द्वारिका प्रसाद अग्रवाल एवं डॉ. इन्द्रबहादुर सिंह इस अनुशीलन के ब्रह्म, विष्णु, महेश हैं। डॉ. द्वारिका प्रसाद अग्रवाल महामंत्री, अखिल भारतीय चेतना परिषद् एवं डॉ. विनय कुमार पाठक के अथक प्रयासों से 6 व 7 सितम्बर 2008 को बिलासपुर (छत्तीसगढ़) में निःशक्तजन अनुशीलन पर दो दिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी आयोजित हुई और निःशक्तजन अनुशीलन का रूप आकार स्पष्ट हुआ और पूरे देश का ध्यान दिव्यांगों की समस्या पर गया। इसी समय डॉ. विनय कुमार पाठक द्वारा संपादित 'विकलांग–विमर्श' एक ऐतिहासिक दस्तावेज के रूप में विमोचित हुई। इसी प्रकार डॉ. सुरेश माहेश्वरी, डॉ. शकुन्तला शर्मा आदि के साथ हिन्दी साहित्य के प्रसिद्ध

लेखक व लेखिकाओं में—मृदुला सिन्हा, गौरापंत शिवानी, चित्रा मुद्गल, अलकासरावगी, मालती जोशी, मैत्रेयी पुष्पा, उषाप्रियवंदा, ममता कालिया, प्रेमचन्द, श्रीलाल शुक्ल, हजारीप्रसाद द्विवेदी, अमृतलाल नागर, अज्ञेय, विष्णु प्रभाकर, फणीश्वर नाथ रेणु, निर्मल वर्मा, यशपाल, ज्ञान प्रकाश विवेक, गिरिराज—शरण अग्रवाल, महादेवी वर्मा, रत्नकुमार सांभरिया, रामकुवार घोटड़ आदि के उपन्यास, कहानियाँ, लघुकथाओं में निःशक्तजन को चित्रित किया गया हैं।

वर्तमान में निःशक्तजन कथा साहित्य समृद्ध हो चुका हैं। साहित्यकारों ने विभिन्न दृष्टिकोणों से निःशक्तजन साहित्य लिखा हैं। इन लेखकों ने अपने कथा साहित्य में निःशक्तजन जीवन के अनेकानेक पक्षों, उनकी समस्याओं तथा परिणामों को संवेदनापूर्ण अभिव्यक्ति दी हैं। यह कथा साहित्य हिन्दी साहित्य में विशिष्ट स्थान पाने का अधिकारी हैं। इस प्रकार अपने अस्तित्व के लिए लड़ रहे हैं, दिव्यांग वर्ग के जीवन संघर्षों और उनकी संस्कृति को स्वर देता निःशक्त साहित्य एक नये ढंग से इनके अपरिचित पहलुओं को उजागर कर रहा हैं।

निःशक्तजन की समस्याओं को चित्रित करने के लिए प्राचीनकाल से ही हमारा हिन्दी साहित्य महत्त्वपूर्ण स्थान रखता हैं। कथासाहित्य की रचनाओं के उदाहरण आज तक विद्यमान हैं। श्रीमद्भागवत् 'सुखसागर' पुराण में 'कुब्जा' महाभारत में धृतराष्ट्र, गांधारी का भाई शकुनि, महर्षि च्यवन, अष्टावक्र, दीर्घत्तमा, मंथरा, श्रवण कुमार के अंधे माता—पिता, महाकवि सूरदास, मलिक मोहम्मद जायसी, कूर्मदास, महाराजा रणजीत सिंह, महाराज राणा सांगा आदि निःशक्तजन के लिए प्रेरणा स्रोत बनें। दिव्यांग जन को हर युग में सम्मान मिला हैं उन्हें प्रेम मिला, सहानुभूति मिली हैं, आदर मिला। जो व्यक्ति अंगहीन हैं उसे कुछ करने के लिए आगे आना चाहिए। उन्हें कथा—साहित्य में वर्णित निःशक्तजन से प्रेरणा लेकर आगे बढ़ना चाहिए। समकालीन साहित्यकार निःशक्तजन के मन की पीड़ा को समझकर उसे हीन भावों से दूर रखने की कोशिश कर रहा हैं। उनमें उत्साह भरने के लिए वे कथा—साहित्य के पात्रों के उदाहरण देते आ रहे हैं। प्रेरणा मिलने से वे भी अपने लक्ष्य को प्राप्त कर सकते हैं अपने जीवन को सशक्त व्यक्ति के समान खुशहाल बना सकते हैं।

ये निःशक्तजन किसी के भरोसे के नहीं हैं यदि इन्हें सही मार्गदर्शन और उचित सहयोग व हौंसला मिल जाये तो बुलन्दियों के शिखर पर पहुँच जाते हैं। ऐसे अनेक उदाहरण हमारे समकालीन साहित्यकारों ने अपनी रचनाओं में दिये हैं। समकालीन साहित्य के प्रसिद्ध उपन्यासकारों में ऐसे अदम्य साहस वाले अनेक पात्रों का चित्रण हैं—जैसे—मुंशी प्रेमचन्द के उपन्यास रंगभूमि का 'सूरदास'। रागदरबारी का 'लंगड़', हजारी प्रसाद द्विवेदी 'रैक्वऋषि', अमृतलाल नागर 'सूरदास', मृदुला सिन्हा, शालिनी, चित्रामुद्गल 'देवीशंकर पाण्डेय', अलका सरावगी 'शशांक', शिवानी 'लघु उपन्यासों के पात्र'

आदि ने अपनी निःशक्तता को मात देकर सशक्त के लिए प्रेरणा स्रोत बने हैं। इसी प्रकार समकालीन कहानियों में साहित्यकारों ने दिव्यांग पात्रों के हौंसलों से परिचित करवाया हैं। इनके कुछ उदाहरण निम्न हैं—विष्णु प्रभाकर की कहानी नेत्रहीन का पात्र 'सूरदास', यशपाल 'निर्मला', अज्ञेय 'खितीनदा' फणीश्वरनाथ रेणु 'सिरचरन', ममता कालिया के कहानी संग्रह सीट नंबर छह व छुटकारा में कई पात्र हैं। गौरा पंत शिवानी 'मेरी प्रिय कहानियों' कुलदीप बग्गा 'मणिका', प्रदोष मिश्र 'नीरज रंजन', माधुरी मिश्र 'कृष्णा चाची', त्रिभुवन पाठक 'विमलानन्द', अपराजिता, चन्द्रा, डॉ. चन्द्रावती नागेश्वर 'बिमला', श्रीमति अंजना ठाकुर 'शकुन' आदि वे पात्र हैं जिन्होंने निःशक्त होकर भी अपने लक्ष्य को प्राप्त किया हैं।

इनके अलावा कुछ कहानियों के पात्रों की घर तथा समाज में उपेक्षा भी हुई हैं जैसे—कंठहार 'सुषमा', अंधा सूरज 'सूरज' टूटे हुए 'तंत्री का बेटा' गुलकी बन्नो 'कुब्जा' यशपाल 'निर्मला', पुष्पहार सूबेदार, आजादी 'बुजुर्ग औरत' ऐसे पात्र हैं जिनको निःशक्तता के कारण घर—परिवार व समाज में उपेक्षित होना पड़ा हैं। तीसरी ताली, मुन्नी मोबाइल, किन्नर गाथा, गुलाममण्डी आदि किन्नरों से संबंधित उपन्यास हैं। इस शोध का उद्देश्य इसी उपेक्षित भाव को कम करना हैं।

कहानियों के साथ लघुकथाकारों ने भी निःशक्तजन की पीड़ा को समझकर लघुकथाओं में उनका चित्रण किया हैं जिनमें प्रसिद्ध लघुकथाकार रत्नकुमार सांभरिया, रामकुमवार घोटड़, डॉ. अमरनाथ चौधरी अब्ज आदि हैं। इनके अलावा हेलन केलर की आत्मकथा, अंधा अलोपी, गुंगिया—संस्मरण, मुहावरों लोकोक्तियों में इन पात्रों का चित्रण करके इनकी समस्या को समाज के सामने रखा हैं।

आज बदलते समय के साथ इन लोगों में भी परिवर्तन होने लगा हैं। इनकी स्वयं की मानसिकता में भी बदलाव आया हैं आधुनिक वैज्ञानिक युग के कारण इनकी स्थिति में काफी बदलाव हो रहा हैं। शिक्षा के प्रचार व सरकार के सहयोग, समाज के नवीन दृष्टिकोण ने निःशक्तजन की जीवन शैली और जीवन दृष्टि में अभिनव आयाम प्रदान किये हैं। अशिक्षा के कारण दिव्यांग वर्ग में अंधविश्वास की समस्या भी बहुत हैं। इनमें अपनी निःशक्तता को पूर्व जन्म के कर्मों का फल माना जाता हैं। यह सोचकर वे न तो अपनी बीमारी को कम करने की कोशिश करते हैं और न डॉक्टर से इलाज करवाते हैं। बच्चों की शिक्षा और प्रौढ़ शिक्षा के द्वारा इन अंधविश्वासों को दूर किया जा सकता हैं। प्रौढ़ शिक्षा को अक्षर ज्ञान का केन्द्र न बनाकर अनौपचारिक शिक्षा केन्द्र बनाया जाए, जिससे निःशक्तजन वर्तमान समय से भी परिचित हो सकें और उनका शोषण सशक्तों द्वारा न किया जा सकें।

दिव्यांग वर्ग पर आधुनिकता का प्रभाव हो रहा हैं वे सभी अपने क्षेत्रों में कदम बढ़ा रहे हैं। निःशक्तजन का केवल स्वतंत्र होकर अपना जीवन जीना या आर्थिक रूप से जाना ही उन पर अनुशीलन नहीं हैं बल्कि इस अनुशीलन का अर्थ हैं निःशक्तजन के प्रति समाज के दृष्टिकोण और मानसिकता में बदलाव, जिसमें निःशक्त का स्वयं का दृष्टिकोण भी शामिल हो। निःशक्तजन को शिक्षित करके उनके आने वाले भविष्य को संवारा जा सकता हैं। सरकार का भी पूरा सहयोग लेकर जन–जागृति के द्वारा इनमें व्याप्त बुराइयों से अवगत कराकर इन्हें आगे बढ़ाया जा सकता हैं।

निःशक्तजन सभी क्षेत्रों में अपनी भूमिका जिम्मेदारी के साथ बखूबी निभाता हैं। फिर चाहें पारिवारिक क्षेत्र, सामाजिक क्षेत्र, राजनैतिक क्षेत्र, आर्थिक क्षेत्र तथा कलाओं के क्षेत्र में संघर्ष करता हुआ आगे बढ़ रहा हैं। आज के युग में निःशक्तजन को सशक्त के बराबर दर्जा दिया गया हैं जबकि कई जगह देखा गया हैं कि प्राचीन युग में इन्हें अपने अधिकारों से वंचित रखा गया हैं जैसे अंधा होने पर धृतराष्ट्र को राजा न बनाना आदि कुछ उदाहरण मिलते हैं। जहाँ इनके साथ पशुओं जैसा बर्ताव किया जाता था। ऐसा उदाहरण 'खंजन नयन' उपन्यास पढ़ते समय देखा गया महाकवि सूरदास की शिक्षा व ज्ञान–गायन से चिढ़कर उसके भाई उस पर पत्थर बरसाते हैं।

परन्तु आज इनको सभी अधिकार प्राप्त हैं। सरकार इन्हें आरक्षण देकर इनकी शरीर की कमी की भरपाई कर रही हैं। सरकारी पुनर्वास व संरक्षण की सेवाऐं उपलब्ध करवा रही हैं। निःशुल्क शिक्षा, रोजगार, स्वास्थ्य आदि सहायता करके इन्हें समाज के समानान्तर लाने के प्रयास किये जा रहे हैं। फिर भी समाज में बहुत–सी ऐसी बातें हैं, जिससे इन्हें आगे बढ़ने का मौका नहीं मिलता या तानाशाह लोगों के द्वारा रोक दिया जाता हैं। देखते हैं परिवार या समाज में अंगहीन व्यक्ति को उतना सम्मान व हक नहीं मिलता जितना एक सशक्त व्यक्ति को मिलता हैं यदि औरत निःशक्त होती हैं तो उसकी उपेक्षा पुरुष से ज्यादा होती हैं क्योंकि हमारा समाज पुरुष प्रधान हैं। औरत को ज्यादा अपमानित, प्रताड़ित यहाँ तक की लोग उसकी मजबूरी का भी फायदा उठाते हैं। जो हमारे समाज में आम बात हो गई हैं। इसी कारण ये पुरुषों से और भी पिछड़ जाती हैं।

इसलिए निःशक्तों को लेकर समाज की सोच में परिवर्तन होना चाहिए। तभी उन्हें बराबर हक मिलेगा।

≈≈≈≈

शोध सारांश

शोध–सारांश

प्रथम अध्याय – निःशक्त केन्द्रित अनुशीलन : एक परिचय

साहित्य को समाज का तीसरा नेत्र कहा गया है क्योंकि साहित्य का उद्‌देश्य समाज का हित करना होता हैं। यह सत्य साबित हो गया है क्योंकि आदिकाल से ही साहित्य समाज की अच्छाई व बुराई का विश्लेषण करता रहा हैं। समय के अनुसार जैसे–जैसे सामाजिक संरचना में परिवर्तन आया तद्‌नुसार साहित्य के स्वरूप व विषयों में भी परिवर्तन होता गया। "यह निर्विवाद है कि साहित्य ही समाज में किसी विषय को दिशा एवं महत्त्व प्रदान करता हैं लेकिन कभी–कभी ऐसा होता है कि अनावश्यक विषय चर्चा में आ जाते हैं और आवश्यक विषय छूट जाते हैं।" इसलिए यह उक्ति प्रचलित है साहित्य समाज का दर्पण होता हैं। इसी दर्पण के माध्यम से साहित्यकार समाज को देखता है। "शब्द नाद है, शब्द ब्रह्म है, शब्द आस्था है, शब्द विश्वास है, शब्दों की ताकत जो पहचानते है, उन्हें समाज साहित्यकार के रूप में जानता हैं। साहित्यकार अपनी चेतना से, अपनी प्रतिभा से एक सार्थक रचना तैयार करता है और यह रचना जीवन की दिशा बदल देती हैं।" वर्तमान समय के साहित्यकार ने समाज की पीड़ा के साथ व्यक्ति की निजी समस्या को भी पहचान लिया हैं। जिनमें निःशक्तजन की समस्या महत्त्वपूर्ण हैं। ये दिव्यांग जन प्राचीनकाल में भी रहे है परन्तु वहाँ पर इनके प्रति उपेक्षा का भाव नहीं था। वर्तमान समाज इनके प्रति उपेक्षित भाव रखता हैं। जिसके कारण आज ये कठिन संकट के दौर से गुजर रहे हैं। इनके प्रति बढ़ती हीन भावना के कारण इनकी बेरोजगारी की समस्या, शिक्षा, स्वास्थ्य, समाज, भिक्षावृत्ति से जुड़ी समस्याएँ दिन–प्रतिदिन बढ़ती जा रही हैं। शोध के इस अध्याय में निःशक्तजन अनुशीलन का अर्थ, अवधारणा उद्‌भव एवं विकास, विशेषताएँ, समकालीन साहित्य में निःशक्तजन अनुशीलन का अध्ययन किया गया हैं।

निःशक्तजन अनुशीलन – निःशक्तजन शब्द दो शब्दों से मिलकर बना है। निःशक्त और जन। निःशक्त का अर्थ 'शक्तिहीन' और जन का अर्थ– 'मनुष्य' हैं। अतः निःशक्तजन से तात्पर्य असमर्थ व्यक्ति या शक्तिहीन व्यक्ति जो अपने कार्य करने में पूर्ण रूप से सक्षम न हो या फिर उसे दूसरों पर आश्रित रहना पड़ें।

निःशक्तजनों के लिए कुछ विद्वानों ने परिभाषाएँ दी हैं जो निम्न हैं– प्रो. दामोदर मोरे ने कहा हैं– "कुदरत की दी हुई शारीरिक, मानसिक, दुर्बलता, न्यूनता या विरूपता दिव्यांगता हैं। यह

दिव्यांगता दुःख की जननी हैं, लेकिन इस सत्य को न स्वीकारते हुए उससे दूर भागना या डरना कायरता हैं, उसका डटकर सामना करना ही पुरुषार्थ हैं। शरीर भले ही दिव्यांग हो, मन दिव्यांग नहीं होना चाहिए, क्योंकि मन तो उर्जा का केन्द्र हैं।" इसलिए हर मनुष्य की यही कोशिश होनी चाहिए कि वह एक दिव्यांग व्यक्ति को मानसिक आघात न लगने दें।

मराठी शब्दकोश में निःशक्त की परिभाषा में लिखा हैं– "जिनके शरीर में शारीरिक या मानसिक बिगाड़ हुआ, जो सर्वसाधारण व्यक्ति के अनुसार अपने दैनन्दिन काम–काज नहीं कर पाते उन्हें मुश्किल और असम्भव होता हैं। ऐसे व्यक्ति को निःशक्त कहते हैं।" इनके अनुसार जो व्यक्ति सशक्त के समान अपने रोजमर्रा के कार्य नहीं कर सकता वह निःशक्त कहलाता हैं।

हिन्दी शब्दकोश में निःशक्त शब्द को– "किसी अंग से हीन या फिर ये कहेंगे कि वह मनुष्य जो किसी अंग विकार के कारण सशक्त के बराबर सक्षम नहीं है।"

इस प्रकार दिव्यांग जन के लिए अलग–अलग नाम व परिभाषाऐं हैं। हमारे समाज में अंगहीन, विकृत शरीर, शारीरिक विकार, मानसिक विकार, दृष्टि विकार तथा किन्नर वर्ग सभी को निःशक्तजन कहा जाता हैं। ये लोग भी, बनाये तो भगवान ने हमारे समान ही हैं परन्तु समाज में इनके प्रति हीन भाव हैं।

हमारे देश में कुछ इस प्रकार की मान्यताएँ रही हैं कि निःशक्तता को पूर्व जन्म के पापों का फल माना जाता हैं। शास्त्रों में इस बात का अनेक जगह वर्णन हुआ है कि दोषयुक्त व्यक्ति को लोग कोढ़ी हो जाने का शाप देते हैं। जो व्यक्ति कोढ़ी हो जाता हैं, वह स्वयं भी अपने–आपको पूर्व जन्म का दोषी मानने लगता हैं। वह स्वयं को प्रायश्चित्त समझकर कष्ट भोगता रहता हैं उसे कम करने का प्रयास नहीं करता। हमारे समाज में यह भी अवधारणा थी कि यदि इन लोगों की शादी विवाह कर दिया गया तो इनकी संतान भी निःशक्त होगी। जन्मांध और मन्दबुद्धि लोगों के बारे में धारणा काफी प्रबल रही और लम्बे समय तक चली। प्रख्यात दार्शनिक सुकरात यहाँ तक कहते थे कि दिव्यांग बच्चें को जन्म लेते ही मार दिया जाए ताकि समाज में ये समस्या और न फैलें और इनकी सेवा, सहायता करने के लिए परिवार को इनका बोझा न ढ़ोना पड़ें। भारतीय संस्कृति में निःशक्तजन के प्रति उपेक्षा भाव ज्यादा निर्मम कभी नहीं रहा। इनके प्रति हमारी संस्कृति की धारणा अत्यन्त विशुद्ध, स्पष्ट एवं पारदर्शी रही हैं। निःशक्त लोगों के प्रति घृणा का भाव न रखकर सहानुभूति एवं सम्मान का भाव रहा हैं।

हिन्दी साहित्य में निःशक्तजन अनुशीलन का उद्‌भव बिलासपुर 'छत्तीसगढ़' में हुआ इस अनुशीलन के त्रिदेव–ब्रह्मा, विष्णु, महेश क्रमशः डॉ. विनय कुमार पाठक, डॉ. द्वारिका प्रसाद

अग्रवाल, डॉ. इन्द्र बहादुर सिंह। डॉ. द्वारिका प्रसाद अग्रवाल राष्ट्रीय महामंत्री, अखिल भारतीय दिव्यांग चेतना परिषद् एवम् डॉ. विनय कुमार पाठक के अथक प्रयासों से 6 एवं 7 सितम्बर 2008 को बिलासपुर 'छत्तीसगढ़' में निःशक्तजन अनुशीलन पर दो दिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी आयोजित हुई और निःशक्त अनुशीलन को स्पष्ट रूपाकार प्राप्त हुआ तथा पूरे देश का ध्यान दिव्यांग वर्ग की समस्याओं पर गया। इसी समय डॉ. विनय कुमार पाठक द्वारा संपादित पुस्तक 'विकलांग–विमर्श' एक ऐतिहासिक दस्तावेज के रूप में विमोचित हुई। दिव्यांग वर्ग के लिए चलाये गये कार्यक्रमों में स्वयंसेवी संस्थाओं की प्रमुख भूमिका रही हैं। 'अखिल भारतीय चेतना परिषद्' ने इनको आत्मनिर्भर बनाने के लिए समर्पित भाव से विभिन्न कार्य योजनाओं के द्वारा पूरे देश में इस आग को फैला दिया हैं।

दिव्यांगता देश की आबादी का 10 प्रतिशत हैं। अनेक ऐसे है जिनकी अंगहीनता अंशतः या पूर्णतः ठीक हो सकती है आवश्यकता है उपचार की ओर उपकरण की। ये दया के पात्र नहीं होते वरन् सहयोग का आकांक्षी हैं। बीमारी, युद्ध, अपराध, दुर्घटना प्राकृतिक प्रकोप, जन्मजात, पर्यावरण प्रदूषण, कुपोषण, रूढ़ियाँ, बढ़ता हुआ सामाजिक और आर्थिक तनाव व समस्याएँ ये सभी दिव्यांगता की जनक है, समाज इनके प्रति उपेक्षा का भाव रखता हैं। हजारों संस्थाऐं केवल सेवा भाव से कार्यरत है पर समाज में निःशक्तजन के प्रति तथा निःशक्तों में समाज के प्रति चेतना जागृत करने का कार्य भी अत्यन्त आवश्यक हैं।

निःशक्तजन अनुशीलन के विकास में 'अखिल भारतीय चेतना परिषद्' संस्था बिलासपुर (छत्तीसगढ़) निःशक्तजन का हर संभव उत्थान करने में लगी है। दिव्यांग जन को प्रोत्साहन देने के लिए '3 दिसम्बर' को अन्तर्राष्ट्रीय निःशक्त दिवस के रूप में मनाया जाता हैं। "निःशक्त का सामाजिक पुनर्वास कर उन्हें समाज के साथ जोड़ने के लिए 2004 से 2013 तक दिव्यांग युवक–युवती परिचय सम्मेलन एवं सामूहिक विवाह के 12 कार्यक्रम हुए।" बदलते समय के अनुसार इस विषय की जड़ें मजबूती लेती जा रही है, जो इसके निरन्तर विकास की ओर इशारा करती हैं।

इस अनुशीलन की कुछ महत्त्वपूर्ण विशेषताएँ भी रही हैं। जिसके कारण निःशक्तजन को नया जीवन सम्मान के साथ जीने की प्रेरणा मिलती हैं। इनके प्रति पूर्व में जो धारणा थी वह बदलते समय के साथ बदल रही हैं। समाज का जो उपेक्षित व्यवहार था वह बदलता हुआ नजर आ रहा हैं। सोच में बदलाव आ रहा है, कई संस्थाऐं भी इस काम में जुटी हुई है। बुद्धिजीवी नये–नये समाधान खोज रहे हैं। 'अखिल भारतीय चेतना परिषद्' ने विगत दस वर्षो में बहुत सारे महान कार्य किये हैं– दिव्यांग विमर्श पर राष्ट्रीय संगोष्ठी, दिव्यांग एवं प्रजातंत्र पर चर्चा एवं

अभियान, राजनैतिक दलों से दिव्यांग प्रकोष्ठ बनाने का आग्रह, निःशक्तजन हितार्थ किये जा सकने वाले 121 कार्यक्रमों का प्रकाशन, निःशक्त चेतना ग्रंथ 2 का प्रकाशन, दिव्यांग–विमर्श ग्रंथ का प्रकाशन अपना दिनमान (काव्य संग्रह) दिव्यांग विमर्श सौन्दर्य शास्त्र एवं रचना का प्रकाशन। वेबसाईट का निर्माण एवं ई–मेल की शुरुआत।

1. आर्थिक सुचिता।
2. निःशक्त चेतना केन्द्र एवं अस्पताल हेतु दानदाताओं को आमंत्रण दान के आयाम व स्वरूप।
3. निःशक्तजनों हेतु विशेष जानकारी।
4. राष्ट्रीय नीति का विवरण।
5. दिव्यांगता की रोकथाम।
6. पुनर्वास के उपाय।
7. शारीरिक पुनर्वास रणनीति।
8. परामर्श तथा मेडिकल पुनर्वास।
9. सहायक उपकरण।
10. निःशक्त व्यक्तियों की शिक्षा।
11. दिव्यांग व्यक्तियों के लिए आर्थिक पुनर्वास।
12. निजी क्षेत्र में दिहाड़ी रोजगार।
13. अवरोध मुक्त वातावरण।
14. दिव्यांगता प्रमाण पत्र जारी।
15. सामाजिक शुरुआत।
16. दिव्यांगता से निपटने वाले मौजूदा अधिनियमों में सुधार।
17. अनुसंधान।
18. खेलकूद मनोरंजन तथा सांस्कृतिक वातावरण।

इस प्रकार वर्तमान में राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर दिव्यांग वर्ग को समाज के साथ लेकर चलने के लिए शासन और स्वयं सेवी संगठन आगे आये हैं।

प्राचीनकाल और समकालीन साहित्य दोनों में कोई न कोई प्रसिद्ध साहित्यकार अवश्य ही मिल जाता है जिनके साहित्य में निःशक्त चेतना मिलती हैं। इसलिए यह विषय वर्तमान में निःशक्तजन की वेदना को जानने के लिए जरुरी हैं। समकालीन साहित्य की हर विद्या में दिव्यांग पात्रों का चित्रण हैं। इसी कारण साहित्य के क्षेत्र में दिव्यांग वर्ग पर शोध करना जरुरी हो गया।

समकालीन साहित्य में उपन्यास, कहानी, लघुकथा, संस्मरण, आत्मकथा व अन्य विद्याओं में निःशक्तजन को चित्रित किया गया हैं।

उपन्यास साहित्य में मुंशी प्रेमचन्द का उपन्यास 'रंगभूमि' में (सूरदास) अंधा पात्र हैं। अमृतलाल नागर 'खंजन–नयन' (सूरदास) के जीवन पर आधारित, श्रीलाल शुक्ल 'राग दरबारी', लंगड़ा पात्र (लंगड़), हजारी प्रसाद द्विवेदी 'अनामदास का पोथा' (रैक्व ऋषि), 'मृदुला–सिन्हा', 'ज्यों मेंहदी को रंग' (शालिनी), अलका सरावगी 'कोई बात नहीं' (शशांक), चित्रामुद्‌गल 'आवां' (देवीशंकर पाण्डेय), गौरापंत शिवानी के लघुउपन्यास आदि हैं।

इसी प्रकार कहानियों में भी–विष्णु प्रभाकर 'नेत्रहीन' (खेतिया), अज्ञेय 'खितीन–बाबू' (खितीनदा), यशपाल 'अभिशप्त' (धनकू), धर्मवीर भारती, गुलकी बन्नों, ज्ञानप्रकाश विवेक, 'अंधा सूरज', ममता कालिया का कहानी संग्रह 'सीट नम्बर छह' छुटकारा में निःशक्त पात्र हैं। गौरापंत शिवानी की 'मेरी प्रिय कहानियाँ', मैत्रेयी पुष्पा 'सहचर', मालती जोशी 'स्वयंवर' (सुषमा), उषाप्रियवंदा 'टूटे हुऐ' (तंत्री), माधुरी मिश्र 'मिलन' (मीना), श्रीमति रेखा पालेश्वर 'खुली आँखों का दुख', त्रिभुवनपाठक 'करु बहियां बल आपनो' (विमलानन्द), प्रदोष मिश्र, आँखें (नीरज रंजन) आदि कहानियों में दिव्यांग पात्रों का चित्रण हुआ है।

लघुकथाओं में भी दिव्यांग जन के प्रति संवेदनशीलता दिखाई देती हैं। कुछ लघुकथाकार निम्न हैं– रत्नकुमार सांभरिया, 'हिन्दी लघुकथाशतक' डॉ. रामकुवार घोटड़ 'भारतीय हिन्दी लघुकथाएँ', डॉ. अमरनाथ चौधरी अब्ज, डॉ. मिथिलेश कुमारी मिश्र, प्रद्युम्नभला, राजेन्द्र मोहन त्रिवेदी आदि विशिष्ट लघुकथाकार हैं।

महादेवी वर्मा के संस्मरण, गुंगिया और अंधा अलोपी भी इसी समस्या पर हैं। हेलन केलर की आत्मकथा में भी संवेदनशील पात्र हेलन केलर हैं। मुहावरें व लोकोक्तियों के द्वारा भी निःशक्तजन की संवेदना व्यक्त हुई हैं।

इस प्रकार समकालीन साहित्यकार इन्हें समाज के नागरिकों के समानान्तर लाने का प्रयास कर रहे हैं।

दूसरा अध्याय – हिन्दी कहानी में निःशक्त केन्द्रित अनुशीलन

प्राचीनकाल से ही कहानी कहने तथा सुनने की परम्परा चली आ रही हैं। कहानी हमेशा भूतकाल की घटना का वर्णन करती हैं। हम अपने बुजुर्गों व परिवार के सदस्यों से कोई भी बीती

हुई घटना सुनते है तो वह कहानी बन जाती हैं। कथा शब्द 'कथ्य' से बना है जिसका अर्थ है कहना। हमारे देश में कथा साहित्य का प्रारम्भ 'कथासरितसागर' हैं।

कथा–सहित्य का नवीन रूप निःशक्तजन अनुशीलन के रूप में उपस्थित हुआ हैं। वर्तमान समाज में इन्हें उपेक्षित व हीन दृष्टि से देखा जाता हैं। सहायता के नाम पर आरक्षण देते हैं परन्तु अपनी निःशक्त मानसिकता के कारण इनमें हीन भावना पैदा कर देते हैं। इन सारी समस्याओं का चित्रण हिन्दी कहानियों में हो रहा हैं।

समय के साथ निःशक्तजन कथा लेखन आगे बढ़ रहा हैं। निःशक्तजन लेखक आधुनिक कहानी, स्वातंत्र्योत्तर कहानी, समकालीन कहानी, समकालीन कहानी में नारी निःशक्तता तथा समकालीन कहानी में निःशक्तता के विविध रूप जिनमें शारीरिक निःशक्तता, मानसिक निःशक्तता, दृष्टि निःशक्तता, किन्नर वर्ग आदि में लिख रहा हैं। लेखक अपनी कहानियों में देश की समस्याओं को उजागर कर रहे हैं। निःशक्तजन अनुशीलन से जुड़े लेखक व कहानियों का उद्देश्य इस गतिमान समय में जीते हुए दिव्यांगों के समग्र पहलुओं को उद्घाटित करना हैं। प्रसिद्ध कहानीकार निम्न है–विष्णु–प्रभाकर, अज्ञेय, डॉ. धर्मवीर भारती, फणीश्वरनाथ रेणु, यशपाल, ज्ञानप्रकाश विवेक, मैत्रेयी पुष्पा, मालती जोशी, उषा प्रियवंदा, ममता कालिया, गौरा पंत शिवानी, कुलदीप बग्गा, प्रदोष मिश्र, माधुरी मिश्र, सुरभि बेहरा, श्रीमति रेखा पालेश्वर, भीष्म साहनी आदि की कहानियों में दिव्यांगों को चित्रित किया गया हैं। प्रदीप सौरभ, निर्मला भुराडिया, महेन्द्र भीष्म आदि किन्नर वर्ग पर लिख रहें हैं। इस अध्याय में इन सभी लेखकों की कहानियों पर प्रकाश डाला गया हैं।

आधुनिक काल की कहानियों में भी दिव्यांग पात्र मिलते हैं परन्तु समकालीन की अपेक्षा कम मिलते हैं। आधुनिककाल के कहानीकार निम्न है–

अज्ञेय की कहानी 'खितीन बाबू' का पात्र 'खितीन दा' एक साधारण क्लर्क हैं। उसके हाथ व पैर कटे हुये हैं। आँखों से भी अंधा हैं। वह हार नहीं मानता और कहता इनके बिना भी काम चल सकता हैं। 'यशपाल' का कहानी संग्रह 'अभिशप्त' का पात्र 'धनकू' पोलियो ग्रस्त हैं। पत्नी ही दो जून की रोटी बड़ी मुश्किल से जुटा पाती है यहाँ पर निःशक्त व्यक्ति के परिवार व बच्चों की स्थिति चित्रित हुई हैं। 'विष्णु प्रभाकर', 'नेत्रहीन' का पात्र 'खेतिया' आँखों से अंधा होने पर भी अपने कर्त्तव्य का पक्का हैं। 'रंगभूमि' के सूरदास की तरह दूसरों पर आश्रित नहीं हैं। 'रांगेय राघव' 'गूंगे' का नायक 'गूंगा बहरा' लड़का अनाथ भी हैं। बुआ–फुफा उसे पालते हैं परन्तु उसकी कीमत वे उसे पीट–पीटकर चुका लेते है। कहानी की चमेली सोचती है आज सब गूंगे है सही और गलत को कोई नहीं कहता 'मनुष्य कितना स्वार्थी है'–रांगेय राघव की दूसरी कहानी 'पंच परमेश्वर' का

पात्र 'काना', 'कन्हाई' हैं। वह निम्न जाति से हैं। उसकी निःशक्तता उसे एक वर्ग में खड़ा कर देती हैं। समाज वर्ग देखता है मनुष्य को नहीं। यह कहानी एक दिव्यांग पात्र की प्रतीक के रूप में कमजोर वर्ग को भी चित्रित करती हैं।

स्वतंत्रता के बाद लिखी गई कहानियाँ स्वातंत्र्योत्तरकाल की कहानियाँ हैं। सन् 1950 के बाद कहानी की दिशा में बदलाव आता हैं। इस दौर के निःशक्तजन पर लेखन करने वाले कहानीकार निम्न हैं– डॉ. धर्मवीर भारती 'गुलकी बन्नों' की नायिका गुलकी अपने कुबड़ेपन के कारण उपेक्षित हैं। समाज व बच्चें सभी उसका मजाक उड़ाते हैं भारती जी ने समाज का संवेदनाहीन व्यवहार को दृष्टिगत किया है। यह कहानी मानवीय संवेदना को गहरा अर्थ देती हैं। फणीश्वरनाथ रेणु की 'ठेस' कहानी का पात्र 'सिरचन' तुतलाकर बोलता हैं। परन्तु वह अपनी जुबान का पक्का हैं। इसलिए कहते वह मुँहजोर है कामचोर नहीं। 'ज्ञानप्रकाश विवेक' की कहानी 'अंधा सूरज' अपने परिवार के द्वारा ही उपेक्षित होता हैं। जब परिवार वाले घर से बाहर जाते हैं तो उसे अंधेरी कोठरी में बंद कर देते है। बेबस लाचार 'सूरज' अंधी आँखों से आँसू बहाता रहता हैं। विवेक जी ने सूरज के माध्यम से बाल मनोविज्ञान का चित्रण किया हैं। इनकी दूसरी कहानी 'अंधेरे के खिलाफ' का पात्र 'अजय' पैरों से निःशक्त होने पर भी माँ–बाप के सहयोग से पढ़ाई में प्रथम आता हैं। 'निर्मल वर्मा' के 'परिन्दे संग्रह' की कहानी 'तीसरा गवाह' का पात्र विकृत होंठ व नाक वाला हैं। ममता कालिया की 'छुटकारा' में 'बीमारी' की नायिका बीमार रहने लगती हैं इसलिए भाई–भाभी को बुलाती है परन्तु उनका व्यवहार उसे और अधिक पीड़ा देता हैं। ये अपने परिवार की स्थिति है जो वर्तमान के स्वार्थी भाव को स्पष्ट करती है। 'उषाप्रियवंदा' की कहानी 'टूटे हुये' की मुख्य पात्र 'तंत्री' जिसका पुत्र एकदम निःशक्त हैं। दूसरे पुत्र की इच्छा में वह गैर पुरुष से संबंध भी बना लेती है परन्तु वहाँ भी उसकी बेटे की इच्छा पूरी नहीं होती।

समकालीन कहानीकारों ने भी दिव्यांग वर्ग को केन्द्र में रखकर बहुत सारी कहानियों की रचना की हैं। ये कहानियाँ निम्न हैं– ममता कालिया का कहानी संग्रह 'सीट नम्बर छह' की कहानी 'आजादी' में एक बुजुर्ग औरत हैं जो एक पैर से अपाहिज हैं दूसरे में हमेशा दर्द रहता हैं परन्तु परिवार में कोई भी उसकी तरफ ध्यान नहीं देता। उसकी पोती मुन्नी स्कूल से आजादी के दिन पताशे लाती हैं परन्तु जब तक वह आती हैं दादी को आजादी मिल चुकी होती हैं। दूसरी कहानी 'उपलब्धि' की पात्र 'गूँगी–बहरी शहनाज' हैं जब एक दम्पती का इकलौता बेटा बिछुड़ जाता हैं तो वह मिलवाती हैं। 'निर्मोही' कहानी की 'मुन्नी' अनेक बिमारियों की शिकार हैं जिसकी जिम्मेदार उसकी दादी है जो उसे कभी पोलियों के टीके भी नहीं लगवाती। अब वह पूरी तरह निःशक्त हो गई। 'गौरापंत शिवानी' की 'अपराजिता' की मुख्य पात्र 'चन्द्रा' का कमर से नीचे का पूरा भाग

निष्प्राण हैं। परन्तु उसकी माँ उसे हार नहीं मानने देती और उसे फिजिक्स में डॉक्टरेट की उपाधि दिलवा देती हैं।

शिवानी की 'मेरी प्रिय कहानियाँ' में 'सौत' कहानी की पात्र 'नीरा' अपने पति के द्वारा धोखा देने पर मानसिक संतुलन खोकर पागल हो जाती हैं। शिवानी की दूसरी कहानी 'शपथ' का पात्र 'अंधा वृद्ध' व विधुर है जिसकी देखभाल करने वाला कोई नहीं हैं परन्तु बेटी की ससुराल वाले उसे एक रात भी पिता के पास नहीं रहने देते। 'पुष्पहार' कहानी का निःशक्त पात्र सूबेदार हैं जो फौज से तो सही सलामत लौट आता हैं परन्तु घर में पड़ी कील के कारण उसे पैर कटवाना पड़ता हैं। उसकी पत्नी दुर्गी इसी का फायदा उठाकर पर पुरुष से संबंध बनाती हैं। इसके माध्यम से नारी का भी पुरुष को धोखा दिया जाना स्पष्ट हुआ हैं। 'मेरा भाई' कहानी का पात्र 'सुब्ब्या' का काला रंग, एक आँख भैंगी, ललाट के बीचों–बीच आँख के आकार का निशान हैं। उसके इसी विकृत शरीर के कारण उसे उपेक्षित होना पड़ता हैं। 'दण्ड' कहानी का पात्र 'गूंगा–बहरा' बदलू। जिसको डॉक्टर पत्र थमाकर चला जाता हैं वह कुछ नहीं बता पाता और सिर्फ आँसू बहाता रहता हैं।

'डॉ. इन्द्रबहादुर' की कहानी 'विमल' का पात्र पैरों से निःशक्त होने पर भी ट्रेन में लूटने वाले इनामी बदमाश को पुलिस के हवाले करवा देता हैं। पुलिस उसकी पीठ थपथपाती हैं। 'श्रीमती रेखा पालेश्वर' की कहानी 'विकलांग बेटे–बेटी का खोना'। इस कहानी में रघुवीर और अंजुला निःशक्त हैं दोनों बहन–भाईयों को लेकर माँ–बाप डॉक्टरों के चक्कर लगाते हैं परन्तु कोई फायदा नहीं होता। दोनों 22–22 वर्ष की उम्र पाकर मौत के ग्रास बन जाते हैं परन्तु माँ–बाप को आज भी उनकी याद आती हैं। 'सुरभि बेहरा' की 'बिखरे ख्वाब' कहानी के मुख्य पात्र सुप्रभा और अक्षय हैं। दोनों डॉक्टर है, अपनी पसन्द से शादी करते हैं परन्तु बच्चें नहीं होने पर दोनों अलग हो जाते हैं। अक्षय को दूसरी पत्नी से बेटा होता हैं परन्तु वह एकदम निःशक्त है अक्षय कहता है मुझे मेरे किये की सजा मिल गई हैं।

समकालीन कहानियों में नारी की निःशक्तता का चित्रण भी देखने को मिलता हैं– 'माधुरी मिश्र' की 'मिलन' कहानी की मीना (कृष्णा चाची) की शादी कम उम्र में होती हैं परन्तु उसकी सास पति–पत्नी को मिलने नहीं देती। उसका पति आत्महत्या कर लेता हैं जब उसे पति का मतलब समझ में आता है तो वह मानसिक संतुलन खो देती हैं जिससे सभी उसे पागल कहते हैं। ममता कालिया की 'आजादी' की वृद्ध व पैरों से निःशक्त औरत अपने परिवार के द्वारा उपेक्षित हैं। 'गौरापंत शिवानी', 'अपराजिता' की 'चन्द्रा' डॉक्टरेट की उपाधि प्राप्त करके सशक्त के लिए प्रेरणा बनती हैं। शिवानी की 'सौत' की नीरा अपने पति से धोखा खाकर मानसिक संतुलन खो देती हैं।

'भीष्म साहनी', 'कंठहार', की 'सुषमा' जिसकी माँ ही अपनी बेटी पर ध्यान न देकर पार्टी के लिए अपने कंठहार को बार–बार देखती हैं। ममता कालिया के 'सीट नम्बर छह' की उपलब्धि की 'गूंगी–बहरी शहनाज' जो दम्पती को उनके बिछुड़े बच्चें से मिलवाती हैं। 'छुटकारा' संग्रह में 'बीमारी' की नायिका अपनी बीमारी के कारण परिवार वालों को बुलाती है परन्तु उनका व्यवहार देखकर वह कहती है– "मुझे स्वयं पर गुस्सा आ रहा है भावुकता के क्षण में मैंने भाई को चिट्ठी लिखी थी कि मैं कितनी अकेली और बीमार हूँ।" उसकी भाभी बीमारी को भी शक की दृष्टि से देखती हैं। 'काकेदी हट्टी' संग्रह की 'इलाज' कहानी की पात्र 'अभिधा' नेत्र की समस्या से परेशान हैं जब वह डॉक्टर के पास इलाज के लिए जाती हैं तो डॉक्टर उसकी आँखों में सुई चुभों देता हैं और वह डरकर भाग लेती हैं। इस प्रकार कहानियों के माध्यम से स्पष्ट झलता हैं कि नारी की निःशक्तता पुरुष से ज्यादा दुःख देती हैं।

समकालीन कहानियों में निःशक्तता के विविध रूप देखने को मिलते हैं। जैसे **शारीरिक रूप** से निःशक्त पात्र इसके अन्दर हाथ–पैर से दिव्यांग पात्र को रखा जाता हैं। **मानसिक रूप** से निःशक्त पात्रों की स्थिति कुछ ज्यादा दयनीय होती है क्योंकि हमारे शरीर का संचालन दिमाक से होता हैं और जब वह ही ठीक काम न करे तो पूरा शरीर बेकार हो जाता हैं। **दृष्टि निःशक्त** पात्रों के लिए दिन–रात बराबर होता है। उनका पूरा जीवन अंधेरे में गुजरता हैं। यह भी ज्यादा दुख देता है। अन्त में **किन्नर वर्ग** की समस्या को लिया जाता हैं क्योंकि समाज के द्वारा उपेक्षित जिन्दगी जीने वाले 'खुसरे या हिजड़ें' के नाम से जाने जाते हैं। लैंगिक विकृति से पीड़ित ये प्राणी भी आम इंसान की भांति जीना चाहते हैं परन्तु जीवन–निर्वाह हेतु ये 'मसखरापन' या 'स्वांग' रचने को मजबूर हैं। इन्हीं में से कुछ पात्र अपने परम्परागत नाचने–गाने को छोड़कर अपने–आपको बदल रहे हैं परन्तु समाज की सोच न जाने कब बदलेगी। इस वर्ग पर 'प्रदीप सौरभ' ने 'तीसरी ताली' मुन्नी मोबाइल, निर्मला भुराडिया का गुलाममण्डी, महेन्द्र भीष्म 'किन्नर गाथा' आदि उपन्यासों की रचना की हैं। जो पूर्णरूप से किन्नरों की समस्या पर केन्द्रित हैं।

तीसरा अध्याय – हिन्दी उपन्यास में निःशक्त केन्द्रित अनुशीलन

वर्तमान समय में कथा साहित्य का अधिक सृजन हो रहा हैं। इसमें सभी विमर्श केन्द्र में हैं क्योंकि साहित्यकार का उद्देश्य समाज को अंधविश्वास व पुरानी परम्पराओं से छुटकारा दिलाना हैं। स्त्री को उसका सम्मान दिलाकर, दलित जीवन की पीड़ा अनुभव करके आदिवासी विमर्श के बाद निःशक्तजन केन्द्र में हैं। इस समय निःशक्तजन अनुशीलन मुख्य मुद्दा बना हुआ है। निःशक्तजन अनुशीलन के लिए उपन्यासकारों का योगदान अपेक्षित हैं। जो अपने उपन्यास में इस

समस्या को केन्द्र में लेकर समाज को अवगत कर रहा हैं। प्रस्तुत अध्याय में उपन्यास के माध्यम से दिव्यांग जन को किस प्रकार चित्रित किया गया हैं, इस पर प्रकाश डाला गया हैं।

दिव्यांग जन पर लेखन में किसी भी वर्ग के लेखक भी पीछे नहीं हटे। दिव्यांग जन के लिए समाज ने भिक्षा माँगने का कार्य बना दिया और उन्हें हीन दृष्टि से देखना मानव की प्रकृति है। जबकि वह भी समाज व राष्ट्र का अंग हैं। यदि इनको प्रोत्साहन व आत्मविश्वास मिल जाये तो ये सशक्त को पीछे छोड़ देते हैं। शोध में भी इन्हीं बातों पर चर्चा की गई है।

मुंशी प्रेमचन्द उपन्यास के बारे में लिखते हैं– "मैं उपन्यास को मानव जीवन का चरित्र मानता हूँ। मानव चरित्र पर प्रकाश डालना और उसके रहस्यों को खोलना ही उपन्यास का मूल मंत्र है।"

निःशक्तजन पर केन्द्रित प्रमुख उपन्यास व उपन्यासकार–उपन्यास सम्राट् 'मुंशी प्रेमचन्द', 'रंगभूमि' का नायक 'सूरदास' कर्मठ, ईमानदार, दृढ़निश्चयी हैं। भीख माँगकर अपना तथा अपने भतीजे मिट्ठू का पेट पालता हैं। वह जिन्दगी को खेल का मैदान मानता है उसकी घोषणा है–

"तू रंगभूमि में आया दिखलाने अपनी माया,
क्यों धरम नीति तोड़े? भई क्यों रन से मुँह मोड़े?"

वह जीवन में संघर्ष करता हुआ चलता हैं। वह जाति से नीच है परन्तु उसके कर्मों से श्रेष्ठ हैं। वह भविष्य के प्रति जागरूक व वर्तमान में सचेत था। वह ईमानदार व सत्य का साथी हैं।

इसी प्रकार स्वातंत्र्योत्तर उपन्यासों में बदलते समाज का परिवेश सम्रग रूप से उपन्यास विद्या में चित्रित हैं। देश की आजादी के बाद साहित्य में जो उपन्यास लिखें गये उन्हें ही स्वातंत्र्योत्तर उपन्यास कहते हैं। जिनमें निःशक्तजन का वर्णन हैं वे उपन्यास निम्न हैं–

'श्रीलाल शुक्ल' का 'रागदरबारी' उपन्यास में लंगड़ा पात्र हैं। लंगड़ शिवपालगंज से पाँच कोस दूर के गाँव का हैं। वह कचहरी से नकल लेने के लिए चक्कर लगाता हैं। परन्तु नकल नवीस उससे पाँच रूपये माँगता हैं तो वह 2 रुपए का रेट बताता हैं। इसी बात पर झगड़ा हो जाता हैं। अब वह रिश्वत के खिलाफ होकर बिना रिश्वत काम करवाने की ठान लेता हैं। परन्तु जब वह गाँव में रिश्तेदार की गमी में चला जाता हैं और सत्रह दिन तक बीमार पड़ जाता हैं। जब वह वापिस कचहरी में जाता हैं तो उसे बताया जाता हैं कि नकल को पन्द्रह दिन बनाकर रखा जाता हैं जब कोई लेने नहीं आता तो फाड़कर फेंक दिया जाता हैं। अब लंगड़ पराजित होकर अपने गाँव लौट आता है। यहाँ लेखक का उद्देश्य देश में फैली रिश्वत खोरी, भ्रष्टाचार, राजनीति

का वर्णन करना हैं परन्तु हमारा उद्देश्य निःशक्त लंगड़ से है जो दिव्यांग होकर भी सत्य की लड़ाई लड़ता हैं।

'हजारी प्रसाद द्विवेदी' का उपन्यास 'अनामदास का पोथा' का निःशक्त पात्र 'रक्व ऋषि' हैं। वह हमेशा अपनी पीठ को खुजलाते रहता हैं। द्विवेदी जी ने यह उपन्यास छान्दोग्य उपनिषद् के 'रैक्व आख्यान' पर कहानी के रूप में लिखा गया था। बाद में परिवर्तन करके उपन्यास लिखा गया। ऋषि कुमार की पीठ खुजलाने की बीमारी जन्मजात हैं या फिर पीठ में मैल जम जाने से कुछ पता नहीं। स्वयं ऋषि कुमार का अपनी खुजली के बारे में अंधविश्वास हैं कि उसके बुरे कर्मों का फल हैं। वह बताता हैं एक बार एक गाड़ीवान राजा की लड़की को सैर करवाकर वापिस महल जाता हैं। तभी रास्ते में तेज तूफान बारिश आ जाती हैं ऋषि कुमार वहीं आस–पास होता हैं। वह राजा की पुत्री को तो बचा लेता है परन्तु गाड़ीवान को नहीं बचा पाया। वह अपने ऊपर उसी का शाप मानता है। ऋषि कुमार अपने आपको प्रायश्चित्त मानता हैं। प्रसिद्ध उपन्यासकार 'उषा प्रियवंदा' का उपन्यास 'पचपन खंभे लाल दीवारे' की नायिका सुषमा के पिता लकवाग्रस्त हैं। इसके कारण उसके परिवार की जिम्मेदारी अब सुषमा पर आ जाता हैं। वह अपने जीवन साथी की तलाश में हैं तभी उसकी माँ उसे जिम्मेदारियों का अहसास कराती हैं। यहाँ लेखिका ने स्त्री की विवशताओं को दर्शाया हैं अपने पिता के निःशक्त होने पर सुषमा को अपनी खुशी दाँव पर लगानी पड़ती है।

वर्तमान काल में हिन्दी साहित्य के हर क्षेत्र में विमर्श परम्परा चल रही हैं। समाज में व्याप्त समस्याओं को चित्रित करने के लिए साहित्य का सहारा लेकर विद्वान लोग परम्पराओं और अंधविश्वास की जड़ को खत्म करने की कोशिश कर रहे हैं। समकालीन उपन्यास विधा में अन्य विमर्शों के बाद दिव्यांग चेतना केन्द्र में हैं। इस विधा में भी संघर्षशील चरित्रों की भरमार हैं जिन्होंने अपनी बुद्धिमता और बहादुरी से अपनी अक्षमता को दरकिनार कर मानवता की एक नई मिसाल कायम की है–अलका सरावगी, मृदुला सिन्हा, चित्रा मुद्गल, गौरापंत शिवानी आदि समकालीन उपन्यासकार हैं। मृदुला सिन्हा का उपन्यास 'ज्यों मेंहदी को रंग' ने निःशक्त अनुशीलन में नींव का काम किया हैं। इस उपन्यास में लेखिका ने स्वयं के द्वारा भोगे गए यथार्थ का चित्रण किया हैं। उनका बेटा परिमल दस वर्ष तक स्वयं हाथ भी न हिला सकता था। ये गुजरे हुए दिन ही लेखिका को उपन्यास लिखने के लिए बाध्य करते हैं। इस उपन्यास में लेखिका ने स्वयं के बेटे की जगह शालिनी को आरोपित करके उपन्यास को रूपाकार दिया। शालिनी की पीड़ा के माध्यम से लेखिका ने अपनी पीड़ा को कम किया हैं।

दूसरी समकालीन लेखिका 'चित्रामुद्‌गल' का प्रसिद्ध उपन्यास 'आवां' की मुख्य नायिका नमिता है जिसके पिता 'देवीशंकर पाण्डेय' अचानक लकवाग्रस्त हो जाते हैं और परिवार की सारी जिम्मेदारी नमिता सम्भालती हैं। वह नौकरी भी करती हैं। नमिता पिता की देखरेख पूर्ण तरीके से करती हैं। यहाँ तक कि जब पिता के क्रियाकर्म का समय आता हैं तब नमिता कहती हैं "क्रियाकर्म मैं करूंगी पंडित जी, मुखाग्नि भी मैं ही दूंगी मैं इनकी बड़ी बेटी हूँ। छुन्नू अभी बच्चा हैं। बच्चें के हाथ से क्रियाकर्म करवाना उचित नहीं।" इस प्रकार वह सशक्त बेटी का परिचय देती हैं।

'अलका सरावगी' का उपन्यास 'कोई बात नहीं' का पात्र शशांक को चलने में परेशानी बोलने में हकलापन के कारण अपने सहपाठियों से उपेक्षित होता रहता हैं। जिससे उसमें हीन भावना पैदा हो जाती हैं। यहाँ तक कि स्कूल वाले उसका दाखिला तक करने में शंका करते हैं। अचानक उसकी जिन्दगी में इतना बड़ा बदलाव आता हैं कि वह फिर बिस्तर पर पड़ा रहता हैं। घर में अमृत के समान कथा करवाने से शशांक में सुधार हो जाता हैं और वह सहारा लेकर चलने लगता हैं। जब परिवार वाले पहले की बात सोचकर गुस्सा करते हैं तो वह धीरे से मुस्करा देता है कहता है 'कोई बात नहीं'। इसी प्रकार 'गौरा पंत शिवानी' के लघु उपन्यासों में निःशक्त पात्रों का चित्रण हुआ हैं। 'पूतों वाली' की पार्वती आँखों से अंधी हो गई परन्तु पाँच पुत्रों में से कोई भी खबर नहीं लेता। 'कैंजा' एक पगली लड़की की पीड़ा हैं। जिससे एक बदमाश दुष्कर्म करता हैं वह गर्भवती होकर एक लड़के को जन्म देते ही मर जाती हैं। पहाड़ी लोकभाषा में जिस बच्चे के पैदा होते समय उसकी माँ मर जाये उसे 'कैंजा' कहते हैं। इसी प्रकार 'करिएछिमा' एक विदेशी चित्रकार 'पादड़ी साहब' की पीड़ा हैं। वह कुष्ठ रोग से पीड़ित हैं उसके शरीर की अँगुलियों, पलकें सब झड़कर वह ठूँठ हो जाता हैं और अन्त में मृत्यु को प्राप्त हो जाता हैं।

इसी प्रकार इस समस्या की विशिष्ट लेखिकाएँ भी अपना कार्य कर रही हैं– उपन्यास लेखिकाओं में अलका सरावगी, मृदुला सिन्हा, गौरापंत शिवानी, चित्रामुद्‌गल आदि ने अपने उपन्यासों में निःशक्त पात्रों का चित्रण किया है। कहानियों की मुख्य लेखिकाएँ–ममता कालिया, मालती जोशी, गौरा पंत शिवानी, श्रीमति रेखा पालेश्वर, श्रीमति अंजना सिंह ठाकुर आदि दिव्यांग वर्ग की प्रसिद्ध लेखिका हैं। लघुकथाओं में भी कुछ महिला लेखक रही हैं। महादेवी वर्मा के दोनों संस्मरण निःशक्त पर केन्द्रित हैं। आत्मकथा में भी महिला लेखक 'हेलन केलर' हैं। इस प्रकार देखते हैं कि महिलाऐं किसी भी क्षेत्र में पुरुष वर्ग से पीछे नहीं हैं।

चतुर्थ अध्याय – हिन्दी लघुकथाओं में निःशक्त केन्द्रित अनुशीलन

लघुकथा अत्यन्त जनप्रिया विधा रही हैं। यह किसी छोटी घटना या जीवन के छोटे भाग को लेकर पाठक को उसके रहस्य से अवगत करवा देती हैं। यह पाठक के मन में बेझिझक पहुँचकर अपने भावों में डुबों लेती हैं इसी लोकप्रियता के कारण सभी युगों में समान गति से चली आ रही हैं।

लघुकथा शब्द दो शब्दों से मिलकर बना हैं। 'लघु+कथा' अर्थात् वह छोटी, सूक्ष्म, संक्षिप्त, अल्प तथा 'कथा' से अभिप्राय कहानी हैं। इसका सटीक अर्थ वह छोटी कहानी जो थोड़े शब्दों में पूरे अर्थ को स्पष्ट कर दें। सभी विद्याओं की दौड़ में बीसवीं शताब्दी के छठवें और सातवें दशक में हिन्दी लघुकथाओं का अनुशीलन प्रारम्भ हुआ। प्रस्तुत अध्याय में समकालीन साहित्य में लघुकथाओं के अन्दर निःशक्तजन की पीड़ा का चित्रण किया गया हैं।

समकालीन लघुकथा मूल रूप से तो हर समस्या को अपने छोटे से आकार में समाकर समाज तक पहुँचा देती हैं। साहित्य में समाज की हर समस्या पर नजर रखी जाती हैं। यही नजर आज हमारे साहित्य की दिव्यांग वर्ग पर हैं। जो सदियों से परिवार व समाज के द्वारा उपेक्षित होता आया हैं। समकालीन लघुकथाओं में चित्रित दिव्यांग पात्र निम्न हैं– 'रत्नकुमार सांभरिया' ने अपनी पुस्तक 'प्रतिनिधि लघुकथाशतक' में दिव्यांग जन पर कई लघुकथाओं को चित्रित किया हैं– 'पात्रता' जिसमें भीख माँगने वाले चार भिखारियों की निःशक्तता एक दूसरे से अधिक हैं। 'आटे की पुड़िया' में निःशक्त मजदूर की दयनीय स्थिति को चित्रित किया है, 'हक' में पैरों से निःशक्त पात्र ट्रेन में झाडू निकालकर अपने हक के पैसे माँगता है। 'जिजीविषा' में एक अंधे पात्र की इच्छा शक्ति को व्यक्त किया है आँखों से अंधा होने पर भी मूँगफली सही तौलता है और पैसों का हिसाब भी सही करता हैं। 'बांझ' में औरत के माँ न बनने पर पति के द्वारा प्रताड़ित की जाती हैं। इसी प्रकार 'डॉ. रामकुमार घोटड़' का लघुकथा संग्रह 'भारतीय हिन्दी लघुकथाएँ' में 'वसीयत' लघुकथा में जन्म से अंधी लड़की के ठीक न होने पर माँ उसको अपनी आँखें वसीयत लिखकर आत्महत्या कर लेती हैं। 'पहचान' में एक बुजुर्ग मानसिक रूप से निःशक्त होने के कारण उसके बहू बेटे घर से निकाल देते हैं और मृत्यु होने पर उसे अपनाने से मना कर देते हैं।

'शैलेशदत्त मिश्र' की लघुकथा 'आरक्षण' में निःशक्तजनों को दिए जाने वाले आरक्षण में भ्रष्टाचार की पोल खोली गई हैं। 'राजेन्द्र त्रिवेदी' की लघुकथा 'बंधु' में दो पात्र निःशक्त हैं एक भीख मांगता हैं दूसरा मेहनत करके खाता हैं, दूसरा पहले के लिए प्रेरणा बन जाता हैं। 'मधुकांत' की लघुकथा 'हौंसला' में एक हाथ गंवाने वाली कमला कबड्डी में जीत हासिल करती हैं। 'समर्थ'

लघुकथा में अपंग होकर भी उदय सामान्य श्रेणी में नियुक्त होता हैं। 'प्रमोद शर्मा' की लघुकथा 'मन के जीते जीत' में गोकुल दुर्घटना में एक पैर गवांकर भी एक बच्चे को डूबने से बचा लेता हैं। 'शाल्मली दुबे' की 'झिलमिल' लघुकथा की निःशक्त पात्र झिलमिल पैरों से अपंग होने पर भी इतना अच्छा गाती हैं कि वह प्रथम पुरस्कार प्राप्त करती हैं। 'सीमा मल्होत्रा', 'ऐसा भी होता है कथाकार' की निःशक्त आरती अपनी दोस्त के तानों को उसी लहजे में कहकर उसका मुँह बन्द कर देती है। 'बाल–भारती' (भाग–1) लघुकथा में 'अंधा और लंगड़ा' दो पात्र हैं। दोनों मिलकर अपनी समस्या का समाधान कर लेते हैं। 'गिरीराजशरण अग्रवाल' 'परकटा परिंदा' का पात्र 'विभु' पैरों से निःशक्त हो जाता हैं। वह भी और बच्चों की तरह उड़ना चाहता है। ये मुख्य लघुकथाएँ हैं जिनमें निःशक्त पात्रों का चित्रण हुआ हैं।

समकालीन लघुकथाओं में वर्णित समस्याएँ–राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक, पारिवारिक आदि। एक निःशक्त व्यक्ति के जीवन में ये सबसे बड़ी समस्याऐं खड़ी हो जाती है। कुछ लघुकथाओं में वर्णित हैं– **सामाजिक समस्याएँ**–समाज में सभी जगह दिव्यांग पात्र को उपेक्षित भाव से देखा जाता हैं। 'शाल्मली दुबे' की लघुकथा 'झिलमिल', गूंगी और गंगाराम 'दैनिक भास्कर' में प्रकाशित, विश्वम्भर प्रसाद की 'पुरुषतंत्र'।

राजनैतिक समस्याएँ – 'शैलेशदत्त मिश्र', 'आरक्षण' 'डॉ. अमरनाथ अब्ज' 'स्वाभाविक'।

आर्थिक समस्याएँ – रत्नकुमार सांभरिया की 'जिजीविषा' संजीव तिवारी 'अंधा'–सांभरिया की 'आटे की पुड़िया'।

पारिवारिक समस्याएँ – 'अरुण यादव' की 'परफेक्निशष्ट', रामकुवार घोटड़, 'भारतीय हिन्दी लघुकथाएँ संग्रह' में 'पहचान', 'वसीयत' भी इन्हीं की लघुकथा हैं।

इस प्रकार लघुकथाओं में वर्णित दिव्यांग जन के प्रति पैदा होने वाली समस्याऐं दर्शायी गई।

पाँचवा अध्याय – निःशक्त केन्द्रित अनुशीलन और साहित्यिक संवेदना

दिव्यांग जन के प्रति सहानुभूति और समानुभूति समकालीन साहित्य में अच्छे से उभरकर सामने आयी हैं। समकालीन साहित्य की हर विद्या में इनके प्रति लेखक का व्यवहार संवेदनशील रहा हैं। साहित्य की हर विद्या में हमने पढ़ा और देखा है कि इनकी भूमिका सशक्त से कम नहीं हैं। ये दिव्यांग जन पारिवारिक, राजनैतिक, आर्थिक सभी क्षेत्रों में संघर्ष करते हुये आगे बढ़ रहे हैं। प्रस्तुत अध्याय में सभी क्षेत्रों में दिव्यांग जन की संवेदना का चित्रण किया गया है।

समकालीन उपन्यासों में संवेदनशील पात्रों का चित्रण किया गया हैं। सभी इंसान बराबर नहीं होते कोई अपनी निःशक्तता से थककर दुःखी होता हैं कोई उससे लड़कर जीत हासिल करता हैं। इसी प्रकार निम्न उपन्यासों में उनके संवेदनशील पात्र–रंगभूमि–सूरदास, रागदरबारी–लंगड़, अनामदास का पोथा–रैक्वऋषि, खंजन नयन– सूरदास, ज्यों मेंहदी को रंग–शालिनी, आवां–देवीशंकर पाण्डेय, कोई बात नहीं–शशांक, करिएछिमा–पादड़ी साहब आदि उपन्यास एवं पात्र हैं। इसी प्रकार समकालीन कहानियों से संवेदनशील पात्र व कहानी नेत्रहीन–खेतिया, खितीन बाबू–खितीनदा, अभिशप्त–धनकू, गुलकी बन्नों–गुलकी, ममता कालिया सीट नम्बर छह संग्रह–मिताली, शहनाज, मेरी प्रिय कहानियाँ–पुष्पहार–सूबेदार, अपराजिता–सौत–नीरा, मेरा भाई–सुब्ब्या, दण्ड–बदलू, अपराजिता–चन्द्रा, पोलियों–मणिका, निर्मोही (मुन्नी)–मुन्नी, कंठहार–सुषमा, अंधा सूरज–सूरज, अंधेरें के खिलाफ–अजय, विमल–विमल, विकलांग बेटा–बेटी का खोना–रघुवीर व अंजुला, एक थी शकुन–शकुन, बुलन्दियों के शिखर पर बिमला–बिमला, बिखरें ख्वाब–अक्षय का बेटा आदि समकालीन कहानियों में संवेदनशील पात्र हैं।

उपलब्ध अन्य विद्याओं में भी दिव्यांग पात्र हैं– लघुकथाओं के पात्र व लघुकथा–बांझ–वन्नू, बैसाखियों–निकेतन, झिलमिल, ऐसा भी होता हैं– आरती, गूंगी और गंगाराम–गूंगी, रविप्रकाश एक प्रखर व्यक्तित्व–रविप्रकाश, परकटा परिन्दा–विभु आदि संवेदनशील पात्र हैं। आत्मकथा की संवेदनशील पात्र हेलन केलर, की– हेलन केलर सुधाचन्द्रन–सुधाचन्द्रन इसी प्रकार संस्मरण गुंगिया–गूंगी, अंधा आलोपी–अंधा आलोपी, मुहावरों में अभिव्यक्ति संवेदनाऐं जैसे अंधी पीसे कुत्ता खाय–में लाचार आदमी का फायदा एक सशक्त उठाता हैं, उसे अंधी पीसे कुत्ता खाय मुहावरा में व्यक्त करते हैं। उसी प्रकार 'अंधों में काना राजा' से तात्पर्य हैं– जहाँ सभी अनपढ़ हो और उनमें एक थोड़ा बहुत पढ़ना–लिखना जानता हो। 'अंधों का हाथी' का तात्पर्य जिसने जिस चीज को जैसा महसूस किया उसकी वैसी ही प्रतिमा दिमाक में बना ली आदि मुहावरें हैं।

कुछ लोकोक्तियाँ भी हैं जैसे–अंधे–लंगड़े की सी दोस्ती–इसमें एक जैसी स्थिति वाले दोस्त बनकर अपने काम को आसान बना लेते हैं। जिस प्रकार अंधा और लंगड़ा मिलकर अपने सभी कार्यों को आसान कर लेते हैं।

निःशक्तजन के लिए बहुत सी ऐसी बातें हैं जिनके द्वारा समाज उन्हें आगे बढ़ने से रोक देता हैं। सशक्त समाज उन्हें कई अधिकारों से वंचित रखता हैं। आज दिव्यांग जन को लेकर समाज की सोच को बदलकर उन्हें बराबर हक दिलाना हैं। तभी इस समस्या से छुटकारा पाया जा सकता हैं।

≈≈≈≈

संदर्भ ग्रन्थ सूची

संदर्भ ग्रंथ सूची

आधार ग्रंथ/उपन्यास

क्र.सं.	लेखक का नाम	ग्रंथ का नाम	प्रकाशन	वर्ष
1.	चित्रा मुद्‌गल	आवां	सामयिक प्रकाशन	2000
2.	राजेन्द्र मोहन भटनागर	अमृतघट	प्रभात प्रकाशन	
3.	शिवानी	पूतोंवाली	राधाकृष्ण पेपर बैक्स	2006
4.	शिवानी	करिएछिमा	राधाकृष्ण पेपर बैक्स	2007
5.	प्रदीप सौरभ	तीसरी ताली	वाणी प्रकाशन	2011
6.	अलवा सरावगी	कोई बात नहीं	राजकमल प्रकाशन	2004
7.	सुधीर निगम	मैं धृतराष्ट्र	आर्य प्रकाशन	2009
8.	प्रदीप सौरभ	मुन्नी मोबाइल	वाणी प्रकाशन	2011
9.	निर्मला भुराडिया	गुलाममण्डी	"	2014
10.	महेन्द्र भीष्म	किन्नर गाथा	"	2014

कहानी संग्रह

11.	शिवानी	अपराजिता	राधाकृष्ण, दिल्ली	2007
12.	कुलदीप बग्गा	पोलियों		
13.	प्रदोष मिश्र	आँखें		
14.	ममता कालिया	राजू		
15.	शशि प्रभा श्रीवास्तव	साये का सुख		
16.	जया जादवानी	साक्षी		
17.	मैत्रेयी पुष्पा	सहचर		

18.	परशुराम	सूपर्णखा की प्रेमकथा		
19.	यशपाल	उतरा नशा		
20.	श्रीमती रेखा पालेश्वर	खुली आँखों का दुःख		
21.	रवि श्रीवास्तव	नई पीढ़ी		
22.	सुनील कौशिक	अंधेरे का सैलाब		
23.	निश्तर खानकाही	आधा हाथ पूरा जीवन		
24.	शिवानी	कहानी संग्रह (मेरी प्रिय कहानियाँ)	राजपाल प्रकाशन, दिल्ली	2013
25.	गिरिराजशरण अग्रवाल	परकटा परिंदा		
26.	सूर्य बाला	फरिश्ते		
27.	मालती जोशी	स्वयंवर		
28.	नगेन्द्र नागदेव	समापन		
29.	छत्रपाल	रोशनी से दूर		
30.	पानू खोलिया	अन्ना		
31.	ममता कालिया	निर्मोही कहानी संग्रह (मुन्नी)	वाणी प्रकाशन	2004

लघुकथा संग्रह

32.	संजीव तिवारी	थप्पड़		
33.	शकुन्तला शर्मा	करगा	वैभव प्रकाशन (छ. गढ़)	
34.	राजकुमार निजात	उमंग, उड़ान		2012
35.	शाल्मली दुबे	झिलमिल		
36.	रवि श्रीवास्तव	ट्रायसिकल		
37.	पुष्पलता कश्यप	अंधे का स्वाभिमान		

38.	प्रधुम्न भल्ला	अपाहिज
39.	शैलेश दत्त मिश्र	आरक्षण
40.	डॉ. विनय कुमार पाठक	अपाहिज का छल
41.	रत्नकुमार सांभरिया	प्रतिनिधि लघुकथा शतक
42.	रामकुवार घोटड़	भारतीय हिन्दी लघुकथाएँ

सहायक ग्रंथ/उपन्यास

43.	प्रेमचन्द	रंगभूमि	मनोज पॉकेट दिल्ली	1925
44.	मृदुला सिन्हा	ज्यों मेंहदी को रंग	प्रभात प्रकाशन	1981
45.	श्रीलाल शुक्ल	रागदरबारी	राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली	1968
46.	हजारी प्रसाद द्विवेदी	अनामदास का पोथा	राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली	1976
47.	अमृत लाल नागर	खंजन नयन	राजपाल प्रकाशन, दिल्ली	1980

कहानी संग्रह

48.	रांगेय राघव	गूंगे		
49.	फणीश्वरनाथ रेणु	कर्मनाशा की हार		
50.	धर्मवीर भारती	गुलकी बन्नो		
51.	अज्ञेय	खितीन बाबू		
52.	विष्णु प्रभाकर	नेत्रहीन		
53.	यशपाल	अभिशप्त	लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद	1944
54.	ममता कालिया	छुटकारा	लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद	1969
55.	ममता कालिया	सीट नम्बर छह	लोक भारती पेपर बैक्स	1978

56.	ज्ञान प्रकाश विवेक	अंधा सूरज		
57.	शैलेष मटियानी	पहल	रायपुर	2001
58.	माधुरी मिश्र	मिलन		
59.	इन्द्र बहादुर सिंह	समय का छन्द		
60.	निर्मल वर्मा	परिन्दे	भारतीय ज्ञानपीठ	1960

अन्य ग्रंथ

61.	डॉ. विनय कुमार पाठक	विकलांग विमर्श की कहानियाँ	नीरज बुक सेन्टर, दिल्ली	2010
62.	डॉ. विनय कुमार पाठक	कथा साहित्य में विकलांग विमर्श	अखिल भारतीय चेतना परिषद्, बिलासपुर	
63.	डॉ. विनय कुमार पाठक	विकलांग विमर्श	"	
64.	डॉ. विनय कुमार पाठक	लोकोक्तियों में विकलांगविमर्श	"	
65.	डॉ. सुरेश माहेश्वरी	विकलांग विमर्श का वैश्विक परिदृश्य	भावना प्रकाशन, दिल्ली	2014
66.	डॉ. इन्द्र बहादुर सिंह	डॉ. विनय कुमार पाठक की विमर्श–भूमि	मित्तल एण्ड सन्स, दिल्ली	2014

शब्द–कोश

1. हिन्दी शब्द सागर – आचार्य रामचन्द्र शुक्ल
2. हिन्दी साहित्य कोश भाग 1.2 – धीरेन्द्र वर्मा
3. हिन्दी–उर्दू कोश – आचार्य रामचन्द्र वर्मा, बदरी नाथ कपूर
4. लोक भारती वृहद् प्रामाणिक हिन्दी कोश – बदरी नाथ कपूर, आचार्य रामचन्द्र वर्मा
5. सहज समान्तर कोश – अरविन्द कुमार, कुसुम कुमार
6. हिन्दी शब्द कोश – हरदेव बाहरी
7. आदर्श हिन्दी शब्द कोश – रामचन्द्र पाठक
8. नालन्दा अध्येतन कोश – पुरुषोत्तम नारायण अग्रवाल

पत्र–पत्रिकायें

1.	पुस्तक–वार्ता	–	वर्धा
2.	साहित्य अमृत	–	नई दिल्ली
3.	वागर्थ	–	कोलकाता
4.	साक्षात्कार	–	साहित्य अकादमी, भोपाल
5.	तद्भव	–	लखनऊ
6.	वाक्	–	नई दिल्ली
7.	आलोचना	–	नई दिल्ली, पटना
8.	पाखी	–	नोएडा
9.	अक्सर	–	जयपुर
10.	हंस	–	नई दिल्ली
11.	बिपासा	–	भाषा एवं संस्कृति वि. शिमला
12.	समकालीन साहित्य	–	साहित्य अकादमी, नई दिल्ली
13.	मधूमती	–	राज. साहित्य अकादमी, उदयपुर
14.	भाषा परिचय	–	भाषा एवं पुस्त. वि., जयपुर
15.	मैसूर हिन्दी प्रचार परिषद	–	बेंगलूर
16.	वैचारिकी	–	कोलकाता
17.	नया ज्ञानोदय	–	भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली

≈≈≈≈

INTERNATIONAL RESEARCH JOURNAL OF MANAGEMENT SOCIOLOGY & HUMANITIES

ISSN 2277 – 9809 (online)
ISSN 2348 - 9359 (Print)

A REFEREED JOURNAL OF

Explore Innovate Educate

Shri Param Hans Education & Research Foundation Trust

www.IRJMSH.com
www.SPHERT.org

Published by iSaRa

समकालीन कहानियों में चित्रित निःशक्त नारी चेतना

शोध आलेख

शोधार्थी
कविता यादव
कोटा विश्वविद्यालय, कोटा (राज.)

कथा शब्द 'कथ्य' से बना है जिसका अर्थ हैं 'कहना' यह वह कहानी हैं जिसे बुजुर्ग लोग अपनी आने वाली पीढ़ी को सुनाते हैं। हर कहानी अतीत को व्यक्त करती हैं भविष्य को कुछ देना चाहती हैं।प्राचीनकाल में कहानी मौखिक रूप से कही जाती थी परन्तु धीरे–धीरे उसने लिपी का रूप ले लिया। हिन्दी कथा साहित्य ने अपनी जीवन यात्रा में धरातल के विविध यथार्थ को तय किया हैं। वैदिक साहित्य से लेकर समकालीन साहित्य में भी कथा–कहानियों का प्रसार हम देख रहे हैं। समकालीन हिन्दी कहानियों के लिए वर्तमान युग महत्त्वपूर्ण रहा हैं। उस युग में घटित होने वाली घटनाओं एवं जन्म लेने वाली परिस्थितियों ने प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से कहानीकार को उद्वेलित किया हैं।

समकालीन कहानीकारों ने वर्तमान समाज व वातावरण को अन्दर तक झांक कर महसूस किया हैं कि कहानी में समाज के उन पात्रों पर ध्यान दिया जाना चाहिए जिनकी तरफ जनता का ध्यान नहीं हैं। जो वर्ग लगातार शोषण व उपेक्षा का शिकार हो रहा हैं, उन्हीं को मुख्य पात्र बनाकर समाज का दृष्टिकोण बदलने की चेष्टा साहित्यकार कर रहा हैं। इसी उपेक्षित वर्ग में दिव्यांगजन भी शामिल हैं जिनको समाजहीन दृष्टि से देखता है हमारे समाज में निःशक्तजन के बारे में कुछ इस प्रकार की मान्यताएँ रही हैं कि यह निःशक्तता पूर्व जन्म के पापों का फल हैं। शास्त्रों में इस बात का अनेक जगह वर्णन हुआ हैं कि दोष युक्त व्यक्ति को लोग कोढ़ी हो जाने का शाप देते हैं। वह स्वयं भी अपने–आपको पूर्व जन्म का दोषी मानकर इस कष्ट को भोगता हैं। वह इस कष्ट को कम करने की कोशिश नहीं करता। सोचता हैं यदि इस जन्म में इस कष्ट को भोग लूंगा तो अगला जन्म सामान्य होगा। समाज में दिव्यांगजन का उपहास उड़ाया जाता हैं। जिससे ये अन्दर ही अन्दर टूटने लगते हैं। फिर इन निःशक्तों में भी नारी जाति की यह समस्या किसी भूकम्प से कम नहीं हैं। यह समस्या जब एक औरत की जिन्दगी में आती हैं तो भूकम्प की तरह उसकी जिन्दगी को हिलाकर रख देती हैं। समकालीन कहानियों में नारी की निःशक्त चेतना को देखते हुए किसी भी प्रकार का रोग मनुष्य के व्यवहार व आचरण को अवश्य प्रभावित करता हैं। फिर शरीर के किसी अवयव के निःशक्त होने से व्यक्ति शारीरिक और मानसिक दोनों दृष्टियों से प्रभावित होता है। निःशक्तता के कारण मनुष्य में हीन भावना आ जाती हैं। इस प्रकार देखते हैं कि यह दिव्यांगता मनुष्य को जन्म से या फिर जन्म के बाद जैसे–प्राकृतिक आपदा, लम्बी बीमारी, पोलियो, दुर्घटना आदि किसी भी कारण हो सकती हैं। थोड़ी सी चूक व लापरवाही भी मनुष्य को जिन्दगी भर के लिए अपंग बना देती हैं।

समकालीन कहानीकारों ने अपनी कहानियों में नारियों में चित्रित निःशक्त चेतना का चित्रण किया हैं–उनमें प्रमुख कहानीकार व उनकी कहानियाँ निम्न हैं– 'गौरापंत शिवानी' की प्रसिद्ध कहानी 'अपराजिता' की मुख्य पात्र चन्द्रा हैं। जिसके शरीर का कमर से नीचे का भाग निष्प्राण हैं, वह चलने फिरने में लाचार हैं। वह व्हील चेयर पर ही रहती हैं उसकी माँ उसे निःशक्तता से हार नहीं मानने देती उसका हौंसला बनाये रखती हैं। चन्द्रा का सपना था कि वह मेडिकल की पढ़ाई करके डॉक्टर बने परन्तु अपनी निःशक्तता के कारण वह नहीं कर पाती। परन्तु उसकी माँ के सहयोग से वह 'फिजिक्स' में पीएच.डी. की उपाधि ग्रहण करती हैं। शिवानी ने अपराजिता की नायिका चन्द्रा के माध्यम से समाज को संदेश देना चाहा हैं यदि दिव्यांगजन अपनी प्रगति के पथ पर बढ़ने की ठान ले तो वह बड़ी से बड़ी कामयाबी हासिल कर सकता इस विषय में लेखिका ने–

"तन विकलांग है तो क्या मन को फौलाद बनाना है।
दृढ़ आत्मवि वास से स्वयं को आगे बढ़ाना है।

तन की कमियों से घबरा मायूस न होना कभी बृजेश
मायूसी का काम अवसाद उपजाना है।"[1]

इस प्रकार कहानी की पात्र निःशक्त होने पर भी हार नही मानती तथा अपने अद्भूत धैर्य व दृढ़ इच्छाशक्ति व लगातार परिश्रम के बल से अपनी दिव्यांगता पर विजय पा लेती हैं। यह प्रेरणादायक कहानी हैं।

शिवानी जी का कहानी संग्रह 'मेरी प्रिय कहानियाँ' में 'सौत' कहानी की मुख्य पात्र 'नीरा' अपने पति के द्वारा धोखा खाकर मानसिक संतुलन खो देती हैं। उसका पति पड़ोस में रहने वाली राज्यम के साथ अवैध संबंध रखता है और मौका पाकर घर से फरार हो जाते हैं। इतना बड़ा धोखा 'नीरा' सहन नहीं कर पाती और मानसिक संतुलन खोकर अपने आपको पागल बना लेती हैं।

इसी प्रकार ममता कालिया का कहानी संग्रह 'सीट नम्बर छह' की कहानी 'आजादी' में एक बुजुर्ग महिला हैं जो एक पैर से अपाहिज हं दूसरे में हमेशा दर्द रहता हैं। उसका परिवार उसकी तरफ ध्यान नहीं देता है। वह अपने दर्द के कारण हमेशा परेशान रहती हैं। जब वह डॉक्टर को दिखाने की कहती हैं तो उसका पति कहता है 'तुम्हें कौन ब्याह रचाना हैं अच्छे डॉक्टर की फीस भी अच्छी होगी'। परिवार में उसकी पोती ही उससे बतियाती रहती हैं। एक दिन स्वतंत्रता दिवस पर 'मुन्नी' सफेद कपड़े पहनकर जाती हैं तो उसकी दादी पूछती हैं आज कौनसा दिन हैं। 'मुन्नी' कहती है आज आजादी का दिन हैं। दादी मुन्नी को कहती है उसके लिए थोड़ी सी आजादी पुड़ियाँ में बांधकर लाना। जब स्कूल में राष्ट्रगान के बाद स्कूल में पताशे बाँटे जाते हैं तो मुन्नी उन्हें अपनी दादी के लिए बांधकर लाती हैं। परन्तु वह घर आकर दादी को जगाती हैं परन्तु दादी हमेशा के लिए सो चुकी थी, उसे आजादी मिल चुकी थी।

ममता कालिया की 'छुटकारा' कहानी संग्रह के अन्तर्गत 'बीमारी' कहानी की नायिका को सांस लेने में तकलीफ होती हैं। उसकी किड़नी में इंफेक्शन के कारण उसे अस्पताल में जाना पड़ता हैं। वह शहर में अकेली रहती हैं। इसलिए अपने भाभी–भाई को अपने पास बुलाती हैं। भाई–भाभी का व्यवहार देखकर वह अपने–आपसे कहती हैं, "मुझे स्वयं पर गुस्सा आ रहा था। भावुकता के क्षण में मैंने भाई को चिट्ठी लिखी थी कि मैं कितनी बीमार और कितनी अकेली हूँ।"[2]भाभी उसकी बीमारी को भी शक की निगाह से देखती हैं। अब वह अस्पताल में रहकर ही अपना इलाज करवाने को मजबूर हो जाती है।

इनका कहानी संग्रह 'काके दी हट्टी' के अन्तर्गत 'इलाज' कहानी की नायिका अभिधा आँखों के कारण निःशक्त हैं। उसकी आँखों से हमेशा पानी बहता रहता हैं। जब वह इलाज के लिए डॉक्टर के पास जाती हैं तो डॉक्टर उसकी आँखों में सुई चुभों देता हैं जिससे वह अस्पताल से बिना इलाज कराये ही डरकर भाग जाती हैं।

इसी क्रम में 'माधुरी मिश्र' की कहानी 'मिलन' की नायिका 'कृष्णाचाची' मानसिक रूप से निःशक्त हैं। इस कहानी की मुख्य नायिका मीना हैं जिसकी शादी बचपन में ही कृष्ण चाचा के साथ हो जाती हैं। कृष्ण चाचा की माँ उन्हें बच्चे कहकर आपस में मिलने नहीं देती। कृष्ण चाचा पत्नी से मिलने की जिद्द करते रहते हैं परन्तु असफलता हाथ लगती है तो अन्त में वह आत्महत्या कर लेता हैं। पति का मतलब भी न जानने वाली मीना को पति के अन्तिम दर्शन के लिए लाया जाता हैं। उसे सफेद साड़ी पहना दी जाती हैं और खुशी के मौके पर शामिल न होने पर पूरी तरह प्रतिबंध लगा दिया जाता हैं। जैसे–जैसे वह पति का मतलब समझने लगती हैं तो अकेलेपन में जोर–जोर से रोती हैं वह अपने दिमाक का संतुलन खोकर पागल हो जाती हैं। घर वाले उसे पागल कहते हैं और लोहे की जंजीरों से बांध देते हैं। एक दिन वह छिपकर श्मशान में जाकर अपने पति की हड्डियाँ बीनकर ले आती है और उनसे बतियाती रहती हैं। वह वसुधा से कहती हैं, "मैं जो ये हड्डियाँ लाई हूँ इन्हीं में तुम्हारे चाचा हैं उन्होंने कहा हैं कि मैं इन्हीं में हूँ और तुम्हें पता हैं हमारे बच्चे भी हैं लेकिन उन्होंने कहा जब हमारा मिलन होगा तब हमारे बच्चे होंगे जिस दिन तुम आओगी मैं घर सजाऊँगा, पलंग सजाऊँगा और अपने हाथों से उठाकर घर में लाऊँगा...........।"[3] वह वसुधा से कहती हैं जब मेरी मृत्यु होगी तब मुझे वही जलाना जहाँ तेरे चाचा को जलाया गया

था। इस प्रकार कृष्णा चाची अपनी मानसिक निःशक्तता के संघर्ष से जूझती रहती हैं। उसकी सास व परिवार वालों की वजह से आज कृष्णा चाची पागलपन की जिन्दगी काट रही हैं।

इसी प्रकार 'मैत्रेयी पुष्पा' की कहानी 'सहचर' में बंशी नामक नायक की पत्नी को अचानक ग्रैंग्रीन के कारण पैर कटवाना पड़ता हैं। अब निःशक्त हो गई। परन्तु उसका पति बंशी उसे हार नहीं मानने देता। वह उसे यह महसूस नहीं होने देता कि वह निःशक्त हैं। वह अपनी पत्नी की सेवा दिल से करता हैं। जब उसे कोई दूसरी शादी की सलाह देता हैं तो वह उनसे झगड़ा कर देता हैं। इस कहानी में पति–पत्नी का अगाढ़ प्रेम देखा गया हैं। वह मानता हैं प्यार के बीच में दिव्यांगता बाधा नहीं बनती। रिश्ते दिल से जुड़ते हैं, स्वार्थ के लिए नहीं। इस कहानी में दिखाया हैं कि जब अपने ही दिव्यांग को कमजोर महसूस नहीं होने देंगे तो फिर बाहर वालों की तो हिम्मत ही नहीं कि किसी को उपेक्षित मानें।

'तुलसी देवी तिवारी' की कहानी 'शाम के पहले की स्याही' में अमिता और मिसरी पति–पत्नी हैं। उनको दो बेटी हैं। उसकी पत्नी करन्ट लग जाने से निःशक्त हो जाती हैं। दोनों बेटियों की शादी हो जाती हैं। अब मिसरी को समस्या हो जाती हैं कि पत्नी को संभाले या कमाकर लाये। इसलिए वह दूसरी शादी कर लेता हैं। दूसरी पत्नी को जब वह डॉक्टर के पास ले जाता है तो पता चलता है कि वह कभी माँ नहीं बन सकती। यह सुनकर वह मानसिक संतुलन खो देती हैं। अब मिसरी की जिन्दगी में दो पत्नी हैं और दोनों निःशक्त हैं। मिसरी ने सोचा था दूसरी शादी से उसे कुछ आराम मिलेगा परन्तु अब वह दोनों की सेवा करेगा।

'डॉ. विनोद कुमार वर्मा' की कहानी 'मछुआरे की लड़की' की पात्र सरस्वती का दायाँ पैर मगर के निगलने से वह दिव्यांग हैं। यही लड़की नर्मदा की भीषण बाढ़ में फंसे सौ लोगों की जान अपने पिता के साथ रात के अंधेरे में बचाती हैं। इस वीरता के लिए उसे गणतंत्रता दिवस पर पुरस्कार भी दिया जाता हैं। परन्तु मनुष्य की प्रकृति के अनुसार उसे सब भूल जाते हैं। क्योंकि समाज किसी के उपकार को ज्यादा दिन याद नहीं रख सकता। "प्रियंवदा सरस्वती? अनपढ़, निपट, गंवार और पगली.....और वह देश परदेश में मिले मान–सम्मान और समालोचकों की उपमाओं से बेखबर नर्मदा के थपेड़ों, बाबूजी की झिड़कियों और रोजमर्रा की समस्याओं से जूझती, विस्मृति के कुहासे में खो गई।"[4] अर्थात् आज उसे खाने के लाले पड़े हुये हैं परन्तु कोई आकर भी नहीं पूछता।

भीष्म साहनी की 'कंठहार' कहानीकी पात्र सुषमा अपने ही परिवार के द्वारा उपेक्षित हैं। उसकी माँ भी उस पर बिल्कुल ध्यान नहीं देती। जब उनके घर में कोई अतिथि आता हैं तो उसे जंजीरों से बांधकर कमरे में बंद कर दिया जाता हैं। एक बार उसकी माँ मालती और पिता रमेश पार्टी में जाने वाले हैं तो वह भी जाना चाहती हैं परन्तु उसे कमरे में बंद कर दिया जाता है वह चिल्लाती रहती हैं। जब नौकरानी उसे दूध का गिलास देने जाती हैं तो वह गिलास को फर्श पर पटक देती हैं। उसके लिए उसे डांट खानी पड़ती हैं। सभी पार्टी का आनन्द लेते हैं और वह चिल्लाती रहती हैं। उसे डॉक्टर को दिखाया तो डॉक्टर ने उसकी बीमारी को असाध्य बताया तब उसकी माँ को लगा कि वह उसे पटककर मार दें। अब सुषमा पन्द्रह साल की हो गई उसकी टांगे सूख गई। वह पलंग पर पड़ी रहती हैं। उसकी माँ पार्टी में जाने के लिए जो कंठहार पहनती हैं उसे बार–बार आइने में देखती हैं और सोचती हैं जब लोग कहेंगे कि यह हार कितने का आया तो वह शान से कहेगी पाँच हजार का।माँ होकर भी मालती के अन्दर ममता नहीं हैं। बेटी की परवाह किये बिना झूठे दिखावे के लिए उत्तेजित हो रही हैं। असली शान तो उसकी बेटी है जो पलंग पर पड़ी हैं।

'डॉ. चन्द्रावती नागेश्वर' की कहानी 'बुलंदियों के शिखर पर बिमला' इस कहानी की निःशक्त पात्र बिमला हैं। उसके परिवार में 6–7 भाई–बहन होने के कारण परिवार की स्थिति ठीक नहीं हैं, उसके पिता के पास 8–10 भैंसे और 3–4 गायें थी। उसका पिता दूध बेचकर उनका गुजारा करता था। लेखिका उनके घर पर दूध लेने जाती थी। उन्होंने बिमला के पिता से बिमला को पढ़ाने के लिए कहा उसके पिता ने मना कर दिया। परन्तु बहुत समझाने पर वह मान गया। बिमला स्कूल जाने लगी और पाँचवी कक्षा में उसने द्वितीय स्थान प्राप्त किया। गाँव में आठवीं तक स्कूल होने के कारण उसकी पढ़ाई रुक गई। वह आगे पढ़ना चाहती थी इसलिए दसवीं तक की पढ़ाई प्राइवेट

की। गर्मी की छुट्टियों में उसने पार्लर का काम सीख लिया अब उसकी आमदनी के साधन भी हो गये। लेखिका बिलासपुर चली गई थी। वह लेखिका को अपनी खबर पत्र के माध्यम से देती रहती थी।

परिवार में उसके सभी भाई–बहनों की शादी हो गई। अब सिर्फ वह ही अपने माँ–बाप के पास रहती थी। एक दिन जंगल में उसके पिता पर एक भालू ने हमला कर दिया जिससे वह बच तो गया परन्तु अपाहिज होकर चारपाई पर बैठ गया। बिमला को अपाहिज कोटे से शिक्षाकर्मी की नौकरी मिल गई। तभी उसे 'उदयपुर नारायण सेवा संस्था' के बारे में पता चला। उसने अपने भाई के साथ जाकर वहाँ पर कृत्रिम पैर लगवाये और अब बैसाखियों के सहारे चलने लगी। उसका एक सपना था कि वह निःशक्त बच्चों के लिए एक स्कूल खोलें। अब वह अपनी आय का 45 प्रतिशत राशि संस्थान में देकर बाकि से अपना काम चलाती। दस वर्ष के बाद 'चैती बाई निःशक्त विधालय' खोला। जिसका उद्घाटन कलेक्टर साहब के हाथों करवाया। उसके इस सम्माननीय कार्य के लिए छत्तीसगढ़ के राज्यपाल द्वारा पुरस्कृत की जाती हैं। इस पुरस्कार का फोटों अखबार में देखकर लेखिका को लगा, एक छात्रा की जिन्दगी संवारने में जो आन्तरिक जुड़ाव था वह सार्थक हो गया।

यदि एक निःशक्त को अन्दर से प्रेरित कर दें तो वह अपने अन्दर छिपी शक्ति से एक मिसाल कायम कर सकता हैं।

इसी प्रकार 'श्रीमति अंजना सिंह ठाकुर' की कहानी 'एक थी शकुन' पैरों से निःशक्त लड़की की कहानी हैं। शकुन का पिता एक अमीर सेठ हैं। परन्तु अपनी बेटी के पैरों को ठीक न करवा सका। वह शकुन को लेकर डॉक्टरों के चक्कर लगाता हैं परन्तु कोई लाभ नहीं मिलता। इतना हुआ कि अब शकुन बैसाखियों के सहारे चल लेती हैं। परन्तु उसके अन्दर हीन भावना पैदा हो जाती है। बेटी की ऐसी स्थिति देख पिता व शकुन के भाई बहुत दुःखी होते हैं परन्तु कोई फायदा नहीं मिलता। अब उसके दोनों भाइयों की शादी हो जाती हैं अब सभी सोचते हैं कि शकुन के लिए समस्या पैदा होगी परन्तु हुआ कुछ उलटा। शकुन की भाभी 'सुभा' उसे प्रोत्साहित करके इस हीन भावना से उबारती हैं। एक दिन वह उसे बाहर ले जाती हैं। तब वह गोकुल को तीन पहिये वाली साइकिल पर देखती हैं और पलक झपकायें बिना देखती ही रह जाती हैं। अब सुभा उसके दिल की बात समझ जाती हैं और गोकुल को ढूँढकर शादी की बात करती हैं। गोकुल और शकुन को मिलवाने के बाद सुभा अपने परिवार को शकुन की शादी के लिए राजी करते हैं। समझाने पर सभी मान जाते हैं। आज गोकुल व शकुन की शादी है। आज उसका चेहरा पथराया हुआ नहीं, वह तो गुलाब की तरह खिला हुआ हैं–

"आओ दोस्तों कुछ अनोखा कर जाये,
जो न सोचा किसी ने वह हम कर दिखाये।
उगते सूरज को तो करता हर कोई सलाम हैं

पंक्ति के अन्त में...............
खड़ा है उसको भी जीना सीखाये, मुस्कराना सिखाये।"[5]

इसलिए सुभा की तरह हर किसी का यही कर्तव्य है कि वे निःशक्तजन का सहयोग करे।

ममता कालिया का कहानी संग्रह 'सीट नंबर छह' की कहानी 'उपलब्धि' की निःशक्त पात्र 'गूंगी–बहरी शहनाज' हैं। कहानी के मुख्य पात्र एक दम्पत्ती हैं (प्राची व चेतना)। उनका इकलौता बेटा बबलू हैं। मुसलमानों का कोई प्रसिद्ध त्योहार चल रहा हैं। जुलूस निकाला जा रहा हैं। सभी लोग काले कपड़े पहनकर रोज शाम से शुरु होकर, टोला, कोलहन, रानी मण्डी से जुलूस गुजरता हैं। ऐसा चार–पाँच साल से लगातार हो रहा था। चेतन परिवार इसका अभयस्त हो चुका था। सभी औरतों के साथ प्राची भी बारजे पर खड़ी थी। सभी नीचे जुलूस को देखने में व्यस्त थे। इसी दौरान प्राचीन रसोई में चली गई। वापिस आई तो देखा कि वहाँ भगदड़ मच गई। उसने दौड़कर बबलू को ढूँढा। उसको बबलू नहीं मिला। वह हर जगह बबलू–बबलू चिल्लाकर ढूँढती रही। तभी पड़ौस की गूंगी–बहरी शहनाज आकर प्राची के पल्लू पकड़ लेती हैं और उसे मोती मंजिल ले जाती हैं वहाँ पर मंझली बी

कोठी से निकलकर आई और कहती हैं इतनामत घबराओं बबलू को हम ले आये थे। अपने बेटे को पाकर दोनों पति–पत्नी खुशी से उछल पड़े और गूंगी–बहरी शहनाज का शुक्रिया अदा किया। सभी की उपेक्षा का पात्र बनने वाले भी हमारी जिंदगी में बहुत बड़ी खुशी ला सकते है। आवश्यकता सिर्फ उनके प्रति सहानुभूति रखने की हैं।

इनके इसी संग्रह की दूसरी कहानी 'फर्क नहीं'। इस कहानी में निःशक्त पात्र 'प्रमिला अरोड़ा' रिसर्च असिस्टेन्ट' है। वह कहानी की मुख्य नायिका के घर में किराये पर रहती है। नायिका के दादाजी महीने की दो तारीख आते ही चील की तरह उसके कमरे के चारों तरफ पैसों के लिए मंडराने लगते हैं। नायिका की नजर में यह लूट हैं। वह प्रमिला जी के साथ उठती–बैठती हैं जो उसकी माँ को पसन्द नहीं हैं क्योंकि उसके पैरों की अँगुलियों और पिण्डलियों पर सफेद दाग हैं। उसकी माँ "इसे छुतहा बीमारी मानती थी जबकि उसको अक्सर ख्याल भी न आता था कि उसका शरीर विकार ग्रस्त हैं।"[6] लेखिका कहती हैं कि मुझे समझ नहीं आता कि समाज मनुष्य के बाह्य विकार को देखकर घृणा क्यों करता हैं जबकि उसका मन सुन्दर हैं। अगली कहानी 'पानू खोलिया' की 'अन्ना' हैं। यह कहानी एक निःशक्त बच्ची की हैं। प्रो. बसन्त की पुत्री अन्ना को एक दिन अचानक 'फीट' का दौरा आया। वह सीढ़ियों से गिर गई। जिसके कारण उसका शरीर कमजोर व अपाहिज हो गया। उसके कुछ दिन बाद उसे फिर गहरा दौरा आया। उसकी भौं ज्यादा सिकुड़ गई, फिर गई दिनों चारपाई पर पड़ी रही। उसके माँ–बाप को बेटी की इस स्थिति ने काफी परेशान कर दिया। जब डॉक्टर ने अन्ना के पिता को कुछ समय अन्ना को अस्पताल में रुकने के लिए कहा तो पिता ने वो भी किया। एक दिन बेटी ने करुण स्वर में पूछा–पापा! अब सबकी तरह नहीं होंगे? हम मर जाऐगें? बेटी की ऐसी करुणा आवाज ने पिता के दिल को पिघला दिया। पिता के सब कुछ करने पर भी वह बेटी को नहीं बचा पाया।

ममता कालिया का कहानी संग्रह 'निर्मोही' के अन्तर्गत 'मुन्नी' कहानी की मुख्य पात्र मुन्नी न जाने कितनी जानलेवा बीमारियों की शिकार है। चेचक, काली खांसी, बुखार जैसी बीमारियों से घिरी हुई जीवन संघर्ष करती रहती हैं। रात–दिन खाँस–खाँसकर इतनी कमजोर हो गई कि अब वह चल भी नहीं पाती। उसके अपाहिज होने के पीछे उसकी दादी का अंधविश्वास हैं। दादी उसे पोलियों के टीके नहीं लगवाने देती। जब डॉक्टर पोलियों के टीके देने आता हैं तो वह उसे लेकर कोठरी में छिप जाती हैं। कहती हैं, "क्या फायदा दो घाव और कर जाएगा मरा पहले ही छोरी का खाँसियों से बुरा हाल हैं।"[7] दादी की लापरवाही के कारण मुन्नी पूरी तरह से पोलियो की शिकार हो गई हैं। अब वह एक पैर से भी घसीट–घसीटकर चलती हैं। इतना संघर्ष करने के बाद भी मुन्नी पढ़ाई में हमेशा प्रथम आती हैं।

नारी निःशक्तता की श्रेणी में 'कुलदीप बग्गा' की कहानी 'पोलियो' की मुख्य पात्र मणिका बहुत ही सुन्दर रंग रूप व शील स्वभाव वाली हैं परन्तु उसकी चाल को देखकर सभी का मुँह लटक जाता हैं। कहानीकार ने उसी के शब्दों में कहा हैं– "कुछ लोग मेरे साथ सहानुभूति बतलाते हैं अपने भीतर घिनौना दिल रखने का का प्रमाण देते हैं। मुझे ये घिनौना शब्द पिटी लगता हैं।"[8] मनीष नाम का लड़का मणिका से प्यार करता हैं। वह उससे शादी भी करना चाहता हैं। परन्तु जब वह मणिका से अपनी माँ को मिलवाने लाता हैं। तो उसकी माँ मणिका के रूप–रंग को देखकर खुश हो जाती हैं परन्तु जैसे ही मणिका उठकर चलती हैं तो उसकी माँ का चेहरा बदल जाता हैं। जबकि मनीष अपनी माँ को शादी के बाद ये बताने वाला था परन्तु अब वह भी वही करेगा जो उसकी माँ कहेगी। अब मनीष उसे छोड़कर चला जाता हैं। मणिका के घर वाले भी अब उसकी शादी के बारे में भूल जाते हैं। सोचते हैं कि निःशक्त को शादी की क्या जरुरत हैं। अब मणिका अन्दर ही अन्दर टूटने लगती हैं। क्योंकि अब उसे जीवन साथी की जरुरत हैं।

परिवार औरसमाज एक निःशक्त की इच्छा व जरुरतों को अनदेखा करते हैं। जबकि समय के अनुसार उनको भी हर चीज की आवश्यकता होती हैं। उनकी जरुरत को समझना परिवार व समाज का कर्त्तव्य हैं।

इस प्रकार उपर्युक्त कहानियों में नारी पात्रों की निःशक्तता का चित्रण हुआ हैं। क्योंकि एक स्त्री हमेशा अपने त्याग, बलिदान, ममता व दयालुता के कारण सर्वोपरि रही हैं। जो त्याग एक औरत कर सकती हैं वह त्याग

पुरुष कभी नहीं कर सकता। इसलिए नारीजब निःशक्त हो जाती हैं तो उसके लिए यह पीड़ा और भी दुःखदायी होती हैं। यदि पूरा समाज मिलकर उनके हित के बारे में सोचे तो वे समाज से अलग–थलग नहीं रहेगी। बल्कि देश की प्रगति व विकास में सहयोग करेगी। हम देखते हैं कि दिव्यांग वर्ग का समाज व परिवार में उपेक्षित होना उसमें हीन भावना पैदा करता हैं। हम सबका का उद्देश्य यह होना चाहिए कि हम सब मिलकर निःशक्तजन का विश्वास व हौंसला बढ़ाकर उन्हें आगे लाये।

संदर्भ सूची

1. कथा–साहित्य में विकलांग–विमर्श, डॉ. विनय कुमार पाठक, पृ.–213
2. ममता कालिया, बीमारी, पृ. 33
3. विकलांग विमर्श की कहानियाँ, डॉ. विनय कुमार पाठक, पृ. 169
4. विकलांग विमर्श का वैश्विक परिदृश्य, डॉ. सुरेश माहेश्वरी, पृ. 351
5. विकलांग विमर्श, डॉ. विनय कुमार पाठक, पृ. 196
6. सीट नंबर छह, ममता कालिया, पृ. 29
7. निर्मोही (मुन्नी) ममता कालिया, पृ. 434
8. विकलांग जीवन की कहानियाँ, गिरिराज शरण अग्रवाल, पृ. 12

Explore Innovate Educate

Shri Param Hans Education &
Research Foundation Trust
www.SPHERT.org

भारतीय भाषा, शिक्षा, साहित्य एवं शोध
ISSN 2321 – 9726
www.Bhartiyashodh.com

INTERNATIONAL RESEARCH JOURNAL
OF COMMERCE, ARTS AND SCIENCE
ISSN 2319 – 9202
WWW.CASIRJ.COM

INTERNATIONAL RESEARCH JOURNAL
OF MANAGEMENT SCIENCE &
TECHNOLOGY
ISSN – 2250 – 1959 (0) 2348 – 9367 (P)
WWW.IRJMST.COM

RESEARCH JOURNAL OF SCIENCE
ENGINEERING AND TECHNOLOGY
ISSN 2454-3195
WWW.RJSET.COM/

ISSN 2348 - 9359
9 772348 935900
Price : ₹ 750.00

ISSN 2278-6910
पंजीयन क्र. आर.एन.आई.-12738

द्वैमासिक पत्रिका

साहित्यांचल

72

जुलाई-अगस्त 2018

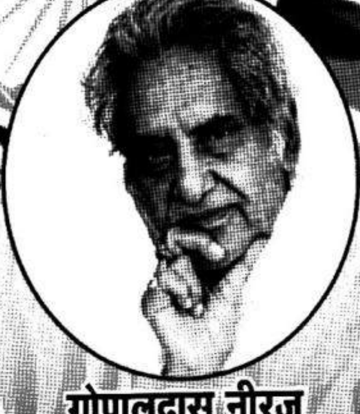

गोपालदास नीरज

4 जनवरी 1925-19 जुलाई 2018

भवानीशंकर जी दु:खित

जन्म शताब्दी वर्ष

13 अगस्त 1919-13 अगस्त 2018

स्वतंत्रता दिवस की हार्दिक शुभकामनाएँ

अनुक्रम

क्या ?	लेखक ?	कहाँ ?
सम्पादकीय	– सम्पादक	3
कविता	– सुमन औझा/बक्तावर सिंह चुण्डावत 'प्रीतम'	4
दोहे	– डॉ0 ए0बी0 सिंह	5
कहानी	– किशन लाल शर्मा	6
कविता	– कवि कमलकिशोर शर्मा	8
स्मृति पटल	– गोपालदास 'नीरज' (पद्मश्री व पद्मभूषण)	9
आलेख	– राधेश्याम सरावगी 'मसूदिया'	10
लघुकथा	– दिलिप भाटिया	12
आलेख	– ओमप्रकाश प्रजापति	13
आलेख	– शंकर लाल माहेश्वरी	16
दोहा	– लाल बिहारी लाल	17
कविता/गजल	– देवेन्द्र कुमार मिश्रा/विज्ञान व्रत	19
आलेख	– गुलाबचन्द पटेल	20
दोहे/कविता	– जगदीश तिवारी/राकेश नमित	23
कविता/हाइकू	– डॉ0 नथमल झँवर/ के.एल. दिवान	24
दोहे	– पवन पहाड़िया	26
कविता/ गीत	– शिल्पी कुमारी/गणपत सिंह 'मुग्धेश'	27
आलेख	– सुरजीत सिंह साहनी	28
कविता	– सीताराम चौहान 'पथिक'	30
आलेख	– डॉ0 सरोज गुप्ता	31
कविता	– चतुर कोठरी	33
आलेख	– सत्यनारायण पंवार	34
कविता	– दिनेश कुमार छाजेड़	35
पुस्तक समीक्षा	– शशि बंसल	36
कविता/लघुकथा	– सुनिता शर्मा/ श्यामसुन्दर 'सुमन'	40
शोधआलेख	– कविता यदव	41
दोहे	– अश्वनी कुमार पाठक	45
समाचार		46–48

शोधआलेख

समकालीन उपन्यासों में दिव्यांगजन

- कविता यदव

हिन्दी गद्य साहित्य में उपन्यास विद्या का महत्वपूर्ण स्थान है। समकालीन साहित्य में कई नये व पुराने उपन्यासकार सक्रिय रहे हैं। शुरूआती और में लेखक का उद्देश्य उपन्यास के माध्यम से पाठक का मनोरंजन करना था, परन्तु प्रेमचन्दजी के साहित्य में कदम रखते ही उद्देश्यपूर्ण रचना होने लगी। ऐतिहासिक, राजनीतिक, पारिवारिक व समाज का यथार्थ चित्रण होने लगा। बढ़ते समय के साथ इक्कीसवीं शताब्दी का लेखक विद्वान उपेक्षित वर्ग को केन्द्र में रखकर विमर्श करता है। वर्तमान में स्त्री–विमर्श के साथ दलित विमर्श, आदिवासी जनजातीय विमर्श, चिंतन के महत्वपूर्ण बिन्दु है। इन्हीं बिन्दुओं में निःशक्तजन अनुशीलन भी आज के समय की मांग है। क्योंकि हमारे देश में जनगणना संबंधि आंकड़े 2001 के सर्वे के अनुसार काफी सारे लोग अंगहीन है। हमारे समाज में इन लोगों के प्रति उपेक्षा का भाव रखा जाता है। उनकी समस्या का कुछ समाधान करना चाहिये स्वयं से न हो सके तो दूसरों के सहयोग से उसकी जिन्दगी में खुशियाँ लानी चाहिए। क्योंकि वे भी इस देश के नागरिक है।

हमारे समाज की यह अवधारणा है कि दिव्यांगजन को उसके पूर्व कर्मो का फल मिला है, अब उसे यह भोगना ही होगा। परन्तु यह समस्या तो मनुष्य को कभी भी हो सकती है। किसी लम्बी बीमारी के कारण, जन्म से, प्राकृतिक आपदा या दुर्घटना के कारण मनुष्य को कोई भी अंग गंवाकर जिन्दगी भर अपंग होने का दंश झेलना पड़ता है। तो इससे पूर्व कर्मो का कोई महत्व नहीं है, वैज्ञानिक युग में सभी काम मशीनों से होते हैं, ये मशीने ही सही जानकारी न होने या लापरवाही के कारण हमारी जिन्दगी भर की खुशियाँ छीन लेती है। भारतीय संस्कृति एवं पुराणों मे मनुष्य को मोक्ष या स्वर्ग प्राप्ति का माध्यम गरीब व अपाहिजों की सेवा में बताया है। धर्म ग्रन्थों एवं शास्त्रों में अपाहिजों, दरिद्रों, भूखे, लंगड़े–लूले, अंधे, बेसहारा लोगों की सेवा को सर्वोपरी माना गया है। वैदिक युग से लेकर आज तक साहित्य में जितनी भी रचना हुई उनमें दिव्यांग पात्रों के प्रति संवेदना ही देखने को मिलती है। भगवान शिव के बारे में हम पढ़ते हैं. स्वयं तीन नेत्र वाले थे और उनकी बारात में भी वे लंगड़े–बहरे, काने, लूले, अंधे विकृत शरीर वाले सभी शामिल थे। इस प्रकार हमारे देवी–देवताओं ने ही इन्हें उपेक्षित नहीं माना तो हमारा समाज क्यों मानता है? हमारे देवी देवता भी अंग विकार वाले थे जैसे छह मुखों वाला कार्तिकेय, हाथी के मस्तक वाले गणेश, बकरा के मस्तक वाले राजा दक्ष और शुक्र(काने), शनि (लंगड़े) आदि देवता एवं ग्रह आदि सामान्य अंग वाले नहीं है। परन्तु इन्हें दिव्यांग नही माना गया है। इसी प्रकार इस वर्ग की समस्या से अवगत कराने के लिए हमारे प्रसिद्ध समकालीन उपन्यासकार उपस्थित हुये हैं।

इस क्षेत्र में आने वाले उपन्यासों में संघर्षशील व पीड़ा भोगी पात्रों की भरमार है। ये पात्र हर युग मे रहे हैं। फिर चाहे आधुनिक काल का 'रंगभूमि' उपन्यास का पात्र सूरदास या फिर स्वातंत्र्योत्तर

काल में 'खंजन नयन' का सूरदास' जिन्होने अपनी बुद्धिमता और बहादुरी से अपनी अक्षमता को मात देकर मानवता के लिए नई मिशाल कायम की है। इसी प्रकार समकालीन उपन्यास के सृजनकार निम्न है जिन्होने इस समस्या को दृष्टिगत किया है–

इस दिशा में प्रथम कदम रखने वाली श्रेष्ठ लेखिका 'मृदुला सिन्हा' जी है। उन्होने अपने बेटे 'परिमल' की संवेदना से प्रेरित होकर ज्यों मेहंदी को रंग' की रचना की है। लेखिका ने अपने बेटे के साथ भोगे गए यथार्थ का चित्रण भी किया है। लेखिका ने अपने दिव्यांग पुत्र के जीवन के दस वर्षों में जब वह स्वयं शरीर के किसी भी अंग को हिलाने में असमर्थ था, उसे निःशक्त महसूस नहीं होने दिया। पूरे परिवार ने उसकी दिव्यांगता को स्वीकार नहीं किया, बल्कि उसका हौसला बनाये रखा। अट्ठारह वर्ष की आयु में असमय मृत्यु को प्राप्त होने पर 'मृदुला' जी ने अपनी हृदय पीड़ा को व्यक्त करने के लिए 'शालिनी' को मुख्यपात्र आरोपित करके उपन्यास की रचना की। इस उपन्यास में 'शालिनी' नामक पात्र के माध्यम से एक निःशक्त नारी की पीड़ा भी स्पष्ट झलकती है। पीहर व ससुराल में सबका हृदय जीतने वाली शालिनी जब अपने पैर गँवा देती है तो उसे इलाज के लिए लम्बे समय तक दिव्यांग संस्था में रहना पड़ता है। अब धीरे-धीरे उपके पति व परिवार से उसका सम्पर्क टूट जाता है। अब सभी उसके प्रति सहानुभूति न रखकर उसके पति के प्रति सहानुभूति दिखाते हैं। सभी उसके भविष्य के प्रति दुखी है। उसकी सास कहती है 'हाय, गंगा मैया कौन सा कसूर किया था, मेरे बेटे ने। ''शालिनी भी आदर्श की प्रतिरूप बनकर अपने पति को दूसरा विवाह करने की सलाह भी देती है, परन्तु पति भी दिखावटी आदर्श के प्रतिमा बनकर ठुकरा देता है।

अब शालिनी का संस्था में नया जीवन शुरू हो जाता है। पति की दूसरी शादी की बात सुनकर वह अन्दर से बिल्कुल टूट जाती है। अब कृत्रिम पैर लगवाकर वह अपने आपको संस्था के प्रति समर्पित कर देती है। वह दिव्यांगजनों के बीच अपने-अपको इतना व्यस्त रखती है कि उसे समय का पता ही नहीं चलता। इस उपन्यास के केन्द्र में डॉ0 अविनाश (दद्दाजी) हैं जो स्वयं कृत्रिम पैरों पर चलते हैं, परन्तु पूरे संस्था का उत्तरदायित्व संभालते है, परन्तु उन्होने हार नहीं मानी। वे अपने देश भारत वापस आ गये और इस संस्था के प्रति अपना समर्पण कर दिया। तभी से वे अपंग लोगों की सेवा भाव में लगे हुए हैं। इस संस्था में आकर शालिनी में भी सेवा भाव उत्पनन हो जाते हैं और यहीं पर रहकर उनकी सेवा का संकल्प ले लेती है।

उपन्यास के अन्त में लेखिका ने एक बहुत सुन्दर समाधान भी दिया है, जहाँ दद्दाजी और शालिनी अपने को एक करने का संकल्प लेते है। अब वे दोनो मिलकर अपना जीवन असहाय-अपंगों को समर्पित करने का संकल्प लेते हैं। उपन्यास के माध्यम से लेखिका यही कहना चाहती है कि यदि हम अपने जीवन में ऐसे किसी एक व्यक्ति का मन, वचन कर्म से सहायता करने का संकल्प लें तो इस परिस्थिति में परिवर्तन आ सकता है। क्योंकि इन्हे केवल प्रेमपूर्ण व्यवहार व विश्वास की आवश्यकता है।

इसी प्रकार दूसरा उपन्यास 'चित्रा मुद्गल' का 'आवां' है। चित्रा मुद्गल ने समाज के सभी वर्गो पर लेखनी चलाई है। उन्हीं में से उनका उपन्यास 'आवां' दिव्यांग पात्र पर केन्द्रित है। इस उपन्यास के मुख्य पात्र 'देवीशंकर पाण्डेय' हैं जो कामगार अगाड़ी के महासचिव है। उनके शरीर का दाहिने हिस्सा अचानक लकवाग्रस्त हो जाता है अब वे बिस्तर पर रहने को मजबूर है। पिता की इस अवस्था के कारण घर-परिवार की सारी जिम्मेदारी उनकी बेटी 'नमिता' पर आ जाती है। वह अपने पिता की देखभाल व घर का उत्तरदायित्व बखूबी निभाती है। इस व्यस्तता के कारण वह संध्याकालीन कक्षा में दाखिला लेती है। परिवार की आर्थिक स्थिति गड़बड़ा जाता है जिसके कारण अब पाण्डेय

जी को अच्छे अस्पताल मे ले जाने से पहले सोचना पड़ता है।

उनकी स्थिति ऐसी हो गई कि वे स्वयं तो करवट भी नहीं ले सकते और दीवार की तरफ मुंह करके विवशता के आँसू बहाते रहते है। वे बोल नहीं पाते इसलिए उनके पास एक स्लेट व चॉक रखा है ताकि अपने मन की बात लिखकर कह सके। पाण्डेय जी शरीर से दिव्यांग है। परन्तु मन से नहीं, जब नमिता नौकरी छोड़ने की बात करती है तो कहते हैं, तुम अपना निर्णय लेने में समर्थ हो, मुझे खुशी है कि तुमने पहली बार अपने विषय में स्वतंत्र निर्णय लिया। मैं तुम्हें कभी नहीं पूछूँगा कि तुम नौकरी क्यों नहीं करना चाहती? पाण्डेय जी के सबसे अच्छे दोस्त 'अन्ना साहब' से पाण्डेय जी कहते हैं। अन्ना साहब मुझे नहीं लगता मैं अधिक दिन जीवित रह सकूँगा। बच्चे और पत्नी के भविष्य की चिंता खाये जा रही है। शेष फण्ड का और ग्रेच्यूटी की रकम जितनी जल्दी प्राप्त हो जाए। नमी की माँ के नाम जीन बीमा की पेंशन योजना मे निवेश करवा दें। यहां पर पाण्डेय जी परिवार के प्रति सशक्त दिखाई दे रहे हैं क्योंकि उन्हें चिंता है कि मेरे जाने के बाद बच्चों का भविष्य अंधकारपूर्ण न हो।

लेखिका ने पाण्डेयजी को निःशक्त होने पर भी सशक्त दिखाया है, परन्तु उनकी पत्नी को अपने अपंग पति की कोई चिंता नहीं है। वह अपनी बहन की बेटी व दामाद की आवभगत में लगी रहती है। परन्तु नमिता इस उपन्यास में एक समर्थ बेटी की भूमिका अदा करती है। जब पिताजी की मृत्यु हो जाने पर क्रियाकर्म का समय आता है तो नमिता कहती है पण्डित जी, 'क्रियाकर्म मैं करूँगी, मुखाग्नि मैं ही दूँगी। मैं इनकी बड़ी बेटी हूँ, छुन्नु अभी बच्चा है। बच्चे के हाथ से क्रियाकर्म करवाना उचित नहीं।''2 इस प्रकार नमिता पिता की अन्तिम इच्छा को पूरी करती है।

इसी प्रकार निःशक्तजन पर आधारित 'अलगा सरावगी ने कोई बात नहीं' उपन्यास की रचना की। इस उपन्यास का मुख्य पात्र 'शशांक' एक सत्रह वर्षीय बालक है। जिसके बोलने मे हकलापन व चलने में भी परेशानी होती है। स्कूल में सभी बच्चे उसका मजाक बनाते हैं। परन्तु उसकी माँ उसे हार नही मानने देती। वह जीवन के हर मोड़ पर उसके साथ खड़ी रहती है। शशांक असामान्य लड़का है जो कलकत्ता के नामी स्कूल 'सेंट जोसेफ' में पढ़ता है जो कि क्रिश्चियन स्कूलों मे से एक है। स्कूल में उसका सहपाठी आर्थर उसका मजाब बनाता है और उसका एक मात्र दोस्त है। इसलिए उसके द्वारा मजाब उड़ाने पर भी वह उसका साथ नहीं छोड़ता। आर्थर के बारे में शशांक सोचता है, ''काश'' तुम्हें कोई अंदाजा होता कि तुम बिना मतलब मुझे कितना सता रहे हो।''3 जब शशांक का मिशनरी स्कूल में दाखिला हो जाता है तो लोग आश्चर्यचकित होते हैं और सोचते है कि चलने-फिरने के साथ उसका दिमाग भी अर्द्धविकसित होगा। इस सोच के कारण ही मोंटेसरी स्कूल की प्रिंसीपल 'मिसेज शाह' शशांक की माँ को यह कहकर दाखिले के लिए मना कर देती है कि दूसरे बच्चों के माता-पिता आपत्ति कर देंगे। अब शशांक की माँ सोच रही है कि शशांक को कोई छूत की बीमारी थोड़े ही है जो ये लोग उसके बारे मे ऐसा सोचते है।

इस उपन्यास मे शशांक के अरिरिक्त एक-दो पात्र और भी अपंगता के शिकार है। शशांक जिस फ्लैट में रहता है उसका लिफ्ट वाला पाण्डेय जी लकवा के कारण पैर घसीटकर चलता है। हर शनिवार को 'विक्टोरिया मेमोरियल' के पार्क में मिलने वाला उसका दोस्त जतीनदा अपने दोस्त जे. जे. की कहानी सुनाता है जिसका पिता 'जैकसन जैसी' पागलखाने में मौत की कगार पर है। शशांक की निःशक्तता की कहानी कुछ इस प्रकार बताई जाती है- ''सेरेब्रल पैलसी'' मेरी खास प्रॉब्लम को एथिटोयड' कहते हैं। जिसमें बैलेंस की संतुलन की समस्या रहती है। चलते-चलते झटका लग जाता है,

अचानक चलना गड़बड़ा जाता है। पैदा होते समय डॉक्टर ने ऑपरेशन करने में देरी की, यही वजह है 'एनोक्सिया' हुआ था । उस समय दिमाग में ऑक्सीजन की कमी हो गई। चलना भी छह साल में शुरू किया।"4

अचानक शशांक की जिन्दगी में तुफान आ जाता है, जिससे अब वह न तो चलता और न ही बोलता है। बिस्तर पर पड़ा रहता है जिससे उसकी जिन्दगी छिन्न-भिन्न हो गई। उसकी माँ उसे हार नहीं मानने देती उसे बर्डबोर्ड लाकर देती है जिससे वह अपने विचार बोर्ड पर लिख सके। कुछ दिनों तक ऐसे ही चलता है। घर का कोई भी सदस्य उसे असामान्य नही मानता। उसकी माँ उसे व्हील चेयर लाकर देती है और स्कूल जाने के लिए प्रेरित करती है। जिसमें उसका दोस्त अमित भी सहयोग करता है। जब घर में अमृत के समान सुख देने वाली कथा करवायी जाती है। उससे शशांक के जीवन की सारी समस्याएं दूर हो जाती है। अब वह धीरे-धीरे चलने लगता है। अब उसके परिवार को अपने आप पर गुस्सा आता है। पहले की बात सोचकर परन्तु शशांक उनकी तरफ देखकर धीरे से मुस्कुरा देता है 'कोई बात नहीं'। इस उपन्यास मे लेखिका ने दिव्यांग पात्र के प्रति संवेदनशीलता प्रकट करते हुये स्पष्ट किया है कि हर जगह शशांक को उपेक्षापूर्ण दृष्टि से देखा जाता है।

'गौरापंत शिवानी' ने साहित्य के हर क्षेत्र में प्रसिद्धि प्राप्त की है। उनकी प्रसिद्धि का कारण यह भी हो सकता है कि उन्होने हर विद्या को छोटे रूप में पूरे अर्थ के साथ स्पष्ट कर दिया है। इसलिए उन्होने अपने 'लघु उपन्यासों' में दिव्यांग वर्ग की पीड़ा को समझकर उन्हें समाज के सामने खड़ा करने का प्रयास किया है। उनका उपन्यास "पूतो वाली" में "पार्वती" नामक पात्र है जो पाँच पुत्रों की माँ है। उसकी एक आँख का मोतियाबिन्द का समय पर ऑपरेशन न होने के कारण पक गया, दूसरी आँख में ग्लूकोमा है। अब वह पूरी तरह अंधी हो गई परन्तु पाँच पुत्रों मे से एक भी न तो उसकी देखरेख करते हैं और न ही खबर लेते हैं। जब वह मृत्यु शय्या पर लेट जाती है तो उसकी अंतिम यात्रा में भी नहीं आया। इसी प्रकार उनका दूसरा उपन्यास 'कँजा' में मालदारिन की पगली बेटी एक बलात्कारी सुरेश भट्ट के अत्याचार के कारण बिन ब्याही माँ बन जाती है और पगली मर जाती है। नंदी नाम की लड़की उसके लड़के को पालती है, परन्तु लड़का बड़ा होने पर उसकी नानी मालदातिन उसे 'कँजा' कहती है तो वह अपनी माँ से उसका अर्थ पूछता है, जवाब मिलता है जिसकी माँ उसके जन्म के समय मर जाये उसे कँजा कहते हैं। अब नंदी का दिल टूट जाता है। इतने दिनों तक उसने माँ से भी बढ़कर पाला परन्तु आज वह उसकी माँ नहीं वह कँजा है। यह सुनकर उसे बहुत दुख होता है।

'करिए छिमा' उपन्यास मे कुष्ठरोग का चित्रण हआ है। एक विदेशी 'पादड़ी साहब" आकर गाँव के बाहर गुफा में रहता है। कुष्ठरोग होने के कारण उसके हाथ की अँगुलियाँ गई, पलकें गई और ठूँठ हाथों से वह चित्रकारी करता है। वह अपने ठूँठ हाथों से एक बाग लगाता है। जिसमें सेब, नाशपति आदि के पेड़ है। उसे यह तो पता ही था कि फल लगने तक वह जीवित नहीं रहेगा, क्या मीठे कुएें का पानी पीकर लोग कुंआ खोदने वाले का स्मरण नहीं करेंगे? अब उसका रोग ज्यादा बढ़ गया और वह मर गया। परन्तु उसके बाग के फलों की चर्चा पूरे गाँव में है।

'किशनुली का ढॉट' उपन्यास की मुख्य पात्र 'किसना' पागलपन की शिकार है। अनाथ पागल लड़की से परेशान होकर उसे जानवरों की तरह बोरे में भरकर शहर में काखी के द्वार पर छोड़ दिया। काखी निःशन्तान थी, इसलिए उसने अपनी बेटी की तरह उसे पाला-पोषा, परन्तु उसका पति कक्का उसे अपनी हवस का शिकार बना लेता है जिससे किसना गर्भवती हो एक बेटे को जन्म देकर

मर जाती है। उसके बेटे को काखी पाल-पोषकर , पढ़ा-लिखाकर कलेक्टर बनाती है।

"कृष्णा वेणी' उपन्यास में कृष्ण वेणी का भास्कर के साथ प्रेम प्रसंग है। परन्तु भास्कर का पिता कुष्ठ रोगी है जिसका पता कृष्णवेणी के पिता को लग जाता है। वह विवाह के लिए मना कर देता है। आगे चलकर भास्कर को भी कुष्ठरोग हो जाता है। "उसके दोनो हाथों की अंगुलियाँ झड़कर दो अध़ूरी मुट्ठियाँ मात्र रह गई, होंठ विहीन चेहरा वीभत्स बन गया है जैसे कटहल का छिलका। नाक नहीं है, पलकहीन अंगारे सी दो आँखें ही बस दप-दपकर जल रहीं है पूरे चेहरे पर।"5

शिवानी ने अपने साहित्य में समाज की सभी समस्याओं पर लेखन किया है। उनकी ज्यादातर रचना समाज से जुड़ी हुई व्यक्ति की निजी समस्या से सम्बन्धित होती है। इसलिए पाठक में रोचकता प्रदान करती है।

अतः समकालीन उपन्यासों में दिव्यांगजन की पीड़ा का खुलकर चित्रण हुआ है। मानव के अपंग होने के तो अनेक कारण है, परन्तु इसके बाद मनुष्य मानसिक स्तर पर टूट जाता है। उसके सपने बिखर जाते हैं। दिव्यांग जन को समाज हीन दृष्टि से देखता है। मानव को निःशक्तता के कारण आर्थिक दृष्टि से दूसरों पर निर्भर होना पड़ता है। उसका अपना जीवन पराश्रित बन जाता है। समाज के संवेदनशील, भावुक, सहृदयशील और सामाजिक उत्तरदायित्व का ध्यान और मान रखकर साहित्य सृजन करने वाले साहित्यकार अपने लेखन के माध्यम से इन लोगों की वेदना, पीड़ा और व्यथा को उठाने का प्रयास कर रहे हैं।

संदर्भ सूचि-

1. ज्यों मेंहदी को रंग' मृदुला सिन्हा - पृष्ठ 50
2. 'आवा' चित्रा मुद्गल - पृष्ठ 399
3. 'कोई बात नहीं' अलका सरावगी - पृष्ठ 15
4. 'कोई बात नहीं' अलका सरावगी - पृष्ठ 113
5. 'कृष्णवेणी' गौरापंत शिवानी - पृष्ठ 38

- कोटा विश्वविद्यालय, कोटा (राज.)

दोहे

- अश्वनी कुमार पाठक

अगर भूख सम्मान की, सता रही दिन रात।
उद्यत हों तन झेलने, मन पर सौ आघात।।
मन में रहे न भावना, पाने की प्रतिदान।
राह प्रेम की उसी क्षण, हो जाती आसान।।
यदि खुद के अज्ञान का, लिया नहीं संज्ञान।
हो सकती है ज्ञान की, फिर कैसे पहचान।।
लूट-लूट धन सम्पदा, तुम बन गये अमीर।
भूखा-प्यासा मर गया, लेकिन मुआ जमीर।।
वक्ष चीरकर धरा का, करते लहू लुहान।
भीषणतम परिणाम का, तुम्हें न किंचित भान।।।

- ब्राह्मणपुरा, सिहोरा - 483225, जबलपुर
म0प्र0, मोबा. 09926374805

**लहजे में बदजुबानी,
चेहरे पर नकाब
लिये फिरते हैं,
जिनके खुद के
बहीखाते बिगड़े हैं,
वो मेरा हिसाब
लिये फिरते हैं।**

स्वत्वाधिकारी, मुद्रक, प्रकाशकः शिवप्रकाश व्यास द्वारा मेधा कंप्यूटर्स एंड आफसेट प्रिंटर्स, नंद भवन, कांवाखेड़ा भीलवाड़ा से मुद्रित करवा कर म.न. 8, 'व्यास भवन', सांगानेर कॉलोनी, सुवाणा रोड़, भीलवाड़ा (राज.) से प्रकाशित, संपादक-सत्यनारायण व्यास 'मधुप'